ॐ

योगी का आत्मचरित्र

AUTOBIOGRAPHY OF YOGI DAYANANDA

योगेश्वर महर्षि दयानन्द
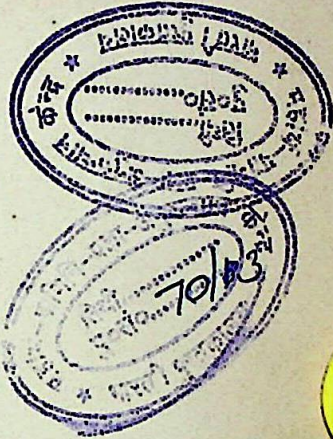
योगी का आत्म-चरित्र

(३६ वर्ष की अज्ञात जीवनी)
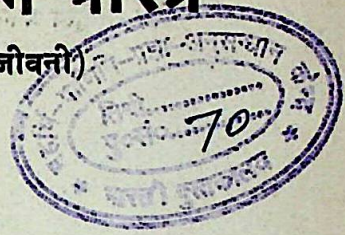
संस्कृत में प्रवक्ता
योगेश्वर महर्षि दयानन्द सरस्वती

संस्कृत से बंगला में कराने वाले
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, श्री ब्रह्मानन्द, श्री केशव चन्द्रसेन
आदि बंगाल के मूर्धन्य विद्वद्वृन्द

बंगाल में लेखक
संस्कृत-बंगला-विशेषज्ञ मण्डल

हिन्दी अनुवादक तथा हस्त लेख अन्वेषक
श्री पं० दीनबन्धु शास्त्री बी० ए० आचार्य

गवेषक पोषक तथा ऋषि यात्रा-यात्री
श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती योगी
अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, नैनीताल
सा० मन्त्री सार्वदेशिक आर्यसन्यासी वानप्रस्थ मण्डल-ज्वालापुर
महामहिम-पातञ्जल योग साधना संघ

प्रकाशक
पातञ्जल योग साधना संघ
वैदिक भक्ति साधना आश्रम,
रोहतक

मूल्य १५.००

प्रकाशक, गवेषक, अनुवादक का समस्त लाभांश महामहिम के आदेशानुसार योग साहित्य प्रकाशन एवं योग प्रसार में व्यय होता है

वितरक

१. प्रकाशक वैदिक साधना आश्रम, आर्य नगर, रोहतक

२. श्री कल्याण स्वरूप जी साधक
आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर, सहारनपुर

३. श्री बालकृष्ण जी अग्रवाल, यौगिक संघ,
११ नं० पोलक स्ट्रीट, कलकत्ता-१

४. रोशन बुक डिपो, नई सड़क, देहली,

५. श्रीमती प्रतिभा किशोर, १३६ डी०
कमला नगर, देहली-७

६. गुरु विरजानन्द स्मारकन्यास, करतारपुर, पंजाब।

मुद्रक :
अशोक प्रेस,
नई सड़क, दिल्ली-६

हार्दम

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो' न मेधया, न बहुना श्रुतेन ।
यमेष वृणुते तेन लभ्य, स्तस्मै तनूते नूँस्वाम् ।।उपनिषद

आत्मा परमात्मा का ज्ञान प्रवचनों से प्राप्त होगा नहीं, न तर्क से, न वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-सुनने से । जिन पवित्र आत्मा को भगवान् अपना लेते हैं, उसी को प्राप्त होता है । भगवान् उसके लिए अपना स्वरुप व्यक्त कर देते हैं ।

नैषा मतिस्तर्केण आप्नेया'

आत्म ज्ञान तर्क से होने वाला नहीं है ।

तर्कस्याप्रतिष्ठानम्—वात्स्यायन भाष्य

तर्क की प्रतिष नहीं । अंतिम निर्णय नहीं ।

इस लिए अनार्ष ज्ञान के उपाधिधारी, डाक्टर,एम.ए प्रोफेसर, आचार्य, शास्त्री, तीर्थ, स्वयंभू ऋषि, नेता, राजसी सन्न्यासी आर्षज्ञान को समझ नहीं पाते हैं, प्रसार तो बहुत आगे की स्थिति है । वेतनोपजीवी धर्म के वकील भी धर्मप्रसार नहीं कर सकते हैं । वे केवल रोचक पाचक प्रसन्न कर चूर्ण ही बेच पाते हैं, पौष्टिक आहार नहीं । यहि कारण है कि दयानन्दानुयायी भी न वेदका गहन अध्ययन स्वयं कर पाते हैं, न बालकों करा पाते हैं । प्रभु प्राप्रि को एक मात्रसाधन योगाभ्यास की तो रुचि ही न गण्य है । आर्षपाठ विधि और शास्त्रों का अध्ययन जनता से समाप्तसा है । समाज वर्गहीन बन गया है । गुण कर्म स्वभाव की वर्ण व्यवस्था केवल सत्यार्थ प्रकाश को ही शोभित कर रही है । आश्रम व्यवस्था भी वर्तमान युगानपेक्षित हो गई है, सारा जीवन गृहस्थ को ही अर्पित कर दिया गया है । राजनीति वर्णाश्रम धर्म की स्थापना के लिये थी । वह भी केवल अधिकार शासन या धन बटोरने को रह गई है । नेतृ वर्ग तो इसमें बुरी तरह फँसा है । अब कुछ सन्न्यास की होड सी चली लगती है । पर बिना

वानप्रस्थ में या प्रथम ब्रह्मचर्य में ही योग सिद्ध किये सन्न्यास कृतकार्य नहीं हो सकता। गेरुये रंग में भी अधिकार पैसे की खैंचा तानी और दल बन्दी रही तो ऐसे सन्न्यास को धिक्कार है। विना ऋषि बने वेद का मन चाहा अर्थ भी योग के महत्त्व को नहीं बढ़ा सकता, धन दे सकता है। योग की अन्यसाधनायें भी धन दे सकती हैं। विना केवल वैराग्य ही नहीं, अपितु पर वैरागी दयानन्द सा अवधूत बने विना योग भी सिद्ध न होगा।

इन परिस्थितियों में संसार ऐसे ब्रह्मचाररियों या पचास से ऊपर वाले वान प्रस्थों की प्रतीक्षा में है। जो कम से कम १० वर्ष तक योग सिद्ध होकर अवधूत योगिराज दयानन्द की तरह वेद प्रचार में लगें संसार को आलोकित करें। मार्ग प्रदर्शन करें, सूर्य,चन्द्र ही संसार को आलोकित् कर सकते हैं, तारा गण नहीं।

योगी का यह आर्तनाद सशक्त, समर्थ, विरक्त युवकों, ऋषि के दीवाने आर्यों के अन्तस्तल पहुँचेगा। दयालु भगवान् दया करेंगे।

—सच्चिदानन्द स्वामी योगी

ओ३म्

गुरु देव का आशीर्वाद
श्री १०८ योगीराज स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज

उत्तराखण्ड की महान् विभूति
संस्थापक योग निकेतन-गंगोत्तरी, उत्तरकाशी, मुनि की रेती
योग के विश्व-प्रसारक

जिन के आश्रय में योग तथा सन्न्यास की शुभ्र पुण्य मयी दीक्षा ली। सदा आशीर्वाद, स्नेह और गौरव प्राप्त किया। गुरुदेव के चरणों में शतशः प्रणाम। गुरु देव का आशीर्वाद सदा शिरोधार्य है।

अन्तेवासी
—सच्चिदानन्द स्वामी योगी

ॐ

विनम्र भेंट

सर्व श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी सरस्वती महाराज
के चरणों में
यह विनम्र भेंट
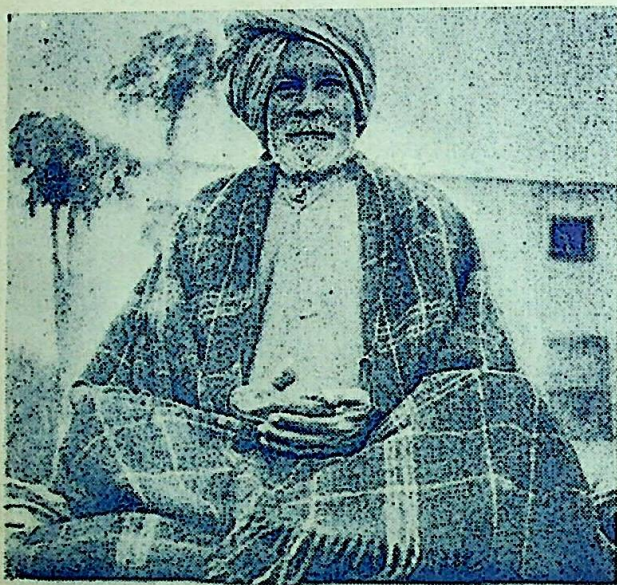
महात्मा श्री नारायण स्वामी जी महाराज
से सन्न्यास में दीक्षित

जिन के पुण्य मय प्रश्रय में, जिन की छत्र-छाया में रहते हुए आर्ष शास्त्रों, आर्ष पाठविधि योगानुशीलन तथा त्याग वैराग्य प्राप्त करने के प्रशिक्षण का सुयोग मिला।

चरणरज
—सच्चिदानन्द स्वामी योगी

—पूर्वार्द्ध

अनुसंधान

मेरे परम मित्र पण्डित प्रवर ईवरचन्द्र विद्यासागर का अनुरोध

"योग की साधना के बारे में आपके अनुभव
में जो कुछ भी है, आप करीब-करीब
सब कुछ ही बोलने की कृपा करें।
क्योंकि किताबों में ज्ञान का
रहस्य मिलता है, साधना का
रहस्य नहीं मिलता है।"

—ईश्वर चन्द्र विद्यासागर

"विद्या सागर जी का अनुरोध मुझे सहर्ष
स्वीकार है। मैं यथा शक्ति इसका
वर्णन करूंगा।"

—योगेश्वर महर्षि दयानन्द

(योगी का आत्म-चरित्र पृ० १३५)

ऋषि ने समस्त भारत का भ्रमण किया

"मैं एक बार गंगोत्री से चलकर गंगा सागर तक और एक बार गंगोत्री से रामेश्वर तक गया था। रात्रि में जब तेल न रहता था, तो मैं बाजार के दीपकों के प्रकाश में पढ़ा करता था। मैं कई दिन तक लगातार मध्याह्न में तप्त रेणु में पड़ा रहा हूँ, और हिमाच्छादित पर्वतों में तथा गंगा तट पर नग्न और निराहार सोया हूँ।"

—देवेन्द्र बाबू का महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृष्ठ ६२२

"शिवजी महाराज कैलाश निवासी थे तथा कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। काश्मीर से नेपाल तक सब देश मेरा देखा हुआ है। मैं इन सब ओर मैं घूमा हुआ हूं।"

—महर्षि दयानन्द का पूना प्रवचन (दशम व्याख्यान)

"मेरे जीवन काल में यह आत्म-चरित्र न छापा जाए"

योगी का आत्म-चरित्र पृ० २४१

—महर्षि का बंगाली विद्वानों को आदेश

शीर्षक सूची

अनुसंधान

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

पाठकों से . . .

योगी ही ब्रह्म से सीधी बात करता है, वही ऋषि होता है, और वही वेदार्थ को जान या जना सकता है। सब शास्त्रों की योग-प्रक्रिया एक ही है, उससे भिन्न कोई मार्ग योग का नहीं माना जा सकता। शास्त्रों की इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ में वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण व गीता के उद्धरण दे दिये गये हैं। यही प्रक्रिया इस 'आत्म-चरित्र' में भी दर्शायी गयी है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भी योगी थे। वे ब्रह्म का अवतार किस रूप में हैं और क्यों हैं यह पूर्वार्द्ध (अनुसंधान) के आरंभ में दर्शाया गया है। महर्षि दयानन्द का योग सिद्ध था, वे उच्च कोटि के तीसरी श्रेणी के योगी थे—'भूतजयी योगी'। उनका हर कार्य ईश्वर-प्रेरणा से नियन्त्रित होता था। संसार के प्रवाह को दयानन्द रूपी प्रपात से अधिक गतिशील बनाना भगवान् का लक्ष्य प्रतीत होता है। इसलिए, सन् सत्तावन की क्रांति के नेता महर्षि दयानन्द के शिष्य बने और भारत स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर हुआ।

प्रस्तुत 'आत्म-चरित्र' की कोई घटना, कोई स्थान, कोई समय अप्रामाणिक नहीं है। इसको पुष्टि में भूगोल, इतिहास, ऋषि की उपलब्ध जीवनियों, स्वकथित आत्म-चरित्र एवं पत्र व्यवहार से 'पूर्वार्द्ध' में और परिशिष्ट में प्रमाण जुटाए गये हैं। अन्त में, जीवनी सम्बन्धी पूना-प्रवचन तथा 'थ्योसोफ़िस्ट' की दुष्प्राप्य ऋषि जीवनी प्रामाणिक अनुवाद सहित अंग्रेजी में इसी लिए दिये गये हैं कि इन तीनों आत्म-चरित्रों में एक दूसरे की व्याख्या ही है, समानता है विरोध नहीं।

बिना समझे खण्डन करने वालों को सद्बुद्धि देती हुई यह जीवनी मार्गदर्शक बनेगी, ऐसी आशा है। प्रकाशन की शीघ्रता में छपाई की कई प्रकार की त्रुटियां रह गई हैं जिस में प्रूफ रीडिंग की भी हैं, जैसे पृ० ७८ पर 'वैशेषिक' का 'वैशेयोग' ही छप गया है। ये सभी अगले संस्करण में ठीक हो सकेंगी। ग्रन्थ का कलेवर एवं साजसज्जा और तदनुरूप मूल्य भी संभावना से अधिक रखना पड़ा है। किन्तु, एक शोध-पुस्तक मूल्यवान् होती ही है।

सूची की कुछ अशुद्धियां कृपया ठीक करलें :—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	५-६	हार्दम १४-१५ अनुसंधान निष्कर्ष १६	हार्दम् १५-१६.
"	७	योगावतण १-६१	योगावतरण १७-६१.
"	२६	६२-११४	६२-१२५.
६	२०	१२३-१२८	१२६-१३२.
"	३२	१४२,	१४३, योगी के आत्म-चरित्र का अनुशीलन १४५.
"	"	१४४	१५२
७	३०	पित-तत्त्व	पित्त-तत्त्व
८	१	श्लेषमा	श्लेष्मा
१२	१७	२७३-२९६	२७३-२८१
"	२२	३०७	३०८-३३१
१४	१०	१२. प्रशस्तियां-६, चित्र ८	१२. प्रशस्तियां-६. उल्लिखित चित्र संख्या क्रमशः ८, ९. ११ व १२ के चित्रों के विवरण

चित्र सूची में पृष्ठ सख्या प्रायः पाठगत पृष्ठों के आधार पर दी गई है, किन्तु ग्रन्थ में चित्र की अवस्थिति कुछ आगे पीछे भी संभव है। ध्यान रहे चित्रों की पृष्ठ संख्या पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध में से कहीं भी हो सकती है।

सच्चिदानन्द स्वामी

चित्र-सूची

७. कलकत्ता में गवेषणा युगल—१. स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती
२. श्री पं दीन बन्धुजी शास्त्री

८. नर्मदा तीर्थों के ७ चित्र—१

९. हिमालय यात्रा के तीर्थों के ९ चित्र—

१०. दक्षिण यात्रा के चित्र—कामाख्या, रामेश्वरम् ।

११. ५७ के क्रान्तिकारी—सूत्रधार नानासाहब, महारानी लक्ष्मीबाई, श्री मंगल पाण्डे वीर विक्रम सिंह, तात्या टोपे ।
आत्म चरित्र को प्रकाश में लाने वाले पुण्य भागियों के कुछ चित्र—
५ चित्र ।

१२. प्रशस्तियाँ—६ दित्र ८

१. अमर कण्टक-नर्मदा का उद्गम, कोटितीर्थ, २. श्री ओंकारेश्वर-सरस्वती नर्मदा के मध्य ३. शिवपुरी ४. माहिष्मती-शंकर-मण्डन की शास्त्रार्थ स्थली ५. अहिल्येश्वर ६. कपिलधाराप्रपात ७. मेडा घाट ।

२. अमर नाथ २. गंगोतरी ३. श्री केदारनाथ ४. जोशी मठ ५. कैलाश ६. राक्षस ताल ७. श्री बद्रीनाथ ८ अलकनन्दा का उद्गम ।

३. श्री जगदीश चन्द्र जी डाबर २. श्रीमती वेद प्रभाजी डाबर ३. श्रीमती प्रेमवती जी दर्गन ४. सहयात्री श्रीरामचन्द्रजी डाह्याभाई पटेल ५. श्रीमोती गणेश भाई पटेल ।

४. श्री स्वा० ब्रह्मानन्द जी आर्य चाणोद कर्णाली, पोस्टाचार्य श्री देवदत्त जी व्याकरण वेदान्ताचार्य, ४. महात्मा आन्दभिक्षु जी ५. स्वा. वियानानन्द जी सरस्वती-रोहतक ६ सर्व श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ।

योगेश्वर महर्षि दयानन्द
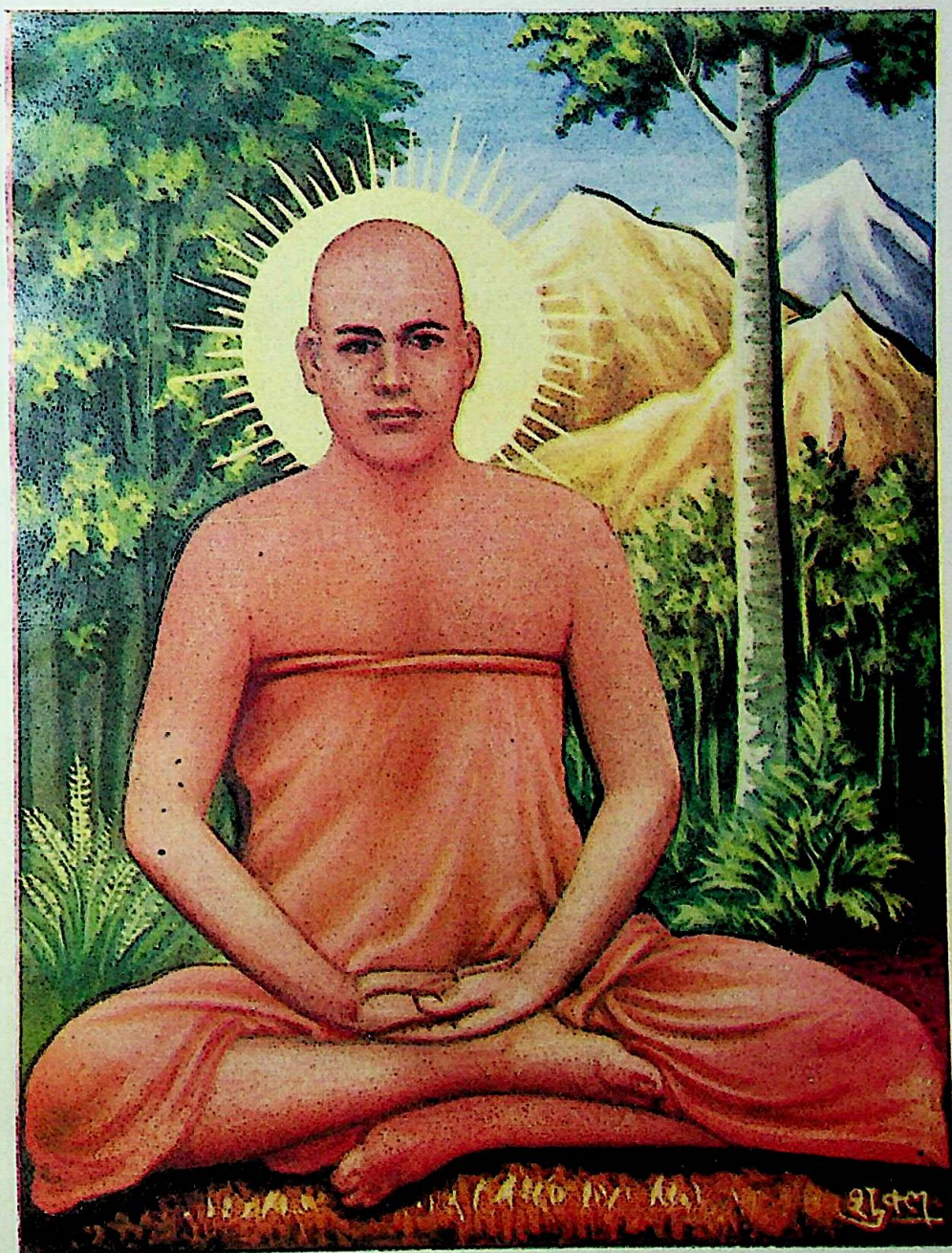
सन् ५७ की क्रान्ति के होता नाना परिवार के गुरु

आत्मचरित्र उपदेष्टा
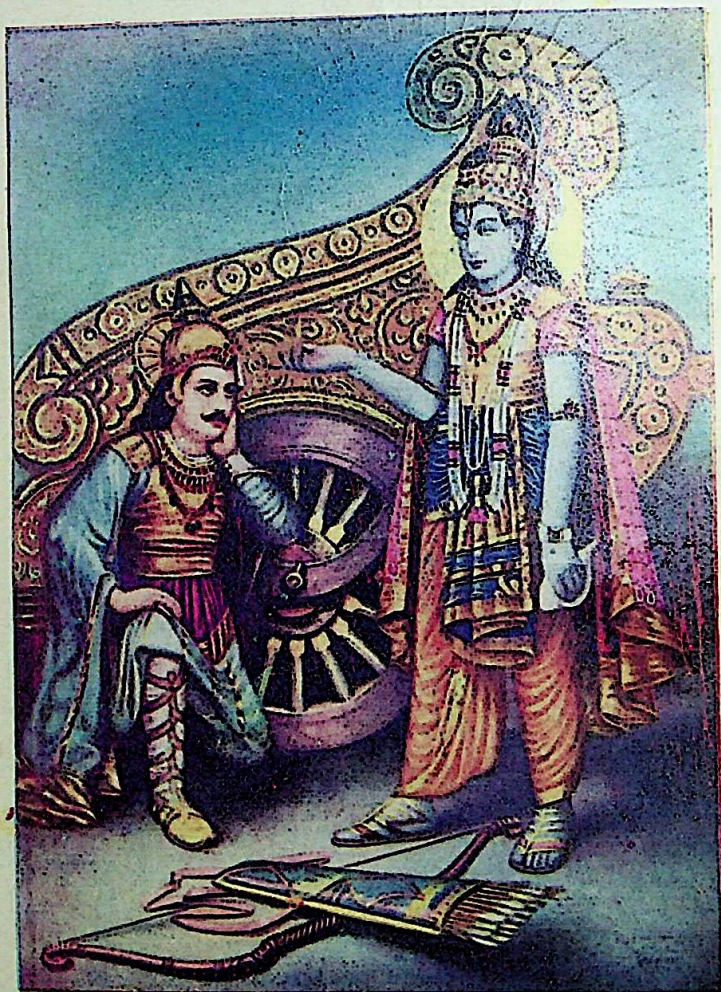
योगेश्वर भगवान् कृष्ण

महाभारत युद्ध के होता अर्जुन के गुरु
गीता-उपदेशक

ओ३म् सच्चिदानन्दाय नमो नमः ।

योगावतरण

योगी ही ऋषि हुए—

योगी परम्परा की मान्यता है[1]—"हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ही योग के आदि प्रवक्ता हैं। अन्य—कोई नहीं।" जितने ऋषि हुए हैं सब योगी हैं। 'ऋषि लोग धर्म को - गुण को साक्षात् करने वाले होते हैं।[2] परमात्मा के सत्, चित्, आनन्द तीनों गुणों को, आत्मा की चेतनता और प्रकृति की सत्ता को ऋषि लोग साक्षात् करने वाले होते हैं। 'यह साक्षात् योग-जन्य ही है, शास्त्र गम्य नहीं। योगी ही शब्द, ज्ञान और पदार्थ के मिले जुले संकर ज्ञान को अलग अलग विभाग करके एक ही शब्द पर धारणा, ध्यान, समाधि का प्रयोग—संयमजय अर्थात् स्वाभाविक संयम की स्थिति का लाभ कर उस का प्रयोग करने पर प्राणिमात्र की बोली को—भाषा को जान लेता है।[3] ऐसे योगी ऋषि ही मन्त्र-द्रष्टा होते हैं।[4]

प्राचीन और अर्वाचीन भारत-गौरव सब ही ऋषि मन्त्र-द्रष्टा थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वसिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, मनु, नारद सब ही मन्त्र-द्रष्टा थे :—

ऋषि	मन्त्र
हिरण्यगर्भ ब्रह्मा-परमेष्ठीप्रजापति-स्वयंभू ब्रह्मा आदि ने	यजुः १ अध्याय, २ अध्याय के ऋषि हैं। दोनों के अर्थों का साक्षात् किया। ऋग्वेद के मण्डल १० के १२१ वें सूक्तका साक्षात् किया।

१—"हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः कश्चन पुरातनः।"
२—"साक्षात्कृतधर्माण ऋषियो बभूवुः" —यास्कः निरुक्ते।
३—"'शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्-
प्रविभाग संयुमा त्सर्वभूतरुतज्ञानम्'—यो॰ ३. १७.
४—ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः।" निरुक्ते।

नारायण (विष्णु) ने — यजु० अ० २३ के मन्त्र १ से ६५ तक के
,, १६ ,, ४० से ६६ ,, ,,
,, ३२ ,, १ से १२ ,, ,,
,, ३० ,, १ से ३ ,, ,,
,, ३१ ,, १ से १६ ,, ,,
सामवेद के ,, ६. ३. १३., ३. ७. १७ से २८ तक का

भर्ग: (महादेवजी) ने — सामवेद के ३. १. ७. , ३. २. ६-२७, ५. १. १-१४, ५. १. २. १५ तक का साक्षात् किया।

वसिष्ठो मैत्रावरुणि: — यजु: के अध्याय ३३ के १४, १८, २०,४०,७०, ७६, ७७, ८८ मन्त्रों का ;
५ के, १६. ११७; ३ अध्याय के ६०,६१ का

विश्वामित्रो गाथिन: — यजु: के ७ अध्याय के ३१. ३५ से ३८ के ३६ के, मन्त्र ३ गायत्री प्रणवव्याहृतिसहित देवीवृहती छन्दवालीका।

अगत्स्यो मैत्रावरुण: — यजु: ३३ अध्याय के २७,३४ के ७८,७९ का,
३४ ,, ७ से ९ का

मनु वैवस्वत — यजु: के ८ अध्याय के २७ से ३१ तक
याज्ञवल्क्य — ,, २६ ,, १ मन्त्र का,
नारद — सामवेद के मन्त्र ४.२.१०.१ का

अर्थों का साक्षात् किया।

योगी दयानन्द ने भी स्वीकार किया है कि 'जिन्होंने सारी विद्यायें यथावत् जान ली थीं वे ऋषि हुए'।[1] ऋतंभरा प्रज्ञा योगी को ही मिलती है। धारणा, ध्यान, समाधि के सतत् एक विषय में स्वायत्त करने से प्रज्ञालोक नाम की ऋतंभरा का उदय होता है।[2] ऋतंभरा प्रज्ञा से जो कुछ योगी जानता है वह सर्वोत्कृष्ट ज्ञान होता है।[3] शास्त्रों के पढ़े लिखे दूसरों के किये अर्थों को

१—"यैः सर्वा विद्या यथावद् विदितास्त ऋषियो वभूवु:।" ऋ०वं०भा० पृ० ६४६.

२—"तज्जयात्प्रज्ञालोक:।" यो० ३.५.

३—"तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कारप्रतिबन्धी।" यो० १.५०.

सही सही रूप में जानता है। श्रुत और अनुमान ज्ञान से ऋतंभरा का ज्ञान बहुत उत्कृष्ट होता है। ऋतंभरा से उत्पन्न ज्ञान अन्य सब संस्कारों के ज्ञानों को प्रतिबन्धित कर देता है।[1]

ऋषियों ने ही वेदार्थ जाना—योगी दयानन्द ने एक बढ़िया बात लिख दी है—

(प्रश्न) वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना?

(उत्तर) परमेश्वर ने जनाया। धर्मात्मा योगी (धर्म को साक्षात् करने वाले) महर्षि लोग जब जब जिस जिस मन्त्र के अर्थ को जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए तब तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये।"

सब ऋषियों ने समाधि लगा लगा वेदार्थों को जाना।

ये सब योगी ऐतिहासिक महापुरुष हुए हैं—"सब कोई जानते हैं कि [श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, नारायण, और शिव आदि] बड़े महाराजाधिराज और उनकी स्त्री सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती आदि महारानियां थीं।" —सत्यार्थ प्रकाश ११ समु०

"ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वर-रचित पदार्थ हैं जिनको मैं भी मानता हूं।" —स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

ब्रह्म के अवतार—महादेव कैलाश के रहने वाले थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। —उपदेश मञ्जरी पृ० ११६

इतिहास सिद्ध कर रहा है कि ये सब ब्रह्म के अवतार थे। उतरने का स्थान थे। ब्रह्म इन के आत्मा में उतरा हुआ था। ये समाधिस्थ रहते थे। ब्रह्म दर्शन करते थे। व्युत्थान दशा में भी ब्रह्म साक्षात् रहता था। ब्रह्म हर समय उतरा रहता था। इस लिये ये अवतार थे।

ब्रह्माजी ऋतंभर-प्रज्ञ थे। चारों वेद उपस्थित थे। विवेकजज्ञान के स्वामी थे। सब विषय का इनको ज्ञान था। कुछ भी छिपा नहीं था। काष्ठा को प्राप्त था। अक्रम था।

विष्णुजी को अस्तेय सिद्धि था। संसार के सब रत्न उनको प्राप्त थे। गृहस्थ होते हुए भी मधुमती भूमिक थे। सब सम्पत्ति, वैभव उपहृत होते थे पर यह उनके सङ्ग, स्मय से बहुत दूर थे। समाधि निरत थे।

१—श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्।" यो० १. ४९.

महादेवजी अहिंसा प्रतिष्ठ थे। सारे ही यम इनमें स्थिति लाभ किये थे। सांप लिपटे रहते थे। मूषक पास में कल्लोल करते थे। कार्तिकेय का मयूर भी पास में नृत्य करता रहता था। मृत्युंजय थे। रुण्ड मुण्डों की माला और श्मशान की भस्म इनके अंग की शोभा थी। कल्याणकर थे। मस्तिष्क सदा शान्त, चन्द्र और गंगा सा शीतल रहता था। मानो चन्द्र, गंगा वहां वास कर रहे हों। गृहस्थ होते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचारी थे। पूर्ण विरक्त दिगम्बर थे। क्लेश कर्म को योगाभ्यास से दग्ध कर दिया था। पार्वती का तप भी उग्र था। अपर्णा रही थीं। इन्हीं गुणों से कैलाशवासी कैलाशाधिपति बने।

नारदजी—उदान जयी थे। लोक लोकान्तर में उनकी अवाध गति थी।

व्यासजी—विलक्षण ऋतंभरा थी। चारों वेदों का ओर से छोर तक मनन निद्यध्यासन था। ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन इनकी ही शिष्य परम्परा का आश्चर्यकर कार्य था। ४५० वर्ष के युगद्रष्टा थे। १५० वर्ष घोर तप कर शुक सा पुत्र लाभ किया था। श्रुति-आधारित वेदान्त की रचना की थी। मीमांसा और योग पर अनुभव सिद्ध प्रामाणिक भाष्य लिखा था। महाभारत जैसे इतिहास और गीता जैसे भगवद्वाक्य की रचना की थी। इनकी महत्ता और ऋतंभरा के कारण महाभारत पञ्चम वेद कहलाया। योग की महिमा अगाध है।

गायत्री द्रष्टा विश्वामित्र—योगी विश्वामित्र प्रधान-जयी थे। घोर तपस्वी थे। राजपाट परित्याग कर तपो बल से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। यही महामहिम देवीवृहती छन्द वाली सप्रणवमहाव्याहृति गायत्री के मन्त्रार्थ द्रष्टा थे। पूर्ण योगी थे। योग का प्रचार किया था। गायत्री मन्त्र के आदेशानुसार भगवान् को पाया था। इनका दृष्ट मन्त्र ही गुरु मन्त्र बना—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु० ३६. ३.

—सत्, चित्, आनन्द स्वरूप ओम् है। उस पापों को भूनने वाले ओम् के श्रेष्ठतम स्वरूप का ध्यान करें। जो हमारी बुद्धि में स्थित ध्यान को प्रेरित कर समाधि तक ले जाये।

लम्बी सम्प्रज्ञात समाधि से प्रकृति, आत्मा, परमात्मा के शुद्ध रूप का ज्ञान-विवेक प्राप्त करे।

योगीराज भगवान् कृष्ण सिद्ध योगी थे। आपको काय-संपत् प्राप्त

थी। आठों महासिद्धियों के सिद्ध स्वामी थे। रूप लावण्य अनोखी काय संपत् थी। शरीर वज्रसम कठोर था। योग प्रधान गीता-सम संसार समादृत शास्त्र-रत्न का प्रादुर्भाव श्रीमुख से ही हुआ था। अवतारी महापुरुष थे। जीवन भर धर्मरक्षा और मानव कल्याण के लिये प्रयत्नशील रहे।

योगी दयानन्द—इसी योगी परम्परा में योगी दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य इनका लोक विख्यात है। भूत-जयी श्रेणी में अभ्यास चालू था। कलिकाल के मानव उद्धार के लिये ही इन्होंने जन्म लिया था।

आप उच्च कोटि के ऋतंभरप्रज्ञ योगी थे। जहाँ ऋषियों ने अध्यायों या कुछ मन्त्रों का ही साक्षात्कार किया वहाँ **योगी दयानन्द** ने लगभग बारह सहस्र १२००० मन्त्रों का योग समाधि से साक्षात्कार किया। समाधि में चारों वेदों के मन्त्रों की विषय सूचि भाष्य से पहले ही लिखा दी विषद भाष्य सम्पूर्ण यजुर्वेद का और ऋग्वेद के ७वें मण्डल के ७३वें सूक्त तक का मिलता है। कैसा अपूर्व योगी था। खाने-पोने की समस्या उसके लिये नहीं थी। आबू की गुफाओं और हिमालय में वह अब्भक्ष और वायुभक्ष ही रहा था। लम्बी लम्बी समाधियाँ लगाते थे पर वह अपनी योग सिद्धियां किसी को दिखाते न थे।

योगी दयानन्द के विलायत में अनेक भक्त थे। एक वार सेण्ट साहब ने योगेश्वर से कहा—"हमें कुछ योग सिद्धियां दिखाइये।"

योगी ने मना कर दिया। योगीराज ने १४ जुलाई १८८० को कर्नल अलकाट को लिखा था—

"जो मैं ने सेण्ट साहब से कहा था वह ठीक है क्योंकि मैं इन इन्द्रजाल की बातों को देखना दिखाना नहीं चाहता चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से। क्योंकि योग का अभ्यास किये विना किसी को भी उसका महत्त्व वा उसमें सच्चा प्रेम कभी नहीं हो सकता वरन सन्देह और आश्चर्य में पड़ कर उस आडम्बर की परीक्षा और सब सुधार की वातों को छोड़ कौतुक देखने को सब चाहते हैं। उसके लिए साधना करना स्वीकार नहीं करते।

सेण्ट साहब को **मैंने न दिखलाया, और न दिखलाना चाहता हूँ** चाहे वह प्रसन्न रहें या अप्रसन्न, क्योंकि जो मैं इस में प्रवृत्त हो जाऊँ तो सब मूर्ख और पण्डित यही कहेंगे कि हम को भी कुछ योग की आश्चर्यमय सिद्धियां दिखलाइये जैसे अमुक को आपने दिखलाई।

ऐसी कौतुक लीला मेरे साथ भी लग जाती जैसी मैडम ऐच० पी० ब्लॉवैटस्की के पीछे लगी हुई है।......जो कोई आता है वह यही कहता है कि मैडम साहब ! आप हम को भी कुछ तमाशा दिखाइये। इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्ति नहीं करता न कराता हूं। किन्तु कोई चाहे तो उस को योगरीति सिखा सकता हूं जिसके अनुष्ठान से वह स्वयं सिद्धि को प्राप्त हो सकता है।"

"जो सत्य धर्म, सत्य विद्या और ठीक २ सुधार की और परमयोग आदि की बातें सदा से जैसी आर्यावर्त्तीय मनुष्यों में थीं वैसी कहीं न थीं और न हैं।"

"धर्म दिवाकर, मासिक, कलकत्ता नें लिखा--"अठारह घण्टे की समाधि लगानें वाले जिस (दयानन्द) को लोग परमयोगी, जड़भरत का अवतार कहते हैं, वह कहीं भी अपनें आप को लोगों में योगी प्रसिद्ध करने की चेष्टा नहीं करता। भला सच्चे गुलाब को बनावट की क्या आवश्यकता"

—भाग १ अंक ८ पृ० १२४ से १२८ मार्गशिर सं० १९४०.

योगी दयानन्द सिद्धियाँ दिखाते तो नहीं थे पर उन को यथावसर काम में अवश्य ले आते थे। इस को उन्होंने स्वयं श्रीमुख से कहा भी था।

योग सिद्धि बिना बड़ा कार्य नहीं होता—"एक दिन पश्चिमी विज्ञान के एक पण्डित ने योग की सिद्धियों की सत्यता में शंका की। महाराज ने पहले तो युक्ति प्रमाण द्वारा उन की सत्यता निरुपित की और अन्त में यह कहा—

"क्या आप यह समझते हैं कि हम इतना बड़ा कार्य योग सिद्धि के बिना ही कर रहे हैं।" इस पर वह शान्त हो गया।

ऋषि की योग सिद्धियां—

जो अन्यो नें देखा वह पढ़िये—

प्रकाश का चक्र—"एक दिन सवेरे एक काषायाम्वर धारी बिहारी ब्राह्मण दण्ड-कमण्डलु लिए नौलखा उद्यान में आ निकला। उसने दूर से देखा कि कोई महात्मा पद्मासन जमाये ध्यान में लीन है। वह और निकट आया। महामुनि की मनोहारिणी मूर्ति को एक टक, लालायित लोचनों से निहारने लगा। वाल सूर्य की सुनहरी किरणें उन की कुन्दन समान दीप्तिमान् देह पर पड़कर उसे और भी देदीप्यमान कर रही थीं। स्वर्ण कलश की भान्ति उन का मस्तक चमक रहा था। तप्त ताम्र समान उनके दोनों हाथों की हथेलियां मुद्रा बद्ध दशा में शोभायमान थीं। सूर्य की तरुण किरणें

से प्रकाशित उनके अरुण वर्ण नख नवपल्लव सदृश लहकते दिखाई देते थे। उदय कालीन सूर्य समान रक्त वर्ण उनके दोनों होटों पर एक नीरव, अनुपम और अनिर्वचनीय आनन्दमयी मुस्कान खेल रही थी। उस विहारी ब्राह्मण को ऐसा प्रतीत हुआ कि सर्वाङ्ग सुन्दर स्वर्ण प्रतिमा के चहुँ ओर प्रकाश पुंज का एक चक्र सा वना हुआ है।" दयानन्द प्रकाश पृ० ५४६

अवधूत अवस्था—"जिन दिनों स्वामी जी प्रयाग में निवास करते थे, उन दिनों शीत अधिक पड़ता था। स्वामी जी रात दिन सिर्फ एक कौपीन पहने रहते थे और कोई कपड़ा न पहनते थे। न ओढते थे। यहाँ तक कि रात को भी जब वर्फ पड़ती तो गङ्गा के किनारे खुले मैदान में रेत पर या किसी चबूतरे पर ऐसे आराम से सो जाया करते थे जैसे क़ोई किसी गरम कमरे में लिहाफ तोशक के अन्दर सोता है।" पृ० ११४ म. द. जी. च

सती की मढ़ी—"उस समय उनका रेत का बिस्तर, ईन्टों का तकिया रहता था। उनके पास केवल एक कौपीन थी। वस्त्र ग्रहण नहीं करते थे।" —आर्य धर्मेन्द्र जीवन पृ० ८८.

कर्णवास में—माघ में एक दिन प्रातः काल अत्यन्त शीतल वायु चल रहा था। कडाके का जाड़ा था। महाराज पद्मासन लगाये उपदेश में रत थे। उनपर शीतातिशय का प्रभाव न था।

ठाकुर गोपालसिंह ने पूछा—"आप पर शीत का कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। महाराज बोले—ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इस का कारण है।"

ठाकुर—"हम कैसे जानें?"

महाराज ने अपने हाथों के अंगूठे दोनों घुटनों पर रख कर दबाये। और सारे शरीर से पसीना चू निकला। लोग चकित हो गए। उन्हें महाराज के योग में पूरा विश्वास हो गया।

——पृ० ११४ देवेन्द्र बाबू लिखित जीवन चरित्र

"मैंने पहाड़ के नीचे जो मार्ग जाता था उसे पकड़ लिया। मैं वन की ओर अलकनन्दा के साथ साथ चलने लगा। पर्वत और पर्वत के नीचे मार्ग सब ही मोटे वर्फ से ढका हुआ था। इस कारण मैंने वहुत ही कष्ट से उस दुर्गम मार्ग का अतिक्रम किया और जो स्थान अलकनन्दा का उत्पत्ति स्थान है वहां पहुँच गया। वहाँ मैंने देखा कि मेरे चारों ओर ही गगनभेदी पर्वतमाला खड़ी है। किसी ओर से भी मार्ग का कुछ पता न पाकर कुछ देर तो मैं इतस्ततः घूमता

रहा। और कुछ आगे वढ़कर मैंने देखा कि मार्ग तो क्या मार्ग का चिन्ह तक भी न था। इस हेतु से मैं थोड़ी देर तक तो किंकर्तव्य-विमूढ़ सा रहा। पीछे नदी के तट पर जा कर मार्ग का अनुसन्धान करना ही कर्तव्य स्थिर किया।

उस समय मैं साधारण और पतला कपड़ा पहने हुए था और वहां का शीत बहुत ही अधिक और असह्य था।"

—थियासोफिस्ट आत्म चरित्र।

यह पतला कपड़ा टिहरी चित्र वाला छाती पर बंधा कटि वस्त्र ही है। इस प्रकार शीत में—हिम में घूमना समान-जय की घोषणा करता है।

समान जयाज्ज्वलनम्। —यो ३.५०।

योग में ऋषि ने इस का अभ्यास किया हुआ था।

कायम गंज—मार्गशीर्ष १९२५—"जव भोजन का समय हुआ लोगों ने स्वामी जी से कहा 'महाराज स्नान कर लीजिये। भोजन पा लीजिये।"

वह बोले—"हमारे पास सिवाय एक लंगोट के और कुछ नहीं है, यहां माइयों का गमनागमन है। जव तक लंगोट नहीं सूखता तव तक हम कोई दूसरा वस्त्र धारण नहीं कर सकते। हम यहाँ स्नान के वाद नग्न नहीं रह सकते।"

तव सव लोगों के कहने से वह लाला गिरधारी लाल के वाग में जा एकान्त में गये, स्नान और भोजन किया। —म. द. जी. च. पृ० १३०.

शीताधिक्य होने पर भी वह कोई वस्त्र न पहनते थे। यदि कोई उन्हें गरम कपड़ा दे जाते तो या तो किसी ब्रह्मचारी को दे देते या गरीबों को बांट देते थे। मिष्टान्नादि भी लोगों को वांटे देते थे।

—म. द. जी. च. पृ० २४९

"अवधूत दशा में ४०। ४० मील चलना मेरे लिए कोई वात न थी। मैं लगातार कई कई दिन तक तप्तरेणु में पड़ा रहा हूँ और हिमाच्छादित पर्वतों में और गङ्गातट पर नग्न और निराहार सोया हूं।"

मेरठ में अपने भक्तों से प्रेमालाप करते हुए महाराज ने अपने जीवन की ये घटनायें सुनाईं। —म. द. जी. च. पृ० ६२२.
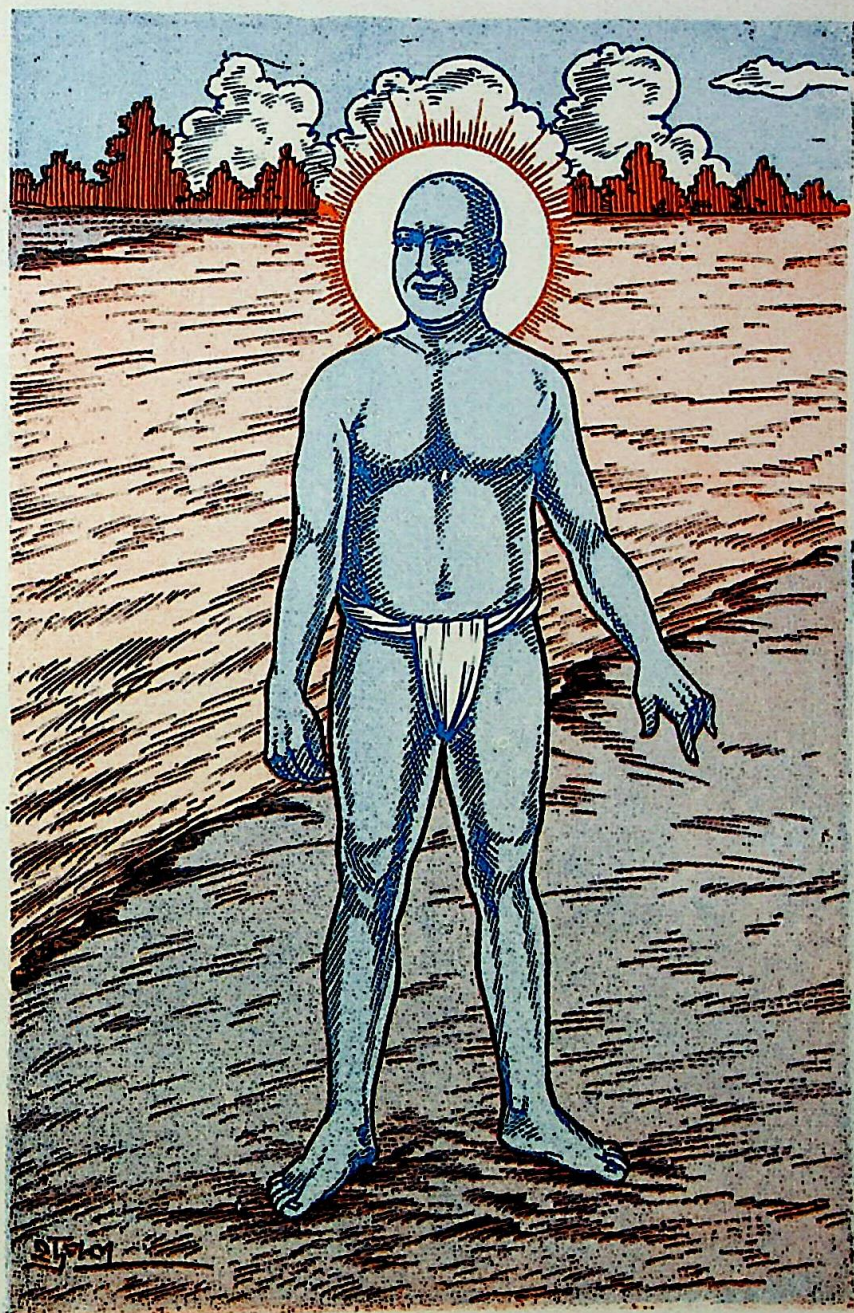
घोर तपस्वी, अवधूत, मौनी दयानन्द योगी के तपोबल से संसार का अज्ञानान्धकार छिन्न-भिन्न हुआ। (पृष्ठ २३)
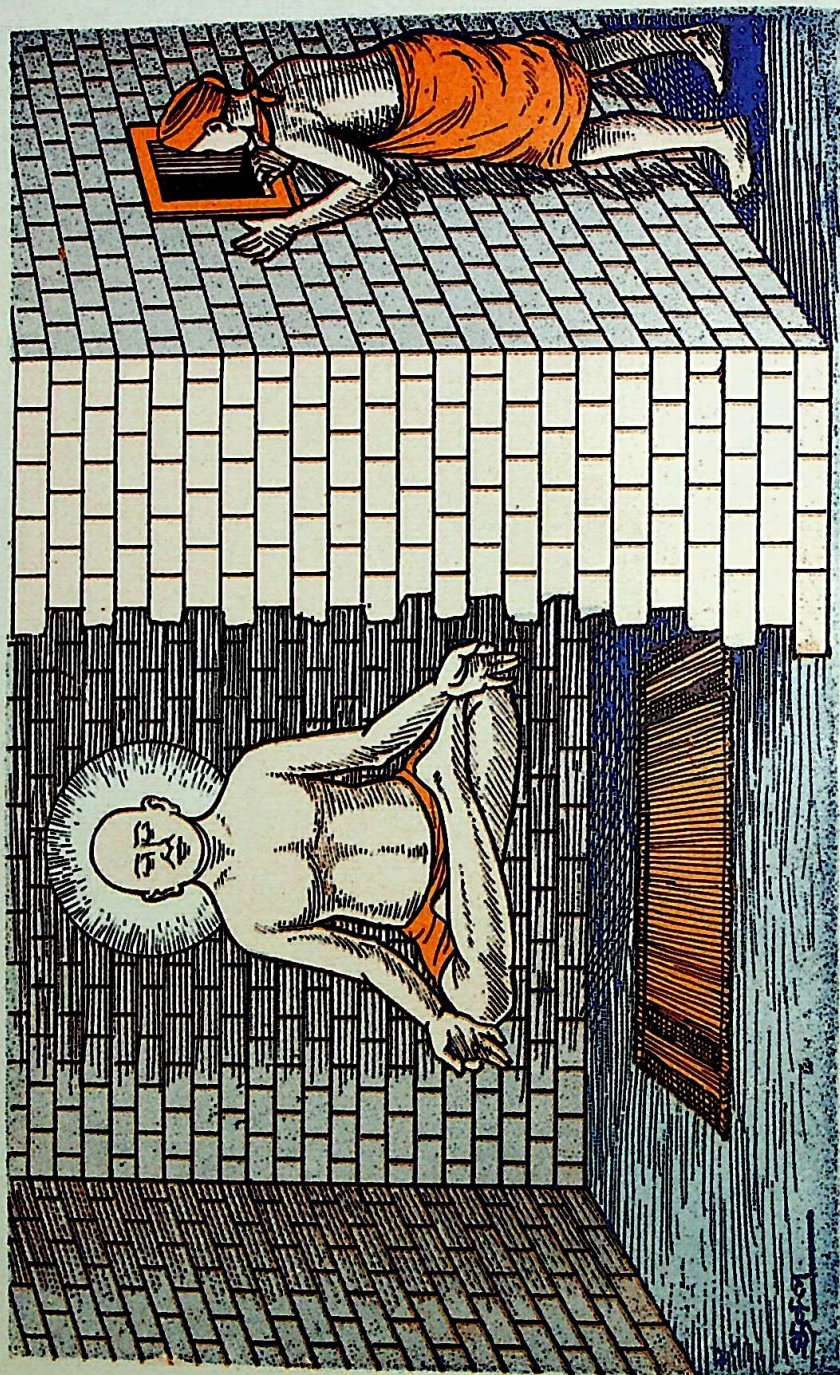
उदानजयी, सिद्ध योगी महर्षि दयानन्द की अधर में समाधि तथा साक्षात्कर्ता स्वा० सदानन्द (पृष्ठ २५)

फर्रुखाबाद—लाला जगन्नाथ ने स्वामी जी के लिये उनके स्थान पर पयाल (धान की पुराल) डलवा दी थी। रात्रि में वह उसी में से कुछ अपने नीचे और कुछ ऊपर डाल कर सो जाते थे। लोग कम्बल आदि देना चाहते तो न लेते थे। —म. द. जी. च. पृ० १३३

कानपुर—तीन मास रहने के पश्चात् एक दिन प्रातः काल विना किसी को सूचना दिये लंगोट, वस्त्र और नस्य की पुड़िया छोड़कर अनिर्दिष्ट स्थान को चल दिये। स्वामी जी एक ही लंगोट रखते थे। कानपुर में एक सज्जन ने उन्हें दूसरा लंगोट दे दिया परन्तु यात्रा में दूसरे लंगोट का रखना उन्हें भार प्रतीत हुआ, इसलिये जाते समय उसे कानपुर ही छोड़ गए। —म. द. जी. च. पृ० १५८.

शोलये तूर—कानपुर ने इस प्रकार लिखा है—सं० १८६६ में—"संस्कृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में वात-चीत नहीं करते। एकान्त वासी साधु हैं। किसी स्थान पर आते जाते नहीं। अवधूतों की सी आकृति है।" —म. द. जी. च. पृ० ६३१.

उदयपुर महाराज ने कहा—"ऐसा मनुष्य सांसारिक धन्धों से सर्वथा स्वतन्त्र तुम ने कोई देखा है। ऐसा होना कठिन है।"—पं० लेखराम —म. द. जी. च. पृ० ६०४.

अधर में समाधि—प्रयाग की घटना—"पण्डित ठाकुर प्रसाद जी के हृदय में स्वामी जी की योगमुद्रा देखने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। एक दिन स्वामी जी के सेवकों से पूछ कर वे उस कुटिया के द्वार पर जा खड़े हुए जिसके भीतर स्वामी जी ध्यानावस्थित थे। यद्यपि द्वार वन्द था परन्तु किवाड़ों के छिद्रों में से महाराज की आकृति स्पष्ट दीख पड़ती थी। ठाकुर प्रसाद जी बहुत देर तक महाराज के दर्शन करते रहे। उन्होंने यह भी देखा कि महाराज का आसन धीरे धीरे भूमि से ऊपर उठकर अधर में अवस्थित हो गया। उस समय उनकी मुद्रा की अद्भुत छवि थी। उनके मुखमण्डल पर एक प्रकाशमय चक्र वना हुआ था।

—दयानन्द प्रकाश पृ० २६६.

उदानजय—यह योगी दयानन्द का उदानजय था। देखो यो.३.३६.। इस उदान पर वशित्व होने से उत्क्रान्ति, ऊपर उठना सिद्ध होता है। जल कण्टक आदि में धंसता नहीं। प्रतीत होता है इसी उदानजय से ऋषि ने हिमालय की यात्रा की।

७० मील की हिम यात्रा १२ घण्टे में—अलकनन्दा स्रोत तक की

यात्रा कठिनतम है। पूरी सामग्री-छोलदारी, भोजन, कुली लेकर कोई कोई यात्री केवल सत्पथ तक की १४-१५ मील की यात्रा ८ दिन में करते हैं। सत्पथ से अलकनन्दा का स्रोत २० मील से अधिक है। वहां तक कोई यात्री नहीं जाता, मार्ग ही नहीं है। यात्राओं में वर्णन इस प्रकार लिखा है :—

वद्री नारायण से ब्रह्म कपाल तीर्थ होते हुए नीचे ब्रह्म कुण्ड तीर्थ है। उससे आगे अलकनन्दा के मोड पर आधा मील दूरी पर अत्रि अनसूया तीर्थ है। माणा सड़क पर ही २ मील तक है। पास ही इन्द्रधारा श्वेत झरना है जिसे इन्द्रधारा इन्द्रपद तीर्थ कहते हैं। इस पार धर्म क्षेत्र है। ३ मील पर माता मूर्ति देवी का छोटा मन्दिर है। उस पार माणा ग्राम ३ मील पर है। इस पार अनेक तीर्थ हैं। वसुधारा ५ मील पर है। झरना गिरता है। छोटी २ फुआर वहुत दूर तक गिरती हैं। धारा में स्नान करना परम पुण्य माना जाता है। पर यात्रियों का कहना है—"वहां स्नान करना मृत्यु को बुलाना है। अतः ऐसे ही लौट आते हैं। आगे जाना चाहा पर हिम्मत न पड़ी। सामान और ५ घोड़े साथ थे। पर फिर भी लौट आये।' यह आप बीती श्री अर्जुनदेव जी गोगिया कलकत्ता वासी ने वतायी। इससे आगे भोज पत्र वृक्ष मिलते हैं। लक्ष्मी वन ४ मील है। आगे लक्ष्मी धारा है। उस से आगे मार्ग अत्यन्त कठिन है। सैङ्कड़ों धारायें हैं। नारायण पर्वत सीधा दीवार सा है। आधा मील पर चक्र तीर्थ है। त्रिकोण सरोवर है। सत्पथ ४ मील पर है। यहां तक की यात्रा खच्चर, कुली, पूरे सामान के साथ आठ दिन की है। आगे गोल कुण्ड जल रहित है। आगे सोम तीर्थ है। आगे बर्फ ही बर्फ है, मार्ग नहीं है। नर, नारायण पर्वत यहां मिल गए है। कुछ दूर पर एक छोटा सूर्य कुण्ड है। विष्णुकुण्ड कुछ दूर है। त्रिकोण पवंत लिङ्ग के आकार का है। भागीरथी अलकनन्दा संगम है। आगे अलकापुरी शिखर है। विष्णुकुण्ड है। अलकनन्दा की मूलधारा। स्वर्गारोहण शिखर सोपानमय पर्वत है। इस से आगे अलकनन्दा स्रोत है। दूसरे किनारे से लौटते समय अच्छा मार्ग है। सत्पथ, वसुधारा, व्यासगुफा, जहां व्यास ने शास्त्र लिखे, पास ही गणेश गुफा है। शम्यास तीर्थ, माणा, सरस्वती धारा, केशव प्रयाग, अलकनन्दा पर पुल-भीमशिला जिसे भीम ने उठा कर धारा पर रख कर पार करने का पुल सा बना लिया था। यही मानसोद्भेद तीर्थ है। बस आगे वद्रीनाथ आ जाता है।

यदि कोई साहसी करे तो यह यात्रा एक मास से कम में नहीं होती, ऐसी तीर्थ-यात्रा लेखकों की मान्यता है। पर योगी की बात विचित्र है। अपने थियासोफिस्ट वाले आत्म चरित्र में लिखते हैं— "एक दिन सूर्योदय के होते ही मैं अपनी यात्रा पर चल पड़ा और पर्वत की उपत्यका में होता हुआ अलकनन्दा के तट पर जा पहुंचा" ।(पृ. ३४) आगे पृष्ठ ३८ पर लिखा है—"उसी सायं लगभग ८ वजे वद्रीनारायण जा पहुंचा।"

अर्थात् अलकनन्दा की यात्रा केवल १२ घण्टे में की। अलकनन्दा स्रोत वद्रीनारायण से ३५ मील पड़ता है। ३५ मील वर्फ में वद्रीनाथ की १०२४४ फिट की ऊंचाई से, सतोपथ १४००० फिट, अलकापुरी १५००० फिट ऊंचाई तक वर्फ में जाना, एक ही चद्दर में जाना, नंगे पैर जाना, यात्रा एक मास की १२ घण्टे में पूरी कर लेना, योग का चमत्कार नहीं तो क्या है। यह यात्रा उदानजय के द्वारा हिम स्तर से असङ्ग रह ऊपर ऊपर आकाश में चले बिना नहीं हो सकती। यही कारण है कोई भी योगी का जीवन गवेषक इस यात्रा का वृत्तान्त अपनी आंखों न देख सका। जो कुछ योगी ने लिख दिया उसी को साहित्यमयी भाषा में लिखकर सन्तोष कर लिया।

कश्मीर, कैलाश—गंगासागर, रामेश्वर यात्रा—इसी उदानजय के आधार से ऋषि ने कैलाश तक की यात्रा की थी। उपदेश मञ्जरी (पूना-व्याख्यानों) में १०४ व्याख्यान में योगी दयानन्द ने कहा था—"महादेव कैलाश के रहने वाले थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सव इतिहास केदारखण्ड का वर्णन किया गया है। हम स्वयं भी इन सव ओर घूमे हुए हैं।" कैलाश की ऊंचाई २२०३८ फिट है। माना मार्ग १७००० फिट ऊंचा है। वहीं कुल्लु के पहाड़ों में पार्वती घाटी है। यह १५००० से अधिक उंचाई पर है। योगी यहां सब स्थानों पर उदानजय और समान-जय के सहारे घूमे थे।

'मेरठ में अपने भक्तों से प्रेमालाप करते हुए महाराज ने अपने जीवन की कुछ घटनायें भी सुनाई थीं। "आप इस समय आश्चर्य करते हैं कि मै इतनी दूर तक वायु सेवन के लिये जाता हूं परन्तु अवधूत दशा में चालीस चालीस मील चलना मेरे लिये कोई वात न थी। मैं एक बार गंगोत्तरी से चल कर गंगासागर तक और एक बार गङ्गोत्तरी से रामेश्वर

तक गया था 'बद्रीनाथ में रह कर मैंने गायत्री का जपानुष्ठान किया था। रात्रि में जब तेल न रहता था तो मैं बाजार के दीपक के प्रकाश में पढ़ा करता था। मैं लगातार कई दिन तक मध्याह्न में तप्तरेणु में पड़ा रहा हूं। और हिमाच्छादित पर्वतों में और गङ्गा तट पर नग्न और निराहार सोया हूं।" —महर्षि का जीवन चरित्र—पृ. ६२२.—दे. वा.

इन लेखों के उद्धरणों और पर्वतीय यात्राओं से उदानजय और समानजय की बात तो स्पष्ट होती ही है, साथ यह भी स्पष्ट हो रहा है कि योगिराज दयानन्द काश्मीर से कैलाश तक, गंगोत्तरी से पूर्व में गंगा सागर तक और दक्षिण में रामेश्वर तक सर्वत्र भारत भू का भ्रमण कर चुके थे। यह यात्रा वर्णन सिवाये इस आत्म चरित्र के अन्यत्र कहीं नहीं है। अतः योगी का यही परम पावन विशुद्ध पवित्र आत्मचरित्र है।

थियासोफिस्ट में छपा आत्मचरित्र बहुत संक्षिप्त है। देखिये पत्र विज्ञापन में पत्र २७ अगस्त १८७२ का पत्र सं० १८३ :—

"कुछ थोड़ा सा जन्म चरित्र लिख कर भेजते हैं। हमारा शरीर दस्तों की बीमारी से बहुत दुर्बल हो गया था।"

१८८ संख्या के पत्र में लिखा है—"यह संक्षिप्त जीवन चरित्र ८ मास की लम्बी बीमारी में लिखा गया है।"

१७८ संख्या के पत्र में लिखा है :—

(3) The question with regard to my life, I should say that at present, I am not quite prepared to undertake so long a business. I shall give you a brief account of me after some time. I shall do this work myself or have it done directly under my own eye. Certificate will follow.—मुरादाबाद से, १३ जुलाई १८७९।

पत्र सं० १९६, ६ नवम्बर ७९। "कर्नल अलकाट साहब को मेरे शरीर का हाल विदित नहीं है कि दस मास तक तो दस्तों का रोग, पश्चात् एक बड़ा ज्वर आने लगा, सो तीन बार आकर छूट गया है। अब दोनों रोग नहीं हैं। परन्तु विचार करो कि इतने रोग के पश्चात् निर्बलता और सुस्ती कितनी हो सकती है। इसमें भी हम को कितने काम आवश्यक हैं जिन से दम भर अवकाश नहीं मिल सकता। जो एक जन्म चरित्र के लिखाने का काम हो होता तो एकबार लिख लिखवा के भेज दिया होता।"

योगसिद्धियों के विषय में मैडम ब्लावेटस्की को लिखा था—पत्र सं० १७९.

(b) "The soul in human body can perform wonders. By knowing the properties and formation of all the things in the universe (between God and Bhumi (earth) A human being can acquire powers of seeing and hearing etc. far distant objects which generally is unable to attend to."

पत्र सं० १६८, पृ० १४४.

"वैसे ही भीतर के योग से योगी लोग अनेक अद्भुत कर्म कर सकते हैं।"

"इसमें कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि मनुष्य लोग जितनी विद्या वाहर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते हैं उससे कई गुणा अधिक भीतर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते हैं। जैसे वाहर के पदार्थों का उपयोग वाहर से होता है, वैसे ही भीतर के पदार्थों का उपयोग भीतर से होता है। जैसे स्थूल पदार्थों की क्रिया आँखों से दीख पड़ती है, वैसे सूक्ष्म पदार्थों की क्रिया आँखों से नहीं दीख पड़ती, इसी लिये लोग आश्चर्य मानते हैं।

—"योग से कुछ नहीं होता, सर्वथा मिथ्या है। अब भी ऐसे लोग विद्यमान हैं कि योग वल से पृथ्वी से हाथ भर तक ऊपर उठ सकते हैं और ठहर सकते हैं।"

—श्री लेखराम लिखित म. द. स. जी. च. पृ. ६४२ हिन्दी।

—पत्र सं० १२८

Though I am very anxious that my auto-biography which you are publishing in your journal should be completed, I have not yet been able to give the necessary time to it. But as soon as possible I will send the nerrative to you.

—थियोसोफिस्ट अप्रैल १८८० पृ० १९०.

इन उद्धरणों से सुस्पष्ट है स्वामी जी थियोसोफिस्टों को जीवनी देने के लिए बहुत उत्सुक नहीं थे। उनसे आशंकित थे। मार्च ८२ के अन्त में ऋषि को लम्बा विज्ञापन छपाना पड़ा था जिसमें थियासोफिस्टों के अयुक्त व्यवहार के ९ कारण दिये हैं। अन्तिम पंक्ति में लिखा है—

"इस लिय यहां निश्चय है कि इन थियासोफिस्टों की सोसाइटी और इनकी पूर्वापर विरुद्ध बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। इस लिये इन से पृथक रहना अत्युत्तम है।"

थियोसोफिस्ट वाले भी इस बात को जानते थे :—

"Here the Swami ji skips over one of the most interesting episodes of his travel, unwilling as he is to impart the name or even mention the person who saved him. He tells it to friends but declines to publish the facts. —The Theosophist 1880. P 25.

संक्षिप्ततम जीवनी देने और सब बातें न कह सकने का मुख्य कारण ऋषि दयानन्द का देश की दशा से द्रवित हो ब्रह्मानन्द को छोड़ भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में लगना था। अस्तु। अभी योगी की योग सामर्थ्य का ही अध्ययन कीजिये।

जल पर पद्मासन—' सहजानन्द ने रात दिन महाराज श्री के पास निवास करते हुए देखा कि रात के समय केवल ४ घण्टे भर विश्राम लेते हैं। फिर उठकर ध्यानरूढ़ हो जाते हैं।

नौलखा उद्यान के पास ही एक विस्तीर्ण सरोवर है। महाराज गोवर्द्धन पर्वत को उसी के किनारे किनारे जाया करते। वे तो बहुत सवेरे जाते थे। परन्तु सहजानन्द जी सूर्योदय से कुछ ही पूर्व उसी ओर भ्रमण करने निकलते थे। एक दिन अपने निवास के उद्यान से बहुत अन्तर पर सहजानन्द ने देखा कि स्वामी जी जल पर पद्मासन लगाये योग मुद्रा में कमलदल की भाँति विराजमान हैं। गुरुदेव की इस मनोहर योग मुद्रा ने उन के मन में गहरा भक्ति भाव उत्पन्न कर दिया। उस शान्त समय में, उस शून्य प्रदेश में, उस शान्त सरोवर के ऊपरी भाग पर वे प्रशान्तात्मा ऐसे सुन्दर स्वरूप, ऐसे तप्त सुवर्ण वर्ण और मनोहर दिखाई देते थे मानो सागर में सूर्य उदय हो रहा है।"

—दयानन्द प्रकाश पृ० ५४६.

—दयानन्द जीवन चरित्र पृ० ६७६.

जल तल में समाधि—"काशी में स्वामीजी इस्लाम मत की त्रुटियाँ दिखाया करते थे। इस से कुछ मुसलमान बहुत रुष्ट हो गए थे। एक दिन
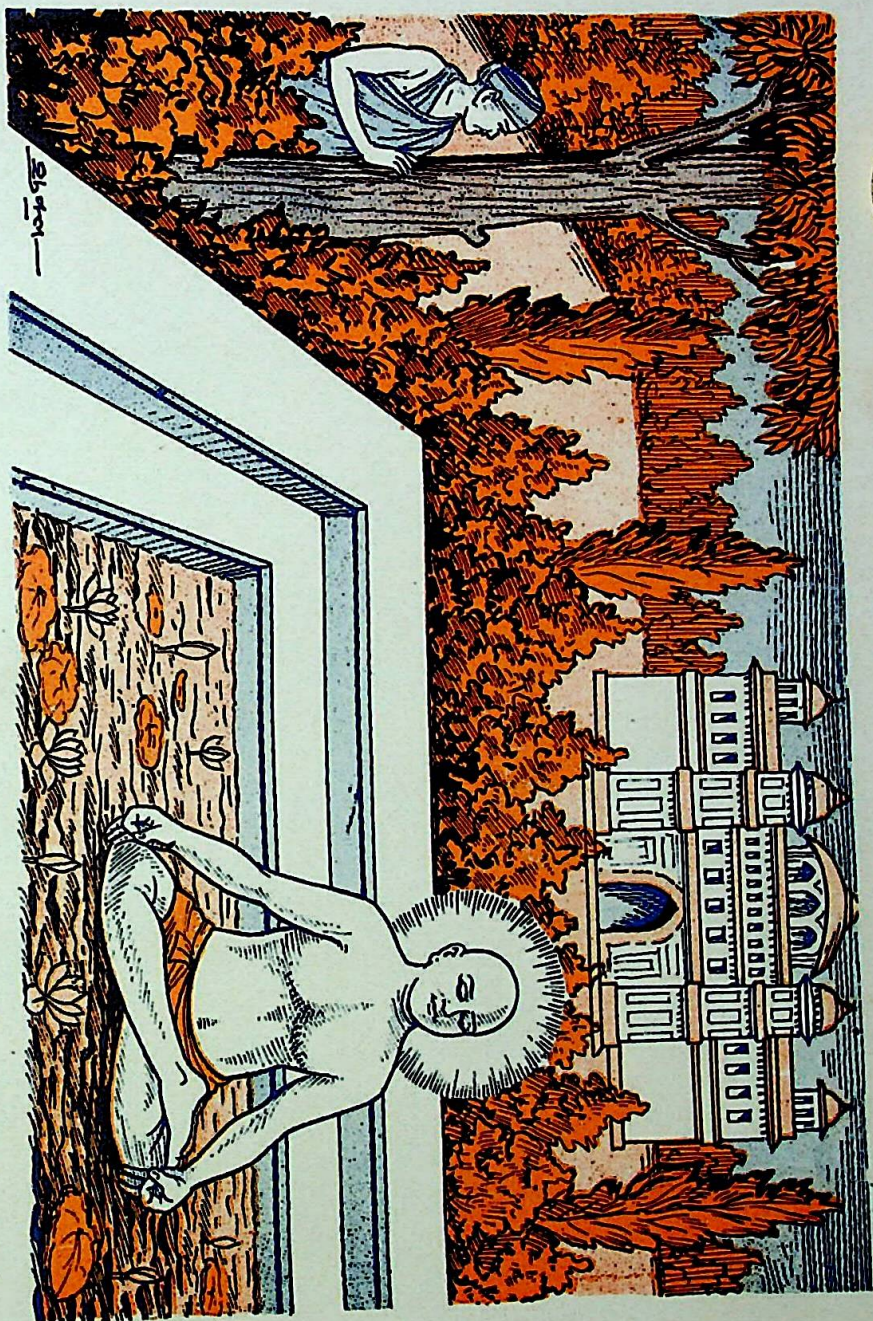
उदानजयी-सिद्ध योगी महर्षि दयानन्द की जल-तल पर समाधि

(पृष्ठ ३०)

अहिंसा-सिद्ध अवधूत योगी दयानन्द मगर मच्छ से स्नेह मुद्रा में (पृष्ठ ३२)

महाराज गङ्गा तट पर आसन लगाये बैठे थे। उसी समय दैव योग से मुसलमानों की एक टोली वहां आ निकली। टोली में बहुतों नें पहचान कर कहा "यह वही तो बाबा है जो हमारे मजहब की तौहीन कर रहा था।" उनमें से दो व्यक्ति बहुत आवेश में आ गए। स्वामी जी को उठा कर गंगा में फेंकने लगे। दोनों हाथों से स्वामी जी की दोनों भुजायें कन्धों के पास से दृढ़ता से पकड़ लीं। उन्हें झुलाकर गंगा की धार में फेंकना ही चाहते थे कि स्वामी जी ने अपनी भुजायें सिकड कर शरीर के साथ लगा लीं और बलपूर्वक स्वेच्छा से दोनों यवनों सहित गंगा में कूद गए। कुछ काल तक उन दोनों व्यक्तियों के हाथ शिकञ्जे में कसे रहे। परन्तु नदी में डुबकी लगाते समय महाराज को उन पर दया आ गई। उन्हें मुक्त कर दिया। वे दोनों बड़ी कठिनता से पानी से बाहर निकले। अपने साथियों के साथ हाथ में पत्थर ढेले लिए नदी पर बड़ी देर तक खड़े रहे। कि बाबा सिर उठाये तो उसे मारें। स्वामी जी तो उनकी इच्छा को जानते थे। वे गरिमा सिद्धि के बल पर पानी के तल में पद्मासन लगा कर बैठे रहे।

अन्धेरा हो जाने पर यवन टोली नें समझा बाबा डूब गया। इस लिए वे चले गए। बहुत देर पीछे स्वामी जी जल से निकल कर अपने आसन पर आ विराजे।

—दयानन्द प्रकाश पृ. २१४.

लम्बी समाधि—महाराज कभी-कभी लम्बी समाधि भी लगाया करते थे। (प्रचार काल में भी) अपनी कोठरी के गवाक्ष खोल देते थे। द्वार बन्द करके ध्यान में मग्न हो जाते थे। जहाँ कहीं लम्बी समाधि में अवस्थित होना होता वहाँ एक दिन पहले ही मिलने जुलने वालों को उस दिन के लिए आनें से रोक देते। ......बहिर्मुख कर्मचारी वर्ग तो यही समझता कि आज स्वामी जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। भीतर पड़े आराम करते हैं। चलो छुट्टी मिल गई।

सहजानन्द ऐसी समझ के मनुष्य नहीं थे। उदयपुर में एक बार महाराज ने चौबीस घण्टों की समाधि ली। गुरु देव नें अपने नवीन शिष्य सहजानन्द को यह भेद पहले ही बता दिया था। कह दिया था आप चाहें तो चुपचाप, मौन भाव से खिड़की विशेष द्वारा देख सकते हैं। उनकी स्वीकृति को पा कर सहजानन्द ने तुर्य्यावस्था अवस्थित और असम्प्रज्ञात समाधिगत गुरु महाराज का उस दिन रात में कई बार दर्शन किया।

उस समय महाराज की काया अकम्प और अचल थी। वे सौन्दर्य-समुच्चय प्रतीत होते थे। उनके मुख मण्डल की कान्ति, मस्तक का तेज, मुद्रा की शोभा और देह की दिव्य दीप्ति अद्भुत और अनुपम दीख पड़ती थी। उनके चारों ओर शान्ति वरस रही थी। उस समय शान्ति रस मूर्तिमान् हो रहा था।

—दयानन्द प्रकाश पृ. ५४६.

मगरमच्छ से प्यार तक—ऋषि दयानन्द अहिंसा सिद्ध महा योगी थे।

कानपुर—गंगा किनारे एक दिन महाराज श्री मौज में जल में लेटे हुए थे। आधा शरीर जल में और आधा जल से बाहर था कि इतने में थोड़ी दूर पर ही एक मगर आ निकला। पण्डित हृदय नारायण के लघु भ्राता उसे देख कर भागे। चिल्लाये "स्वामी जी। मगर निकला है।" परन्तु उन के मुख पर भय की किञ्चन्मात्र रेखा भी दिखाई न दी। वह जैसे पड़े थे, वैसे ही पड़े रहे और बोले "जब हम उसका कुछ नहीं विगाड़ते तो वह भी हमें दुःख न देगा।"

—म. दयानन्द जीवन चरित्र पृ. १५३.

मगरमच्छ से प्यार करने की घटना एक वार आर्य मित्र में छपी थी। जिसे पण्डित रामदत्त जी शुक्ल ने किसी अंग्रेज की डायरी से लिया था। पं. शिव सागर जी उपप्रधान आर्य समाज नैनीताल और मास्टर वहादुर राम जी मन्त्री रामगढ़ ने भी पढ़कर हमें सुनाया था।

गंगा सैकत में रात्रि में ऋषि उन दिनों अवधूत अवस्था में विचरण करते थे। किसी अंग्रेज ने उन की योग ख्याति सुनी। उन की खोज में वह गंगा किनारे ढूंढते २ पहुंच गया। रात हो गयी थी। चान्दनी छिटकी थी। दूर से अंग्रेज ने बालू पर घुटने उठाये किसी व्यक्ति को लेटा देखा। अश्रद्धा हुई। बैठ गया। रहस्य जाननें के लिये बैठ कर सरकने लगा। जब कुछ पास पहुंचा तो योगीवर उछल पड़े। मगर-मच्छ उन के पेट से मुख हटा गंगा की धारा की ओर जा रहा था।

योगीराज को उछलना इस लिये पड़ा कि यदि लौटते मगर की पूंछ से घाव पड जाता तो वह जानते थे उस का उपचार नहीं। अंग्रेज चकित हो गया। पास जा पग छूकर क्षमा मांगी। यह लिखित घटना लण्डन में अंग्रेज की डायरी में और आर्य मित्र की पुरानी फाइल में विद्यमान है।

दो वर्ष पूर्व मृत्यु का ज्ञान था—'थियासोफिस्ट' ने योगीराज ऋषि दयानन्द के परलोक गमन की खबर सुन कर यह लेख प्रकाशित किया था—

"हमारे पत्र प्रेरक आश्चर्य में हैं कि क्या स्वामी दयानन्द जैसे योगी को, जिसमें योग-विद्या की शक्तियां विद्यमान थीं, यह बात विदित न थी कि उनकी मृत्यु से भारत वर्ष को बड़ी हानि पहुंचेगी। क्या वह योगी नहीं थे ? क्या वह महर्षि नहीं थे ?

हम शपथ पूर्वक कहते हैं, कि स्वामी जी को अपनी मृत्यु का ज्ञान दो वर्ष पहले ही था। उन के अन्तिम वसीयतनामे की दो प्रतिलिपि जो कि उन्होंने कर्नल अलकाट और मुझ सम्पादक के पास भेजीं (ये दो प्रतिलिपियां हमारे पास उन के पूर्व मित्रभाव का स्मारक हैं) इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उन्होंने मेरठ में हमें कई वार कहा था कि हम १८८४ को नहीं देखेंगे।"

—मोनियर विलियम्स ने 'एथिनियम' पत्र में २३ अक्टूबर १८८० को लेख में लिखा था—"जब मैं वम्बई में था तो मैंने प्रशंसित स्वामी को आर्य समाज उत्सव में धर्म विषय पर उपदेश देते सुना था।

—म. द. जी. च० पृ० ६६५.

"स्वामी जी से कहा—आप योरुप जाने का संकल्प करें तो व्यय भार मैं अपने ऊपर लेता हूं।" स्वामी जी ने कहा—"विना अंग्रेजी सीखे वहां जाना व्यर्थ है। आयु बहुत अधिक शेष नहीं है। योरुप जाना नहीं बन सकता"।

—वहीं. पृ. ६६७.

अतीतानागत ज्ञान—पटना की घटना—नार्मल स्कूल का विद्यार्थी राजनाथ तिवारी ने अनुनय विनय कर महाराज श्री की सेवा में रहने की अनुमति ले ली। डिपटी सोहन लाल ने उस के भाग्य को बहुत सराहा। बुला कर कहा स्वामी जी के लिये दूध और मिश्री ले जाओ। स्वामी जी का स्थान २॥ कोश था। वह अन्धेरे में जाने से डरता था। पण्डित जी ने जाने के लिए बाध्य किया। मार्ग में उसे बहुत डर लगा। वर्षा हो रही थी। सड़क के दोनों ओर पानी था। सड़क के बीच में सर्प पड़ा था। पीछे लौटना चाहा। मुड़ा तो उधर भी सर्प था। बहुत घबराया। खड़े रहने में भी भय था। आगे बढ़ने में भी। उसने आगे बढ़ने

का ही निश्चय किया। सर्प के पास पहुंचा तो आंखें बन्द कर के छलांग मार कर ऊपर से कूद गया। किसी प्रकार दम ले जिवा कर स्वामी जी के पास पहुंचा।

स्वामी जी बैठे हुए थे। वाग के कुछ माली भी पास में बैठे हुए थे। स्वामी जी ने देखते ही कहा—"क्या तू मार्ग में डरा था। क्या तूने सर्प देखे थे"। राजनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ।

—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ. २१६.

भागलपुर—एक अग्रवाल स्वामी जी के लिए अन्नादि और दूध भिजवाने लगा। दो दिन तक तो महाराज ने ग्रहण किया परन्तु तीसरे दिन यह कह कर कि "हमें स्वार्थ का भोजन नहीं चाहिये, हम ईश्वर नहीं हैं, जो तुम्हें पुत्र दें और तुम्हारा अन्न खायें" उस को मना कर दिया।

पीछे ज्ञात हुआ कि वह पुत्र हीन था। उसे पुत्र की बड़ी कामना थी। इसी उद्देश्य से वह स्वामी जी के लिये अन्नादि भिजवाया करता था।

—स्वामी जी ने राजनाथ से जब कि वह रसोई बना रहा था कहा कि 'तेरा पिता आ गया'। हमने तुम से पहले ही कहा था कि आज्ञा लेकर आओ परन्तु तुमने न माना और उन्हें कष्ट हुआ।

वह रसोई के बाहर आया परन्तु उसके पिता का कहीं पता न था। आध घण्टे के पश्चात् उस का पिता सचमुच आ गया।

कलकत्ता—कहते हैं कि जब बाबू केशव चन्द्र सेन प्रथम बार स्वामी जी से मिले और बात चीत की तो उन्होंने स्वामी जी को अपना परिचय नहीं दिया था। बात चीत की समाप्ति पर केशव बाबू बोले—

केशव० "आप बाबू केशवचन्द्र से मिले हैं?"

दया० "हां मिला हूं।"

केशव० "परन्तु वे तो यहां थे नहीं।"

दया० "मैं अवश्य मिला हूं।"

केशव० "जब वे कलकत्ते में थे ही नहीं, कैसे मिले?"

दया० "आप ही केशव चन्द्र सेन हैं।"

केशवबाबू चकित हुए। स्वामी जी के श्रद्धा सूत्र में बद्ध हो गये।

—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ० २२६.

अमृतसर—एक दिन स्वामी जी महाराज अपने निवास स्थान के एक कमरे में बैठे पण्डितों को वेद भाष्य लिखा रहे थे। बीच में उठ खड़े हुए और कर्मचारियों से कहने लगे—"पुस्तकादि सभी उपकरण, झटपट इस कमरे से बाहर निकाल दो।"

कर्मचारियों ने आज्ञा का पालन तो किया पर वे मन ही मन यह कहते रहे "स्वामी जी ने यह कष्ट व्यर्थ ही दिया।" जब सारे उपकरण दूसरे कमरे में पहुंच गए तो प्रथम कमरे को छत धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी। उस समय कर्मचारियों को महाराज के अनागत ज्ञान का परिचय विस्मय के साथ हुआ। —वहीं, पृ० ३४६.

भूतजयी—स्वामी जी एक समय उपदेश दे रहे थे। उस समय एक ओर से घोर आन्धी, धूलि राशि भूतल आकाश को एकाकार करती उमडी चली आती दिखाई दी। पवन भी प्रचण्ड रूप धारण करने लगा। सत्संगी चलायमान होने लगे। उठने के लिए दायें बायें झांकने लगे।

उस समय महाराज ने मेज पर करतल प्रहार कर उच्च स्वर से कहा—"धैर्य रखिये। हिलिये नहीं। यहां आन्धी नहीं आयगी।" महाराज श्री के कथन पर लोग शान्त हो गए। सचमुच आन्धी भी वहां नहीं आयी। —वहीं, पृ० ३४६

—मुनशी सेवाराम उन दिनों मेरठ में नहर के जिलेदार थे। एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि मैं नहर का डिप्टी मैजिस्ट्रेट हो जाऊं तो पहले मास का वेतन वेद भाष्य की सहायता में दूंगा। उसके कुछ काल पश्चात् उन्हें वह पद प्राप्त हो गया। उन्होंने अभी यह समाचार किसी से न कहा था, कि महाराज का एक पत्र उनके पास आया, जिसमें उन्हें बधाई दी गयी थी और उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाई गई थी।

—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ० ५०२.

गढ़मुक्तेश्वर—सती की मढ़ी—एक दिन एक मनुष्य ने आकर स्वामी जी से प्रश्न किया—'मेरा एक मित्र घर से कहीं चला गया है। उसका पता नहीं मिलता'। स्वामी जी ने हाथ से इशारा किया। जो पण्डित वहां बैठे थे, उन्होंने बताया कि कहते हैं रामेश्वर की ओर गया है।

एक दिन एक पण्डित स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने आया। वह अपना वक्तव्य एक कागज पर लिख लाया और उन्हें सुनाने लगा। स्वामी जी ने कहा—"क्या अपने पुत्र का लगन पत्र लाये हो। यह शब्द

सुनकर वह इतना घबराया कि फिर एक शब्द भी उसके मुंह से न निकला। बात सच्ची थी।

—म० द० जी० च० पृ० १०४.

मेरठ—शिव लाल रस्तोगी स्वामी जी के बड़े भक्त थे। एक दिन उनके पास जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक सर्प मिला। जब श्री सेवा में पहुंचे तो पहला प्रश्न स्वामी जी ने उनसे यह किया, "क्या मार्ग में सर्प देखा था।"

"जब वह चलने लगे तो महाराज ने कहा छाता ले लिया होता वर्षा होने पर भीगने से बच जाते।"

उस समय शिवलाल को वर्षा का कोई चिन्ह दिखाई न देता था। परन्तु मार्ग में इतनी वर्षा हुई कि घर पहूंचते पहुंचते वह खूब भीग गए।

—म० द० जी० च० पृ० ६२३.

—पं० आदित्य नारायण ने भी महाराज से उपासना में मन लगाने की बिधि पूछी। महाराज ने उनसे कहा—"यम नियम का सेवन करो।" उन्होंने दूसरी, तीसरी वार भी इसी प्रश्न को किया। महाराज ने हर वार यही उत्तर दिया। पण्डित जी इस पर कुछ चिढ़े कि हमारा आना व्यर्थ हुआ। फिर उन्होंने सोचा, महाराज के इस उत्तर का क्या कारण है। उन्हें स्पष्ट ज्ञात हो गया। वह एक मुकदमे में झूठी साक्षी देकर आए थे। फिर भी देने वाले थे। बस यही कारण इतना बल देने का था। महाराज यह वृत्त अपनी योग विभूति से जान गए थे।

—म० द० जी० च० पृ० ६६२.

जयपुर—एक दिन महाराणा तथा सहजानन्द श्री सेवा में उपस्थित थे। वार्तालाप हो रहा था। महाराज ने कहा कि 'पं० सुन्दर लाल जी आ रहे हैं; यदि पहले से सूचना दे देते तो यान का उचित प्रबन्ध हो जाता।'

महाराणा ने इस पर कहा—'यान का प्रबन्ध अब भी हो सकता है।'

महाराज बोले—'अब तो वह बैल गाड़ी में आ रहे हैं। उसका एक बैल श्वेत है, और एक के शरीर पर लाल धब्बे हैं। बस कल यहाँ पहुंच जायेंगे।'

अगले दिन पं० सुन्दर लाल उदय पुर पहुंच गए और महाराज का कथन अक्षरशः सत्य निकला। —म० द० जी० च० पृ० ६७६.

ऐसी घटनाओं से जीवन चरित्र भरा पड़ा है।

परकाया प्रवेशः—मेरठ—एक दिन कर्नल ने स्वामी जी से कहा उन्हें और मैडम को—"इस बात में शंका है कि स्वामी शंकराचार्य ने अपनी आत्मा को एक राजा के शरीर में जो उसी दिन मरा था प्रविष्ट कर दिया था।"

स्वामी जी ने कहा—"यह विचित्र बात है कि मैडम के समान प्रवीण व्यक्ति को इस विषय में सन्देह हो।"

उन्होंने फिर कहा—"मैं प्रथम कोटि का योगी नहीं हूं। केवल मध्यम कोटि का हूं। परन्तु मैं अपनी चेतना शक्ति को शरीर के किसी भाग में केन्द्रित कर सकता हूं। अर्थात् उस भाग को छोड़कर मेरे शरीर के अन्य सब भाग मृतवत् हो जायेंगे। यदि आप यह दृश्य देखना चाहें तो मैं आपको दिखा सकता हूं। जब कि मैं एक मध्यम कोटि का योगी इतना कर सकता हूं तो एक उच्च कोटि का योगी इससे एक पग आगे बढ़कर अपने आत्मा को दूसरे शरीर में प्रविष्ट कर सकता है।"

—म० द० जी० च० पृ० ६१८.

ऋतंभरा प्रज्ञा—"मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमाँसा पर्यन्त अनुमान लगभग तीन हज़ार ग्रन्थों को मानता हूं"। —भ्रान्ति निवारण

यह शब्द बतला रहे हैं कि उनका बोध कितना विशाल और गम्भीर था। जब वे तीन हजार प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं तो आश्चर्य नहीं उन्होंने उससे दुगुने ग्रन्थ पढ़े हों।

—मास्टर आत्माराम जी—आर्यधर्मेन्द्र जीवन पृ० २१८

—स्वामी जी की धारणा शक्ति अपूर्व थी। उन्होंने एक बार पं० भगवान् वल्लभ से सुश्रुत संहिता मंगवा कर देखी और एक दो दिन में ही उस पर इतना अधिकार प्राप्त कर लिया कि प्रसंग उठने पर वाक्य उद्धृत करने लगे। पृ० २०२.

(सुश्रुत संहिता हजारों पृष्ठ का ग्रन्थ है। सं०)

गुजरात—महाराज वेद भाष्य के कार्य में व्यापृत रहते थे। वहं पण्डितों को वेद भाष्य लिखाया करते थे। उनके हाथ में कोई पुस्तक नहीं रहती थी। फिर वह इतनी शीघ्रता से भाष्य लिखाते थे। लेखकों को

लिखने से अवकाश नहीं मिलता था। उन्हें वेद कण्ठस्थ थे। —पृ० ४६१.

एक दिन एक उच्च शिक्षा प्राप्त बङ्गाली दार्शनिक से महाराज का वार्तालाप हुआ। वह महाराज की दार्शनिक विद्वत्ता से परम सन्तुष्ट हुआ। उसने लोगों के पूछने पर स्पष्ट कह दिया—"स्वामी जी तो ज्ञान की अगाध गङ्गा हैं। विद्या के अथाह समुद्र हैं। मैं तो उनके सामने कुछ भी नहीं जानता।" —पृ० ४६५.

—१९०८ में चरिताभिधान—डिकशनरी आटोबायोग्राफी एण्ड माइथालोजी (प्रकाशित सन् १९११, शकाब्द १८३३, २ संकरण)

बंगला में— पृ० २९३५ पर छपा है—

"दयानन्द सरस्वती—१८६९ खीष्टाब्दे A. D. नवम्बर कार्तिक शुक्ला द्वादशी। महादेवेर त्रिशूल रक्षित—वाराणासी धामे मूर्तिपूजा-समर्थनेर निमित्त एक महासभा हइया। ऐयि सभाये काशीर महाराज सभापतीर आसन ग्रहण करेन। एयि सभाये दयानन्द सरस्वती सहित काशी पण्डित-गणेर विचार हइया।[1] एयि विचारे काशीर पण्डितगण अनेक प्रश्नेर उत्तर दिते पारेन नाई। अवशेषे गोल माल करिया, सभा भंग करेन। पण्डित गण कोलाहल करिया। बोलेन जइये—'दयानन्द पराजित होइया छेन।' एयि विचार विषये विभिन्न मत बाहिर है। ताकि देखा जाये पण्डित गण विचारे पराजित होया छीलेन। एवं विचार नीति असम्मानित करिया दयानन्देर अमूलक पराजय वार्ता घोषणा करि छीलेन। इहार पर जइयता वार काशी ते गय्या छीलेन तत वारी पण्डित गण के आह्वान करिया छीलेन। किन्तु केहीय साहस करिया विचारे प्रवृत्त हन्न नाई। अतः परतनि कलिकाताये आगमन करीन। ऐर वाने तेनि वैदिक धर्मे प्रवृत्त होई लन।"

लेखक—उपेन्द्र चन्द्र मुखोपाध्याय, ढाका नार्मल स्कूल के शिक्षक।

.........१ "इस काशीशास्त्रार्थ के विषय में विभिन्न मत नहीं हैं उससे देखा जाता है कि पण्डित लोग विचार में (शास्त्रार्थ में) पराजित हो गए थे और विचार विनिमय को असम्मानित करके दयानन्द के भित्तिहीन—आधार हीन पराजय के सम्वाद की घोषणा की थी। इसके बाद दयानन्द जितनी बार काशी में आए थे उतनी बार ही पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया था। पर कोई भी शास्त्रार्थ में प्रवृत्त नहीं हुए थे।.........इत्यादि"

अंग्रेजी पत्रः—बंगाली कलकत्ता, ने भी लिखा था—

"He (Dayananda) stands forth as a rligious teacher of sur passing power and earnestness. He was a yogi, an ascetic who had abjured the world, but he was gifted with a practical sagacity which few men of the world could pretend to possess."

—स्वामी दयानन्द सरस्वती कोई साधारण कोटि के मनुष्यों में से नहीं थे। धर्मोपदेश करने में उन की शक्ति और उत्साहादिक गुणों में वह अद्वितीय थे। यद्यपि जन्म से उन्होंने इस असार संसार का परित्याग कर दिया था। और वे पूर्ण योगी थे, तथापि जैसा सर्वोत्तम ज्ञान उन में देखने में आया वैसा कदाचित् किसी अन्य में देखने में आवे।"

महाराज का मनोबल—रति राम नामी एक पहलवान था जिसे अपने बल पर बहुत घमण्ड था। एक दिन वह महाराज के स्थल पर आया। महाराज को देख कर तिरस्कार पूर्वक बोला—'अरे यह बाबा तो बड़ा हृष्ट पुष्ट है।'

महाराज ने उत्तर में कुछ न कहा परन्तु उस पर अपने नेत्रों की ज्योति कुछ इस प्रकार डाली कि उसका सारा घमण्ड चूर चूर हो गया। उस पर ऐसा आतंक छाया कि वह श्री चरणों में लोटता हुआ दिखाई दिया और हाथ जोड़कर अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा प्रार्थी हुआ।

—म. द. जी. च. पृ० ११३.

कर्णवास—कर्ण सिंह बड़ गूजर क्षत्रिय थे। जमीनदार और रईस थे। उपदेश में पहुँचे। महाराज को प्रणाम कर के बोले—

'हम कहां बैठें ?'

'जहां आप की इच्छा हो।'

(घमण्ड से) 'हम तो जहां आप बैठे हैं वहां बैठेंगे।'

(शीतल पाटी पर एक ओर हट कर)— 'आइये, बैठिये।'

'आप गंगा को नहीं मानते ?'

'गंगा जितनी है उतनी मानते हैं।'

'कितनी है ?'

'हम संन्यासियों के लिये तो कमण्डलु भर है, क्योंकि हमारे पास कोई अन्य पात्र नहीं।'

कर्ण सिंह गंगा की स्तुति में कुछ श्लोक पढ़ता है।

स्वामी जी—'यह बात तुम्हारी गप्प है। यह तो जल है। जल से मोक्ष नहीं होता। मोक्ष तो कर्मों से होता है।'

कर्णसिंह—'हमारे यहां राम लीला होती है वहां चलिये।'

स्वामी जी—'तुम कैसे क्षत्रिय हो, महा पुरुषों का स्वांग बनाकर नचाते हो। यदि कोई तुम्हारे पुरुषाओं का स्वाँग बना कर नचावे तो तुमको कैसा बुरा लगे। (उसके ललाट पर चक्राङ्कितों का तिलक देखकर 'तुम क्षत्रिय हो'। तुम ने अपने मस्तक पर भिखारियों का तिलक क्यों लगाया है और भुजायें क्यों दग्ध की हैं।'

कर्णसिंह—(क्रोध में भरकर) हमारा परम मत है, यदि तुमने उस का खण्डन किया तो हम बुरी तरह पेश आयेंगे।

स्वामी जी शान्त भाव से खण्डन करते रहे।

कर्णसिंह को खण्डन सुनकर आग लग गई। उसने म्यान से तलवार निकाल ली।

स्वामीजी—(कुछ भी भय न करते हुए) 'यदि सत्य कहने से सिर कटता है, तो तुम्हें अधिकार है काट लो। यदि शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर आदिके राजाओं से लडो। शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रगांचार्य को वृन्दावन से बुलवा लो और प्रतिज्ञा लिखा लो कि यदि वह हार जाय तो अपना मत छोड़ दे।'

कर्णसिंह—(क्रोध में)'महाराज रंगाचार्य के सामने तू कीड़े के तुल्य है, तुझ जैसे उसके आगे जूतियां उठाते हैं।'

स्वामी जी– (केवल इतना ही कहा) 'रंगाचारी की मेरे सामने क्या गति है।'

कर्णसिंह महाराज को इसी प्रकार गालियां देने लगा। महाराज पद्मा-सन लगाये सुनते और हँसते रहे। कहते हैं उसने महाराज पर तलवार चलाई। तब महाराज ने गरज कर उसके हाथ से तलवार छीन ली। कहा 'कहे तो तेरे शरीर में घूंस दूं' और पृथिवी पर टेक कर तोड़ दी। शान्त रहे।

किशन सिंह आदि भक्त खड़े हो गए। कर्णसिंह को फटकारा। वह चला गया। लोगों ने थाने में रिपोर्ट कराने को कहा। महाराज ने कहा

—'इतना ही पर्याप्त है। बुद्धिमान होगा तो फिर ऐसा न करेगा।' महाराज पूर्ववत् शान्ति और मुस्कान के साथ उपदेश करनें लगे, मानो कोई घटना हुई न थी।

प्राणों पर आक्रमण होनें के समय भी शान्त रहना, प्राण घातक पर भी क्रोध न करना, अपकार के बदले अपकार न करना, द्वेष न रखना। दयानन्द से योगी, दायनन्द से दयालु का हो काम था।'—(यह भावना व्यक्त की है देवेन्द्रबाबू नें जो आर्य समाजी न थे।) सं०

—म० द० जी० च० पृ० १२४.

घर जाते ही कर्णसिंह का एक घोड़ा बहुत अच्छा, जिसे वह बहुत प्यार करते थे, अकस्मात् रोग से मर गया। वर्षा के कारए रामलीला भी पूरी न हो सकी। रावण तक न जल सका। कर्णसिंह के एक शूल उठा। बहुत ही पीड़ा हुई। एक पण्डित ने उससे कहा यह सब तुम्हारे एक महात्मा को दुर्वाक्य कहने का परिणाम है।

कर्णसिंह ने फिर गुण्डों से कहा। उनके मना कर देनें पर, सेवकों को स्वामी जी को मारनें के लिए भेजा। नौकर तीन बार लौटे। साहस न पड़ा। अन्त में योगी की हुंकार से वहीं औन्धे मुंह गिर पड़े। हुंकार सुन ग्राम वाले जाग उठे। ग्राम वालों नें कर्णसिंह को मार देने की ठानी। श्वसुर ने उसको गांव से डेरा डण्डा संभाल भगा दिया।

कर्णसिंह घर जाते ही फिर बीमार हो गया। विक्षिप्त हो गया। एक बड़ा मुकदमा भी हार गया। अपनें मत के विरुद्ध मांस मदिरा खानें पोने लगा। उसकी बड़ी दुर्दशा हुई। —देवेन्द्रबाबू। —वहीं

क्षमाशीलता—मुन्शी हरदेव गोविन्द एक कट्टर हिन्दू थे। वे उद्धत और झगड़ालू प्रकृति के थे। एक बार वह फौजी गोरों से भी लड़ पड़े थे। वृन्दावन के जंगल में शिकार खेलने आये। एक दिन उन्होंने दुष्टता वश मुठ्ठी में धूल भर कर स्वामी जी के ऊपर डाल दी। स्वामी जी नें कुछ भी नहीं कहा।

—म० द० जी० च० पृ० २६३.

—एक दिन एक मनुष्य ने महाराज के ईन्टें मारीं परन्तु वह उनके लगी नहीं। जेल के क्लर्क एक बंगाली सज्जन ने पुलिस मैंन को उसके पीछे भेजा। वह उसे पकड़ लाया। उसनें ईन्टें फैंकनें से नकार किया। महा-

राज ने उसे क्षमा किया। ऐसे अवसरों को महाराज हंसकर टाल देते थे। जो ऐसे दुष्टों को धमकाना चाहते थे, उन से कह दिया करते थे—'ऐसे लोगों पर क्षमा करके उन्हें जानें दो। इनकी चिकित्सा यही है कि इन्हें सदुपदेश दिया जाय। हमारे साथ यह कोई नई बात नहीं।'

—म० द० जी० च० पृ० ४५६

अजमेर—एक दिन महाराज श्री ने इमदाद हुसेन से कहा कि एक दिन मैं शौच करने बैठा हुआ था। एक मनुष्य नंगी तलवार लिए मेरे पीछे आ खड़ा हुआ। मैंने उससे कहा कि मैं शौच से निवृत्त हो लूं तब मेरा सिर काट डालना। इस पर वह राजी हो गया। जब मैं निवृत्त हो चुका तब मैंने अपनी गर्दन उसके आगे झुका दी। इससे वह ऐसा प्रभावित हुआ कि विना कुछ कहे ही मुझे छोड़ कर चला गया।

—म० द० जी० च० पृ० ६३६

—एक दिन स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे। कुछ धूर्तों ने एक कलवार और एक कसाई को भेजा, उन्होंनें जाकर गुल मचाकर स्वामी जी से कहना आरम्भ किया; "हमारे शराब और मांस के दाम दे दीजिये।"

स्वामी जी नें हंस कर कहा—"बहुत अच्छा! व्याख्यान के पश्चात् तुम्हारा हिसाब भी दूंगा।"

व्याख्यान के पश्चात् स्वामी जी ने एक हाथ से एक का और दूसरे हाथ से दूसरे का सिर पकड़ कर कहा—"बतलाओ तुम्हारे कितने कितने दाम हैं।"

जब उन्होंने देखा कि स्वामी जी उनके सिरों को टकरा कर कचूमर निकाल देंगे तो हाथ जोड़कर उन्होंनें क्षमा मांगी। कहा हमें अमुक पुरुष ने बहका कर भेजा था। दयालु दयानन्द तो अपने बुरे से बुरे शत्रु से भी बदला लेना नहीं चाहते थे। उन्हें तुरन्त क्षमा कर दिया।

—म. द. जी. च. पृ. २६६

अपूर्व बल—जोधपुर नगर में एक पहलवान रहता था जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था। वह अकेला ही रहट को चला कर अपनें स्नान करने के लिये हौज भरा करता था। वह और अन्य लोग भी यही समझते थे कि अन्य कोई इस प्रकार हौज नहीं भर सकता। घटना वश

महाराज भी नगर में पहुंचे। महाराज का नियम था, वह प्रातःकाल नगर से बाहर भ्रमणार्थ जाया करते थे। एक दिन महाराज ने भी उसे हौज भरते देख लिया। उस के पश्चात् एक दिन वायु सेवन के लिए महाराज उधर से होकर गुजरे तो उनके जी में आई कि हौज को भरें। रहट को चलाकर महाराज ने हौज को भर दिया और वायु सेवनार्थ आगे चले गए।

जब पहलवान आया और उसने हौज भरा हुआ पाया तो उसके आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा। साधु महाराज के दर्शन करने वहीं बैठ गया। जब आते दिखाई दिये। दौड कर मार्ग रोक लिया। पूछा—"बाबा, हौज तुमने भरा है?" महाराज ने कहा 'हां'! "हौज भर कर थके नहीं?" महाराज ने उत्तर दिया—"थकना तो दूर, हमारा व्यायाम तक पूरा न हुआ। इसीलिये टहलने के लिये आगे जाना पड़ा।" पहलवान हक्का बक्का रह गया।

—म. द. जी. च. पृ. ७०२..

—एक बार गंगा तट पर विचरते हुए स्वामी जी एक सघन वन में जा निकले। वहां उन्हें सामने से एक सिंह आता हुआ दिखाई दिया। आप सीधा चलते रहे। जब वह उस सिंह के निकट पहुंचे तो उसने उनकी ओर देख कर मुंह फेर लिया और जंगल में घुस गया।

—म. द. जी. च. पृ. ४२१..

—जंगल में मार्ग का उन्हें कोई निदर्शन तक नहीं मिला। सुतराम उस जंगल भूमि में खडे खडे यह सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये। एक आकस्मिक और भारी विपद् उपस्थित हो गई। 'एक बहुत बड़ा काला रीछ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। वह गरज कर अपनी पिछली टांगों पर खडा हो गया और मुझे खाने के लिये मुख खोला। मैं उस समय कुछ क्षण तक स्पन्द-हीन अवस्था में खड़ा रहा। और अपनी लाठी उस के मुंह पर मारने को उठाई। उसे देख कर न जाने किस कारण से वह रीछ डर कर भाग गया।'

कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवैटस्की आदि थियासोफिकल सोसाइटी के सदस्य इस घटना से दयानन्द को योगी मानते हैं। वह कहते हैं क्या योग की शक्ति का प्रयोग किये बिना दयानन्द एक लकड़ी से बड़े भारी रीछ को जो आक्रमण करने पर उद्यत हो, भगा सकते थे? इस में

सन्देह नहीं, इस घटना से दयानन्द की योग शक्ति का परिचय मिलता है।
—म. द. जी. च. पृ ५०.

जालन्धर—एक दिन महाराज विक्रम सिंह नें कहा कि सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से वहुत वल बढ़ता है। महाराज नें कहा 'यह सत्य है'। सरदार साहव ने कहा—'आप भी तो ब्रह्मचारी हैं परन्तु आप में इतना वल प्रतीत नहीं होता।' महाराज उस समय चुप हो गए। जव सरदार साहव अपनी दो घोडों की गाडी पर सवार हुए तो महाराज ने चुपके से जाकर उनकी गाड़ी का पिछला पहिया पकड़ लिया। कोचवान ने घोड़ों को बढ़ाना चाहा, पर वह न वढ़े। उसने चाबुक मारे, घोड़ों ने वहुतेरा वल लगाया, पर टस से मस न हो सके। सरदार साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो महाराज को गाड़ी का पहिया पकड़े पाया। महाराज नें मुस्करा कर कहा 'मैंने ब्रह्मचर्य का प्रमाण दे दिया है।'
—म. द. जी. च. पृ. ४३८.

शाप—एक हलवाई पं. चतुर्भुज के बहकाने सिखाने मे महाराज से आकर मूर्ति पूजा पर व्यर्थ वितण्डावाद किया करता था। अण्ड वण्ड वका करता था। एक दिन महाराज ने उससे कहा—'तू रोज आकर हमें दिक करता है। हमारा समय नष्ट करता है। ऐसा न किया कर। अन्यथा तेरा अंग भंग हो जावेगा। क्योंकि वेद में मूर्ति पूजा कदापि नहीं है। ऐसा करना महा पाप है।' पर उसने क्रोध में आकर अपशब्द ही कहे। कहते हैं इस घटना के दस बारह दिन पीछे ही उसे गलित कुष्ठ हो गया और वह उसी से मर गया।
—म. द. जी. च. पृ. ५८६.

इन्द्रिय सिद्धि—शाहपुर में महाराज खस की टट्टी के कमरे में पंखे के नीचे बैठकर वेद भाष्य किया करते थे। टट्टी पर जल छिड़कनें के लिए एक हौज था। जिसमें प्रतिदिन कुएं से ताजा जल भर दिया जाता था। एक दिन भृत्य नें असावधानी से वा प्रमाद से हौज को साफ न किया और उसमें कुछ बासी जल पड़ा रहा था। उसी में ताजा जल भर कर टट्टी पर छिड़क दिया। इसके कुछ ही देर वाद महाराज ने यह बात जान ली। उन्होंने तत्काल वेद भाष्य का कार्य बन्द कर दिया और कहा उस जल को फेंक दो, हौज साफ कर उसमें ताजा जल भरो और जव तक हौज साफ होकर उस में ताजा जल भरकर टट्टी पर न छिड़का गया वेद भाष्य का कार्य न किया

घीसा लाल चकित हो गया। ऐसी सूक्ष्म योग सामर्थ्य योगीराज में थी…
—म. द. जी. च. पृ० ६६१.

इस प्रकार का योगसामर्थ्य योगीराज दयानन्द में था। महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र के लेखक बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय हैं। प्रकाशक ने अपने वक्तव्य में लिखा है "इन्होंने (देवेन्द्र बाबू ने) आर्य समाजी न होते हुए भी किस प्रकार ऋषि दयानन्द के ऊपर अपना सर्वस्व अर्पन कर दिया।"

भूमिका में देवेन्द्र बाबू ने लिखा है—'हम यद्यपि आर्य समाज के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हैं तथापि इस बात के कहने से नहीं रुक सकते कि आर्य समाज का जीवन नितान्त निर्बल है। ऐतिहासिक दृष्टि से नितान्त क्षीण है, उसमें किसी विषय को विचार की तथा विश्लेषण पूर्ण दृष्टि से देखने की शक्ति अत्यल्प है।" —सन् १९१६ में लिखित

हमने एक निष्पक्ष अन्य विश्वासी के उद्धरण ऋषिजीवन सम्वन्ध में दिये हैं, जिससे अविश्वासी तार्किकों को इस अज्ञात जीवनी आत्म चरित्र के ऋषि विश्लेषित, अनुभूत योग प्रकरण पर और ऋषि की उपलब्ध सिद्धियों पर विश्वास हो।

अन्य ३८ योग सिद्धियों का इस आत्मचरित्र में ऋषि ने इस प्रकार उल्लेख किया है—

"जो जो शक्तियां मेरे अनुभव में आयी थीं (गुरुओं के सामने), उनका वर्णन किया था—

१. भूत और भविष्यत् का ज्ञान।
२. सब प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान।
३. पूर्व जन्मों का स्मरण।
४. दूसरों के चित्तों का ज्ञान।
५. अन्तर्धान होना।
६. अपने रूप, शब्द, स्पर्श आदि को भी अन्तर्हित करना।
७. मृत्यु काल को जान लेना।
८. बलवान् पशुओं के अनुरुप बल प्राप्त होना।
९. सूक्ष्म अन्तराल में आवृत और अति दूरवर्ती वस्तुओं को देखना।
१०. लोकलोकान्तर भुवनों का जानना।

११. नक्षत्रों को जानना।
१२. नक्षत्रों की गतियों को जानना।
१३. शरीर और मन को स्थिर करना।
१४. सिद्धपुरुषों को देखना और उनसे बात चीत करना।
१५. वैराग्य लाभ सहायक ज्ञान का प्राप्त करना।
१६. स्वचित्त और परचित्त का ज्ञान।
१७. आत्म ज्ञान।
१८. दिव्य ज्ञान या सूक्ष्म ज्ञान लाभ करना।
१९. चित्त का दूसरे शरीर में प्रवेश करना।
२०. शरीर का अत्यन्त हलका करना।
२१. इच्छा मृत्यु।
२१. शरीर को ब्रह्म तेज से उज्ज्वल करना।
२३. सूक्ष्म इन्द्रिय-शक्ति लाभ।
२४. आकाश-गमन की शक्ति।
२५. चित्त के आवरण का नाश।
२६. महाभूतों का वशीभूत करना।
२७. अष्ट महासिद्धियां—अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, महिमा, प्रकाम्य, वशित्व, ईशित्व और सत्यसंकल्पता।
२८. काय सम्पत्—रूप, लावण्य, बल, दृढ़ता।
२९. शरीर का अटूट भाव।
३०. इन्द्रिय संयम।
३१. अव्याहत गति शक्ति लाभ।
३२. पुरुष और प्राकृतिक भेद ज्ञान
३३. बन्धन से मुक्ति।
३४. अलौकिक विवेक ज्ञान।
३५. सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु ज्ञान।
३६. सर्व वस्तुओं के भेद ज्ञान्।
३७. विवेक ज्ञान, पुरुष प्रकृति भेद ज्ञान।
३८. कैवल्य लाभ।

गुरुओं से मैंने कहा था 'इन सब बिभूतियों में से अधिकांश बिभूतियां मेरे अनुभव में आ गई हैं।' किसी गुरु ने क्षुधा पिपासा के विषय में पूछा। मैंने कहा था क्षुधा पिपासा मेरे लिये समस्या के रूप में नहीं है। अब मैं अन्न जल के बिना ही महीनों रह सकता हूं।"

"इसी प्रकार और भी बहुत बिभूतियों के बारे में मेरे अनुभव हैं।"

पर योगीराज दयानन्द सिद्धियां दिखाते नहीं थे। देखो योगावतरण, पृ. ३७।

ऋषि लिखते हैं—"हम इतना बड़ा कार्य्य योग सिद्धि के बिना नहीं कर रहे हैं।" —म० द० जी० च० पृ० ६३६.

—सहजानन्द को महाराज ने संन्यास धर्म और योग विषय की शिक्षा-दीक्षा देकर प्रचार के लिए बाहर भेज दिया। —वहीं पृ० ६७६.

—'वानप्रस्थ में योगाभ्यास, और योगी होकर संन्यास में प्रचार' यही ऋषि ने संस्कार विधि आदि में आदेश दिया है।

यह सब योग सम्बन्धी कुछ घटनायें इस लिये एकत्र की हैं कि ऋषि की न्याईं सत्य वैदिक धर्म का प्रचार करने वाले नवयुवक योग के लिये सन्नद्ध हो सकें। तीसरो वय वाले ऋषि भक्त योगाभ्यास कर सन्यास ले और वैदिक धर्म के प्रचार के योग्य बन सकें। टेपरेकार्डों या फोनोंग्राफ के रेकार्डों के समान धनलोलुप गृहस्थ अनार्ष विद्वानों से प्रचार कार्य नहीं हो सकता। न ही विद्याशून्य योग पराङ्मुख धनी वर्ग वेद प्रचार कर सकता है। इसी लिये ऋषि दयानन्द ने जो लिखा उसे पढ़कर आचरण में लाने की आवश्यकता है। सिद्ध योग लाभ किये बिना केवल गैरिक वस्त्र धारण करने वाले रंगे युवा संन्यासियों से भी योगी का अधूरा काम पूरा न होगा।

—

वेदों में योग उपदेश

हिरण्यगर्भ-प्रजापति-ब्रह्म का योग-उपदेश

ओम्—युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योति र्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ।। १ ।।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे स्वर्ग्याय शक्त्या ।। २ ।।

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ।। ३ ।।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
विहोत्रा दधे वयुनाविदेकऽ इन्
मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।। ४ ।।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि र्विश्लोक एतु पथ्येव सूरः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।।५।।

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा
देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो
रजाँसि देवः सविता महित्वना ।। ६ ।।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।।७।।

इमं नो देव सवित र्यज्ञं प्रणय देवाव्यँ्
सखि विदँ् सत्राजित न्धनजितँ् स्वार्जितम्
ऋचास्तोमँ् समर्धय गायत्रेण रथन्तरं
बृहद् गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ।।८।।

—शुक्ल यजुः० अ० ११ । मं० १—८ ।।

योगी दयानन्द का भाष्य—(१) (सविता) ऐश्वर्य का चाहने वाला मनुष्य (तत्त्वाय) परमेश्वर, आत्मा प्रकृति के तत्त्व ज्ञान के लिये (प्रथमम्) पहले (मनः) मन की वृत्तियों-विचारों की तथा (धियः) ज्ञानांश को (युञ्जानः) योगके अभ्यास में लगाता हुआ-समाहित करता हुआ (अग्नेः) परमात्मा के

(ज्योतिः) प्रकाशमय (भर्गः) स्वरूप को (निचाय्य) निश्चित जान के (पृथिव्याः अधि) भूमियों में, चित्त की सब अवस्थाओं में (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे।

भावार्थ—यो जनो योगं चिकीर्षेत्, सयमादिभिः क्रिया कौशलैश्चान्तः करणं पवित्रीकृत्य तत्त्वानां विज्ञानाय प्रज्ञां समज्यैतानि गुण कर्म स्वभावतो विदित्वोपयुञ्जीत। पुनर्यत् प्रकाशकानाँ सूर्यादीनां प्रकाशकं ब्रह्म अस्ति, तद्विज्ञाय स्वात्मनि निश्चित्य सर्वाणि स्वापर प्रयोजनानि साध्नुयात्॥

—जो मनुष्य योग का ज्ञान करना चाहें, वह यम-नियमों को पूर्णतया पालन करें। तप स्वाध्याय और ईश्वरणिधान से अन्तःकरणो को पवित्र करके तत्त्वों पाँचों भूतों को तत्व से जानने के लिए प्रज्ञालोक को युक्त करें और इन सबको तत्त्वतः जान कर व्युत्थान काल में वैसी अनासक्त हो ही व्यवहार करें। फिर समाधि में सूर्यादि को प्रकाशित करने वाले परब्रह्म को साक्षात् करें। उसको जान आत्मा में उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापकता का निश्चय करें। अपने और दूसरों के परम प्रयोजन मोक्ष को सिद्ध करें।

सन्ध्या में भी योगिराज दयानन्द ने कहा है—'धर्मार्थ काम मोक्षाणां सद्यः सिद्धि र्भवेन्नः।' धर्म से धन की, धन से तृप्त वासनाओं की और मोक्ष की तत्काल सिद्धि प्राप्त हो अर्थात् सन्ध्या में समाधि लग जावे और चरम मोक्षानन्द उपलब्ध होवे॥ १॥

२—हे योग के इच्छुको! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) समाहित (मनसा) मन से और (शक्त्या) ज्ञान शक्ति से, ज्ञानांश से (देवस्य सवितुः) समग्र संसार को उत्पन्न करने वाले देव के (सवे) ऐश्वर्य में—सर्वाधिष्ठातृत्व स्वरूप में (स्वर्ग्याय) अधिकाधिक तेजोमय स्वरूप को धारण करते हैं वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो॥

भावार्थ—यदि मनुष्याः परमेश्वरस्य सृष्टौ समाहिताः सन्तः योगं तत्त्वविद्यां च यथाशक्ति सेवेरन्, तेषु प्रकाशितात्मानः सन्तो योगम् अभ्यसेयुः, तर्हि सिद्धीः कथं न प्राप्नुयुः॥

—यदि मनुष्य परमेश्वर की सृष्टि में रहते हुए भी समाहित होकर योग का और तत्त्व विद्या—विवेक ख्याति का पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य से अभ्यास करें तो उन सब में रहते हुए भी विदेह होकर आत्मदर्शी होते हुए योग का पूर्णता के लिये अभ्यास करें तो योगसिद्धियां क्यों न प्राप्त होंगी॥ २॥

३—(सविता) प्रज्ञा लोकी योगी (युक्त्वाय) परमात्मा में युक्त होकर (धिया) बुद्धि से-अपनी चेतना से (दिवम्) विद्या को-सब पदार्थों के ज्ञान को (स्वः) सुख को—आनन्द को (यतः) प्राप्त करने वाला (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) विज्ञान को (करिष्यतः) प्राप्त करेगा। (तान् देवान्) उन दिव्य गुणों को (प्रसुवाति) नया अभ्यासी उत्पन्न करे।

भावार्थ—ये योगम् अभ्यस्यन्ति ते अविद्यादिक्लेशानां निवारकान् शुद्धान् गुणान् जनयितुं शक्नुवन्ति। य उपदेशकाद्योगं प्राप्य एवम् अभ्यसेत् सोऽप्येतान् प्राप्नुयात्।

—जो योगी योग का अभ्यास करते हैं वे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश-मृत्युभय नामक पाँचों क्लेशों को, अविद्याओं को दूर करते हैं और शुद्ध गुणों को सत्वगुण जनित विवेक ख्याति को उत्पन्न करते हैं।

जो योगोपदेशक योगी सन्न्यासी जनों से योग विद्या को प्राप्त कर इस प्रकार अभ्यास करता है वह भी अविद्याओं को दूर करता है और विवेकख्याति को प्राप्त करता है।

इसका अभिप्राय यह है कि जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य (हर घड़ी) करनी उचित है। अर्थात् उपासना-समय में सब मनुष्य अपने मन को उसी में स्थिर करें।

४—(विप्राः) ईश्वरोपासक (होत्राः) मेधावी योगी जन (बृहतः) सबसे बड़े (विपश्चितः) सर्वज्ञ (विप्रस्य) साधक (मनः) मन को (युञ्जते) परमेश्वर में ठीक ठीक युक्त करते हैं, समाहित करते हैं (उत) और अपनी बुद्धि-वृत्ति अर्थात् ज्ञान को (ज्ञानांश को) (युञ्जते) सदा परमेश्वर में स्थिर करते हैं (अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान अखण्ड बना रहता है जो) ईश्वर (विदधे) सब जगत् को धारण करता है और उसका विधान करता है (वयुनावित् एक इत्) जो अकेला ही बिना किसी सहायक के सब जीवों के शुभ-अशुभ ज्ञान का विचारों का जानने हारा है। (सवितुः देवस्य) उस रचना करने हारे देव की (मही परिष्टुतिः) बड़ी से बड़ी स्तुति करें। उससे बड़ी किसी दूसरे की नहीं। वही सबका राजा धिराज है। उसी का नाम लें, उसी का ध्यान करें। (मही) दीर्घकाल तक, निरन्तर, विना व्यवधान के सत्कार पूर्वक करें। श्रद्धा से करें।

भावार्थ—ये युक्ताहाराविहार एकान्ते देशे परमात्मानं युञ्जते, ते तत्वज्ञानं प्राप्य नित्यं सुखं लभन्ते।

—जो योगियों का-सा आहार—जल पर या हवा पर ही रहने वाले होकर एकान्त—बियाबान जंगल प्रदेश में परमात्मा में समाहित होते हैं, लगातार समाहित रहते हैं। वे प्रज्ञालोक द्वारा तत्त्वज्ञान को जान लेते हैं और शाश्वत सुख को, अखण्ड आनन्द को प्राप्त करते हैं। मही परिष्टुति का यह स्वाभाविक परिणाम है। ४।।

५—(अमृतस्य पुत्राः) हे मोक्ष मार्ग का पालन करने वाले योगी मनुष्यो: (शृण्वन्तु विश्वे) तुम सब सुनो (ये धामानि दिव्यानि आतस्थुः) जो दिव्य मोक्ष सुखों को, समाधि के आनन्द को प्राप्त कर चुके हो जब तुम (पूर्व्यम्) सनातन (ब्रह्म) ब्रह्म को (नमोभिः)सत्य प्रेम भाव से अपने आत्मा को स्थिर करके, नमस्कार कर नाम (ओं) स्मरण कर उपासना करोगे तब मैं तुमको आशीर्वाद दूंगा (श्लोकः) सत्य कीर्ति—सत्य-प्रतिष्ठा होने पर अमोघ वाग् (वां) तुम दोनों योगोपदेशक और योगाधिकारी को (वि एतु) प्राप्त हो। (सूरेः पथ्येव) जैसे परम विद्वान्—ऋतंभरप्रज्ञ को धर्म मार्ग—गुण गुणी ज्ञान प्राप्त होता है (युजे)मैं तुमको उपासना योग में युक्त करता हूं, सन्देह मत करो।

भावार्थ—योगं जिज्ञासुभिराप्ता योगारूढा विद्वाँसः संगन्तव्याः। तत्संगेन योगविधिं विज्ञाय ब्रह्म अभ्यसनीयम्। यथा विद्वत्प्रकाशितो धर्म मार्गः सर्वान् सुखेन प्राप्नोति, तथैव कृतयोगाभ्यासानाम् सङ्गाद् योगविधिः सहजतया प्राप्नोति।

नहि कश्चित् एतत्संगम् अकृत्वा ब्रह्माभ्यासेन विनाऽऽत्मा पवित्रो भूत्वा सर्व सुखम् अश्नुते तस्माद् योगविधिना सहैव सर्वे पर ब्रह्मोपासताम्।

—योग के जिज्ञासुओं को योगारूढ़ विद्वानों की सेवा में जाना चाहिये। उनके संग रह कर, योग विधि को जान कर,ब्रह्म ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। जैसे विद्वानों का बताया धर्म मार्ग सबको सुख से मिल जाता है, वैसे ही योगियों की संगति से योग विधि सरलता से मिल जाती है। कोई भी आत्मा योगियों को संग किये विना और ब्रह्माभ्यास के विना पवित्र होकर सर्व-सुख आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिये योगविधि के साथ-साथ सब परब्रह्म की उपासना करें।।५।।

६—हे योगी पुरुषो! (यस्य देवस्य) जिस देवाधिदेव की [महिमानम्] महिमा को [प्रयाणम्] व्यापकता को (अन्ये देवाः) अन्य विद्वान लोग (अनुययुः) प्राप्त होवें [यः] जो [देवः] देव [ओजसा महित्वना] अपने बल और महिमा से [सविता] सब संसार का निर्माण करता है [पार्थिवानि] पार्थिव सब लोक लोकान्तरों को प्रकाश में ही [विममे]

रचा है [स एतशःइत] वही इन को नियम में चला रहा है। यह सब सम्प्रज्ञातसमाधि में प्रत्यक्ष करो।

भावार्थ— ये विद्वासः सर्वस्य जगतोऽन्तरिक्षेऽनन्तबलेन धर्त्तार निर्मातारं सुखप्रदं शुद्धं सर्वशक्तिमन्तमीश्वरम् उपासते त एव सुखयन्ति नेतरे॥

—जो जानकार योगीजन अन्तरिक्ष में अपने अनन्त बल से लोक लोकान्तरों को बनाने वाले, धारण करने वाले, शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान् अनन्त सुख देने वाले अनन्त भगवान् की उपासना-योग से उस में बैठते हैं; उन को ही सच्चा सुख मिलता है दूसरों को नहीं। सांसारिक भोगों में सुख नहीं। भगवान् ही अनन्त सुख का भण्डार है। योगाभ्यास से उसी में रमण करना चाहिये॥६॥

७—[देव सवितः] हे सत्यशुद्ध योग विद्या से उपासना करने योग्य परमेश्वरः [नः] हम योगियों के [यज्ञम्] योगयज्ञ को—सुखों को प्राप्त कराने हारे योग व्यवहार को [प्रसुव] उत्पन्न कीजिये [गन्धर्वः] पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों के धारक [दिव्यः] दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले [केतुपूः] विज्ञान से पवित्र कराने हारे आप [नः] हमारे [केतम्] ज्ञान को [पुनातु] पवित्र कीजिये, प्रज्ञालोक तक पहुँचा दीजिये जिसके द्वारा प्राप्त ज्ञान अन्य ज्ञानों को फीका कर दे, मन्द करे, विशुद्ध ज्ञान हो सके [वाचस्पतिः] वेद के स्वामिन् [नः] हमारी वाणी को [स्वदतु] स्वादु-फल वाला कर दीजिये, अमोध कर दीजिये, सर्वभूत प्राणियों की वाणी को समझ स्वाद ले सकें।

भावार्थ— ये जना ईर्ष्यादिदोषान् विहाय ईश्वर इव सर्वैः सह सुहृद्भावमाचरन्ति, ते संवर्धितुं शक्नुवन्ति।

—जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना, और योग विद्या की प्राप्ति के लिये उत्कृष्ट प्रयत्नपूर्वक प्रार्थना करते हैं वे सब योग ऐश्वर्यों— योग सिद्धियों को प्राप्त हो, अपने आत्मा को शुद्ध कर सकते हैं। योग विद्या को सिद्ध कर सकते हैं। वे सत्यवादी हो के सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होतेहैं॥७॥

८. हे [सवितः देव] सवितर् देव! [नः] हमारे [इमं यज्ञं] इस योग यज्ञ को (देवा व्यम्] दिव्य सत्त्व गुणका रक्षक, वर्धक, ज्ञापक, [सखिदिवदम्) आप सखा को मिलाने वाला, [सत्राजितम्]सत्य व तीनों तत्त्वों का जय कराने वाले, (धनजितम्] घन आदि अविद्या-भावों पर विजय कराने वाले, [स्वर्जितम्] अनन्त आनन्द दायक[यज्ञम्] योग यज्ञ को[प्रनय]भली प्रकार उत्तमता से आगे वढ़ाइये। [ऋचा]समाधि में

साक्षात् होने वाली ऋचाओं के द्वारा,(स्तोमम्) गुण गरिमामय स्तवन यज्ञ को (समर्धय)भली प्रकार बढ़ाइये, समर्थ कीजिये। (गायत्रेण) तेरे आन्तर गान से(बृहद्रथन्तरं)बड़े योग रथ को बढा।(गायत्र वर्त्मनि) उपासना मार्ग में-योग मार्ग में(स्वाहा) अपने को मैं अर्पित करता हूं।

भावार्थ— ये जना ईर्ष्यादिदोषान् विहाय ईश्वरः इव सर्वैः सह सुहृद्भावम् आचरन्ति ते संवर्धितुं शक्नुवन्ति।

—जो मनुष्य ईर्ष्या द्वेष आदि दोषों को छोड़कर ईश्वर के सामन सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं—सांसारिक संग्रह के कारण द्वेष नहीं करते, ईश्वर पुत्रों-आत्माओं से समान भाव से प्रेम करते हैं, वे संपत् को-योगविभूतियों को और उन से भी विरक्त हो परमानन्दमय भगवान् रूप संपत् को प्राप्त होते हैं ॥८॥

उपनिषत् में योगविधान

दूसरे अध्याय के आरम्भ के पांच मन्त्र देकर श्वेताश्वतर ने आगे यह सुन्दर योगोपयोगी मन्त्र दिये हैं :—

अग्निर्यत्राभिमथ्यते, वायुर्यत्राभिरुध्यते।
सोमो यत्रातिरिच्यते,तत्र संजायते मनः।६।

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम्।
तत्र योनिं कृण्वसे नहि ते पूर्वमक्षिपत्।७।

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं,
हृदोन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य,
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि।८।

प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तं वाहनमेनम्,
विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः।६।

समे शुचौ शर्करा वह्नि बालुका

विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।

मनोऽनुकूले न तु चक्षु पीडने
गुहानिवाताश्रयणं प्रयोजयेत् ।१०।

नीहार धूमा र्कानिलानलानाम्
खद्योत विद्यु त् स्फटिक शशिनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि,
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ।११।

पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पंचात्मके योग गुणे प्रवृत्ते,
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।१२।

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वम्
वर्णं प्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्र पुरीषमल्पं
योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ।१३।

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तम्
तेजोमयं भ्राजते तत्सुधातम्
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही,
एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ।१४।

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रु वं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धम्
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।१५।

एषो ह देवप्रदिशोऽनुसर्वाः

पूर्वो ह जातः सहगर्भेऽन्तः ।

स एष जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।१६।

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु
यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु
तस्मै देवाय नमो नमः ।१७।

६. जब परमदेव परमात्मा को घृत की नाईमथ कर निकालने की भावना प्रबल हो जाती है, और श्वास-प्रश्वास की गति वश में हो जाती है, जब धारणा ध्यान की अवस्था केवल ओम् सोम शेष रह जाता, ओम् का ज्ञानांश रह जाता है, तब प्रज्ञालोक से अमोघ मनन उत्पन्न होता है।

७. ब्रह्मज्ञान सम्पन्न आत्मा को सनातन ब्रह्म से युक्त कर। योग-साधक ! ब्रह्म को अपना सतत वास बना तेरे कर्म तुझे जन्म-मरण में नहीं खेंचेंगे। तू मुक्त हो जायगा—(पुरुष एव सविता जै. उ. ४-२७ योनिगृहम् गृहनाम-निघ ३-४ पूर्व-पूर्व कर्म।

८. छाती, शिर और मेरुदण्ड को सीधा रख कर हृदय में शून्य में इन्द्रिय और मन को धारण कर प्रत्याहार सिद्ध करे। धारणा से ध्यान, ध्यान से समाधि में ब्रह्म-ओम् ज्ञांनश की नौका से अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष, मृत्युभय की भयंकर प्रबल धाराओं को ब्रह्मज्ञानी पार करे।

९. प्राणों की आने-जाने की गति को समाप्त कर, वाणी, काया, मन को चेष्टा रहित कर, प्राणों का अभाव हो जाने पर, नासिका मूल से बुद्धिकेन्द्र में स्थित हो जावे। घोड़ों के समान चंचल इन्द्रियों से युक्त मन के रथ को सावधानी से जागरूक हो कर वश में रखें। साधना में ब्रह्म से बाहर न जाने दे।

१०. समतल शुद्ध पवित्र स्वच्छ, रोडे-कंकरों-अग्नि की धूनी, उड़ती रेणुका से रहित; शब्द और जल का आश्रय लेने वाले जंगली जानवरों से शून्य; मनोरम, नयनललाम, शान्त निर्वात गुहा में साधना करें।

११. कोहरा, धूआँसा, सूर्य बिम्बसा, वायु सी, अग्नि सी, जुगनुसा, बिजली की चमक सी, स्फटिक सी आभा चन्द्र बिम्ब-सा ध्यान के स्थिर होने पर आन्तर दृष्टि ध्यान में आने लगे तो ध्यान की अवस्था ब्रह्म-ध्यान के योग होने लगी है इस बात को व्यक्त करते हैं।

१२. पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पाँचों की पाँचों तन्मात्राओं दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य रूप, दिव्य स्पर्श, दिव्य शब्द में किसी का वा सब का अनुभव होने लगे तो ऐसे योगी को रोग नहीं सतायेगा, बुढ़ापा भी नहीं आयेगा और उसका शरीर निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यास से योगमय हो जायगा।

१३. हलकापन, सदास्वास्थ्य, विषयों का निरास, रंग का निखार, स्वर में माधुर्य, शरीर में सुन्दर गन्ध, मूत्र पुरोष की स्वल्पता होने लगती हैं। ये योग में प्रवेश को बताती हैं।

१४. दर्पण जैसे मिट्टी-धूल धोने पर चमक उठता है वैसे ही अविद्या क्लेशों से आत्मतत्त्व को विशुद्ध कर लें तो योगी शोक रहित हो जाता है। यही योगी की कृतार्थता है।

१५. दीपक को देखने के लिये किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार जब योगी आत्मा को आत्मा से ही जान लेता है तब परमात्मतत्त्व को जो आत्मा की सूक्ष्मता में निहित है भी जान लेता है। वह अजन्मा है। अटल ध्रुव कूटस्थ है। सब तत्त्वों से असंग, विशुद्ध तत्त्व है। उसको जान लेने पर कर्मविपाक से मुक्त हो जाता है। कर्म दग्ध बीज हो जाते हैं। फल देने में असमर्थ हो जाते हैं।

१६. यह देवाधिदेव परमदेव सर्वव्यापक है। पूर्णरूप से अभिव्यक्त है। वही प्रकृति में व्याप्त है। विकृति वही करता है। सृष्टि होने पर उस की सत्ता का भान भक्तों को होता है। सर्वज्ञ, सर्वमुख, जन-जन में प्रत्यक् रूप से विराजमान है।

१७. जो देवाधिदेव अग्नि में, जल में व्याप्त है। समस्त संसार में प्रवेश किये है। जो ओषधियों में है, वनस्पतियों में है - सर्वत्र एकरस है। उस देवाधिदेव को बार बार नमस्कार।

दर्शनों में योग विधान

सांख्य दर्शन में योग-साधना

सांख्य दर्शन नास्तिकता का प्रतिपादक नहीं योग का प्रतिपादक है। विस्तृत उल्लेख है योग का ब्रह्म प्राप्तिका !

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा ! क्लिष्टा।२-३३।

वृत्ति पांच प्रकार की है। क्लिष्ट और अक्लिष्ट। १. विद्यादि पांच क्लेशों को उत्पन्न करने वाली और २. विवेक कराने वाली, जिनसे

तमोगुण, रजोगुण और सत्त्व गुण का कार्य समाप्त हो जाता है, विशुद्ध आत्मा, परमात्मा, अपना, और प्रकृतिका अलग ज्ञान प्राप्त करता है। योग में १.५ देखें।

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ।२-३४।

वृत्तियों के निवृत्त हो जाने पर आत्मा का प्रकृति से उपराग—लगाव शान्त हो जाता है। आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। योग में "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" ॥ १।३ ॥

कुसुमवच्च मणिः ।२-३५।

आत्मा मणि-बिल्लौर के समान निर्मल है। फूलों पर मणि-बिल्लौर रंग वाला दिखता है। आत्मा प्रकृति में रमता है। तो प्रकृति-जैसा हो जाता है, प्रकृति को ही आया समझ लेता है। बिना पुष्पकों के वह स्वच्छ है। देखो-यो. १. ४१

पुरुषार्थं करणोद्भवोप्यदृष्टोल्लासात् ।०.३६।

इन्द्रियों से पुरुषार्थ, आत्मा अदृष्ट के उदय से करता है।

धेनुवद्वत्साय ।०.३७।

बछड़े के लिए गौ जैसे दूध देती है ऐसे ही इन्द्रियां मानो आत्मा के लिये व्यवहार करती हैं।

करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात् ।२३८।

५ कर्मेन्द्रिय + ५ ज्ञानेन्द्रिय + ३. मन बुद्धि अहंकार = १३

इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात् कुठारवत् ।२.३९।

कुल्हाड़े के काटने में न काटने वाला दस्ता भी काटने में अत्यन्त सहायक है ऐसे ही इन्द्रियां भी साधकतम हैं। पर वास्तव में ज्ञान आत्मा ही प्राप्त करता है।

द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद्भृत्यवर्गेषु ।२.४०।

दोनों-ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में मन ही प्रधान है। जैसे लोक में भृत्यों में एक ही प्रधान होता है। शेष अप्रधान-गौण होते हैं।

अव्यभिचारात् ।२।४१।

मन के साथ हुए विना कोई भी कर्मेन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय काम नहीं कर सकती। यह व्यापक नियम है।

तथाऽशेष-संस्काराधारात् ।२।४२।

और इसलिए कि मन में ही सब कर्मों के संस्कार रहते हैं।

स्मृत्यनुमानाच्च ।२।४३।

मन में संस्कार रहते हैं इसीलिये किसी बात की स्मृति होती है। यही मन में संस्कार रहनें का हेतु है।

सम्भवेन्न स्वतः ।२।४४।

स्मृति विना संस्कारों के अपने आप नहीं हुआ करती है। अतः मन में संस्कारों से ही स्मृति होती है।

आपेक्षिको गुण प्रधान भावः क्रिया विशेषात् ।२।४५।

इन्द्रियों का गौंण होना और मन का प्रधान होना अपेक्षा से है। इन्द्रियाँ मन की अपेक्षा करती हैं। विना मन के वे कुछ नहीं कर सकतीं। मन में ही क्रिया विशेष है। इसलिये उस की क्रिया से इन्द्रियाँ प्रवृत्त होती हैं। विना मन के नहीं।

तत्कर्मार्जितत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोकवत् ।२।४६।

आत्मा के लिये इन्द्रियाँ कर्म करती हैं। आत्मा के लिये ही उन का व्यवहार होता है। लोक में भी ऐसे ही व्यवहार होता है। प्रधान धनी आदि पुरुष किराया देकर सवारी कर लेते हैं। उस समय वे उस का ही कार्य करती हैं; अपना कुछ कार्य नहीं होता।

समान कर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवत् लोकव त्।२।४७।

आत्मा का दसों इन्द्रियों और मन के साथ समान सम्बन्ध है। उस में आत्मस्थ बुद्धि की ही प्रधानता है। लोक में भी जो अत्यन्त अन्तरंग होता है उसकी ही प्रधानता होती है। अतः आत्मज्ञान की प्रधानता है॥

आविवेकाच्च प्रवर्त्तनम् अविशेषाणाम् ।३।४।

जब तक आत्म तत्त्व और प्रकृति का विवेक नहीं होता। तभी तक अविशेष से इन सब ही को प्रकृति के लिये प्रवृत्ति है। विवेक होने पर प्रकृति के लिये दौड़ समाप्त हो जायगी।

उपभोगादितरस्य ।३।५।

स्थूल शरीर की प्रवृत्ति कर्मों के उपभोग काल तक रहती है।

सम्प्रति परिष्वक्तो द्वाभ्याम् ।३।६।

इस समय तो यह दोनों स्थूल और सूक्ष्म शरीर मिल कर भोग सम्पादन कर रहे हैं।

मातृपितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न

माता पिता से ही स्थूल शरीर प्रायः उत्पन्न होते हैं। सृष्टि के आरम्भ में अयोनिज तथा इस समय भी स्वेदज, उद्भिज शरीर विना माता पिता के होते हैं। दूसरा सूक्ष्म शरीर तो परमात्मा ही देता है, माता-पिता से नहीं मिलता।

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वम् भोगादेकस्य नेतरस्य ।३।८।

भगवान् के बनाये लिंग-शरीर से ही सुख-दुःख भोग होता है, स्थूल शरीर से नहीं, सूक्ष्म शरीर के निकल जाने पर स्थूल मृत हो जाता है। भोग नहीं कर सकता।

सप्तदशैकं लिंगम् ।३।९।

लिंग शरीर १७ तत्वों का है। वही एक रहता है। जन्म-जन्मान्तर में भी पलटता नहीं। स्थूल शरीर मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है। जन्म पर दूसरा मिलता है। ११ इन्द्रियाँ ५ तन्मात्रायें और बुद्धि की गणना है।

अणुपरिमाणं तत्कृतिश्रुतेः ।३।१४।

लिंग शरीर अणु परिमाण है। स्थूल शरीर से सूक्ष्म है।

पाँचभौतिको देहः ।३।१७।

यह स्थूल देह जो दिखता है (१ पृथिवी २ जल ३ अग्नि ४ वायु ५ आकाश) इन पाँच भूतों से बना है।

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ।३-२०।

चेतनता पांच भूतों के मिलने से नहीं आई है, क्योंकि कोई भूत चेतन नहीं, फिर सब मिलने पर भी चेतना कहाँ से आती। चेतन आत्मा भिन्न है।

ज्ञानान्मुक्तिः ।३।२३।

प्रकृति-पुरुष विवेक से ही मुक्ति होगी । अन्य उपाय नहीं है ।

बन्धो विपर्ययात् ।३।२४।

अज्ञान से, अविवेक से या अविद्या से ही बन्ध है । आत्मा शरीर में कैद है ।

नियत कारणत्वान्न समुच्चय विकल्पौ ।३।२५।

मुक्ति का विबेक ही निश्चित कारण है। अन्य किसी भी साधन के साथ इसका सम्मिश्रण नहीं है । न ही अन्य विकल्प है । केवल विवेक ज्ञान ही मुक्ति का कारण है ।

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।।

अष्टांग योग से अविद्यादि पाँच क्लेशों से छूटे शुद्ध ध्यानी की भागवत भावनाके ध्यान समाधि में परिणत हो जाने पर सब आत्मसात् हो जाता है, स्वाभाविक प्रकृतिवत् हो जाता है । इसी को योग में संयमजय कहा है ।

रागोपहतिर्ध्यानम् ।३।३०।

प्रकृति के राग का हटना ही ध्यान का मूल है । वैराग्य से ही ध्यान सिद्ध होता है ।

वृत्ति-निरोधात् तत्सिद्धिः ।३।३१।

सूत्र २-३३ में बताई वृत्तियों के रोकने से ही ध्यान की सिद्धि होगी। जितना-जितना वैराग्य बढ़ेगा उतना-उतना ध्यान गहरा होगा ।

धारणा-सन-स्वकर्मणा तत्सिद्धिः ।३-३२।

धारणा शब्द जाप छूट कर केवल ज्ञानांश के शेष रह जाने पर दीर्घकालीन आसन सिद्ध होने पर और स्वकर्म--अपने जप, तप और ईश्वर प्रणिधान तथा अन्य यम-नियमों की साधना के परिपाक से ध्यान सिद्ध होगा ।

निरोधश्छर्दि-विधारणाभ्याम् ।३।३३।

चित्त वृत्तियों का निरोध प्राण के निकाल देने पर या अन्दर ही धारण करने पर ही होगा । बाहर निकाल कर अन्दर लेना न पड़े, जैसे उल्टी निकालने पर फिर नहीं आती है । ऐसे ही प्राण अन्दर आने पर

बाहर न जावे तो चित्तवृत्तियों का निरोध हो जायेगा। प्राण के आधार पर ही चित्त काम करता है।

स्थिरसुखमासनम् ।३।३४।

स्थिर और सुख वाला आसन होता है। शरीर स्थिर रहे। निचेष्ट रहे और कष्ट न माने तब ही आसन है।

स्वकर्म स्वाश्रम विहितकर्मानुष्ठानम् ।३।३५।

अपने आश्रम के विहित कर्मों का अनुष्ठान करते हुए ध्यान साधना ही स्वकर्म है। सब आश्रमों में ध्यान करे। वानप्रस्थ में सारा ही समय ध्यान में रहे।

वैराग्यादभ्यासाच्च ।३।३६।

पर, अपर वैराग्य से और अवृत्तिक साधना से वृत्तिनिरोध होता है। वैराग्य के साथ ओं जाप द्वारा ईश प्रणिधान से ध्यान समाधि सिद्ध होते हैं।

विपर्यय-भेदाः पंच ।३।३७।

अविद्या के पाँच भेद हैं।

अशक्तिरष्टाविंशतिधा ।३।३८।

असामर्थ्य२८ प्रकार की है पाँचों वृत्तियाँ पाँच प्रकार के विपर्यय से २५ प्रकार की और काम, क्रोध, लोभ तीन मिला कर २८ प्रकार की अशक्ति है। मोह अविद्या में आ ही गया।

तुष्टिर्नवधा ।३।३९। आध्यात्मिकादि भेदान्नवधा तुष्टि ।३।४३।

आध्यात्मिकादि भेद से तुष्टि नौ प्रकार की है। आध्यात्मिक-आधिदैविक, आधि भौतिक, सात्त्विक, राजस, तामस भेद से तीन तीन प्रकार की नौ तुष्टि है। उनसे मन को तोष होता है।

सिद्धिरष्टधा ।३।४०। ऊहाभिदिः सिद्धिः ।३।४४।

अपने आप पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना 'तार' नामक सिद्धि है। शब्द से ही विना पढ़े जान लेना, 'सुतार' सिद्धि है। विना शब्द के ज्ञान होना 'ऊहा' सिद्धि का नाम 'तारतार' है। विना ऊहा के ही प्राप्ति हो जाना 'रम्यक' नाम की सिद्धि है। बाह्यपदार्थों के विना सदा शुद्धि का नाम 'मुदित' है। तीनों तापों का नाश होना तीन सिद्धियां ये आठ सिद्धियाँ हैं।

आब्रह्म स्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।३।४७।

विवेक होने पर ब्रह्म से लेकर स्थावर तक की भोगार्थ बनी सृष्टि योगी जन के लिए समाप्त हो जाती है। योगी मरण जन्म से छूट जाता है।

स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता ।३।५६।

वह परमात्मा सर्वज्ञ और सर्व-निर्माता है।

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।३।५७।

ऐसे ईश्वर की सत्ता स्वयं सिद्ध है।

प्रधान-सृष्टिः परार्थस्वतोऽप्यभोक्तृत्वाद् उष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।३।५८।

मूलप्रकृति स्वयं तो अभोक्ता है, जड है। इसलिए उससे बनी सृष्टि परार्थ है। जीव के बन्धन के लिए होती है। जैसे ऊँट दूसरों के लिए ही केसर ढोता है।

विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ।३।६३।

विवेकी को ज्ञान हो जाने पर उसके लिए प्रधान की सृष्टि रचना निष्प्रयोजन है। जैसे पाक हो जाने पर रसोइया निवृत्त हो जाता है। विवेकी को सृष्टि का ध्यान ही नहीं रहता।

इतर इतरज्जहाति तद्दोषात् ।३।६४।

प्रकृति के दोष जान लेने पर दोष दर्शन से पर वैराग्य की प्राप्ति हो जाने पर पुरुष प्रकृति से पराङमुख हो जाता है।

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ।३।६५।

पुरुष और परम पुरुष दोनों में से एक पुरुष—आत्मा की प्रकृति से उदासीनता हो जाना अपवर्ग है। परमात्मा तो सृष्टि-रचना करता ही रहता है।

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ।३।६८।

आत्मा चेतन, प्रकृति जड़, दोनों एक दूसरे की कोई अपेक्षा नहीं नहीं रखते। दोनों की चेतना और जड़ता में एक दूसरे की अपेक्षा स्वतः सिद्ध हैं। प्रकृति उपकार करती है यह मान बैठना अविवेक के कारण है। अविवेकी अविद्याग्रस्त ही प्रकृति में फंसता है।

नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात् ।।३।६९।

नर्तकी नाच दिखाकर उपरत हो जाती है। उसी प्रकार अवि-द्यादि से ग्रस्त व्यक्ति प्रकृति में फँसता है। अविद्या के विवेक के चरितार्थ होने से सफल होने पर छुटकारा हो जाता है।

दोष बोधेऽपि नोपसर्पणम् प्रधानस्य कुलवधूवत् ।। ३।७० ।।

प्रधान प्रकृति के दोषों को जान लेने पर पुरुष प्रकृति की ओर नहीं देखता। जैसे कुलवधू किसी को नहीं देखती उस योगी का सच्चिदानन्द घन ही देखने योग्य दृश्य रह जाता है।

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ।३।७१।

पुरुष न सदा बद्ध है न सदा मुक्त। अविवेक से बन्ध होता है। विवेक से मोक्ष। मोक्ष से आना-जाना बना रहता है।

प्रकृतेरांजस्यात् स संगत्वात् पशुवत् ।३।७२।

प्रकृति की अनुरक्ति से बन्ध हो जाता है, जैसे रस्सी की अनुरक्ति से पशु बँधा रहता है। रस्सी का खुल जाना ही मुक्ति है।

रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवत्, विमोचयत्ये केन रूपेण ।३।७३।

पाँचों वृत्तियों, अविद्या और अहंकार इन सात से प्रकृति आत्मा को बन्धन में डाले है। जैसे मकड़ी अपने को अपने बनाये जालों से घेर लेती है। अकेली अखंड विवेक ख्याति जीव को मुक्त कर देती है।

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानि ।३।७४।

अविवेक ही बन्धन का कारण है। यह निश्चय जानना। दृष्टसंसार से वैराग्य ही करना है। उसकी हानि नहीं होती। वह सदातन है।

तत्त्वाभ्यासान्नेति नेति त्यागाद्विवेकसिद्धिः ।३।७५।

तत्त्व के अभ्यास से, पुरुष प्रकृति के भेद ज्ञान के अभ्यास से विवेक सिद्ध होता है। यह संसार सुखकर नहीं है। आत्मा आनन्दमय नहीं है। ऐसा अभ्यास करे।

अधिकारिप्रभेदान्न नियम ।३।७६।

साधना के भिन्न-भिन्न कोटि के अधिकारी होते हैं। सबके लिए एक ही नियम नहीं बनाया जा सकता है। किसी को तप, किसी को जप,

किसी की ईश्वर-प्रणिधान आदि की भिन्न-भिन्न साधना की स्थितियाँ हैं।

जीवन्मुक्तश्च ।३।७८।

विवेकी जीवन्मुक्त होता है।

उपदेश्योपदेष्टृत्वात्तत्सिद्धिः ।३।७६।

योग्य जीवन्मुक्त उपदेष्टा और योग्य शिष्य मिलने से विवेक सिद्ध हो जाता है।

इतरथान्धपरम्परा ।३।८१।

सिद्ध जीव-मुक्त उपदेष्टा न हो तो अन्ध परम्परा चल पड़ती है। जीवन्मुक्त भोगी नहीं होता। भोग में आनन्द कहाँ! पूर्ण विरक्त सदा समाधिस्थ रहता है।

चक्र-भ्रमणवद्धृतशरीरः ।।३.८२।।

जीवन्मुक्त की जीवन-यात्रा स्वतः चलती है, जैसे चाक वेग से ही विना घुमाये घूमता है।

विवेकान्निःशेष दुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यो नेतरान्नेतरात् ।।३।८४।।

विवेक से सकल दुःखों की निवृत्ति हो जाने पर योगी कृतकृत्य हो जाता है और किसी उपाय से नहीं।

बहुभियोगे विरोधोरागादिभिः कुमारी शंखवत् ।४।६।

बहुतों के साथ विवेक नहीं होता। रागादि से विरोध हो जाता है। कुमारी अनेक शंख पहन ले तो टूटेंगे ही। एक हो तो बना रहेगा।

द्वाभ्यामपि तथैव ४।१०।

दो हों तब भी यही होता है।

निराशः सुखी पिंगलावत् ।४।११।

सब की आशा छोड़ देने पर मनुष्य सुखी होता है। भगवान् उसको संभाल लेते हैं। जैसे पिंगला भगवान् भरोसे सुखी हो गई।

अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ।४।१२।

कुटि आश्रम आदि के निर्माण में न पड़े। बने बनाये पर घर में या

गुफा आदि में निर्द्वन्द्व रहे। जैसे साँप कभी अपना बिल नहीं बनाता, बने-बनाये में घुस जाता है।

बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादा नंषट्पदवत् ।४।१३।

बहुत शास्त्रों के अध्ययन के लिये बहुत गुरुओं की उपासना करने पर भी शास्त्र का सार ग्रहण करे, व्यर्थ की व्याख्या तथा अन्य बातों में न पड़े। भौंरा जैसे फूलों से सार ग्रहण कर लेता है।

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः ।४।१४।

व्युत्थान स्थिति—लोक व्यवहार में भी निपुण इषुकार के समान समाहित रहे। भगवान् को ध्यान में रखे तो समाधि की हानि नहीं होती। व्यवहार में फँसे नहीं, जैसे इषुकार कोई भी दृश्य आये, वह अपने इषु घड़ने में लगा रहता है।

व्रत नियम लङ्घनादानार्थक्यं लोकवत् ।४।१५।

तप और यमादि के नियमों के उल्लंघन से सब साधना व्यर्थ हो जाती है। संसारी जैसे स्वास्थ्यादि का नियम उल्लंघन करने पर रुग्ण हो जाता है।

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ।४१६।

ओं विस्मरण से भी अनर्थ हो जाता है, मेंडकी की तरह। मेंडकी को पानी में रहना होता है। स्थल पर कूद आवे तो दबकर मर ही जाती है। ओं को कभी न भुलाये।

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते ।४।१७।

योगविधि के पढ़ लेने से भी साधक कृतकृत्य नहीं हो सकता। उसे मनन और अभ्यास करना ही होगा।

प्रणति ब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ।४।१९।

योगगुरु को प्रणाम, ब्रह्मचर्य का पालन, गुरु के सान्निध्य में रहने से सिद्धि होती है, दीर्घकाल में, जल्दबाजी में नहीं। इन्द्र को बहुत काल में स्वर्गराज्य की सिद्धि हुई थी।

न कालनियमो वामदेववत् ।४।२०।

समय का कोई नियम नहीं। देर लगती है। शीघ्र भी संस्कारों से

सिद्धि हो सकती है, जैसे वामदेव को शीघ्र सिद्धि हो गई और वह ऋषि तक हो गया।

अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ।४।२१।

सत्-चित्-आनन्द की अध्यास रूप से उपासना—योगाभ्यास करने से परम्परा से यथासमय जप-धारणा-ध्यान, समाधि की सिद्धि हो जाती है। यज्ञ-याग की उपासना करने वालों को यज्ञ-फल जैसे मिलता है, पर यज्ञ से योग-सिद्धि नहीं होती।

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पंचाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ।४।२२।

यज्ञ से लाभ होता है पर पुनः पुनः जन्म होता है। आवागमन नहीं छूटता। पंचमहायज्ञ करते-करते भी जन्म का श्रुति विधान है। पंचमहायज्ञों से भी मोक्ष नहीं।

विरक्तस्य हेय हानम् उपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ।४।२३।

पूर्ण विरक्त के हेय दुःख का हान हो जाता है। उपादेय पुरुष की प्राप्ति हो जाती है। हंस भी हेय जल को पृथक् कर दूध को ले लेता है। यही परमहंस का कार्य है।

लब्धातिशययोगात् तद्वत् ।४।२४।

अत्यन्त उच्चकोटि के योगाभ्यास से यह स्थिति आती है। हंस के समान।

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ।४।२५।

संसार के रागी के दुःख के हान में और भगवान् के उपादान में कामचारिता-स्वतन्त्रता नहीं हो सकती, जैसे पंजरे में बँधे तोते की उड़ान अपने आधीन नहीं है।

गुणयोगात् बद्धः शुकवत् ।४।२६।

सत्त्व, रज और तमो गुणों में रागी बँधा रहता है, जैसे तोता पिंजरे में।

न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ।४।२७।

भोगों के भोगने से भोगों से प्रेम समाप्त नहीं होता। जैसे सौभरि मुनि का इतिहास प्रसिद्ध है।

दोषदर्शनादुभयोः ।४।२८।

भोक्ता के बन्धन और भोगों के दोषों के विचारते रहने से ही

वैराग्य होता है। संसार का राग समाप्त हो जाता है।

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ।४।२९।

मलिन चित्त में योगोपासना का बीज अंकुरित नहीं होता जैसे बकरे के पेट में अनेक अन्न जाते हैं, वहाँ मल-खाद भी है पर पेट में बीज फूटता नहीं। अंकुरित नहीं होता।

नाभासमात्रमपि मलिन-दर्पणवत् ।४।३०।

(मैले चित्त में तो भगवान् का आभास तक भी नहीं होता, जैसे मैले शीशे में कुछ भी नहीं दीखता।)

न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवत् उपास्यसिद्धिवत् ।४।३२।

विभूतियों के सिद्ध हो जाने पर भी योगी कृतकृत्य नहीं होता। जैसा कि उपास्य भगवान् की सिद्धि होने पर योगी कृतकृत्य होता है।

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात्तदुच्छितेरितरयोगवत् ।५।८२।

अणिमा आदि आठों सिद्धियों का मिल जाना भी योग नहीं है, उन सिद्धियों का भी अवश्य नाश हो जाता है, समाप्ति हो जाती है जैसे दूसरे मिलने वाले पदार्थों का भी वियोग हो जाता है।

योगसिद्धयोऽप्यौषधादि सिद्धिवन्नापलपनीयाः ।५।१२।

योग सिद्धियाँ खण्डन अपलाप करना नहीं चाहिये। औषधि जैसे रोग नाश में सिद्ध है ऐसे ही योगर्जासिद्धियाँ भी सिद्ध हैं।

समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।५।११६।

समाधि, सुषुप्ति और मोक्ष में ब्रह्मानन्द की अनुभूति होने से ब्रह्म रूपता-सी होती है।

नैकस्यानन्द चिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ।५।६६।

दोनों आनन्द चेतन रूप नहीं हैं। एक ही आनन्द चित् है। वह परमात्मा है। दोनों का यह भेद है।

न षट् पदार्थ नियमः तद्बोधान्मुक्तिः ।५।८५।

प्रकृति के छः पदार्थों के जानने का नियम अनिवार्य नहीं। ब्रह्मबोध से ही मुक्ति होती है।

देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात् ।६।२।

आत्मा देह आदि से भिन्न है क्योंकि इनसे विलक्षण है।

अत्यन्त दुःख निवृत्या कृतकृत्यता ।६।५।

दुःख का अत्यन्ताभाव ही आत्मा की कृतकृत्यता है।

कुत्रापि कोऽपि सुखी न ।६।७।

कहीं भी किसी स्थिति में भी कोई सुखी नहीं है। सब दुःखी ही हैं।

परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात् ।६।११।

दुःख आदि प्रकृति के धर्म हैं। अविवेक से जीवात्मा अपने समझ लेता है।

प्रकारान्तराभावादविवेक एव बन्धः ।६।१६।

अविवेक ही बन्धन का हेतु है। बन्धन में अन्य हेतु का अभाव है।

मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परा ।६।२०।

अविवेक का नाश हो जाने से ही मुक्ति है,अन्य कुछ नहीं ।

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ।६।२१।

मन्द, मध्य, उत्तम, अधिकारियों के भेद हैं। अतः सब के लिए एक ही कोटि की साधना का नियम नहीं है।

स्थिरसुखमासनमिति न नियमः ।६।२४।

अचल और सुख देने वाला हो यही बैठने के आसन का नियम है। अन्य आसनों का नियम नहीं है। आसन तो शतशः हो सकते हैं।

ध्यानं निर्विषयं मनः ।६।२५।

मनका विषयों की वृत्ति से रहित होना ध्यान है वैराग्य से विषयोपरत होने पर ही ध्यान होता है।

ध्यान धारणाभ्यास वैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ।६।२६।

धारणा, ध्यान, समाधि,और वैराग्य से चित्त की वृत्तियाँ रुकती हैं।

न स्थाननियमः चित्तप्रासादात् ।६।३१।

स्थान का नियम प्रधान नहीं। चित्त की प्रसन्नता ही नियम हैं। चित्त को सदा प्रसन्न रखे।

अहंकारः कर्त्ता न पुरुषः ।६।५४।

अहंकार ही कर्त्ता है, पुरुष नहीं ।

कर्मनिमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिबीजांकुरवत् ।६।६७।

प्रकृति के साथ स्व स्वामिभाव का सम्बन्ध अनादि है, बीजांकुर की तरह ।

अविवेकनिमित्तको वा पञ्चशिखः ।६।६८।

प्रकृति को 'स्व' अपने को स्वामी समझना अविवेक के कारण है । ऐसा पंचशिखाचार्य ने माना है ।

यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः ।६।७०।

स्व स्वामी सम्बन्ध किसी प्रकार भी हुआ हो, उसका नाश, प्रकृति से परवैराग्य ही पुरुष के जीवन का प्रयोजन है । प्रकृति से परवैराग्य ही पुरुषार्थ है ।

न्याय दर्शन में योग साधना

न्याय दर्शन में योग प्रक्रिया पूरी दी है । प्रमाण-प्रमेय आदि के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस-मोक्ष होता है । यह न्याय के आरम्भ के सूत्रों में कहा है सांख्य की नाई तर्क उपस्थित किया नअन्त में४-२-३८ में वात्स्याय नें अवतरणिका उठाई है :—

कथम् तत्त्वज्ञान मुत्पद्यते—तत्व ज्ञान का साधन क्या है ? तत्त्वज्ञान कैसे उत्पन्न होता है ? सूत्रकार गौतम ने उत्तर दिया है ।

समाधि विशेषाभ्यासात् ।४।२।३८।

समाधि विशेष अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधियों के अभ्यास से ही तत्त्व-ज्ञान होता है ।

वात्स्यायन ने भाष्य किया—"स तु प्रत्याहृतस्येन्द्रियेभ्यो मनसोधारकेण प्रयत्नेन धार्यमानस्यात्मना संयोगस्तत्त्वबुभुत्साविशिष्टः, सति हि तस्मिन्निन्द्रियार्थेषु बुद्धयो नोत्पद्यन्ते, तदभ्यासवशात् तत्त्वबुद्धिरुत्पद्यते । यदुक्ससंति हि तस्मिन् इन्द्रियार्थेषु बुद्धयो नोत्पद्यन्ते इत्येतत् ।

—इन्द्रियों से मन को हटाकर, धारणा से आत्मा के साथ मन का संयोग हो जाता है । उस समय आत्मा तत्त्व को जानने की भावना से विशिष्ट रहता है, ऐसी समाधि की स्थिति में इन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता है । उस सम्प्रज्ञात के अभ्यास से तत्त्वों का साक्षात्कार होता है । इसीलिए

कहा है कि सम्प्रज्ञात में ही तत्त्वबोध होता है। इन्द्रियों से विशुद्ध ज्ञान नहीं होता है।

नार्थ-विशेष-प्राबल्यात् ।४।२।३६।

अर्थों,पदार्थों में, विषयों में विशेष प्रबलता होने से सम्प्रज्ञात समाधि नहीं लगता।

भाष्यम्—विशेषप्राबल्यात् समाधिविशेषो नो त्पद्यते।

क्षुदादिभिः प्रवर्त्तनाच्च ।४।२।४०।

क्षुत्पिपासाभ्यां व्याधिभिश्च समाधिविशेषो नोत्पद्यते—वात्स्यायन भूख-प्यास, और रोगों से सम्प्रज्ञात समाधि नहीं लगा करती। अतः भूख-प्यास पर विजय प्राप्त करना होगा, तब रोग भी न होंगे- न बाधा ही होगी। यह अभिप्राय है।

पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः ।४।२।४१।

भाष्यम्—पूर्वकृतो जन्मान्तरोपचित्तितस्तत्त्वज्ञानहेतुधर्मं प्रविवेकः फलानुबन्धो योगाभ्यास-सामर्थ्यम्—पूर्व-दीर्घकाल तक किया योग अभ्यास तथा जन्म-जन्मान्तर में किया योगाभ्यास तत्त्वज्ञान का हेतु होता है, तब पूर्ण योगसामर्थ्य प्राप्त होता है॥

अरण्य गुहा पुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ।४।२।४२।

वन,गुफा,नदी तीर आदि में योगाभ्यास करने का उपदेश है वात्स्या यन लिखते हैं:—योगाभ्यासजनितो धर्मो जन्मान्तरेऽप्य नुवर्त्तते। प्रचय- का गते तत्त्वज्ञान हेतौ धर्मे, प्रकृष्टतायां समाधि-भावनायां तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते दृष्टश्च समाधिना अर्थ-विशेष- प्राब याभिभवः।

—योगाभ्यास के संस्कार जन्मान्तर में अनुवर्त्तित होते हैं। तत्त्व-ज्ञान के कारण योग संस्कार के भली प्रकार संगृहीत हो जाने पर, समाधि भावना के प्रबल हो जाने पर तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है। देखा गया है—समाधि से विशेष पदार्थों के विषयों की प्रवलता दब जाती है।

तदर्थं यम-नियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्म विध्युपायैः ।४।४६।

तस्यापवर्गस्याधिगमार्थंयम नियमाभ्यामात्म संस्कारः यमः समान-माश्रमिणां धर्म-साधन नियमस्तु विशिष्टम्। पुनरधर्म हानम्, धर्मोपचयश्च योगशास्त्राध्यात्मविधिःप्रतिपत्तव्यः। सः पुनस्तपः, प्राणायामः, प्रत्याहारो

धारणा ध्यानमिति । इन्द्रिय विषयेषु प्रसंख्यानाभ्यासो, रागद्वेष प्रहाणार्थं उपायस्तु योगाचार विधानम् इति—उस मोक्ष की प्राप्ति के लिए यम नियम के परिपालन से आत्मा का संस्कार होता है। पांचों यमों, पांचों नियमों का पालन सब आश्रम वालों के लिये समान धर्म है। यम सब ही ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्न्यासी को पालने चाहियें। नियम तो विशेष हैं। ब्रह्मचर्य गृहस्थ में साधारण वानप्रस्थ में पूरी तरह पालन करना होता है। आत्म संस्कार का निमित्त अधर्म को सर्वथा छोड़ना है। अहिंसा आदि धर्मों का पूर्णतया पालन करना है। योगशास्त्र से आत्मज्ञान की विधि जाननी चाहिए। वह है—तप, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा-ध्यान का सम्यक् अभ्यास, इन्द्रियों के विषयों का पूर्ण विवेक से परित्याग करने का अभ्यास और रागद्वेष के नाश का उपाय तो योग के आचार के विधान का परिपालन है।

ज्ञान ग्रहणाभ्यासस्तद्विद्यैश्च सह संवादः ॥४७॥

ज्ञायतेऽनेनेतिज्ञानमात्मविद्याशास्त्रं तस्य ग्रहणमध्ययन धारणे, अभ्यासः सतत क्रियाध्ययन श्रवण चिन्तनानि, तद्विद्यैश्च सह संवाद.इति प्रज्ञापरिपक्वार्थः। परिपाकस्तु संशयछेदनम् अविज्ञातार्थ बोधोऽध्यवसिता-भ्यनुज्ञानमिति समायवादः सम्वादः। तद्विद्यैश्च सह संवाद इत्यविभक्तार्थं वचनं विभज्यते।

—जिससे जानें वह ज्ञान है। अर्थात् आत्मविद्या का शास्त्र,योगशास्त्र, उसका ग्रहण करना अर्थात् पढ़ना और आचरण में लाना अभ्यास है लगातार योग की क्रिया करना, योगशास्त्र का पढ़ना, सुनना, और चिन्तन करना। उस योगशास्त्र के जानने वालों के साथ वाद करना। इन बातों से योग की धारणा या योग प्रज्ञा परिपक्व होती है। परिपाक होता है उस समय जब संशयों का उच्छेद हो जाये। न जाना हुआ सब जान लिया जाये। जिसके ज्ञान का निश्चय किया था उसका ज्ञान हो जाये। किसी अनुभवी से मिल कर जानना सम्वाद है। योग विद्या को जानने वालों के साथ सम्वाद करना। इस प्रकार अविभक्त करके कहे 'सम्वाद' को विभक्त करके समझ लेना चाहिए।

तं शिष्य-गुरु-सब्रह्मचारि-विशिष्ट-श्रेयोऽर्थिभिरभ्युपेयात् ।४८।

उस सम्वाद का शिष्य, गुरु, सहाध्यायी-सतीर्थ्य, विशेष कल्याण-मोक्ष के साधकों के पास बैठ कर करे।

प्रतिपक्षहीनमपि वा प्रयोजनार्थमर्थित्वे ।४९।

परतः प्रज्ञामुपादित्समानस्तत्त्वबुभुत्सा प्रकाशनेन स्वपक्षमनवस्थापयन् स्वदर्शनं शोधयेत् । अन्योऽन्य प्रत्यनीकानि च प्रवादुकानां दर्शनानि स्वपक्षरागेण चैके न्यायमतिवर्तन्ते तत्र ।

—दूसरे से प्रज्ञा प्राप्त करने का इच्छुक तत्त्व के जानने की इच्छा प्रकट करे । अपने पक्ष की स्थापना न करे । अपने ज्ञान को शुद्ध करले । विवाद करने वालों के ज्ञान एक दूसरे से विपरीत हुआ ही करते हैं । अपने पक्ष के मोह में बहुत से न्याय को छोड़ देते हैं ।

वीतरागजन्मादर्शनात् ।३।१।२५।

पूर्ण विरक्ति परवैराग्य प्राप्त कर जन्म नहीं होता । उसकी मुक्ति हो जाती है ।

दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः ।४।२।२।

कल्पना से सृजन किए हुए रूपादि पाँचों विषय मन के संकल्प उत्पन्न हुए हैं । इनका अपना स्वरूप तो दोष निमित्तक नहीं । मोह के कारण, अज्ञानवशात् पांचों विषयों में अनुरक्ति होती है । विषयों का भी एक रूप नहीं । किसी को लाल ही अच्छा लगता है, किसी को नीला, किसी को पीला, क्यों ? यदि लाल ही मोहक है तो सब को मोहित करे । एक को ही क्यों करता है । ऐसे ही अन्य रंग हैं । किसी विशेष रंग में ही आकर्षण होता तो सब को ही वह रंग आकृष्ट करता । बस जिसने जिसका संकल्प कर लिया, उसे वही आकृष्ट करता है । यही स्वाद, गन्ध, शब्द, स्पर्श आदि की फँसावट में मन का व्यामोह ही कारण है ।

दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञानादहंकार निवृत्तिः ।४।२।१।

वात्स्यायन भाष्यम—मिथ्याज्ञानं वै खलु मोहः । न खलु तत्त्वज्ञानस्यानुत्पत्तिमात्रम् । तच्च मिथ्याज्ञानं यत्र विषये प्रवर्त्तमानं संसारबीजं भवति ।

स विषयः तत्त्वतोज्ञेय इति । किं पुनस्तन् मिथ्याज्ञानम् । अनात्मनि आत्मग्रहः अहमस्मि इति मोहोहंकारः इति । अनात्मानं खल्वहमस्मीति पश्यतो दृष्टिरहंकार इति किं पुनस्तदर्थंजातं यद्विषयोऽहंकारः संसार-बीजं भवति । अयं खलु शरीराद्यर्थंजातमहमस्मीति व्यवसितः, तदुच्छेदनादुच्छेदन मात्मनो मन्यमानोऽनुच्छेद तृष्णापरिप्लुतः पुनः पुनस्तदुपादत्ते, तदुपाददानो

जन्ममरणाय यतते। तेनावियोगन्नात्यन्तं दुःखाद्विमुच्यते इति। यस्तु दुखं, दुःखायतनं, दुःखानुषक्तं सुखंच 'सर्वम् इदं दुःखमिति पश्यति स दुःखं परिजानाति। परिज्ञातं च दुःखं प्रहीणं भवति, अनुपादानात् सविषान्नवत्। एवं दोषान्, कर्म च दुःख-हेतुरिति पश्यति। न चाप्रहीणेषु दोषेषु दुःख प्रबन्धोच्छेदेन शक्यं भवितुमिति दोषान् जहाति प्रहीणेषु च दोषेषुन प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानायेत्युक्तम्।

प्रेत्यभावः, फल-दुःखानि च ज्ञेयानि, व्यवस्थापयति दोषांश्च प्रहेयान्। अपवर्गोऽधिगन्तव्यः, तस्याधिगमोपायस्तत्वज्ञानम्। एवं चतसृभिर्विद्याभिः प्रमेयं विभक्तमासेवमानस्याभ्यस्यतो भावयतः सम्यग् दर्शनं यथाभूतावबोधस्तत्व ज्ञानमुत्पद्यते इति॥

—मिथ्या ज्ञान ही मोह है। तत्वज्ञान का केवल उत्पन्न न होना ही मिथ्या ज्ञान नहीं है। वह मिथ्या ज्ञान जिन-जिन विषयों में होने पर संसार का संसार के मरण जन्म का चक्र बनता है वह मिथ्या ज्ञान है, उन विषयों को, प्रकृति पुरुष के स्वरूप से तात्विक रूप में साक्षात् करना चाहिए। केवल सुन सुनाकर नहीं।

वह तत्व ज्ञान क्या है?

"अनात्म पदार्थों को आत्मा समझ लेना। प्रकृति और प्रकृति से बने रुपया, पैसा, सोना, चांदी, मकान, भूमि, अपनी देह, पर देह आदि को आत्मा समझ लेना। उनके अभाव में आत्मा का सन्तप्त होना मिथ्या ज्ञान है। आत्मज्ञानी सन्तप्त नहीं होता।

'यह सब मैं हूं, या यह मेरा है यही अहंकार है, यह अहंकार ही अविद्या की जड़ है। 'आत्मा से भिन्न—अनात्मपदार्थों को 'मैं—आपा-आत्मा' समझना—इस प्रकार जानने वाले का दर्शन-ज्ञान ही अहंकार हैं।

—वह कौन कौन से पदार्थ हैं जिनमें आत्मभाव होने से अहंकार होता है और वह संसार का जन्म-मरण का कारण-बीज बना रहता है?

"शरीर, मन, वेदना, बुद्धियों को आत्मा-आपा समझ लेना अहंकार है, जन्म-मरण के चक्र में फँसना है।"

इनमें आत्मबुद्धि अहंकार कैसे संसार का—आत्मा के जन्ममरण में संसरण का हेतु बनता है?

"यह चेतन आत्मा शरीर आदि पदार्थों को ही आत्मा निश्चय किये है। इन पदार्थों के नाश को अपना—आत्मा का नाश मान बैठता है। इस

लिए इन पदार्थों का नाश न हो इस तृष्णा से लालसा से आप्लावित है, भरा पड़ा है। घिरा पड़ा है। इसलिये बार बार उनका संग्रह करता है। उनको संग्रह करता हुआ जन्म-मरण संसरण के लिए ही यत्न करता है। उन पदार्थों के साथ वियोग न होने से, संयोग के बने रहने से कभी भी दुःख से अत्यन्त सार्वकालिक छुटकारा नहीं होता है।"

जो दुःख को, दुःख के आयतन—दुःख के ही कारण, दुःख से मिश्रित सुख को भी 'सब कुछ दुःखमय है, दुःख रूप है, ऐसा जानता है, समझ लेता है वह ही दुःख के स्वरूप को पहचान गया है। दुःख का स्वरूप जान लेने पर छूट जाता है, छोड़ दिया जाता है जैसे विषाक्त अन्न को छोड़ देते हैं। इस प्रकार अविद्या आदि दोषों को और कर्मों को भी दुःख का हेतु ही जानता है, मानता है। अविद्यादि क्लेश दोषों के छूटे बिना दुःख की परम्परा नष्ट नहीं होती, नहीं हो सकती। अन्य केवल तर्क ज्ञान इसका साधन नहीं है। इसलिए मोक्ष का इच्छुक अविद्यादि दोषों को छोड़ देता है। छूटे हुए अविद्या आदि में फिर प्रवृत्ति नहीं करता नहीं तो फिर उसी प्रकार फँसावट हो जायेगी।

जानने योग्य मृत्यु, मृत्यु के फल और दुःखों को, कर्मों को और हेय दुःखों को छोड़ने की व्यवस्था करता है।

मुक्ति—अपवर्ग—मोक्ष प्राप्त करना चाहिए। मानव-जीवन का लक्ष्य यही है। मुक्ति पाने का उपाय तत्त्व ज्ञान है। इस प्रकार अविद्या आदि चारों के अभाव से जन्य विद्या, आत्म ज्ञान, सुख से विमुखता और दुःखानुभव शून्यता प्रमेय प्रकृति पुरुष को पृथक्-पृथक् भाव से अनुभव करते हुए विवेक-सम्पन्न योगाभ्यासी को सम्यग्दर्शन—सही सही विशुद्ध ज्ञान होता है, उसको सब भूतों का यथातथ्य ज्ञान उत्पन्न होता है।"

प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भः इति ।१।१।१७।

वाणी, बुद्धि, शरीर से जिनका आरम्भ होता है वह सब प्रवृत्ति है। इन्हें ही योग में पांच प्रवृत्तियाँ कहा है।

प्रवर्त्तनालक्षणो दोषः । १।१।१८ ।

जिनसे प्रवृत्ति होती है, जिनसे वाणी, बुद्धि, और शरीर कार्य करते हैं वे ही वृत्तियाँ दोष कहाती हैं।

प्रवृत्ति दोष जनितोऽर्थः फलम् । १।१।२० ।

प्रवृत्ति-दोष से उत्पन्न परिणाम ही प्रवृत्ति का फल तथ्यरूप से दुःख ही है।

बाधना लक्षणं दुःखम् । १।१।२१ ।

प्रवृत्ति और प्रवृत्ति फल मोक्ष में सुख में बाधक है इसलिए दुःख है ।

तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः । १।१।२२ ।

उस प्रवृत्ति, प्रवृत्ति का फल अत्यन्त छूट जाना मोक्ष है । मुक्ति है, इस मोक्ष की ही साधना पूर्ववर्णित न्याय ने बतायी है ।

वेदान्त दर्शन में योग साधना

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् । ४।१।१ ।

ओं नाम की आवृत्ति करनी चाहिए । पुनः पुनः उच्चारण वाचिक, फिर मानसिक करना चाहिए । अन्त में बौद्धिक । वेद, उपनिषद्, आदि में स्मृतियों में शतशः बार यही बताया गया है ।

(देखो हमारी लिखी 'ओं मन्त्रोपासना')

लिंगाच्च । ४।२।२ ।

सत् चित् आनन्द लिगों से, गुणों की भावना से स्मरण करे । यही साधना अर्थ-भावना तक-परमेश्वर पदार्थ तक पहुँचा देगी ।। आदित्यवर्णम्, तेजोऽसि,भर्गः सर्वत्र भास्वर स्वरूप का उल्लेख है ।। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्, आदि । "यत्रआनन्दाश्च मोदाश्च"अथर्व वेद में कहा है आनन्दमय में ध्यानमग्न होने से आनन्द ही आनन्द रहता है । मोद ही मोद रहता है । 'सर्वंज्ञानमयो हि सः वह ज्ञान स्वरूप चेतन तत्त्व है ।

आत्मेत्युपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च । ३।१।३ ।

ध्यान में आत्मा और परमात्मा का अवलम्बन कर उन्हें प्राप्त हो जाते हैं ।

आत्मनात्मानमभिसंविवेश ।। यजुर्वेद । ३१।११ ।

'संविश्यात्मनात्मानम्' ।। माण्डूक्य ।०।१२ ।

आत्मा से परमात्मा में प्रवेश करके ध्यान करे ।

न प्रतीके न हि सः । ४।१।४ ।

प्रतीकोपासना से योग-साधना नहीं होती है ।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् । ४।१।५ ।

साधना में उत्कर्ष का हेतु ब्रह्मदृष्टि है । ब्रह्मरूप अर्थावगति बनी रहे ।

आदित्यादिमतयश्चांग उपपत्तेः । ४।१।६ ।

आदित्यादि प्रकाश, आदित्य, चन्द्रतारा, आदि का साधना में दर्शन उपपन्न है। योगाग्रगति का चिन्ह है।

उद्गीथ आदित्यः । छान्दो० २।२।१ ।

आसीनः सम्भवात् । ४।१।७ ।

आसनासीन ध्यान करे,ब्रह्मोपासना आसन से ही सम्भव है। शयान को आलस्य नीन्द घेर लेती है। खडा श्रान्त हो जाता है। चलता हुआ चंचल होता है।

ध्यानाच्च । ४।१।८ ।

ब्रह्म ज्ञान भी ध्यान से ही सम्भव है।

अचलत्वं चापेक्ष्य ।४।१।९ ।

अचल रहने से ही ध्यान निष्पन्न होता है। हिलने-डुलने से मन डुल जाता है। मन हिलता है तो ही तो शरीर हिलता है।

स्मरन्तिच । ४।१।१० ।

योगाभ्यासी नाम स्मरण करते हैं। 'ओं क्रतो स्मर यजुः ४० अ० योग क्रिया का अभ्यासी 'ओं' का स्मरण करता है। 'ओकारं ध्यायन्ति योगिनः" ओं का जप करते करते योगी ध्यान पर पहुँचते हैं। शिखोपनिषद्। 'प्रणवो धनुः'। योग साधना का प्रणव ही धनुष है। आदि।

यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् । ४।१।११ ।

जहाँ एकाग्रता हो वहीं रहे। पर्वत, नदी कूल, आदि का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

आ प्रायणात् तत्रापि दृष्टम् ॥ 'ओं स्मरण'मरण पर्यन्त है यावज्जीवन है। "प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत" प्रश्नो० ५।१॥ यावदायुषं ब्रह्म लोकमभिसम्पद्यते ॥ छान्दो० ८-१५-१॥ आयुपर्यन्त ब्रह्म नाम ओम का स्मरण कर उस ब्रह्म लोक को प्राप्त हो।

तदधिगम उत्तरपूर्वाधयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्
। ४।१।१३ ।

ध्यान साधना से—योगाभ्यास से उस ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

और साथ ही भूत और भविष्यत् के पापों का भोग नहीं मिलता हैं। वे पाप नष्ट ही हो जाते हैं। ऐसा ही शास्त्रों में व्यपदेश है—

"यथा पुष्कर पलाशे आपो न श्लिष्यन्ति एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते" छान्दो० ४।१४।३।

ढाक के पत्ते पर पानी नहीं लगता, ऐसे ही ब्रह्मज्ञानी योगी को पाप और कर्म नहीं छूते॥

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते" छान्दो० ५।२४।३।

जैसी सींक की लिपटी रुई अग्नि में भस्म हो जाती है ऐसे इसध्यानी के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

इतरस्यापि एवमश्लेषः पाते तु। ४.१.१४।

योगी के दूसरे प्रारब्ध पुण्य कर्मों का भी अश्लेष और पूर्व संचित पुण्यों का नाश हो जाता है। देहपात होने पर। ऐसा ही कहा भी है।

"क्षीयन्ते चास्य कर्मांणि तस्मिन दृष्टे परावरे" ।मुण्डक २।२।८।

भगवान् के दर्शन पर इस योग-साधक के कर्म नष्ट हो जाते हैं।

न वै सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति। अशरीरं वावसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः। छान्दोग्य ८.१२.१।

शरीर के रहते तक पाप पुण्य रहते हैं, पर विरक्त ध्यानी के शरीर अध्यास न रहने पर पाप पुण्य का नाश हो जाता है।

अनारब्ध कार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ।४.१.१५।

संचित कर्म ही जिन्होंने फल प्रदान आरम्भ नहीं किया वे पाप पुण्य नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्म-प्राप्ति ही पुण्य पाप नाशक की सीमा है।

"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये"—छान्दोग्य० ।६.१४.२।

उसको उतनी ही देर है जब तक मुक्त नहीं होता। मुक्ति के साथ ही पाप पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

अग्निहोत्रादितु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् । ४.१.१६ ।

अग्निहोत्रादि ब्रह्मप्राप्ति के लिए ही गृहस्थादि आश्रमों में विहित हैं। उनका कार्य परोपकार कर्म के कारण सत्व गुण की अभिव्यक्ति ही है। पुण्य भी नाश हो जाता है—

यदा पश्यः पश्यतेरुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म योनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥—जब साक्षात्कृत योगी हिरण्यरूप कर्ता ईश्वर पर ब्रह्म वेदाविष्कर्ता को देखता है। उस समय वह ब्रह्मज्ञानी पुण्य पाप को नाश करके निष्कलंक हो जाता है, अपरामृष्ट परब्रह्म की समता प्राप्त करता है चाहे परब्रह्म में परिणत नहीं होता।

यदेव विद्ययेति हि । ४.१.१४ ।

अविद्यादिपंचक को हान करके विवेक से ब्रह्म साक्षात् करता है ।
—यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति । छान्दो० । १.१.१० ।

विवेक, श्रद्धा और ब्रह्मोपनिवेशन से जो ब्रह्मज्ञान होता है, वही श्रेष्ठतम है ।

योगिनः प्रति स्मर्यंते स्मार्ते चैते । ४.३.२१ ।

योगी के जानने योग्य दक्षिणायन उत्तरायण हैं। ये दो भाग स्मृति में आये हैं ।

दर्शनाच्च । ४.३.१३ ।

देवयान मार्ग भी ब्रह्म दर्शन कराता है ।
यह थोड़ा सा वेदान्त दर्शन का योग विषय दर्शाया ।

वैशेयोग दर्शन में योग

तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि, शरीरस्य दुःखाभावः संयोगः । ५.२.१६ ।

मन के अपने आप में हो ठहर जाने पर, सर्ववृत्तियों का निरोध हो जाने पर, उसकी वृत्तियों का अनारम्भ होने पर; शरीर के दुःखों का अभाव हो जाता है। क्लेश और कर्म की निवृत्ति हो जाती है। वही योग है।

तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः । ५.२.१८ ।

वृत्तियों कर्मों, क्लेशों का संयोग न होने पर जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है यही मोक्ष है।

आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम् ॥ ९.१.११ ॥

आत्मा और मन के संयम-प्रक्रिया के द्वारा आत्मा में संयोगविशेष होने से आत्मा का प्रत्यक्ष होता है।

तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षम् ।९.२.१२ ।

उसी प्रकार आत्मा और मन के संयम के प्रयोग के द्वारा संयोग विशेष के होने पर अन्य .प्रकृति स्थूल, सूक्ष्म पदार्थों का योगज प्रत्यक्ष होता है।

असमाहितान्तः करणा उपसंहृतसमाधयस्तेषां च । ९.१.१३ ।

एकाग्रवृत्ति वालों को भी समाहित हो जाने पर और सम्प्रज्ञात समाधियों के उपसंहार में सब प्रत्यक्ष हो जाता है।

तत्समवायादात्मकर्मगुणेषु । ९.१.१४ ।

उन सूक्ष्म द्रव्यों के समवाय सम्वन्ध से रहने वाले गुणों और कर्मों का भी प्रत्यक्ष होता है।

आत्मसमवायादात्मगुणेषु । ९.१.१६ ।

आत्मा में समवाय-नित्य सम्बन्ध से रहने वाले गुणों कर्नों का भी योगज प्रत्यक्ष होता है।

आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिा । ९ ।

आत्मा मन के संयोग विशेष से और संस्कारों से स्मृति होती है।

स्वप्नान्तिकम् । ८ ।

स्वप्न में दृष्ट का भी आत्म मन के संयोग विशेष से ज्ञान और स्मृति होती है।

धर्मांच्च । ९ ।

द्रव्यों के उपयुक्त धर्मों गुणों से भी स्वप्न होते हैं।

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या । १० ।

इन्द्रियों के दूषित ज्ञान से और दूषित संस्कारों से अविद्या होती है।

तद्दुष्टज्ञानम् । ११ ।

वह इन्द्रिय-जन्य ज्ञान दुष्ट है ।

अदुष्टं विद्या । १२ ।

दोषों-क्लेशों से रहित ज्ञान ही विद्या है । विवेक है ।

आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः । १३ ।

ऋषियों और सिद्धों के दर्शन योगज धर्म से होते हैं । इति

यह दर्शनों की योग प्रक्रिया है । योग दर्शन तो है ही योग प्रक्रिया । उसका ही सबने पोषण किया है । योगज प्रत्यक्ष से ही कल्याण है । केवल तर्क से नहीं । ऐसा दर्शनों का अभिप्राय है ।

छह दर्शनों में से चारदर्शनों में योग का विधान उपरिलिखित पृष्ठों में निर्दिष्ट है । योग दर्शन में तो योग ही योग वर्णित है जिसका विस्तृत ब्यौरा स्वामी जी की अज्ञातजीवनी में स्थानस्थान पर उल्लिखित है इस प्रकार योग की प्रक्रिया तथा महिमा का पाँचों दर्शनों में गुणगान हुआ है ।

श्रीमद्भागवत में योग-साधना

स्कन्ध ११

वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि ।
एक एव चरेत्तास्मात् कुमार्या इव कंकणः ।१०।
मन एकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः ।
वैराग्याभ्यास योगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ।११।
तस्मिन् मनो लब्धपदं यदेतत्,
छनैश्शनैर्मुंचति कर्म रेणून् ।
सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च,
विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ।१२।
तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो, न वेद किंचिद् बहिरन्तरं वा ।
यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे
। १३ ।

एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ।
अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ।१४।

गृहारम्भोऽतिदुःखाय, विफश्लचाध्रुवात्मनः ।
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥१५॥

—अध्याय ९

अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ।३३।

शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धातिथ्यं मदर्चनम् ।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ।३४।

एते यमाः सनियमाः उभये द्वादश स्मृताः ।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ।३५।

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः ।
तितिक्षा दुःखसम्मर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ।३६।

दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।
स्वभाव-विजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ।३७।

ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्त्तिता ।
कर्मस्वसंगमः शौचं, त्यागः सन्न्यास उच्यते ।३८।

धर्मं दृष्टं धनं नृणाम्, यज्ञोऽहं भगवत्तमः ।
दक्षिणा ज्ञानसन्देशः, प्राणायामः परं बलम् ।३९।

भगो म ऐश्वरो भावो, लाभो मद्भक्तिरुत्तमा ।
विद्यात्मनि भिदा बोधो, जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ।४०।

किं वर्णितेन बहुना लक्षण गुणदोषयोः ।
गुण-दोष दृष्टिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ।४५।

सम आसन आसीनः, समकायो यथासुखम् ।
हस्तावुत्संग आधाय, स्वनासाग्रकृतेक्षण ।३२।

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं, पूरक-कुम्भक-रेचकैः ।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ।३३।

हृद्यविच्छिन्नमोंकारं, घण्टानादं बिसोर्णवत् ।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ, पुनः संवेशयेत् स्वरम् ।३४।

एवं प्रणवसंयुक्तं, प्राणमेव समभ्यसेत् ।
दशकृत्वस्त्रिषवणं, मासादर्वाग् जितानिलः ।३५।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो, मनसाकृष्य तन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः, प्रणयेन्मयि सर्वतः ।४२।

तत्सर्वव्यापकं चित्तम्, आकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद् भूयः, सुस्मितं भावयेन्मुखम् ।४३।

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो,न किञ्चिद पिचिन्तयेत् ।४४।

एवं समाहितमतिः, मामेवात्मनात्मनि ।
विचष्टे मयि सर्वात्मन्, ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ।४५।

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण, युञ्जतो योगिनो मनः
संयास्यत्याशु निर्वाणं, द्रव्यज्ञान-क्रिया भ्रमः ।४६।

अध्याय १४

पंचदशोऽध्यायः

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ।१।

सिद्ध योऽष्टादश प्रोक्ता, धारणायोगपारगैः ।
तासामष्टौ मत्प्रधाना, दशैव गुणहेतवः ।३।

अणिमा, महिमा, मूर्तेर्लघिमा, प्राप्तिरिन्द्रियैः ।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु, शक्तिप्रेरणमीशिता ।४।

गुणेष्वसंगो वशिता, यत्कामस्तदवस्यति
एता मे सिद्धयः सौम्य, अष्टावौत्पत्तिका मताः ।५।

अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्, दूरश्रवण दर्शनम् ।
मनोजवः कामरूपं, परकायप्रवेशनम् ।६।

स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ।
यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाप्रतिहता गतिः ।७।

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां, प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ।८।

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता, योग धारण सिद्धयः ।
यया धारणया या स्याद्, यथा वा स्यान्निबोधमे ।९।

भूतसूक्ष्मात्मनि मयि, तन्मात्रं धारयेन्मनः ।
अणिमानमवाप्नोति, तन्मात्रोपासको मम ।१०।

महत्यात्मन्मयि परे, यथासंस्थं मनो दधत् ।
महिमानमवाप्नोति, भूतानां च पृथक् पृथक् ।११।

परमाणुमये चित्तं, भूतानां मयि रञ्जयन् ।
कालसूक्ष्मार्थतां योगी, लघिमानमवाप्नुयात् ।१२।

धारयन् मय्यंहतत्त्वे, मनो वैकारिकेऽखिलम् ।
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं, प्राप्ति प्राप्नोति मन्मनाः ।१३।

महत्यात्मनि यः सूत्रे, धारयेन्मयि मानसम् ।
प्राकाम्यं पारमेष्ट्यं मे, विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ।१४।

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत् कालविग्रहे ।
स ईशित्वमवाप्नोति, क्षेत्रज्ञ-क्षेत्र चोदनम् ।१५।

नारायणे तुरीयाख्ये, भगवच्छब्दशब्दिते ।
मनो मय्यादधद् योगी, मद्धर्मा वशितामियात् ।१६।

निर्गुणे मयि ब्रह्मणि, धारयन् विशदं मनः ।
परमानन्दमाप्नोति, यत्र कामोऽवसीयते ।१७।

मय्य्याकाशात्मनि प्राणे, मनसा घोषमुद्वहन् ।
तत्रोपलब्धा भूतानां, हंसो वाचः शृणोत्यसौ ।१९।

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य, त्वष्टारमपि चक्षुषि ।
मां तत्र मनसा ध्यायन्, विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ।२०।

परकायं विशन् सिद्धः, आत्मानं तत्र भावयेत् ।
पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणो, वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ।२३।

मद्भक्तया शुद्ध-सत्त्वस्य, योगिनो धारणाविदः ।
तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ।२८।

जितेन्द्रियस्य दान्तस्य, जितश्वासात्मनो मुनेः ।
मद्धारणां धारयतः, का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ।३२।

अन्तरायान् वदन्त्येता, युञ्जतो योगमुत्तमम् ।
मया सम्पद्यमानस्य, कालक्षपणहेतवः ।३३।

जन्मौषधि तपो मन्त्रैयविती हि सिद्धयः ।
योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यै र्योगगतिं वजेत् ।३४।

अध्याय १५

समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं, दानादिभिः किं वदतस्य कृत्यम्
असंयतं यस्य मनो विनश्यद्,दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः?।४७।

श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ११ अध्याय २३।।

बहुतों के रहने पर कलह होता है। दो में भी बातचीत होती है। इसलिये योगाभ्यासी एकला ही रहता है। जैसे कुमारी एक ही कंकण-कड़ा पहनती है, वह खड़खड़ाता नहीं ।।१०।।

मन को एकान्त देश में साधे। प्राणगति को वश में करें। स्थिर आसन हो। आसन पर पूर्ण विजयलाभ करें। वैराग्य और अभ्यास के योग से मन को सावधानी से वश में करें ॥११॥

भगवान् में मन के स्थिर हो जाने पर मन शनैः शनैः कर्मों की धूल को—भोगों को छोड़ देता है। उसके भोग समाप्त हो जाते हैं। सत्त्व गुण के बढ़ने पर रजोगुण और तमोगुण दूर हटाकर, प्रभावहीन करके ईंधन-रहित अग्नि के समान मन मर जाता है। अक्रिय हो जाता है। लय को प्राप्त हो जाता है ॥१२॥

उस समय आत्म तत्त्व में चित्त का निरोध करके अन्दर या बाहर की किसी बात का भी भान नहीं होता है। जैसे बाण बनाने वाला तन्मयता के कारण सवारी के साथ जाने वाले राजा को भी नहीं जानता है। पास में होते हुए को भी नहीं देख पाता है ॥१३॥

योगाभ्यासी मुनि अकेला रहे। स्थान-मकान न बनाये। सावधान हो, किसी गुफा में आसन जमाये। उसकी योगचर्या को भी कोई जान न पाये। अल्पभाषी रहे। एकाकी रहे ॥१४॥

घर का बनाना अत्यन्त दुःख का कारण होता है। चञ्चल स्वभाव से वह विफल रह जाता है। योगी सांप की तरह दूसरे के घर में घुस कर सुख पाता है ॥१५॥

अध्याय ९

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंग, संकोच, लज्जा, अपरिग्रह, भगवान् पर भरोसा, ब्रह्मचर्य, मौन, धीरता, क्षमा, अभय, शौच, जप, तपः, हवन, श्रद्धा, आतिथ्य, भगवान् का अर्चन-ध्यान, तीर्थ भ्रमण, परोपकारेच्छा, सन्तोष, आचार्य के समीप रहना, यह नियमों सहित यम हैं। दोनों १२-१२ हैं। तात ! यदि पुरुष इनका परिपालन करे तो यही कामधुक् हैं। ॥३३-३४-३५॥

बुद्धि की आत्म तत्त्व में निष्ठा शम है। इन्द्रियों पर काबू पाना संयम है। दुःखों का सहन करना तितिक्षा है। जिह्वा और उपस्थ को जीतना, स्वाद और काम पर विजय पाना धृति है ॥३६॥

किसी को दंड न देना सबसे बड़ा दान है। कामनाओं का त्याग तप है। अपने मनोभाव को जीतना बहादुरी है। सबको समान भाव से देखना सत्य है ॥३७॥ कवियों ने सच्ची वाणी को ऋत कहा है। कर्मों में न फसना शौच है। सब छोड़ना त्याग है ॥३८॥ धर्म ही मनुष्यों का

यथेष्ट धन है। भगवान् ही यज्ञ है, अर्थात् भगवान् का भजन ही यज्ञ है। ज्ञान का सन्देश ही दक्षिणा है। भजन के द्वारा विवेक प्राप्त करें। प्राणायाम ही परम बल है ॥३९॥ सदा ईश्वर भाव में रत रहना ही ऐश्वर्य है। भगवान् की उत्तम भक्ति ही महा लाभ है। आत्मा को प्रकृति से अलग जान लेना बोध है। अकर्म से दूर रहना जुगुप्सा है ॥४०॥ गुण-दोष का कहां तक लक्षण बताया जाए, गुणों-दोषों को देखते रहना ही दोष है। दोनों से अलग रहना ही गुण है ॥४५॥

समतल पर आसन जमाये। सुखपूर्वक काया को सम रखे। दोनों हाथों को गोद में रखे। अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखे। कुछ दिखाई न दे।३२। प्राण के मार्ग को शोधे। इसका उपाय पूरक, कुम्भक और रेचक है। रेचक, कुम्भक और पूरक के विपरीत क्रम से भी जितेन्द्रिय हो अभ्यास करे ॥३३॥ हृदय में अटूट तार से 'ओं' का जाप करे। घण्टानाद के समान उसी में रम जाये। कमल नाल के तन्तु के समान उसमें लगा रहे। घण्टे की झंकार के समान 'ओं' की तार बनी रहे। प्राण के साथ भी 'ओं' को चलाये सांस सांस में 'ओं' जपे ॥३४॥ प्राण से मिलाकर 'ओं' जाप का अभ्यास करे। दिन में तीन वार दस-दस ओंकार सहित प्राणायाम करे। एक मास में प्राण वश में हो जाता है ॥३५॥

इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषय से हटाकर मन में लय करदे। प्रत्याहार सिद्ध होनें पर धीर योगाभ्यासी बुद्धि सारथि के द्वारा भगवद्भाव में शब्द छोड़ भागवत ज्ञान में सर्वथा लीन हो जाये ॥४२॥ सब में जानें वाले इस सर्व व्यापक से चित्त को खैंचकर एक स्थान पर ठहराये। फिर अन्य कुछ चिन्तन न करे। मुख पर सदा मुस्कान रहे ॥४३॥ मन के स्थिर हो जानें पर आकाशतत्त्व में चित्त को धारण करे। उसको भी छोड़कर आत्म तत्त्व में लगे, अन्य कुछ भी न सोचे ॥४४॥

इस प्रकार धारणा के उपरान्त समाहित मन, समाहित बुद्धि हो आत्मा में परमात्मा का भान करे। ज्योति में ज्योति व्याप्त हो रही है ॥४५॥

इस प्रकार तीव्रातितीव्र ध्यान में मग्न योगी का मन निर्वाण को— प्रलय को प्राप्त हो जाता है। द्रव्य, ज्ञान और क्रियाओं की भ्रान्ति भी समाप्त हो जाती है ॥४६॥

११ स्कन्ध — १४ अध्याय

१५ वां अध्याय—योग में लगे जितेन्द्रिय और श्वास पर वश पाने

वाले योगी को सिद्धियां उपस्थित होती हैं ॥१॥ सिद्धियां १८ कहीं हैं। धारणायोग में पारंगत योगियों ने यह कहा है। उनमें आठ तो आत्म-तत्त्व ज्ञान प्राप्ति से होती हैं दस सिद्धियों का कारण त्रिगुणवशित्व है ॥३॥ (१) अणिमा, (२) महिमा, (३) मूर्ति की लघिमा, (४) इन्द्रियों से सूक्ष्म, व्यवहित विप्रकृष्ट की प्राप्ति, (५) सुनी देखी का यथेच्छ लाभ, (६) शक्ति को प्रेरित करना ईशिता सिद्धि है ॥४॥ (७) त्रिगुणों में न फंसना वशिता सिद्धि है। (८) इच्छा का व्याघात न होना कामावसायित्व सिद्धि है। सोम्य ! यह आठ सिद्धियां योग-सामर्थ्य से होती हैं ॥५॥

इस देह में उद्वेगों का न होना, दूर का सुनना, दूर-दर्शन, मन के समान वेगवान्, सुन्दर कामदेव सा रूप, दूसरे के मृत शरीर में प्रवेश ॥६॥ इच्छा-मृत्यु, पाँचों देव सूक्ष्म भूतों का सम्मिश्रण, सृष्टि रचना का दर्शन, संकल्प सिद्धि, राजाओं के समान सर्वत्र स्वतन्त्रता से पहुंचना ॥७॥ तीनों काल को जानना, द्वन्द्वों के प्रभाव से रहित होना, पर चित्त का ज्ञान, अग्नि, सूर्य, जल, विष आदि के प्रभाव को रोकना, उनसे पराजित न होना अर्थात् भूतजयी होना ॥८॥ योग धारणा की इन शक्तियों को नाम लेकर बता दिया है। जो जिस धारणा से होती है, जिस प्रकार होती है उसे भी समझ लो ॥९॥ सूक्ष्म भूतों में, आत्मा में और परमात्मा में तन्मय होकर मन को संयत करें, तो अणिमा सिद्धि प्राप्त होती है। ये योगी तन्मात्रों पर संयम का प्रयोग करते हैं ॥१०॥ महान् आत्मा परमात्मा में संस्थान पर संयम के द्वारा जो मन को धारण करते हैं उन्हें महिमा नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। पञ्चभूतों पर संयम का प्रयोग करने से भी महिमा सिद्धि प्राप्त होती है ॥११॥

भूतों के परमाणु में चित्त के संयम धारण द्वारा, काल की सूक्ष्मता के प्रयोजन से 'लघिमा' सिद्धि को प्राप्त करता है ॥१२॥ मनस्तत्त्व के विकार अहंकार तत्त्व में निखिल इन्द्रियों की सत्ता पर संयम प्रयोग करने से 'प्राप्ति' नाम की सिद्धि प्राप्त होती है ॥१३॥ सूत्र सम व्याप्त महत्तत्त्व संयम का प्रयोग कर मन को धारण करे तो 'प्राकाम्य' सिद्धि को प्राप्त करता है जिससे ब्रह्म रचित सब पदार्थों को अव्यक्त सृष्टि से प्राप्त कर सकता है ॥१४॥ व्यापक काल में संयम का प्रयोग करने से 'ईशित्व' नामक सिद्धि प्राप्त होती है। जिससे आत्मा और प्रकृति को प्रेरित कर सकता है ॥१५॥ अमात्र भगवान् के चतुर्थ पाद में योगी 'संयम' का प्रयोग करने से 'वशिता' नाम की सिद्धि को प्राप्त करता है ॥१६॥

निर्गुण, त्रिगुण से पृथक् निष्कल पर ब्रह्म में जो संयम का प्रयोग करता है वह परम आनन्द को प्राप्त करता है, जिससे सब कामनाओं का क्षय हो जाता है ॥१७॥ आकाश की तन्मात्रा के सम्बन्ध में संयम करने वाला हंस योगी सब प्राणियों की बोली समझ लेता है ॥१९॥ सूर्य और चक्षु में संयम का प्रयोग करके, योगी सारे विश्व को देखता है ॥२०॥ सिद्ध योगी पर काया प्रवेश के समय, पर शरीर में अपने आत्मा की प्रवेश की धारणा कर, अपने शरीर को छोड़कर प्राणवायु सहित पर मृत शरीर में भौंरे के समान प्रवेश कर जाता है ॥२३॥

परमात्मा की भक्ति से शुद्ध सत्त्व वाले, संयम प्रयोग जानने वाले की बुद्धि त्रिकाल की जानने वाली हो जाती है। जन्म-मृत्यु को भी जानती है ॥२८॥ जितेन्द्रिय, मन का दमन करने वाले, श्वास-प्रश्वासजयी प्रभु भजन करने वाले योगी को कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है ॥३२॥ उत्तम योग साधक के लिए सिद्धियाँ भी पीछे विघ्न हो जाती हैं। प्रभु को प्राप्त करने वाले के लिए तो यह समयनाश ही है ॥३३॥

जन्म से, औषधि से, तप से, मन्त्र से जितनी भी सिद्धियां हैं, योग से उन सब को प्राप्त कर लेता है। पर जन्म आदि से प्राप्त होने वाली सिद्धियों से योग को प्राप्त नहीं होता है ॥३४॥ अध्याय १५

जिसका मन समाहित हो गया, प्रशान्त हो गया, फिर बताओ दान आदि से उसको क्या मिलेगा ? जिसका मन वश में नहीं, चंचलता से नष्ट हो रहा है, फिर दान आदि से भी उसे क्या मिलता है। अर्थात् योग साधना ही परम ध्येय है ॥४७॥ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ११ अध्याय २३॥

श्रीमद्भगवद्गीता में योग साधना

श्री गीता के अठारहों अध्यायों में गीता को योगशास्त्र कहा गया है। कर्म योग नहीं, ध्यान योग से ही अभिप्राय है। कर्म योग अर्थात् निष्काम कर्म तो एक ही अध्याय में कहा है। यह मनन और निदिध्यासन का विषय है। यहाँ केवल गीता की अत्यन्त संक्षिप्त योग साधन प्रक्रिया ही दिखानी अभीष्ट है। गीता तो सारी ही ध्यान योग से भरी है। योग-दर्शन का व्यास भाष्य और गीता दोनों ही तो भगवान् व्यास की रचना है। भेद कैसे हो सकता है :—

अर्जुन उवाच—चंचलं हि मन कृष्ण, प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ।६-३४।

श्री भगवानुवाच-असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते ।६-३५।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ।६-३६।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।६-१०।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तमम् ।६-११।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये ।६-१२।

समं काय-शिरो-ग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रंस्वं दिशश्चानवलोकयन् ।६-१३।

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्पर ।६-१४।

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियत-मानसः ।
शान्ति निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।६-१५।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नतः ।
न चास्ति स्वप्नशीलस्य, जागतो नैव चार्जुन।६-१६।

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा ।६-१७।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवाव तिष्ठते ।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यः युक्त इत्युच्यते तदा ।६-१८।

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य, युंजतो योगमात्मनः ।६-१९।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।६।२०।
युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्म संस्पर्शम् अत्यन्तं सुखमश्नुते ।६।२८।
तपस्विभ्योऽधिको योगी,ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी,तस्माद्योगी भवार्जुन ।६।४६।

अर्जुन ने भगवान् से प्रश्न किया—"भगवन् ! मन बड़ा चंचल है । प्रबल है । शक्ति सम्पन्न मजबूत है । उसको वश में करना ऐसा ही है, जैसे वायु को बान्धना ६ । ३४ ॥

श्री भगवान् बोले—"महाबाहो ! निस्सन्देह है । चंचल मन का निग्रह कठिन है । पर हे कुन्ति-पुत्र ! अभ्यास और वैराग्य से यह वश में आता है ॥३५॥ असंयमी व्यक्ति योग को प्राप्त नहीं कर सकता, यह तो मैं मानता हूं । तू असंयमी नहीं । वशी है । यत्न करने पर उपायों से वशी मन को वश में ला सकता है ॥३६॥ योगी सदा एकान्त में बैठकर मन को वश में लावे । अकेला रहे । चित्त को वश में रखे । किसी की आकांक्षा न करे । असंग्रही हो ॥६-१०॥ पवित्र स्थान में अपना आसन जमा कर स्थिर बैठे । न बहुत ऊंचे पर बैठे, न बहुत नीचे । कपड़ा, मृगचर्म, कुशायें ऊपर-ऊपर बिछाये ।११। आसन पर जमने पर मन को एकाग्र करे । मन और इन्द्रियों की क्रियाओं को वैराग्य से रोके । आसन पर बैठकर आत्मा के मल धोने के लिए योगाभ्यास करे ॥१२॥ शरीर, सिर और गर्दन को एक सीध में सम रखे । अचल और स्थिर रहे । अपनी नासिका के अग्र भाग पर शून्य दृष्टि रखे । दिशाओं को सर्वथा न देखे ॥१३॥ आत्मा प्रशान्त रहे । निर्भय हो बैठं । प्रभु की गोद में कैसा भय! ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे । मन पर संयम रखे । भगवान् का ही ध्यान रहे । योग में लगे ॥१४॥ मन पर नियमन करने वाला योगी सदा समाहित रहे । परमात्मा में स्थित हो । परम शान्ति, मुक्ति सी शान्ति को पावे ॥१५॥ अधिक खाने वाला योग नहीं कर सकता । आरम्भ काल में सर्वथा न खाने वाला भी योग नहीं कर सकता अतिशयन करने वाला भी योग नहीं कर सकता । विषयों में जागने वाले का भी योग नहीं है ॥१६॥ योगी का सा आहार करने वाला, योगी की सी चेष्टाएं करने वाला, योगी की सी स्वप्न और बोध अवस्था वाला योगी ही क्लेशों-दुःखों का

नाश करता है ॥१७॥ जब भली प्रकार नियम में लाया गया चित्त आत्मा में स्थिर हो जाता है तब सब अन्य इच्छाओं को छोड़ देता है, तब योगी नाम पाता है ॥१८॥ जैसे निवात में रखे दीपक को लौ नहीं हिलती, ऐसे हीं योगी का चित्त भी निश्चल होता है। ऐसा योगी योग में आत्मा को पाता है ॥१९॥ जब योगाभ्यास से चित्त निरुद्ध हो जाता है, और आत्मा अपने आप को अपने आप ही, विना चित्त के देखता है। तब आत्म में तुष्ट हो जाता है। स्वस्थ हो जाता है ॥२०॥ सदा इस प्रकार अभ्यास करने वाले योगी के कल्मष, कर्म, अविद्यादि क्लेश ध्वस्त हो जाते हैं, सहज भाव से तब ब्रह्मानन्द के परमानन्द को प्राप्त करता है ॥२८॥

तपस्वियों से योगी अधिक है। ज्ञानियों से भी योगी अधिक है। निष्काम कर्म करने वालों से भी योगी अधिक है। इसलिए, हे अर्जुन ! योगी बन ॥६. ४६॥

आत्मचरित्र की प्रामाणिकता

१. इस आत्मचरित्र का उल्लेख—सन् १८८६ में अर्थात् ऋषि के कैवल्य के लगभग केवल दो वर्ष पीछे ब्रह्म समाज के प्रचारक नगेन्द्र नाथ चटर्जी ने-'महात्मा दयानन्देर संक्षिप्त जीवनी' नामक छोटा-सा ग्रन्थ प्रकाशित किया था। वह बंग भाषा में और सम्भवत: आर्य भाषा की दृष्टि से भी सर्वप्रथम जीवनी है। बंगाब्द १२९३ में श्री मनिमोहन रक्षित द्वारा कलकत्ता २१०।१ कार्नवालिस स्ट्रीट के विक्टोरिया प्रेस में मुद्रित है। आजकल अप्राप्य है। केवल एक प्रति चैतन्य लायब्रेरी कलकत्ता में है। उपसंहार में लिखते हैं—

"दयानन्द सरस्वती यदि यूरोप या अमरीका के आदमी होते तो शायद उनके परलोक गमन के एक सप्ताह में ही सुविस्तृत जीवन वृतान्त जन साधारण के समक्ष आ जाता। उन्होंने कई वर्ष हुए इहलोक परित्याग किया था। इस हतभाग्य देश में आज तक भी उनका जीवन-पुस्तक नहीं निकला। सौभाग्य की बात है—**'दयानन्द अपने जीवन के बारे में लिखा-कर चले गए। नहीं तो उनके बारे में कुछ भी नहीं मिलता।'**

२. आत्मचरित्र अब तक क्यों नहीं मिला—इसी आत्मचरित्र को स्वामी जी लिखा गये थे और साथ ही जीवनकाल में मुद्रित न करने को कह गए थे। इस आत्मचरित्र को पढ़कर प्रकाशित न कराने का कारण समजना कठिन नहीं :—स्वामी जी अपनी योगसिद्धियों का खुला प्रचार नहीं करना चाहते थे।

३ अंग्रेजी सरकार की कड़ी निगरानी—सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य समर में ऋषिवर ने क्रान्ति की पूरी भूमिका निभाई।

अंग्रेज सरकार के विद्रोही होने के नाते उनका यह रहस्य खुलना उनके तथा उनके कार्य के लिए घातक सिद्ध होता। इतना गुप्त रहने पर भी अंग्रेजी सरकार को उन पर पूरा संदेह हो गया था।

सन् १८७२-७३ में ऋषि कलकत्ता में थे। लाट पादरी प्रायः उनके भाषणों में उपस्थित रहते और प्रधान बनते थे। आलोचना के समय स्वामी जी कह दिया करते थे—"अंग्रेजी राज्य में मुझे विचारों के प्रकट करने में किसी प्रकार का भय नहीं है।" पादरी महोदय ने प्रभावित हो नार्थ ब्रुक को सुझाव दिया—'महात्मा बड़े काम का व्यक्ति है, अपने पक्ष में करने से लाभ पहुँचेगा'।

निम्न प्रामाणिक व रेकार्ड की गई भेंट हुई :—

वायसराय ने स्वामी जी से पूछा—'पण्डित दयानन्द! मुझे सूचना मिली है कि आपके द्वारा दूसरे मत-मतान्तरों व धर्मों की कड़ी आलोचना, उनके हृदय में क्षोभ उत्पन्न करती है। विशेषतः मुस्लिम और ईसाई जनता के। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का खतरा अनुभव करते हैं। अर्थात् क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध चाहते हैं?

स्वामी दयानन्द—'मुझें अपने विचारों के प्रचार करने की अंग्रेजी राज्य में पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप से किसी प्रकार का खतरा नहीं'।

वायसराय—'यदि ऐसा ही है तो क्या आप अपने देश में अंग्रेजी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों का भी वर्णन किया करेंगे? और अपने व्याख्यानों के प्रारम्भ में जो-ईश प्रार्थना आप किया करते हैं उसमें देश पर अखण्ड अंग्रेजी राज्य के लिए भी प्रार्थना करेंगे'?

स्वामी दयानन्द—'मैं ऐसी किसी बात को मानने में असमर्थ हूं, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों को अबाध राज-नीतिक उन्नति और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। ईश्वर से नित्य सायं-प्रातः उनकी अपार कृपा से इस देश की विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही प्रार्थना करता हूं'।

सुनकर वायसराय घबरा गए। वार्ता बन्द कर दी। लार्ड नार्थ ब्रुक ने यह घटना अपनी साप्ताहिक डायरी में लन्डन भेजी, इंडिया आफिस में। मलका सरकार के सैक्रेटरी आफ स्टेट को लिखा कि, उसने इस बागी फकीर की कड़ी निगरानी करने के लिए गुप्तचर नियुक्त करने के आदेश दे दिए हैं।'

(दीवान अलखधारी अम्बाला निवासी के सौजन्य से प्राप्त लेख के आधार पर)

सरकार ने जोधपुर में षड्यन्त्र द्वारा महर्षि को हमसे सदा के लिए पृथक कर दिया—देखो म. दत्त. जी. च. पृ. ३४०—'अलीमर्दान खां का असद्भाव' शीर्षक ।

४. **५७ के क्रांतिकारियों से सम्बन्ध**—नाना साहब की टंकारा स्थित समाधि यह सिद्ध करती है कि नाना साहब और उनके परिवार के साथ ऋषि का पूरा गुरु शिष्य का सम्बन्ध था। देखो पृष्ठ११७, ११५

—The Times of India, Sunday, May 25, 1969

—नवजीवन, ३१ जुलाई अंक में शिवशंकर मिश्र का लेख

५. **सत्यार्थ प्रकाश में नाना के महल के ध्वंस का उल्लेख**—नाना साहब के बिठूर स्थित महल के ध्वंस की घटना का सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास में उल्लेख इस धारणा की निर्णायक पुष्टि करता है।

देखो पृ० १०३

६. **अंग्रेजी इतिहास की साक्षी**—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री श्री ओम प्रकाश जी त्यागी (भूतपूर्व संसद् सदस्य) नें भी बताया कि किसी अंग्रेजी इतिहास में पढ़ा है कि—"एक लम्बे-चौड़े शरीर वाला साधु नर्मदा के किनारे साधु सन्न्यासियों का संगठन कर रहा था।" सन्न्यासी इसका प्रमाण भी यथावसर निकाल देंगे।

सन् ५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में सशरीर भाग लेने के उचित प्रमाण यथावसर आगे पढ़ने को मिलेंगे। देखो पृष्ठ १०३ से १२५ तक

७. वह योगसिद्धियों से प्रभावित कर वैदिक धर्म का प्रचार नहीं चाहते थे, अपितु वेद के ईश्वर कृति होने से तथा अकाट्य तर्कों के बल पर ही जनता की वैदिक धर्म में आस्था उत्पन्न करना चाहते थे।

इत्यादि जीवनी को प्रकाशित न करनें के कथन में अनेक कारण हैं।

थियोसोफिस्ट के आत्म चरित्र का प्रमाण—

I felt a strong desire to visit the surrounding mountains, with their eternal snow and glaciers, inquest of true ascetics, I had heard of but as yet had never met. I was determined, come what might. to as certain whether some of them did or did not live there as rumoured,

—मैं प्रबल इच्छा का अनुभव करता था। चारों ओर के पहाड़ों पर जाने की जिन पर अनादि काल से हिम पड़ी है, और हिम की चट्टानें हैं। वहाँ मैं योगियों की खोज करूंगा। जिनके विषय में सुना है पर आज तक मिले नहीं। मैंने दृढ़ सङ्कल्प किया, कोई भी कैसा ही संकट आया, निश्चय करूंगा, उनमें से कोई हैं या नहीं, जैसा कि जनवाद है।

ऋषि का दृढ़ संकल्प व्यर्थ नहीं जा सकता। उन्होंने काश्मीर से नेपाल तक सारे हिमालय की पूर्णतः छान-बीन की।

५. आत्मचरित्र की ऐतिहासिकता और भौगोलिकता—इस दृष्टि से अध्ययन करते हुए, तीर्थों और हिमालय की यात्रा करते हुये मैं इस निश्चित परिणाम पर पहुँचा हूं कि ऋषि-उल्लिखित हिमालय के स्थानों में आज तक किसी भी जीवनी लेखक ने उन तीर्थ स्थानों को जाकर नहीं देखा। न स्वामी सत्यानन्द जी हिमालय पर गये, न बाबू देवेन्द्रनाथ जी और पं० लेखराम जी आदि भी नहीं ही गये। पं० लेखराम जी नें तो थियोसोफिस्ट के मिले हुए हिन्दी के पृष्ठों अथवा अनुवादों को ही मिश्रित कर ापछ दिया। श्री देवेन्द्र बाबू और स्वामी सत्यानन्द जी ने भी अपनी साहित्यिक कल्पना के आधार पर यात्रा का कष्टबाहुल्य दिखाने मात्र के लिए आलंकारिक वर्णन कर दिया है।

६. आज तक की ऋषि जीवनियों में उल्लेख—मग्नम्—श्री पं० लेखराम जी, श्री पं० भगवद्दत जी एवं श्री स्व० सत्यानन्द जी तीनों ने ही स्वा० बद्री नारायण से अलखनन्दा की १२ घण्टे की यात्रा में 'मग्नम्' स्थान का भी उल्लेख किया है। मग्नम् बद्रीनारायण से १३१ मील पर है तथा बद्रीनारायण और कैलास के मध्य में स्थित है। इसका विस्तृत लेखा आगे यथा प्रकरण पढ़िये।

७. त्रियुगी नारायण—थियोसोफिस्ट आत्मचरित्र के हिन्दी अनुवाद में लिखा है, "शिवपुरी से केदारघाट होता हुआ गुप्तकाशी आया। वहाँ कुछ दिन ठहरकर त्रियुगी नारायण, गौरी कुण्ड और भीम गुफा प्रभृति के दर्शन करके मैं फिर केदारघाट चला आया। (केदार घाट से) लौटते हुए तुंगनाथ की चोटी पर चढ़ गया।" इत्यादि।

यहाँ पर केदार घाट से घूमते-घामते त्रियुगी नारायण आए गए और फिर एकदम तुंगनाथ की चोटी का उल्लेख किया है।

त्रियुगी नारायण—"गौरी कुण्ड से चार मील—गंगोत्री से पंवाली झांडा पार होकर आने वाले रास्ते पर यह त्रियुगी नारायण गाँव है। सत्य युग में हिमालय पुत्री गौरी का विवाह यहाँ शिवजी से हुआ था। तब से विवाह के होम की आग आज तक जल रही है। यहाँ नहाने के चार कुण्ड हैं। जिनमें बहुत से निर्विष सर्प रहते हैं।"

महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन लिखित 'हिमालय-परिचय' पृ० ३३६.

—"पर्वतशिखर पर भगवान् नारायण का मन्दिर है। नारायण भू देवी तथा लक्ष्मी देवी के साथ विराजमान हैं। एक सरस्वती गंगा की धारा यहाँ है जिससे चार कुण्ड बनाए हुए हैं। ब्रह्म कुण्ड, रुद्र कुण्ड, विष्णु कुण्ड और सरस्वती कुण्ड। मन्दिर में अखण्ड धूनि जलती है। यात्री धूनि में हवन करते हैं। कहते हैं यहाँ शिव पार्वती का विवाह हुआ था।"

इसी बात को इस आत्मचरित्र (अज्ञात जीवनी) में इस प्रकार लिखा है :— 'गंगोत्री से त्रियुगी नारायण आधा योजन की दूरी पर है। वहाँ से आगे अगस्त्य मुनि और गुप्तकाशी है।" यह कोई पर्वत मार्ग मालूम होता है क्योंकि "आजकल तो सड़क मार्ग से, त्रियुगी नारायण १२० मील की दूरी पर है।

—राहुल सांस्कृत्यायन के 'हिमालय-परिचय' से पृ० ३७०. इस आत्मचरित्र में इन चारों कुण्डों का भी उल्लेख है। "रुद्र कुण्ड में स्नान, विष्णु कुण्ड में मार्जन, ब्रह्मकुण्ड में आचमन तथा सरस्वती कुण्ड में तर्पण होता है।" कुण्डों को स्वच्छ रखने का कैसा अच्छा नियम है। इस आत्म चरित्र में वर्णित यात्रा ही शुद्ध है। लेखकों का मक्खी मार यात्रा वर्णन नहीं।

तुंगनाथ—तुंगनाथ त्रियुगी नारायण से यात्रा के मार्ग पर ७० मील की दूरी पर है। उसका भी पर्वतीय छोटा मार्ग है। गुप्तकाशी से डेढ़ मील नाला। नाला से सीधे ऊखी मठ जाते हैं। ऊखीमठ से तुंगनाथ चौदह मील है। १२०७१ फुट की ऊँचाई है। इसे चन्द्रशिला भी कहते हैं।

केदारघाट—थ्योसोफिस्ट-आत्मचरित्र में ऋषि केदारघाट से तुंग-नाथ पहुँचे हैं। कभी किसी ने विचारा केदारघाट किधर है? तुंगनाथ कितनी

दूर है ? कहाँ से कहाँ ऋषि गए होंगे ! केदारनाथ के पास कोई केदार घाट नहीं है। केदारनाथ में नदी ही नहीं घाट कहाँ से आएगा ? केवल साहित्यिक वर्णन से तो यात्रा की खोज नहीं हो सकती। श्री राहुल जी ने 'हिमालय परिचय' के ३४७वें पृ० पर लिखा है :—"वाड़ाहाट को उत्तरी काशी बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। पूर्व दक्षिण में गंगा जी का प्रवाह, उत्तर में असि गंगा, पश्चिम में वरुणा नदी, इससे पूर्व तरफ केदार घाट, दक्षिण तरफ मणिकर्णिका घाट, मध्य में विश्वेश्वर मन्दिर।" यह है वह केदारघाट जिसकी किसी ने भी आज तक खोज नहीं की।

८. **मानसोद्भेद तीर्थ**--बद्रीनारायण और माना के बीच में है। मानसरोवर का मार्ग इधर से होने से यह नाम पड़ा होगा। ऋषि मानसोद्भेदतीर्थ से ही कैलास गए थे।

देखो इस आत्मचरित्र का पृ० २२२। अन्यत्र किसी ने पूना प्रवचन को छोड़ कैलास-यात्रा की बात तक नहीं कही। पूना प्रवचन में कहा है— "महादेव कैलास के निवासी थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदारखण्ड का है। हम भी (ऋषिदयानन्द भी) इन सब स्थानों पर घूमे हुए हैं।" इत्यादि।

—(उपदेश मंजरी—दशम व्याख्यान)

९. **अलकापुरी**—उपदेश मंजरी पृ० ११६ पर दशम व्याख्यान में लिखा है—"जिस पहाड़ पर पुरानी अलकापुरी थी, उस पर भी मैं इस विचार से गया था कि एक बार ही अपना शरीर बर्फ में गलाकर संसार के धन्धों से निवृत्त हो जाऊँ।" पृ० १७१ पर "उपदेश मंजरी" में लिखा है—"बर्फ बहुत पड़ी थी, वहाँ बर्फ लगने से पैर में कुछ तकलीफ हो गई। हिमालय पर पहुँच कर विचार आया कि यहीं शरीर गला दूँ।"

यह घटना अलकापुरी की है। अलकापुरी अलकनन्दा के स्रोत से आगे है। देखो पृ० २६

इस अलकापुरी का परिचय न होने से देवेन्द्रबाबू ने तथा अन्यों ने इस प्रकार लिख दिया—"अलकनन्दा पार करने पर पैर सुन्न हो गए...." मरने की बात सोचकर मैं मन में कुछ घबराया। फिर तुरन्त ही मैंने सोचा ! मैं मरने की क्यों इच्छा करता हूं। क्या ज्ञानानुशीलन में रत रह कर ही जीवन का अन्त करना मेरे लिए जीवन का श्रेष्ठकर्त्तव्य नहीं है।" इत्यादि।

—म. द. जी. च. —पृ० ४७

१० रामपुर—रामपुर की स्थिति भी विचारणीय है। रामपुर ५ हैं। ४ के विषय में संशय है, कौन-से हैं। एक रामपुर बिहार में है, उसका तो प्रसंग नहीं है १. केदारनाथ वाला जो श्रीनगर, रानीबाग और अरकणी के बीच में है। २. एक ऊखी मठ और त्रियुगी नारायण के बीच में है। ३. काश्मीर में है। ४. रामपुर रियासत काशीपुर के पास है। गंगोत्तरी केदार और बद्रीनाथ पार्वतीय अवस्थिति से बहुत निकट हैं। मार्ग तीर्थों की दृष्टि से बनाये गये हैं। सीधे पहाड़ी मार्ग से सन्निकट प्रतीत होते हैं। ऋषि को केदार नाथ मध्य का स्थान अति रुचिकर था। २ नं० वाले राम पुर से ही तीनों धामों को पैदल मार्ग गया है। वहीं कहीं शिवपुरी एकांत स्थान पर्वत शिखर पर वे रहे। यह अगस्त्यमुनि गुफा के पास होनाचाहिए सन ५७ वाला रामपुर रियासत है, काशीपुर द्रोण सागर पर रहते समय जाना हुआ होगा। पर्वत यात्रा में तो यह तीन ही विचाराधीन हैं।

गौरी कुण्ड भी अनेक हैं। गंगोत्तरी के पास, त्रियुग़ी नारायण के पास और कैलाश के पास।

पाटक विचार करें कि सही गवेषणा के अभाव में घटना का कैसा उलट-पुलट अनर्थ हो जाता है। ऋषि का सुनाया आत्मचरित्र परम प्रामाणिक है।

देवेन्द्र बाबू ने महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र में लिखा है—भक्तों से बातचीत करते हुए ऋषि ने कहा, "मैं एक बार गंगोत्री से चलकर गंगा सागर तक और एक बार गंगोत्री से रामेश्वर तक गया था।" (पृ० ६२२)

ऋषि ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में जिन तीर्थों का खण्डन किया है, वहां अवश्य गये थे। विना देखे खण्डन की उनकी रीति नहीं।

कलकत्ते की काली, कामाक्षा देवी, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, कालियाकन्त, द्वारिकापुरी, सोमनाथ, रणछोड़ जी का मन्दिर, ज्वालामुखी, हिंगल, अमर नाथ, केदार, बद्री, नेपाल, तुंगनाथ, विन्ध्याचल, विन्ध्येश्वरी; मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, गोवर्धन, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य।

सत्यार्थ प्रकाश १२ समु० यहाँ की भाषा भी वर्तमान कालिक है वर्णन सजीव है देखभाल कर लिखा है यही प्रमाणित होता है। यही सब इस आत्मचरित्र में है। आगे विस्तृत ऊहापोह पढ़िये।

११ पं० दीन बन्धु शास्त्री का अध्यवसाय—अपनी मधुरता, सौजन्यता एवं विद्वत्ता के प्रभाव से ब्रह्म समाज से सुसम्बन्ध बनाये। उनके

उत्सवों में गये व्याख्यान दिये। रवीन्द्र बाबू के शान्ति निकेतन में वेदकथा निरन्तर की। ४० वर्ष तक 'दयानन्द का पगला' बन कर खोज की। तब यह जीवन-रत्न हाथ लगा। जिसकी चर्चा और प्रतीक्षा बराबर वर्षों से हो रही थी।—आर्यसमाज के इतिहास में पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखते हैं:--"पं० दीनबन्धु शास्त्री ने उनकी डायरी के कुछ ऐसे अंश बंगला में 'दयानन्द प्रसंग' नाम से प्रकाशित किये हैं जिनसे बहुत महत्व-पूर्ण सूचनाएँ मिली हैं।" पृ० ७४

'बंगाल के आर्यसमाज के पं० दीनबन्धु जी शास्त्री को भी नवीन खोज का श्रेय देना चाहिए।'—पं० आत्मानन्द विद्यालंकार की अप्र-काशित सामग्री। पृ० ८५

आत्मचरित्र की खोज पर बधाई—श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर, श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति तथा परोपकारिणी सभा के मंत्री श्री हरविलास जी शारदा तथा तत्कालीन अन्य आर्य नेताओं ने श्री पं० दीनबन्धु जी की गवेषणा निरति एवं उपलब्धियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी तथा पं० जी को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया था।

१३. अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कलकत्ता में इस आत्मचरित्र के हस्त लेखों को खोज न निकालने पर बंगाल के आर्यों को आड़े हाथों लिया था। यह सब बातें कलकत्ता में प्रसिद्ध हैं।

१३. ऊपर के उद्धरणों एवं प्रतीकों से यह स्पष्ट है कि आत्मच-रित्र तथ्यपूर्ण है तथा उन उद्धारणों की व्याख्या है। जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। यह ३९ वर्ष की जीवनी प्रायः ऋषि की अवधूत अवस्था की तथा एकाकी विचरण की है, जिसका उल्लेख अन्यों से मिलना कठिन है। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि बंगाल के मूर्धन्य विद्वानों की प्रार्थना पर ऋषि ने अपनी यह जीवनी स्वयं सुनाई अतः यह जीवनी सर्वथा प्रामाणिक है।

ब्राह्मसमाज और आर्य समाज का संघर्ष

ब्राह्म समाज और आर्य समाज का संघर्ष ही ऋषि के जीवन चरित्र के प्रकाश में आने में बाधक रहा

(१) ऋषि दयानन्द ने ब्राह्मसमाज का पूरा खण्डन किया। वह उनकी जीवनी क्यों देते ! देखो सत्यार्थप्रकाश—

प्रश्न—ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज तो सबसे अच्छे हैं ?

उत्तर—......वेद विद्या विहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्यों कर हो सकती है ? ......ब्राह्म समाज के उद्देश्य की पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मोहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि, महर्षि का नाम भी नहीं लिखा है, ये उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। —(सत्यार्थ प्रकाश—११ समु०)

(२) उधर ब्रह्मसमाजियों ने भी ऋषि का खण्डन और विरोध आरम्भ किया—

History of Brahma samaj --By Sivanatha Sharsri M.A. Published 1912 A. D.

"In the beginning of 1875—But there was coming in a short time a new rival and a fresh struggle into the field. Pandit Dayananda Saraswati the well krown founder of the Arya Samaj. paid his visit to Lahore in that year, and by his lecture and discussion meetings succeeded in rousing interest in his cause amongst the educated Punjabis.

The successful preaching of the founder of the Arya—Samaj, leading away many, who had been previously attending the Samaj (e. i, Brahma Samaj) meetings made services of Mr. Sen once more if possible.

Pandit Dayanand left the station in August and in October. Mr. Sen was called down from the Simla Hills, whither he had come Mr. Sen complied with their earnest request.

nd once more brought fresh enithusiasm to the cause.

The Arya Samaj was dudy organised at Lahore as a rival of the Brahma samaj, during the course of next two years with Lala Mulraj, who had earned his distinction as the fresh Punjabi Prem chand Roy chand Scholars its President. and the new struggle began. P. 400

Pandit Agnihotri, who strongly inclined in favour of the Sadharana Brahma Samaj…published a pamphlet cretecising one of Swami Dayanandas books and also a book of theistic hymns, in the pages of the Birather Hindi, He entered into terrible and mortal conflict with the Arya Samaj.

He(Agnihotri) was ordained as a missionary of the Sadharana Brahma Samaj in 18॥

ब्राह्म-समाज का इतिहास-शिवनाथ शास्त्री एम० ए० रचित प्रकाशित १९१२।

सन १८७५ के प्रारम्भ में-एक नया प्रतिद्वन्द्वी और अभिनव संघर्ष थोड़े ही समय में सामने आ रहा था। आर्य समाज के प्रसिद्ध संस्थापक उस वर्ष लाहौर पधारे और अपने भाषणों और शास्त्रार्थों से शिक्षित पंजाबियों को उद्देश्य की पूर्ति के लिए आकृष्ट करने में सफल हुए।

आर्य समाज के संस्थापक के सफल प्रचार ने ब्रह्म समाज की सभाओं में उपस्थिति कम कर दी। और ब्रह्म समाज के सदस्यों को इस बात की आवश्यकता का अनुभव हुआ कि यदि सम्भव हो तो एक बार पुनः सेन महोदय की सेवाओं को उपलब्ध करें। पंडित राज दयानन्द ने लाहौर से अगस्त और अक्टूबर में विदा ली। सेन महोदय को शिमला पर्वत श्रेणी से बुला लिया गया। सेन ने आग्रह पूर्वक की गई प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और एक बार फिर ब्रह्म समाज के लिए उत्साह

उत्पन्न कर दिया। उसी समय अगले दो वर्ष में ही लाहौर में आर्य समाज का संगठन ब्रह्म समाज के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में किया गया।

लाला मूल राज जिन्होंने योग्यता के कारण ख्याति अर्जित की थी जैसी कि पंजाबी विद्वान प्रेमचन्द रायचन्द ने की थी समाज के प्रधान बने और नया संघर्ष प्रारम्भ हुआ। -पृ० सं० ४००

पं०अग्निहोत्री जो साधारन ब्रह्मसमाज के पक्ष में दृढ़ निष्ठ हो गए थे उन्होंने एक ट्रैक्ट (पैम्फलेट) निकाला, जिसमें स्वामी दयानन्द की पुस्तकों तथा वेदमन्त्रों की समालोचना ब्रादरे-हिन्द के पृष्ठों में की। वह आर्य समाज के साथ भयावह संघर्ष में संलग्न हुआ जो उसके लिए घातक सिद्ध हुआ।

अग्निहोत्री १८११ में साधरन ब्रह्म समाज के उपदेशक नियुक्त हुए थे।"

इस सब संघर्ष का अध्ययन कर देवेन्द्र बाबू ने ब्रह्म समाज को आड़े हाथों लिया उन्होंने लिखा—"उन्होंने (ऋषिवर नें) पं० कृपाराम से पूछा कि आपने हमारे व्ययार्थ चन्दा किन किन लोगों से एकत्र किया है?

पं जी ने उन्हें चन्दे की सूची दिखाई तो उसमें केवल दो व्यक्तियों को छोड़कर शेष ब्रह्म समाजी बंगाली थे। महाराज (दयानन्द जी) यह ज्ञात करके कुछ क्षुब्ध हुए, और कहा आप लोगों को इन (ब्रह्मसमाजियों) पर भरोसा नहीं करना चाहिए, ये लोग आज आप के मित्र हैं कल शत्रु हो जायेंगे।"

-म. द. च. पृ० ५३८

"पृ०-४१० पर ब्रह्म समाजियों का अशिष्टाचार लिख मारा 'ब्रह्म-समाजियों ने महाराज से व्यय के २५ रुपये तक ले लिये।'

इतना तीखा प्रहार किया देवेन्द्र बाबू ने। फिर उन को कौन ब्रह्म-समाजी सहयोग देता। यह तो पं० दीन बन्धु जी का ४० वर्ष का अध्यव-साय एवं तीनों ब्रह्मसमाजों की वेदी पर व्याख्याओं से सम्पर्क तथा शान्ति निकेतन में वेद कथा करते रहने का प्रभाव है कि यह आत्म चरित्र उप-लब्ध हो गया।

सन ५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में ऋषि ने पूरा भाग लिया

सत्यार्थ प्रकाश की साक्षी—

अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में ऋषिवर लिखते हैं--

"जब संवत् १९१४ में तोपों के मारे मन्दिर की मूत्तियां अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं, तब मूर्ति कहाँ गई थीं। प्रत्युत वाघेर लोगों ने जितनी वीरता दिखाई और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्त्ति मक्खी की एक टांग भी न तोड़ सकी।

जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके घुर्रे उड़ा देता, और यह भागते फिरते। भला यह तो कहो जिसका रक्षक मार खाये उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें।"

—सत्यार्थ प्रकाश ११ समुल्लास पृ० ४०६ बुकसाइज।

वाघेर जाति—"१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर" में वीर सावरकरने सन् ५७ की इस घटना को स्पष्ट किया है। बाघेर जाति की वीरता—

"स्वातन्त्र्य समर के रुद्र तान्त्या टोपे ने कानपुर की ओर बढ़ना आरम्भ किया। उनके पहुँचने से पहले ही लखनऊ हाथ से निकल गया।

केम्पवेल ने गंगा के किनारे ही तान्त्या टोपे को घेर लिया। बीर-क्रान्तिकारियों की तलवार ब्रिग्रेडियर विलसन को चाट गई, मेजर स्टीलंग न रहा। लेफटिनैन्ट गिब्रन्स भी धराशायी हो गया।...... इस प्रकार तान्त्या टोपे को तृतीय विजय प्राप्त हुई। रण देवता ने एक और सुमनाञ्जलि विजय माल के रूप में समर्पित कर दी।

अंग्रेजों की दुर्दशा—इस पराजय का अत्यन्त रोचक वर्णन एक अंग्रेज अधिकारी ने इन शब्दों में किया है—'आपको आज का विवरण पढ़ कर आश्चर्य होगा, क्योंकि आपको विदित होगा कि अपने सम्मान चिन्हों महान् उपाधियों और नितान्त प्रसिद्ध शौर्य से मण्डित गोरे सैनिकों

को पराजय मिली। घृणित एवं तुच्छ भारतीयों ने उनके तम्बू और सामग्री ही नहीं प्रतिष्ठा का भी अपहरण कर लिया और अब हमारे शत्रुओं को हमें पराजित फिरंगी कहने का अधिकार प्राप्त हो गया था।हमारे सैनिक अपने उलट दिये गए तम्बुओं, फटे, जीर्ण, शीर्ण वस्त्रों तथा सामग्री और भागते हुए ऊंटों, हाथियों, अश्वों तथा नौकरों सहित भाग निकले। यह सम्पूर्ण घटना ही नितान्त लज्जाजनक और विषाद पूर्ण है।"

—चार्लस वालकृष्ण की-इन्डियन म्युटिनी, खण्ड २, पृ० १९०

यहाँ बाघेर शब्द नहीं है। पर यह बाघेर कानपुर के आस-पास रहने वाली ही वीर जाति है। इनका नाम किसी इतिहासकार के लेख में नहीं दिया गया। पर ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में इन्हें 'बाघेर' जाति के नाम से बड़े सम्मादर के साथ स्मरण करते हैं। इस शब्द प्रयोग से सिद्ध हो रहा है, ऋषि दयानन्द ने इस घटना को प्रत्यक्ष देखा था। इतना ही नहीं अभी पूरा वृत्त पढ़ लीजिये। इसमें कौन सम्मिलित थे। किस मन्दिर की मूर्त्तियाँ अंग्रेजों ने तोपों से उड़ा दी थीं।"

"अंग्रेज इतिहासकार भी इस बात से सहमत हैं, कि यदि तान्त्या टोपे के शौर्य और रण कौशल में उसकी सेना के अनुशासन का योग दान हो जाता तो सम्भवतः तान्त्या टोपे हम को मटियामेट कर देता परन्तु अभी भारत को कुछ और ही देखना था।

बिठूर के मन्दिर को तोपों से उड़ाना—उन्हीं दिनों तान्त्या के शिविर में नाना साहब पेशवा और वीर कुंवर सिंह भी आ मिले। १ और २ दिसम्बर को कैम्पवेल की सेनाओं से लोहा लिया। ६ दिसम्बर को पुनः। पर उन्होंने (अंग्रेजों) ने क्रान्तिकारियों की ३२ तोपों पर अधिकार जमा लिया। क्रान्तिकारी अयोध्या और कालपी की दिशा में पलायन कर गए। केम्पवेल ने अब ब्रह्मावर्त पहुँच कर वहाँ लूट मार की और नाना साहब के बिठूर स्थित महल के महल को खण्डहर सा बना दिया। उसने अपनी विजय के भवन पर कलश चढ़ाने के लिए वहाँ के सभी मन्दिरों को भी खण्डहर बना दिया।

ब्रह्मावर्त का वही महल उसने खण्डहर बना दिया, जिसमें भारत माता के महान् सपूतों नाना साहब, तान्त्या टोपे, वाला साहब और राव साहब खेले थे। जिसमें झाँसी की अलबेली लक्ष्मी बाई पली थी और बढ़ी थी।

यह वही राज महल था, जिसके प्रांगण में बैठ कर १८५७ के महान् स्वातन्त्र्य संग्राम को कल्पनायें संजोई गयीं थी। इस साधना को ब्रह्मावर्त के देवालयों ने ही तो आशीर्वाद दिया था। इसी राजमहल में स्वातन्त्र्य सुमन खिले थे। इसी राज महल का तो प्रक्षालण एक दिन अंग्रेजों के उष्ण रक्त से किया गया था।

—पृष्ठ ३६२,३६३।

शिवनारायण द्विवेदी ने 'गदर का इतिहास' लिखा है, पर अंग्रेज ऐतिहासिकों के स्वर में स्वर मिलाना पड़ा है। अंग्रेजी शासन था न! प्रकाशित १९७८।

—"सिपाही गंगा पार होने का प्रबन्ध कर रहे थे। होप ग्रान्ट की सेना ने उन पर हमला किया। १५ तोपें छोड़ कर सिपाही भाग गए। यह लड़ाई ९ दिसम्बर को शिवराज पुर के गांव के सामने हुई थी ... नाना साहब बिठूर आये थे। पार हारका समाचार सुनकर अपने नौकरों और तोपों सहित गंगा पार होकर अवध की ओर चले गए। प्रधान सेनापति की आज्ञा से ११ दिसम्बर को होप ग्रान्ट ने बिठूर जाकर नाना साहब का मन्दिर और महल तोपों से गिरा दिया था। नाना साहब के महल में जो कुंआ था उसमें से तीस लाख रुपया और चान्दी सोने के बरतन ब्रिटिश सैनिकों ने निकाले।" पृ० १२१६

यह थीं बिठूर की मूर्त्तियां और महल जिन्हें अंग्रेजों ने तोपों से उड़ा दिया था। आज भी बिठूर के खण्डहर रक्तिम होली और देश भक्ति की गवाही दे रहे हैं। कभी भारतीय राज्य हो पाया तो यहाँ स्वातन्त्र्य संग्राम का स्मृति चिन्ह वीर पुंगवों की स्मृति में भारत वीरों की गाथा गायेगा।

५७ की घटनायें ऋषि ने स्वयं देखी—प्रत्यक्ष द्रष्टा ऋषि का आत्मा इसी पर सत्यार्थ प्रकाश जैसे धर्मग्रन्थ में भी १८५७ के उनवीरों की स्मृति में यह पंक्तियाँ लिखने को विवश हुआ था। अपना भेद खुल जाने का भय भी भारत वीरों को श्रद्धान्जलि अर्पण करने के कारण छोड़ दिया था। धन्य है भारत माता के सपूत दयानन्द योगिराज और उनके भक्त क्रान्ति समर के होतृगण।

क्या आर्य जगत् ही कभी इन विठूर के खण्डहरों में स्वतन्त्रता संग्राम के दीप जला सकेगा और भारत को विदेशी भोग विलासिता की दासता से मुक्त रख सकेगा।

थियोसोफिस्ट में सन् ५७ का लेखा

अब तनिक इसप्रसंग के साथ थियासोफिस्ट के आत्मचरित्र का मेल मिलाइये, तनिक भी अन्तर नहीं है। इस दृष्टि से आज तक विश्लेषण नहीं किया गया। इसीलिये सन ५७ का ऋषि का सहयोग अन्धकार में रहा। थियासोफिस्ट का अंग्रेजी लेख मिलता न था। महात्मा नारायण स्वामीजी के पुस्तकालय में यहाँ रामगढ़ में अचानक यह हाथ लगा। सारा रहस्य खुल गया। देखिये

थियासोफिस्ट में स्थान	तिथियां
कुम्भमेला हरिद्वार	बैसाख १९१२ = मई १८५५ ईस्वी।

Life of Swami Dayanand Sarasvati
—By, Har Bilas Sharda ji

शीतकाल विताया कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष माघ In a munntain Peak Shiva puri (Town of Shiva) where I spent the four mounths of the cold seaon अर्थात् शिवपुरी में बीता। पृ० १९ — १९१२ माघ फाल्गुण फरवरी १८५७

शिवपुरी से केदार, केदार से गुप्तकांशी कुछ दिन फाल्गुण के विताये।

(I stayed there a few Days) पृ० १९

वहाँ से त्रियुगीनारायण, गौरी कुण्ड होता कुछ दिन हुआ, भीम गुफा, केदार आया।

(Went thence to Tiruyugee Narayan, Gowree Kund, Cave of Bhim Gupha, returning in a fewdays to Kedar my favourite place of residence पृ० १०

I there finally rested. अन्त में विश्राम वहां किया।

Havingwandered in vain for about 20 days. १० p. व्यर्थ घूमाने के बाद — बीस दिन

तुंगनाथ पर चढ़ा, ओखी मठ पहुंचा, गुप्तकाशी आया, पुनः ओखी मठ, बद्रीनारायण — चैत्र १९१३-१८५६ मार्च।

I lived with him a few Days

कुछ दिन

अलकनन्द-माना-से होकर सत्पथ तक की यात्रा

बैशाख १९१३
१९५६ अप्रैल

Set out on my Journey back to Rampur रामपुर after Crossing Hills, forests and having descended the chilka
यात्रा आरम्भ की वापिस रामपुर के लिये, पहाड़ पार किये, जंगल, चिलका घाटी पार की।

बैशाख १९१३=
सन (अप्रैल मई)
१८५६

(Back) शब्द (वापिस लौटा) शब्द बता रहा है यह रामपुर श्री नगर के पास वाला है। काशीपुर वाला नहीं।

वहाँ से काशी पुर-द्रोण सागर Where I passed the whole winter जहाँ सारा शीत बिताया

कार्तिक, मार्गशीर्ष
पौष,माघ संम्वत् १९१३
नवम्बर दिसम्बर=
१८५६

Thence again to Sambhal Muradabad वहाँ से फिर दोबारा सम्भल मुरादाबाद से After crossing Gurh, Mukteshvar I found my self again on the banks of Ganges. फिर दोबारा मैंने अपने आप को गंगा के किनारे पाया .. having lingered sometimes on the banks of the Ganga

जनवरी फरवरी १८५७
मार्च अप्रैल १८५७
फाल्गुन चैत्र=१८१४

I was just entering Cawnpur by the southeast of the cantonement the Samvat year of 1912※ (1855 A. D. was completed. मैंने कानपुर में प्रवेश किया उस सड़क से जो छावनी के पूर्व से जाती थी सम्बत् १९१२※) अर्थात् (१८५५ सन्) पूर्ण हुआ।

During the following five months,

१८५७ के अप्रैल मई,

※ यहाँ १९१२ अशुद्ध है। १९१३ होना चाहिये। १९१३ समाप्त हुआ मार्च १८५७ को।

※ यही बात पं० घासीराम जी वाले देवेन्द्र बाबू के म० द० चरित्र में पृ० ४७ के फुटनोट में कही है। उस समय १९१२ समाप्त हो चुका था। १९१३ होना चाहिए पृ० ४७

I visited many a place between Cawnpore and Allahabad इन पांच महीनों में कानपुर और अलाहाबाद के बीच में बहुत स्थानों में घूमा।	जून, जुलाई अगस्त = चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण सं० १९१४
In the begining of Bhadrapada I arrived at Mirzapur आरम्भ भाद्रपद में मिर्जा पुर पहुँचा।	सितम्बर १८५७ सन् भाद्रपद १९१४ सं०
I stopped for a month or so near the shrine of vindya chal Asoolgi एक मास के लगभग विन्धाचल असूल जी में ठहरा	सन् १८५७ सितम्बर १९१४ भाद्र पद
arriving at Benras in the early part of Ashwin, stoppedthere at shrine of durga Kho in Chandalgarh wher I passed ten days	आश्विन का मध्य = १९१४ अक्तूबर १८५७
यह भ्रान्ति स्वरचित जीवन चरित्र में १९११ में हरिद्वार के कुम्भ में चल पड़ा लिखने से हुई है। कुम्भ १९१२ में था।	
चण्डाल गढ में दुर्गा खोह में १० दिन ठहरा 10 days	आश्विन समाप्त
बनारस आश्विन में पहुँचा १२ दिन ठहरा	कार्तिक मध्य नवम्बर

and renewed my travels, after what I sought for

और अपनी यात्रा पुनः आरम्भ की, उस लक्ष्य के लिए जिसकी मैं खोज में था, चावल खाना सर्वथा छोड़ दिया केवल दूध पर रहना आरम्भ किया। दिन रात योग अध्ययन में लगा।

नरवदा के स्रोत की ओर यात्रा जारी की।

इस थियासोफिस्ट उद्धरण और काल गणना से सर्वथा प्रामाणित है कि स्वामी दयानन्द जी १९५७ की क्रान्ति में कानपुर में हैं और पूरा भाग लिया है।

आज तक की भूलें—इस काल गणना को जान पड़ता है किसी ने मनोयोग से नहीं किया। पं० लेखराम जी ने यह तो स्वीकार किया है। कि चैत सुदी १९१४ विक्रमी अर्थात् २६ मार्च १८५७ बहस्पति वार को वहां चण्डाल गढ से आगे चल दिया। चण्डाल गढ का काल असौज शु. दि.

१९१३ बुधवार लिखा है। पर असौज शीतकाल है जो ऋषि ने उनके ही लेखानुसार द्रोण सागर पर बिताया है। स्पष्ट काल गणना में भूल है।

१. श्री पं० लेखराम जी ने मोटे शीर्षक में लिखा है—'उत्तराखण्ड में पौनें दो वर्ष तक विद्वानों तथा योगियों को खोजा' म.द.जी.च. पृ. ३१। इस हिसाब से भी १९१२ सं० के वैशाख कुम्भ तदनुसार ११ अप्रैल १८५५ से पौने दो वर्ष ११ जनवरी १८५७ अर्थात् वैक्रम संवत् चैत्र १९१४ तक योगियों की खोज बनती है। इस चैत्र १९१४ के पीछे द्रोण सागर पर जाना चाहिये। द्रोण सागर हिमालय में नहीं, मैदान में ही मुरादाबाद के समीप है। थियासोफिस्ट में शीत काल द्रोण सागर पर विताया है। कहीं भूल न है।

२. १९१४ अर्थात् १८५७ में यदि पण्डित जी के लेखानुसार अमर कण्टक की दूसरी यात्रा है। तो इस काल से पहले अमर कण्टक की पहली यात्रा होनी चाहिए। जिस का उल्लेख इस आत्मचरित्र में ही है।

३. भूल से फिर लिखा गया है—"छावनी के पूर्व जाने वाली सड़क से कानपुर को जानें वाला था। तो संबत् १९१२ विक्रमी तदनुसार ५अप्रैल १८५६ समाप्त हुआ' पृ. ३७।

विचारिये--११ अप्रैल १८५५ से ५ अप्रैल १८५६ तक उत्तरा खण्ड में पौनें दो वर्ष रहने के पश्चात् कानपुर द्रोण सागर से गढमुक्तेश्वर तक ५।६ महीने ठहरने के पीछे भी कानपुर में ५ अप्रैल १८५६ में कैसे पहुँच गये। स्पष्ट भूल काल गणना न करने की है।

३. कलगणना की ही नहीं गई। आगे दो पंक्तियों में—एक साथ छपियों तक में भी विरोध है—'भाद्रपद तदनुसार अगस्त मास सन् १८५६ के आरम्भ में रविवार कोमैं...बनारस जा पहुँचा पृ. ३०

असौज (१५ सितम्बर १८५६ सोमवार) के आरम्भ में बनारस पहुँचा।" स्पष्ट है पं० जी को नोटों से पण्डित जी का हार्द नहीं समझा गया। पण्डित जी के लेख में ऐसा विरोध हो नहीं सकता। संग्रह कर्ताओं की भूल है।

महामना स्वामी श्रद्धानन्द जी ने भी भूमिका में इस बात को खोल कर स्पष्ट किया है—'वहुत से वृत्तान्त पण्डित जी के हृदय में ही समाप्त हो गए।" —पृ. ४१

४. इसी प्रकार मनः प्रसूत कल्पना अलकनन्दा पार करते हुए याद्रोण सागर पर ऋषि की देहत्यागने की भावना का उल्लेख कर दिया गया है। थियासोफिस्ट में तो देह त्याग की कोई भी बात नहीं। पढ़िये I refused their offer for I could not walk Not with standing their pressing invitation offers. I remained firm and would not take Courage and follow them as they wanted me but after telling them that I would rather die, refused even to listen them, the Idea had struck me that I how better return and prosecute my studies"—मैंने उनकी घर ले जाने की सहानुभूति को लेने से इनकार कर दिया क्योंकि मैं चल नहीं सकता था। मैं उनके आग्रह पूर्ण निमिन्त्रण को मान न सका मैं दृढ रहा। उनके पीछे जाने की हिम्मत न कर सका जैसी उनकी इच्छा थी। उनको बता दिया मैं चाहे मर जाऊँ उनकी सुनने से भी मना कर दिया। यह विचार आया, कि अच्छा हो में लौट जाऊँ और अध्ययन जारी रखू।

यहाँ देह त्याग की कोई बात नहीं। चाहे मर जाऊँ और बात है। हाँ उपदेश मञ्जरी में दशम व्यख्यान में देहत्याग की बात है। पर वह अलकापुरी की है—' जिस पहाड़ पर पुरानी अलकापुरी है उस पर मैं इस विचार से गया था कि एक बार ही अपना शरीर बर्फ में गलाकर संसार के धन्धों से मुक्त हो जाऊँ। परन्तु वहाँ पहुँच कर विचार में आया कि इस जगह पर मरना तो कोई पुरुषार्थ नहीं अलबत्ता ज्ञान प्राप्त करके परोपकार करना पुरुषार्थ है इस विश्वास के बदलने पर लौट आया था।"

—पूना प्रवचन पृ. ११६

इस घटना को द्रोण सागर पर लिखना भूल ही कही जा सकती है। १६वें व्याख्यान में लिखा है-"हिमालय पर्वत पर पहुँच कर देह त्यागना चाहिये ऐसी ईच्छा हुई ' द्रोण सागर तो हिमालय में है ही नहीं। अलकनन्दा हिमालय में है, पर अलकनन्दा को पार करते हुए यदि देह त्याग की इच्छा हुई होती तो भी हिमालय पर्वत नहीं लिखा जा सकता। हिमालय पर्वत पर तो अलका पुरी है।

५७ में क्रान्तिकारी दयानन्द का वयः—१८५७ में ऋषि दयानन्द की आयु ३३ वर्ष की थी। क्यों कि सन १८२४ में ऋषि का जन्म हुआ था। उस समय वे रुद्र ब्रह्मचारी थे। जिसके विषय में सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि ने लिखा है—'एतेहीद सर्व रोदयन्ति'—उस रुद्र ब्रह्मचारी के प्राण

इन्द्रियां, अन्तः करण और आत्मा बलयुक्त होकर सब दुष्टों को रुलानें और श्रेष्ठों के पालन करने हारे होते हैं।"—स० प्र० ३ समुल्लास।

देश स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़ा हो। साधु सन्न्यासी सब ही भाग ले रहे हों। दयानन्द कानपुर में हों और वे असंग रहें। असम्भव है सन् ५७ की घटनाओं को तिथिवार मिलान कीजिये। फिर विचारिये— उस भयंकर स्वतन्त्रता संग्राम का आग भड़कने पर, दयानन्द जैसा भारत को जगाने वाला अग्रगण्य नेता, आर्याभिविनय जैसे भक्ति पूर्ण ग्रन्थ में भी अखण्ड साम्राज्य की प्रार्थना करने वाला, सत्यार्थ प्रकाश में विदेशी राज्य का घोर विरोध करने वाला, लाट पादरी और गवर्नर से भी निर्भय हो भारत की आजादी की बात कहनें वाला, क्रान्ति से अलग थलग रह सकता था !

स्वातन्त्र्य संग्राम की चिनगारियाँ—Beging of mutiny on january 23, 1857 thc troops of Dum Dum near Calcutta openly displayed Their cartridoes.

On Marah 29 at Barrack Pore the adujtant of the 34th N. I. was cut on the parade ground, by Brahaman Sepoy.

During March and April twenty five fires occured at distant Ambala at Merrut on May 3 th 7th Oudh Infantry mutined at Lucknow.

—The Oxford History of India, by Vlncent A Smith.

५७ सन के विद्रोह का श्री गणेश। २३ जनवरी १८५७ को कलकत्ता के समीप दमदम की सेनाओं ने खुलकर कारतूसों के विरुद्ध विरोध किया।

बैरक पुर में २९ मार्च को ३४ नं. एन. आई० के सैनिक आफीसर सार्जन्ट (ह्यूमन को ब्राह्मण सिपाहो (अर्थात् मंगल पाण्डे जिस का नाम घृणा दिखाने को नहीं लिखा गया) पैरेड ग्राउण्ड के खुले मैदान में गोली से उड़ा दिया गया।

मार्च और एप्रिल में नं०२५ के रिसाले ने दूर अम्बाले में गोली दाग दी।

३ मई को मेरठ में, ७ नं. अवध इनफैण्टरी ने लखनऊ में विद्रोह कर दिया।

—विनसेंट स्मिथ की हिस्टरी आफ आक्स फोर्ड

जनवरी, फर्वरी, मार्च, अप्रैल मई में ऋषि भी सम्भल, गढ गंगा के किनारे, मेरठ, अन्त में कानपुर में थे। क्रान्ति समर से अछूते रहे हों यह असम्भव है। समाचार न मिलते हों यह नितान्त असम्भव है।

गुजरात के पंचांग से गणना की जाये तो तिथियां दो मास आगे बढ़ जायेंगी। क्योंकि गुजरात में दिवाली पर कार्तिक-अक्टूबर में ही विक्रम सम्वत समाप्त हो जाता है —(देखो-किशना डायरी, श्री कृष्ण प्रिन्टिंग प्रेस, खारगेट, भावनगर)। इस गणना से मई १८५७ में कानपुर में बीती माननी होगी जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, ५ मासों में कानपुर के परिसर में रहे। इससे निश्चित रूप से स्वामी जी नें क्रन्ति में पूरा भाग लिया है। 'थ्योसोफिस्ट तीथि और स्थान (देखो पृ० १०६) की गणना से भी सुस्पष्ट है कि क्रान्ति काल के ५ मास में ऋषि कानपुर और इलाहाबाद के मध्य रहते हुए क्रान्ति स्थानों में आते जाते रहे। क्रान्ति का इतिहास पढ़िये—

"६ जून को भयानक तूफान उठा। एक ओर इलाहाबाद और दूसरी ओर कानपुर। दोनों ओर का प्रतिघात फतहपुर पहुँचा। फतहपुर के उत्तेजित हिन्दू मुसलमान सिपाहियों से जा मिले। मुसलमान ईसाइयों के प्रचार से बहुत अधिक नाराज थे। इसलिए उनके विध्वंस के लिए चारों ओर से एकत्र होने लगे। सिपाहियों ने जेलखाना तोड़ दिया। कैदी चारों ओर लूटने खसूटने लगे। खजाना लूटा गया। कचहरी जला दी गई।

पांच सप्ताह तक फतहपुर विपक्षियों के हाथो में रहा। लोगों ने नाना साहब को अपना स्वामी स्वीकार किया। ......मजिस्ट्रेट सेहरा ने ने लिखा है हमारे रास्ते के अधिकांश गांव जला दिये। कहीं एक आदमी दिखाई नहीं देता। घरों की जगह राख के ढेर दिखाई देते थे। दिन में मेंढकों और झिल्लियों की आवाजें सुनाई देती थीं। मुर्दों के जलने की बू आती थी।

– पृ. सं. ६६९ गदर का इतिहास

फतहपुर संग्राम का समाचार कानपुर पहुंचा। २२ मील पर अवंग नामक गांव में बाला जी ने भयंकर चोट पहुंचाई, घमासान युद्ध तोपों बदूकों से हुआ।

घायल होकर बालाराव कानपुर पहुंचे। अजीमुल्लाखां बीबी घर

अपघ्नन्तो ऽ रावणः ॥ वेद

नाना साहब के बिठूर के महलां के विध्वस और बाघेरों की वीरता के साक्षात्,-कर्ता सन् ५७ की क्रान्ति के सूत्रधार दयानन्द

(पृष्ठ ११४)

बलमसि बलम्मयि धेहि । वेद

डूबतों का परित्राणकर्ता बाल ब्रह्मचारी योग साधक दयानन्द यति (पृष्ठ १०४,१०५)

के अभागे कैदियों की ओर से उदास न था ...... १५ जुलाई को बीबी घर का २१० स्त्री व वच्चों का कत्ले आम हुआ। १६ जुलाई को कटे शरीर पास के कुएं में डाले गये।"

१६ जुलाई को पैदल, सवार और गोलन्दाज, पाँच हजार सेना के साथ नाना साहब अंग्रेजों का मार्ग रोकने चल पड़े।

इत्यादि भारतीय वीरों की वीरगाथाओं से स्वातन्त्र्यय संग्राम भरा पड़ा है। यह सब ऋषि के सामने हो और रुद्र ब्रह्मचारी शान्त हो देखता रहे, कैसे हो सकता है।

ऋषि से स्वातन्त्र्य संग्राम के सूत्रधार नाना परिवार का मिलन :

यही सब नाना परिवार के सदस्य थे—नाना की मुंह बोली बहन महारानी लक्ष्मीबाई, नानाजो की माता गंगाबाई, भाई बाला साहब, लेखक फिर मन्त्री अजीमुल्लाखां, तात्याँ टोपे, वीर कुंवर सिंह महाराज श्री के १६१२ से अर्थात् सन् १८५५ कुम्भ मेले पर चण्डी के पहाड़ पर दर्शन कर चुके थे। और संग्राम का आशीर्वाद लेकर आए थे। मंगल पांडे ने भी जो स्वातन्त्र्य संग्राम का श्री गणेश करने वाला था, महाराज श्री के दर्शन और आशीर्वाद लाभ किया था। कानपुर में स्वयं महाराज श्री अपने आशीर्वाद और स्वातन्त्र्य संग्राम के स्वप्रज्वालित विस्फोट को विस्फोट के केन्द्र में पहुँचकर देख रहे थे।

स्वातन्त्र्य संग्राम पर जहाँ ऋषि रहे, सैंकडों पृष्ठ भरे हैं। सबका देना अनपेक्षित होगा। स्वातन्त्र्य संग्राम की आवश्यक तिथियां देते हैं जो महाराज स्वतन्त्रता संग्राम की स्थल भूमि में विचरते आयीं। हो सकता है ऋषिवर ने बहुत कुछ उसमें साक्षात् किया हो।

१० मई को गढ़ जहाँ महाराज ठहरे थे—उसके पास मेरठ में १० मई को अंग्रेजों के विरुद्ध संग्राम की घोषणा हुई।

गदर का इतिहास पृ. १००५

१६ मई को मुरादाबाद के अधिकारियों को समाचार मिला विद्रोही लूट का माल ला रहे हैं। ग. इ. पृ. ६७७

रामपुर मुरादाबाद से १८ मील पर है। नवाब रामपुर की सेना ने अंग्रेजों की सहायता करने से नकार कर दिया। —वहीं

३ जून को बरेली शाहजहाँपुर में उपद्रव हुआ। पृ. १००५

८ जून को नाना साहब का कानपुर में अधिकार, स्वागत, तोपों की सलामी से। पृ. ६५५

३० जून को फरूखाबाद में विस्फोट पृ. १००६

१ जुलाई को धुन्धुपन्थ नाना साहब बिठूर में पेशवा के सम्मानित पद पर आरूढ़ हुए। बिठूर कानपुर से कुल ६ मील है।

१६ जुलाई को बीबी घर का संहार पृ. ६८०

११ दिसम्बर को बिठूर के महलों, मन्दिरों पर अंग्रेजों की तोप गरजीं। १२१६ पृ.

१ जून को—'सांयकाल नाना साहब अपने भाई बाला साहब के तथा मन्त्री अजीमुल्लाखाँ सहित पुण्य तोया गंगा के पावन तट पर जा पहुँचे, अन्य क्रांतिकारी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पवित्र गंगाजल अपनी अंजलियों में लिया। और देश की स्वतन्त्रता हेतु धर्म युद्ध में कूद पड़ने का संकल्प ग्रहण किया'।

५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम का इतिहास पृ. १९८

नाना साहब की समाधि मोरवी में—बनी यह घोषित कर रही है कि नाना साहब ऋषि-शिष्य थे। इसीलिए उन्होंने मोरवी में प्रछन्न रूप में वास किया। मधु नदी के किनारे रेलवे लाइन के पास शंकर आश्रम में समाधि बनी है। मोरवी में समाधि बनवाना और वहीं साधुवेश में जीवन यापन इस बात का प्रबल प्रमाण है कि नाना साहब ने ऋषि दयानन्द योगिराज से ही सन्न्यास लिया था। वे उनके शिष्य थे। इसी लिये नाना साहब ने गुरु जन्म भूमि मोरवी में ही अन्तिम समय भक्ति-भाव से यापन किया। और वहीं देह त्यागी। मरते समय वहीं समाधि बनाने को कह गए।

श्री इन्दुलाल जी पटेल 'मोरवी वासी' ने इस समाधि के इतिहास की इन शब्दों में पुष्टि की है—मोरवी आर्य समाज के प्रमुख श्री पाना चन्द देव चन्द अब अति वृद्ध हैं। वे जब छोटे थे, नदी मधु पर स्नान करने जाते थे। आते जाते हुए शीतला मन्दिर के पास ठहरे हुए नये सन्न्यासी के दर्शन करते थे। वे प्रसादी शक्कर की देते थे। कुछ काल बाद सन्न्यासी को घर ले आए। ठहराया। सन्न्यासी ने गृहिणी का असाध्य रोग मिटाया। सन्न्यासी ने काच के ऊपर कुछ चित्र बना रखे थे।

वे १८५७ के वीरों के थे। सन्न्यासी के लिये किया खर्च चोपड़े (बही खाते) में मिलता है।

मरण समय सन्न्यासी बोले—'मैं नाना साहब पेशवा हूं। यह मेरी लकड़ी है। आधी सोने, मोहरों से भरी है। ठाकुर बाबा को देना और अग्नि संस्कार करने को कहना। इत्यादि।

उनकी समाधि शिव मन्दिर के रूप में है। काच का फोटो नगर रोड के घर में मौजूद है। दो तीन टूट गए हैं। वर्तमान रोड का नाम चन्द्र कान्त है। उन (पानाचन्द०) के दादा के समय की बात है। गुजराती साप्ताहिक पत्र 'साधना' रैड क्रास रोड, अहमदाबाद में लेख माला आयी थी। नाना साहब के विषय में थी। नवीन बातें थीं। चित्र अम्बालाल बापा के साथ देखे थे। वाटर कलर हैं।

ह.—'इन्दूलाल' (श्री वासुदेव वर्मा, पटेल नगर के सौजन्य से)

भोपाल में छतरी बनी इसका प्रतिवाद हो चुका है। वीर सावरकर जी ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है— "नेपाल से नाना साहब ने एक पत्र अंग्रेजों को लिखा था— 'What right have you to occupy India and declare me out-law.'— तुम्हारा क्या अधिकार है कि भारत पर अधिकार का मुझे अपराधी घोषित करने का"—इस पत्र के पश्चात् क्या हुआ। इस सम्बन्ध में इतिहास मौन है। —स्वातन्त्र्य संग्राम

श्री शिवशंकर जी मिश्र ने 'नवजीवन' ३१ जुलाई में लिखा— 'गुजराती आचार्य जी ने कहना आरम्भ रखा— "मेरे पिताजी पंडिताई करते थे। तथा कथा, पूजा, श्राद्ध, तेरहीं एकादशी में बुलाये जाते थे। एक दिन पिताजी ने मुझसे कहा—आज शिवालय वाले बाबा के मरण-भोज में चलना है। इस वाक्य के साथ पिताजी का गला भर सा आया। लगा उन्हें बाबा की मृत्यु का दुःख था। बोले— 'याद तो है तुम्हें बाबा की ! अभी पिछले रविवार को ही तो नदी पर स्नान कर रहे थे।

बाबा के मरने का समाचार सुनकर मैं तो रोने लगा। प्रायः ही दर्शन हो जाते थे। बाबा को नदी पर या पास के विद्यालय में देखता तो दौड़कर उनके पैर छू लेता और वह अपनी झोली से निकालकर कुछ न कुछ प्रसाद मुझे दे देते। पिताजी भी बड़े आदर से झुककर उन्हें प्रणाम करते। कहते—बेटा ये बाबा राजा हैं राजा। अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए उनके विरुद्ध लड़े और इसी लड़ाई में उन्हें अपने राजपाट

से हाथ धोना पड़ा। तुम्हें तो मालूम ही है कि नगर सेठ की हवेली में रहते हैं यह बाबा। हां तो मैं उस दिन पिताजी के साथ बाबा के मरण भोज में शामिल हुआ था। सचमुच ऐसा लग रहा था कि किसी राजा का ही मरण भोज है। मौरवी का प्रत्येक व्यक्ति जानता था इस बात को कि यह बाबा और कोई नहीं १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के नाना साहब पेशवा थे।

नाना साहब नगर सेठ की हवेली में रहते थे। यह हवेली क्या थी मानो भूल भुलैयां हो। वर्षों तक कोई इसमें रहे और दूसरा कोई जान भी न पाये। हवेली के मालिक उदार, धनी और नाना साहब के अनन्य भक्त थे। वह नाना साहब के आदेश पर दूसरों को रुपया भी दिया करते थे। मौरवी के पास नवलखो नामक एक बन्दरगाह है। मुझे तो सही बातें जानकर ऐसा लगा मानो नवलखी के जरिये नाना साहब विदेशों से संपर्क स्थापित करने की चेष्टा करते रहे। उन्हें इसमें कहां तक सफलता मिली इसके विषय में तो कुछ जान नहीं पाया मैं, पर पिताजी ने एक बार इतना अवश्य बताया था कि नाना साहब के अजीमुल्ला नामके एक साथी ने जूनागढ़ के नवाब के साथ निजाम मुहम्मद नाम रख कर विदेश जाने का प्रयास किया था, किंतु बाद में पकड़ लिया गया था। नाना साहब ने निजाम मोहम्मद को कुछ रुपया भी दिलवाया था।

नाना साहब मौरवी में थे। उनके नेपाल जाने की बात कैसे उठी और सजग सतर्क अंग्रेजी सरकार ने मोरवी में नाना साहब को गिरफ्तार क्यों नहीं किया?

"नेपाल जाने वाली बात नाना साहब के सगे साथियों ने ही प्रचारित और प्रसारित की थी, जिससे अंग्रेजी सरकार उन्हें नेपाल के आस पास ही खोजा करे और उसका ध्यान किसी दूसरी ओर न जाए। रही नाना साहब को गिरफ्तार करने की बात मौरवी एक छोटा सा गाँव है। नगर सेठ वहाँ के राजा के समान था। उसके मेहमान सन्न्यासी के विषय में कौन अंग्रेजी सरकार तक सूचना पहुंचाता। १८५७की क्रान्ति के बाद देश वासियों के हृदय में अंग्रेजों के प्रति इतनी घृणा भर गई थी कि वह अंग्रेजों के शत्रु के प्रति सहज सम्मान भावना रखते थे। नाना साहब या उस सन्न्यासी के विरुद्ध कुछ कहने का ग्रामवासियों के पास कुछ कारण नहीं था।

आचार्य जी शान्त हो गए मानो अतीत के सपनों में खो गए हैं और बन्द नयनों में उन्हें नाना साहब का सन्न्यासी रूप और मोटा सा डंडा दिखलाई दे रहा है।" ऐसा मालूम होता है कि नगर सेठ की हवेली में ठहरने वाली बात मौरवी में पहुंचने के आरम्भिक दिनों की है। और पढ़िये—

'Nana Sahib Peshwa and his chief adviserAzimullahkhan are the two whose ultimate fate remains unknown to this day. It is known that after the failure of the mutiny the Peshwa fled to Nepal. There he was granted assylum by the government of Nepal, but later the British Government exerted pressure for his extradition.According to this he was killed by a tigar while leaving Nepal and crossing over to India through the Terai jungles. The British have accepted this eversion of his death and it has been incorporated in official records.

But even British Historians are not quite certain whether Nana Sahib Peshwa did in fact die this way, Malleson a renowned British authority on the Mutiny, remarks that, unfortunately nothing defenite is known as to what happened to Nana Sahib.

In the diary of Lord Montague brings out the fact that he had at one time refused an informer's offer to provide clues leading to the capture of Nana Sashib if he was given a lakh of Rupees.

According to this version, Nana Sashib was forced to quit the heaven of Nepal. He crossed the Terai Hills, spread a rumour that he had been killed by a tiger, and by a devious route reached the city of Morvi with his two associates Yadim shah and Baldev Ram Bhave. He lived in Morvi.......Died recently as 1951.........Peshwa lived under an assumed Name Dayanand Yogindra.

—The Times of India, Sunday, May 25, 1969.

—संक्षिप्त सार—नाना साहब पेशवा और अजीमुल्ला खां का अन्त तिरोहित है। पेशवा नेपाल भागे। आश्रय नहीं मिला। लौटते हुए तराई जंगल में व्याघ्र ने मार दिया। यही अंग्रेजी सरकार के रेकार्ड में है।

परन्तु अंग्रेज ऐतिहासिक इस पर विश्वास नहीं करते। लार्ड मिन्ट गुमरी की डायरी में लिखा है कि उसे किसी ने सूचना दी कि यदि एक लाख रूपया दिया जाये तो वह नाना साहब का पता बता सकता है। लार्ड मिन्टगुमरी ने स्वीकार नहीं किया। इसके अनुसार व्याघ्र से मारे जाने की अफवाह स्वयं नाना साहब ने सरकार से छुपने के लिये फैलवाई। यादिम साहब और बलदेव राम भावे के साथ मोरवी पहुंच गये। १६५१ में देहान्त हुआ। अपना नाम दयनान्द योगीन्द्र बताते थे।

आगे अंग्रेजी पत्र ने अजीमुल्ला खाँ की मिली डायरी के आधार और गवाही के आधार पर मध्य प्रदेश के प्रताप गढ़ में मरने की बात कही है।※

हमें प्रताप गढ़ में मरने पर कम भरोसा है। जो नाना के योगी दयानन्द के सम्बन्ध को उनका कल्पित नाम 'दयानन्द योगीन्द्र' भी बता रहा है।

कुम्भ मेले पर ऋषि के दर्शन करने वाले वीर पुंगव—

नाना साहब—इसी दासता की शृंखला को ८ लाख रुपये में खरीदने वाला कुल अंगार बाजी राव द्वितीय पूना के राजसिंहासन से च्युत होकर भागीरथी के तट पर जाकर ब्रह्मावर्त में अपना अवशिष्ट जीवन व्यतीत कर रहा था। अपनी पेन्शन के धन से अपने और अन्य अनेक परिवारों का उदारता सहित पालन कररहा था। इनमें ही माधवराव का परिवार भी था माधव राव अपनें ही सगोत्र हैं यह जान वह नितान्त चकित हुए उन्होंने ७ जून १८२७ ईस्वी को नाना को विधिवत् दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण कर लिया। उस समय नाना की आयु केवल २॥ वर्ष थी।

नाना का जन्म स्थान माथेरान के गगन चुम्बी शिखरों के अंक में स्थित वेणुनाम छोटे ग्राम में हुआ था प्रमुख माधव राव नारायण एवं उन की सुशीलाभार्या गंगावाई नितान्त सादगी पूर्ण जीवन व्यतीतकर रहे थे। १८२४ ई० में नाना ने जन्म लिया गंगाबाई के पावन गर्भ से।

※श्री पं० क्षितीश कुमार जी वेदालंकार के सौजन्य से दोनों समाचार पत्र प्राप्त हुए।

अब नाना साहब २।। वर्ष की आयु में पेशवा और पेशवा के राज-सिंहासन के उत्तराधिकारी हो गए। अंग्रेजों ने आठ लाख रुपया पेंशन देकर राज्य अपने हस्तगत कर लिया।

बाजीराव ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही अपना मृत्यु पत्र (वसीयतनामा) लिख दिया। नाना साहब को उतराधिकारी घोषित कर दिया। सम्पूर्ण अधिकार भी उन्हें समर्पित कर दिया। बाजी राव का निधन होते ही अंग्रेज ने घोषणा कर दी कि आठ लाख की पैन्शन पर नाना साहव का कोई अधिकार नहीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध नाना साहब ने क्लेम किया। १८५४ में अजीमुल्ला खाँ को राजदूत बना कर लण्डन भेजा। ईस्ट इन्डिया कम्पनी कुछ दिनों तक इधर-उधर के उत्तर देती रही। किन्तु एक दिन स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि 'दत्तक पुत्र नाना साहब को अपने पिता की पेंन्शन प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं।' अजीमुल्ला खाँ लौट आये।

ब्रह्मावर्त में स्थित थी बिठूर नगरी। प्राचीरों से टकराती भागीरथी प्रवाहित हो रही थी। सब ही राजसी वैभव और साज सामान थे। यहां ही नाना साहब रह रहे थे। नाना साहब ही धुन्धु पन्थ नाम से प्रसिद्ध थे—(४६२ पृ० ह. ले.) नाना ही स्वातन्त्र्य संग्राम के चालक थे। अंग्रेजों से डटकर लोहा लिया। सारे देश के हिन्दू-मुसलमानों और साधु-सन्तों को संगठित किया। उनके चरणों में पहुंच कर वीरों ने आशीर्वाद एवं प्रचार में योग दिया।

महारानी लक्ष्मी बाई—उन्हीं दिनों में पावन क्षेत्र काशी में मोरो पन्त तांबे एवं उनकी सुशील पत्नी भागीरथी बाई भी निवास कर रहे थे।

१६नवम्बर १८३५ ई० को इसी दम्पती के घर कन्या ने आँखें खोलीं इसका नाम मनुबाई रखा गया बालिका तीन-चार वर्ष की हो पाई थी जब काशी क्षेत्र का परित्याग कर बाजीराव के उदार आश्रय को ग्रहण करने के हेतु ब्रह्मावर्त जाना पड़ा। मनुबाई ही लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। यहाँ बिठूर में लक्ष्मीबाई और नाना साहब की भेंट हुई। राजपुत्र नाना और लक्ष्मीबाई तलवारों से खेलते थे। जब नाना साहब विद्या अभ्यास करते लक्ष्मीबाई ध्यान पूर्वक देखती और इस प्रकार थोड़ा बहुत लिखने का अभ्यास हो गया। नाना साहब १८ वर्ष के और लक्ष्मी केवल ७ वर्ष की थी। प्रत्येक भ्रातृद्वितीया को दोनों बन्धु भगिनी पर्व का परि-पालन अत्यन्त आत्मीयता से करते थे।

१८४२ ई० में छबीली का विवाह झाँसी के महराजा गंगाधर बाबा साहब के साथ हो गया। लक्ष्मी बाई अब झाँसी की महारानी बन गई। पति की ख्याति के साथ महारानी लक्ष्मीबाई की ख्याति बढ़ने लगी, लोकप्रियता भी।

१८५३ ई० में पतिदेव के परलोकगामी हो जाने पर महारानी ने दामोदर राव को दत्तकपुत्र के रूप में गोद लिया। अंग्रेजों ने महारानी के गोद लेने के अधिकार को ठोकर मार दी और झाँसी को जब्त कर लिया। नाना की बहनछबीली अपने हाथों में राजदण्ड संभालकर दस्युओं को पराजित करने के लिए सन्नद्ध हो गई।

मैं अपनी झाँसी किसी को नहीं सौंपूंगी।

—'डलहौजी एडमिनिस्ट्रेशन' द्वितीय खण्ड।

अजीमुल्ला खाँ—अजीमुल्ला खाँ का जन्म भी एक नितान्त सामान्य परिवार में हुआ था। उन्नति करते-करते वे नाना साहब के विश्वास पात्र मन्त्रियों में से एक हो गये। पहले अंग्रेज परिवार में नौकरी करते हुए उन्होंने इंगलिश एवं फ्रेंच भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ख्याति फैलने पर नाना साहब नें उनको बिठूर दरबार में ले लिया था। नानासाहब को जंच गये। नाना ने बड़ी प्रशंसा की। १८५४में नाना साहब नें उन्हें राजदूत के रूप में इंगलेंड भेजा। अनेक आँगल युवतियों के प्रेम-पत्र उनके प्राणघनअजीमुल्ला के पासआते थे। कोहैवलोक'को'भी इस तथ्य की साक्षी बहुत विलम्ब से मिली। विद्रोह की सब योजनाओं में अजी-मुल्लाखाँ का गौरव पूर्ण हाथ रहता था। नाना साहब इनके परामर्श का बहुत आदर करते थे। ऋषि ने स्नेह को देख अजीमुल्लाखां को नाना का बन्धु बताया है।

बाला साहब—नाना साहब के छोटे भाई थे। बाला साहब बड़े भाई नाना साहब का वैसे ही अनुसरण करते जैसे लक्ष्मण भगवान् राम का अनुसरण छाया की तरह करते थे। गंगा में प्रतिज्ञा लेने के समय भी साथ थे। ५७ के अप्रैल मास में नाना साहब के साथ क्रान्तिकारी दलों के एकत्र करने के लिए साथ ही गये थे। १६ जुलाई को कानपुर में विद्रोहियों से पराजित हो जाने पर बालासाहब, तात्याटोपे आदि के साथ महिलाओं सहित कुछ खाद्य सामग्री ले फतहपुर की ओर चल पड़े थे। तोपखाना छीन लेने का शुभ समाचार पा नाना साहब ने श्रीमन्त बाला साहब

सन् ५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम
के सूत्रधार, ऋषि-शिष्य
← झाँसी की रानी
महारानी लक्ष्मी बाई
होता—नाना साहब धुन्धु पन्त
← श्री मंगल पांडे
श्री तात्या टोपे
वीर वर विक्रमसिंह
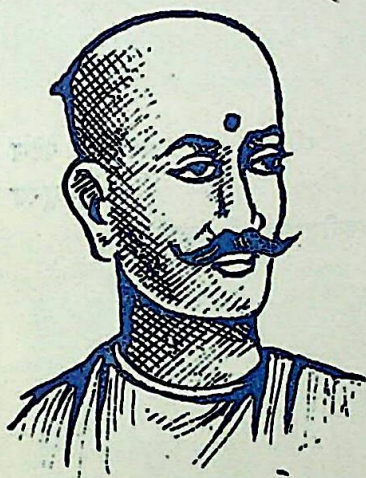
सात्विक भेंट-कर्त्ता

श्रीमती वेद प्रभा जी डावर

श्री रामचन्द्र डाह्याभाई पटेल
परव, सूरत

श्री जगदीशचन्द्र जी डावर
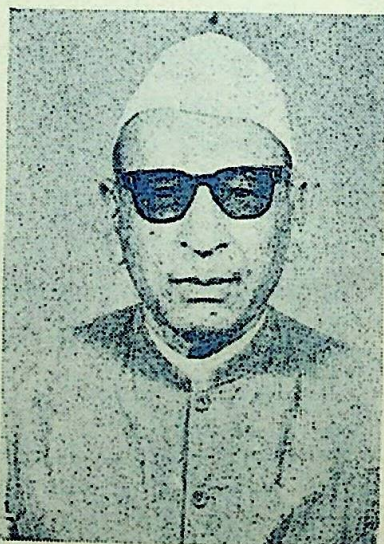
श्री मोती गणेश भाई पटेल
मोर थाण, सूरत

श्रीमती प्रेमवती जी दर्गांत

को अपना प्रतिनिधि बना कर कालपी भेजा था। इनका युद्ध कौशल और वीरता से मृत्यु के साथ खेल ५७ को भारतीय स्वातन्त्र्य समर में पढ़ने की एकमात्र निधि है।

तात्याटोपे—तात्याटोपे नानासाहब के सामान्य लिपिक थे। कानपुर के हाथ से निकल जाने पर इस कठिन परिस्थिति में असाधारण बुद्धि वाला तात्या ही सिद्ध हुआ। तात्या भी स्वातन्त्र्य समर में कूदे। केम्पबेल लखनऊ को चले। तात्या ने इसे स्वर्ण सन्धि समझा। निर्धन ब्राह्मण लिपिक अब पेशवा की सेना का सेनापति बन चुका था। कानपुर पर आक्रमण की योजना बनाई। बाला साहब की अनुमति भी मिल गई। विंडहम को तात्या ने धर दबाया। घोरतम संग्राम हुआ। नाना साहब और वीरवर कुंवर सिंह भी आ पहुँचे, सारी वीर गाथा स्वातन्त्र्य समर में पढ़ने की है।

वीरवर कुंवरसिंह—जगदीशपुर के शासक थे। अप्रैल से नाना साहब का कुंवरसिंह से पत्र व्यवहार चलरहा था। यह क्षेत्र आरम्भ से ही श्री कुंवरसिंह के वंश घरों से शासित रहा था। अंग्रेजों ने उस पर अत्याचार कर कब्जा कर लिया था। इस समय इनकी आयु ८० वर्ष की थी। युद्ध कौशल और क्षात्र भावना के ओज के कारण जगदीशपुर दूनसे जनरल आयर को भगा दिया। अंग्रेजों ने राजप्रासाद पर कब्जा कर लिया था। मन्दिर की मूर्तियों के साथ भी असहिष्णु व्यवहार किया था। सैन्यशक्ति कुंवर सिंह के पास बहुत थोड़ी थी। बुद्धि कुशाग्र थी, वृक युद्ध का आश्रय लिया। १८ मार्च १८५८ को बीवा क्रान्तिकारी आमिले। अतरौली पर हमला किया। हार हुई। मुकाबले में सेना बहुत थी। शत्रु खुशी मनाने में मस्त हो गये। 'इण्डियनम्युटिनी' में लिखा है—'सच्चेसेनानी को और क्या चाहिए था आस पास के खेतों से गोलियाँ बरसानी आरम्भ कर दीं। कुंवर विजय सिंह को विजयश्री मिली। २२अप्रैल १८५८ को युद्ध करते-कराते यह संसार छोड़ा।

मंगल पाण्डे—वीरवर मंगलपाण्डे ने ब्राह्मणकुल में जन्म लिया था। पर वह शौर्य से क्षत्रिय ही थे। साथियों में भी उनकी ख्याति एक शूरवीर सैनिक के रूप में व्याप्त थी। पाण्डे अपने देश स्वातन्त्र्य-भाव को एक मास तक दबाये न बैठ सका। नेताओं की बात उसे जंची नहीं। मैदान में निकल

पड़ा। हाथ में राइफल थामे था। सार्जेन्ट ह्यूमन सामने आया, गोली दगी शव भूमि पर लोट रहा था। लेफटिनेन्ट बाह्व भी आ पहुँचा। गोली छूटी घोड़े सहित धराशायी हो गया। लेफ्टिनेन्ट संभाला ही था। तलवार का वार हुआ वहीं ढेर हो गया। पाण्डे ने अपनी राइफल से अपनी छाती पर गोली दाग ली। घायल सिंह को रुग्णालय पहुँचाया गया। २९ मार्च १८५७ को यह क्रान्ति युद्ध का प्रथम विस्फोट था। ८ अप्रैल को फांसी के फन्दे में उनकी नश्वर काया झूल गई। 'यह नाम भारत भर में सभी विद्रोही सिपाहियों के लिए उपनाम के रूप में ख्याति पा गया।'

—चार्लस-बाल

गंगा बाई—नाना साहब-जैसे भारत सपूत को जन्म देने का पुण्य एवं श्रेय गंगा बाई देवी को है। गंगा बाई सुशोला एवं नितान्त सादगी पूर्ण जीवन बिताने वाली महिला थीं। नाना साहव को माधवराव ने गोद ले लिया। पीछे नानासाहव का महल भारत की समर भूमि ही बन गया था। गंगाबाई भी रणबांकुरी नाना की छबीलीभगिनी लक्ष्मीबाई के साथ ही रहती थी। जब रानी लक्ष्मीबाई ने २०० वीरांगनाओं की वीरवाहिनी संजोई तो गंगाबाई उसमें भी महारानी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाये रण में जूझ रही थी।

रानी लक्ष्मोवाई के साथ इनके स्नेह-सम्बन्ध को समझने में इतिहास-कार धोखा खाते रहे। वास्तविकता का प्रकाश तो वीरवर सावरकर ५७ ने' का स्वातन्त्र्य समर में किया है। ऋषि ने स्वकथित अज्ञात जीवनी में इन्हें 'सहचरी' नाम से उल्लिखित कराया। सहचरी, माता, भगिनो, दासी, संरक्षिका सभी हो सकती हैं। कोष को देख कर बंगाली में सहचरी का अनुवाद निहायत भद्दा सपत्नी कर दिया गया। धोखा इसलिए भी हुआ कि इतिहास कारों ने भी बिना खोज किये लिख मारा—

The Rani was supported by Ganga Bai another consort of the deceased prince. She showed Courage for superior to that of Tantya tope the Nana's general with him She Coperated.

—The exfod history of India

—By Vincent A. Smith.

विन्सेन्ट ने लिख मारा Consort अर्थात् सम्बन्धित। सर्वथा अस्पष्ट। इसे यह भी नहीं पता कि नाना के जनरल तात्या को सहयोग देने वाली नाना की माता ही थी। क्या इन इतिहासों के आधार पर अज्ञात जीवनी के तथ्य परखे जा सकते हैं?

सन् ५७ में आये चपाती, रक्तकमल का इतिहास

इस आत्मचरित्र में यह प्रसंग बड़े अनूठे ढंग से आया है। यह ऋषि के ही निर्देशानुसार ५७ में काम में लाया गया। नाना साहब आदि नें इसे शिरोधार्य किया था—

आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इंडिया में लिखा है :—

"The general unrest was indicated by the my sterious Chupatties or griddle Cakes Which began to circulate from village to village about the middle of 1856, been at the root of late rebellion.

Baboo Ram Gopal Ghosh quoted by E.P. P. 612

And the similar circulation of Lotus flowers Which went on the same time but among the regimenents only.

A messanger would come to a village, seeke out the head-man or village elder give him six chuppaties and say-these six Cakes are sent to you, you will make six others and send them to the next village. The head man accepted the six cakes and punctually sent forward ohter six as he had been directed.

No body could say where the transmission of Chupattees began. Some witness appained that it started near Dellhi, Others perhaps with great probability thought the arrangement orginated in Oudh. The process continued for many months.

It was a common accurance for a man to come to a cantone-mentwith a Lotus flower and give it to the chief native officer of a regiment the fiower was circulated from hand to hand in the regiment, each man took it, looked at it and passed it on, saying nothing. When the lotus came to the last man in the regiment, he

disappeared for a time, and took it to the next military station. This strange process occured through nearly all the military stations wnere the regiments of the Bengal native army were cantoned.

G.D.P.P. 35-36

The exact meaning of the symbols used for such cryptic messages was never divined. The Indian government of those days had no organised Secret servic or Intelilgence department, but even if such an institution had esxisted probabily it would have been baffled. All the resources of modern detective agencies were unable to explain the tree-daubing mystery, which accompanied the Cow Killing agitation in the eastern districts of the united provinsce in my own times. I often tried to obtain reasonable explanation with out success.

—वहीं

इस चपाती और कमल का इसी उल्लेख से मिलता जुलता उल्लेख श्री वीर विनायक दामोदर सावरकर ने अपने १८५७ के भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में किया है :—

चपातियाँ—यों तो ये चपातियां गेहूं और बाजरे के आटे से बनाई जाती थीं। इन पर कोई लेख भी लिखा नहीं जाता था, किन्तु जिस के हाथ में पड़ जाती थीं, इनके स्पर्श मात्र से ही उस व्यक्ति के अंग प्रत्यंग में क्रान्ति की चेतना का संचार हो जाता था। प्रत्येक ग्राम के मुख्य अधिकारी के हाथों में चपातियाँ पहुंचती थीं, वह उसमें से कुछ आहार कर बची हुई चपाती को प्रसाद रूप में वितरित कर देता था।

पृ. ७६

राज्यक्रान्ति के इन दूतों की यह सूझ नवीन नहीं थी, क्योंकि हिन्दुस्तान में जब भी क्रान्ति का मंगल कार्य आरम्भ हुआ तब ही क्रान्ति-दूतों चपातियों द्वारा देश के एक छोर से दूसरे छोर तक इस पावन सन्देश को पहुंचाने के लिए इसी प्रकार का अभियान चलाते थे। क्यों कि बेल्लोर विद्रोह के समय भी ऐसी ही चपातियों ने सक्रिय योग दान दिया था।·········ये कहाँ से आती थीं और कहाँ चली जाती थीं, यह रहस्य भी किसी को कानों कान विदित न हो पाता था। पृ. ७८

यह विवरण अनेक पृष्ठों में है। वहीं पढ़ें।

रक्तिम कमल—क्रान्ति पक्ष का एक दूत हाथ में रक्तिम कमल लेकर चुपचाप बंगाल में एक सैनिक शिविर में प्रविष्ट हो गया। उसने वह रक्तिम कमल एक कम्पनी के सूबेदार के हाथों में समर्पित कर दिया। इस सूबेदार ने उसे आदर से देखा और अपने सहायक को दे दिया। इसी प्रकार वह रक्त कमल प्रत्येक सिपाही के हाथों में से गुजरा और जिस अन्तिम सिपाही के हाथ में यह कमल पुष्प पहुंचा उसने इसे क्रान्ति दूत के हाथों में पहुंचा दिया। बस सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न हो गया। क्रांति दूत इसी भाँति एक छावनी से निकलता और दूसरे सैनिक शिविर में पहुंच जाता। - -वहीं पृ. ७५

यही रक्त कमल और चपातियां हैं जिनके प्रसार का आदेश योगिराज दयानन्द ने नाना साहब, झाँसी वाली रानी तथा अजीमुल्लाखां आदि को दिया है। देहली के पास से चला ऐसा ऐतिहासिकों का अनुमान है या अवध से। देहली में क्रांतिकारी साधुओं का केन्द्र महा योगमाया का मन्दिर-महरौली में था। और अवध में तो नाना साहब आदि का घर ही था। यह भी स्पष्ट है यह प्रथा नयी नहीं प्राचीन है। यही ऋषि ने कहा है। —'अलं बहु गवेषणया'

आत्मचरित्र की ऐतिहासिकता

ऋषि बड़ौदा से बनारस ही गए

बा. देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय नें 'दयानन्द चरित्र' दूसरे एडीशन के पृ. ६३ पर छापा है।

बंगला भाषा में—प्रकाशित सन् १८४६

बंगला—बारोदार चैतन मथ नामक मन्दिरे ब्रह्मानन्द और अपरापर ब्रह्मचारी सन्न्यासीर सहित वेदान्त विषय आलोचना हईल। आमीय ब्रह्म एयि विषये आलोचना हईल। आमीये ब्रह्म एयि बिषये ताहारा आमा के उत्तम रूप बुझाइला। पूर्वे वेदान्ताध्ययनेर समये आमि एयि विषये कियदंश बुझिया छीलेन बटे। किन्तु एखोन तहां देर निकट सम्पूर्ण रूपे बुझे ते पारिया शील ब्रह्मेर एकत्व विषये विश्वास करीते लागीलाम।

ए समये एक जन काशीवासिनी स्त्री लोकेर निकट सम्वाद पाइलान ये तथाय्य पण्डित दिगेर एक महा सभा होइले। ए सम्वाद पाइबा मात्र आमी काशी धामेर मुखे यात्रा करीलाम। एवं तथाय्य उपस्थित होय्या सच्चिदानन्द परमहंसेर सहित मनस्तत्त्व-विषये आलाप करीते लागिलाम। सच्चिदानन्देर निकटे सुनिलाम ये नरमदा तीरे स्थित चाणोद कल्याणी नामक स्थाने अनेक उन्नत चरित्र सन्न्यासी और ब्रह्मचारी अवस्थिति करिया थाकिन। आमी तदनुसारे उपस्थित होय्या अनेक योग दीक्षित साधु देखिते पालाम। इतः पूर्वं आमी कखोने योग-दीक्षित साधु देखी नाई।

आर्य भाषा :—बड़ौदा में चेतन मठ नामक मन्दिर में ब्रह्मानन्द और दूसरे सन्न्यासियों के साथ वेदान्त विषय पर मेरी आलोचना हुई थी। मैं ही ब्रह्म हूं। इस विषय को इन लोगों ने मुझे अच्छी तरह समझा दिया था।........ इस समय एक काशी के रहने वाली देवी से मुझे सम्वाद मिला कि वहाँ पण्डितों की एक महासभा होने वाली है।

इस संवाद को पाकर ही मैंने काशी की ओर यात्रा की। वहाँ

(काशी में) उपस्थित होकर सच्चिदानन्द परमहंस के साथ मनस्तत्त्व विषय पर आलापन करने लगा। सच्चिदानन्द जी से सुना कि नर्मदा के किनारे चाणोद कल्याणी स्थान में बहुत उन्नत चरित्र सन्न्यासी और ब्रह्मचारी रहते हैं। तदनुसार मैंने वहाँ उपस्थित होकर बहुत योग दीक्षित साधुओं को देखा। **थियासोफिस्ट** आत्मचरित्र में भी ऐसा ही लिखा है देखो—

I procceded to Baroda. There I setteled for some time and at Chetan math temple I held several discourses with Brahmananda and a number of Brahmcharis and Sanyasis, upon the vedanta poilosphy. It was Brahmanand and other holy men who established to my entire satis faction that I was Brahma the Diety was no other then my self—my ego—

At Baroda learning from a Benaras woman that a meeting composed of the most learned scholars was to be held at a cetan locality, I repared there at once, visiting a personge as known as satchidanand Parmahans with whom I was permitted to discuss various scintific and metaphpysical subjects from him I learnt also, that a number of great Sanyasis and Brahmcharis resided ast Chanod Kalyani. In consiquence of this I repaired to that place of sanctity on the banks of the Narbada, and there at last for the first time withreal dikshits or initiated Yogis and such Sanyasis as chidashram and several other Brahmcharis.'

हिन्दी में भी **थियासोफिस्ट** का अनुवाद ऐसा ही छपा है—

बड़ौदा के चेतन मठ नामक मन्दिर में ब्रह्मानन्द और अन्यान्य सन्न्यासियों के साथ वेदान्त विषय पर विचार हुआ……… ब्रह्म की एकता में विश्वास करने लगा।

इस समय एक काशी की रहने वाली स्त्री से मैंने यह सम्वाद पाया कि वहां पण्डितों की एक महा सभा होगी इस सम्वाद के पाते ही

मैंने काशी की ओर यात्रा आरम्भ की। और वहाँ पहुंचकर सच्चिदानन्द परमहंस से मनस्तत्त्व के विषय में बातचीत करने लगा। सच्चिदानन्द जी से मैंने सुना चाणोद कल्याणी नाम के स्थान में अनेक सन्न्यासी ब्रह्मचारी योगी रहते हैं।" —आत्मकथा पृ. २६

दयानन्द चरित्र दूसरा संस्करण बंगला में और थियासाफिस्ट की आत्मकथा दोनों ही गोविन्दराम हासानन्द की प्रकाशित की हैं।

पं० लेखराम जी ने भी लिखा अमर कण्टकके पीछे तीन वर्ष ऋषि ने नर्मदा पर बिताये। बनारस की रहने वाली देवी का मिलना भी उन्होंने स्वीकार किया है तथा **पं० घासीराम जी** ने भी स्वीकार किया है।

देवेन्द्रबाबू ने लिखा है—बड़ौदा में दयानन्द को एकस्त्री ने पहचान लिया फिर दयानन्द बड़ौदा के परिसर में नहीं रह सकते थे। पं. लेखराम जी ने भी लिखा—'बड़ौदे में बनारस की रहने वाली से मैंने सुना।' बनारस की रहने वाली बनारस की महिमा गायेगी, चाणोद कल्याणी की नहीं। बनारस आज भी विद्या का घर है। चाणोद कल्याणी तो बिल्कुल उजड़ गया है। किसकी महिमा है। विचार लें।

पं. लेखराम जी के नोटों को समझा नहीं गया। पं. जी ने थियासो फिस्ट की आत्मकथा को ही लिखा है। उनकी अपनी कोई खोज इस विषय में नहीं है। आत्मकथा अंग्रेजी में थियासोफिस्ट में लिखा है। बड़ौदा में एक बनारसो बाई से जाना कि 'at a certain locality'— किसी परिसर में सभा है। इसका अनुवाद नर्बदा के तट पर नहीं हो सकता। नर्बदा बड़ौदा की कोई समीपता नहीं है। पचासों मील दूर है। उसे बड़ौदा की लोकेलटी नहीं कहा जा सकता। दूसरा हेतु यह भी है कि 'उस स्थान पर पहुंचकर फिर सुना कि चाणोद कल्याणी में (जो नर्बदा नदी तट पर स्थित है) मण्डली रहती है। इससे भीं स्पष्ट हो रहा है वह लोकल परिसर चाणोद कल्याणी से दूर है। अन्य किसी स्थान पर जाने की बात किसी ने नहीं लिखी। बड़ौदा से काशी गए यही सबने लिखा है। तीसरे यह भी विचारणीय है—पृ० ३८ पर पं. लेखराम जी ने लिखा है '१९१४ को नर्बदा की दूसरी यात्रा थी। अतः सर्वथा सुस्पष्ट है कि पहली बार बड़ौदा से काशी गए, वहाँ से नर्बदा की यात्रा में प्रवृत्त हुए। यही अन्य थियासोफिस्ट, देवेन्द्र बाबू, उपेन्द्र नाथ मुख्योपाध्याय, पं. घासीराम जी ने बड़ौदा से बनारस जाना स्वीकार किया। अतः यह पक्ष निर्विवाद है। इसीका विस्तृत उल्लेख अज्ञात जीवनी में है।

पं उपेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय—ढाका नार्मल स्कूल के शिक्षक ने भी लिखा है—

"दयानन्द सब स्थान पर भ्रमण करके सब साधुओं से परिचित हो गए थे। उनमें से व्यास आश्रम के योगानन्द, **वाराणासी के सच्चिदानन्द,** केदारघाट के गंगागिरि, ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि का नाम उल्लेखनीय है। ग्रन्थ, पाठ और योगाभ्यास में समय बिताते थे। तदनन्तर मथुरा में आकर पण्डित विरजानन्द के पास विविध शास्त्र के अध्ययन में रत हुए। पृ. २७४ चरितामिधान

मुखोपाध्याय ने भी सच्चिदानन्द जी को 'वाराणासी का' लिखा है, चाणोद का नहीं।

ऋषि कैलाश गये थे—वर्तमान जीवनियों में इस आत्मचरित्र की प्रत्यक्षदर्शी व्यक्तियों की साक्षी नहीं मिलती। मिलना बहुत कठिन है। अवधूत साधु के जीवनी की विस्तृत घटनाओं का आँखों देखा हाल मिलना इस आत्मचरित्र में स्वयं कहा तो मिला और पहले प्रकाशित जीवनों में भी संकेत बहुत मिले। संकेत स्पष्ट हैं, उन पर अविश्वास का या अन्यथा कल्पना का कोई अवसर नहीं। अनर्गल शंकायें अयुक्त हैं।

ऋषि कथित पहली जीवनियाँ संक्षिप्त हैं—

ऋषि ने मैडम बलैवडस्की और अलकाट को जो **जीवनी थियासोफिस्ट के लिये भेजी थी वह अत्यन्त संक्षिप्त है।**

पत्र सं० १८३—कुछ थोड़ा सा जन्मचरित्र लिखकर भेजते हैं।

" १७८—"I shall give you a brief account of me."

पूना का सोलहवाँ व्याख्यान—जीवनी विषयक तो होना ही **संक्षिप्त** था। एक दो घण्टे में क्या क्या बताया जा सकता है। ८०० पृष्ठ की देवेन्द्र बाबू की जीवनी में केवल ५३ पृष्ठ मथुरा तक और १६ पृष्ठ आगरे तक लिखे हैं।

मथुरा आगमन के समय ऋषि की लगभग आयु ३९ वर्ष की थी—३९ वर्ष के केवल ७० पृष्ठ और बीस वर्ष के सात सौ से ऊपर वास्तव में ऋषि के प्रचार काल की जीवनी की खोज की जा सकी। अवधूत स्थिति में की यात्रा का पता भी कोई कैसे लगाता। वह तो श्रीमुख से स्वयं सुना जा सकता था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि दिग्गज विद्वानों के अध्यवसाय से ऋषिवर ने अपने इस आत्मचरित्र को कलकत्ता में सुनाया था। इस जीवनी की प्रामणिकता के प्रसंग वर्तमान जीवनियों में भी मिल

जाते हैं। उनकी व्याख्या अन्यत्र कहीं नहीं, केवल इसी जीवनी में है। देखिये :

उपलब्ध जीवनियों के उद्धरण

१. महादेव कैलाश के रहने वाले थे कुबेर अलकापुरी के रहनेवाले थे। यह सब इतिहास केदार खण्ड का है(केदार पर्वत श्रेणी का) है। हम स्वय भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।

—उपदेश मंजरी दशम व्याख्यान आगे इसे विस्पष्ट किया है।

काश्मीर से लेकर नेपाल तक हिमालय की जो ऊँचीर चोटियाँ हैं। वहाँ देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष वास करते हैं। गत समय की तरह प्राय: इस समय बर्फ नहीं पड़ती है।

ऋषि घूमे थे तब ही कह रहे हैं—"वहां विद्वान वास करते हैं और इस समय गत समय की तरह बरफ नहीं पड़ती है।" यह दोनों बातें और किसी यात्री ने नहीं कहीं। केवल दयानन्द कह रहे हैं और इस आधार पर कह रहे है कि कैलाश के परिसर में घूमे थे: ठहरे थे, यथावसर समाधि लगा भूत को देखा था। इस घूमने का व्योरा आप इस आत्मचरित्र में पढ़ेंगे। अन्यत्र कहीं नहीं।

मग्नम् कहाँ है ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—प्रकाशित आत्मचरित्र में तथा **स्वामी सत्यानन्द** जी की खोज पर आधारित उनके लिखित दयानन्द प्रकाश में **पं० लेखराम जी आर्य** मुसाफिर लिखित जीवन चरित्र में भी अलकनन्दा स्रोत से बद्रीनारायण को लौटते हुए ऋषि 'मग्नम्' भी पहुँचे हैं। बद्रीनाथ से अलकनन्दा तक कहीं 'मग्नम्' नहीं आता है। न चारों धामों में कहीं है अत: टिप्पणीकर्ताओं ने इसे 'माना' मान कर संतोष कर लिया है। बात ऐसी नहीं है। माना ग्राम भी लौटते समय दूसरी ओर पड़ता है। अलकनंदा को पार करके वहाँ जाने का मार्ग नहीं है। अत: यह मग्नम् कोई अन्य स्थान ही है।

इस आत्मचरित्र के अनुसार और पूना प्रवचन के अनुसार ऋषि कैलाश गए थे। इस बात को स्वीकार कर हमने मग्नम् का पता लगाया। कैलाश यात्रायें पढ़ीं। उसके मार्गों की पड़ताल की। कैलाश जाने के १२ मार्ग हैं। दो मार्गों में मग्नम् मिला। बद्री नारायण वाले मार्ग को ही हमने ऋषि का मार्ग स्वीकार किया है। देखिये :

Badrinath to Kailcsh via Mana pass. 238 Miles

वद्रीनाथ से कैलाश माना मार्ग के रास्ते २३८ मील

स्थान	दूरी मील	ऊँचाई	अन्य विवरण
बद्रीनाथ	०	१०१५६	
१. माना	२		मणिभद्रपुरी ग्राम
२. वलवाणगुफा	३		मूसापानी दो मील, शाक पाडांग डेढ़ मील, ३।४ मील पर अच्छी गुफायें डेरे।
३. धस तोली	६		गुफा डेढ़ मील, बुड' चौन तीन मील, ख़ोरजाक वोट डेढ़ मील डेरे पड़ाव
४. सरस्वती	८		डेरे, घाटा की चढ़ाई आरम्भ, ढाई मील रत्ताकोण, डेरे, आधा मील देवताल
५. मानाघाटा	८२	१८४००	चिरविटिया, डेढ़ मील भारत सीमा।
६. पोती	६		डेरे, यहाँ तक उतराई
७. जोगोरोव	८	१६४००	डेरे, शीपुका मैदान ३ मील; चरंगला ३ मील
८. रामूराव	१६		डेरे दस मील, ३ मी० उतराई।
९. शंकरा	१०		डेरे
१०. सत्तुखाना	२२		डेरे, कुली ३ मील पर
११. थुलिङ गोम्पा	७	१२२००	(यहाँ तक कुल १०२ मील हुआ) तीन मील खड़ी चढ़ाई यह थुलिड़ गोम्पा पश्चिमी तिब्वत का सब से बड़ा प्रसिद्ध मठ है। भारतीय पण्डितों ने यहां बैठ कर ग्रंथों का उल्था किया।
१२. मङ्गनंग	३१		यहाँ डे पुंग विहार की शाखा है मड्नङ् नदी भी पार करनी होती है।

१३. दापायादाव १४ १४००० जोड़ मठ

१४. नाहन्ना मंडी साढ़े ६ मील

१५. डोङ्पूगोम्पा १४

१६. दोनगू साढ़े ५ मील

१७. सिबचिलमण्डी १६ मणिथडा साढ़े ७ मील मील + गोम्बा चिन साढ़े तीन मील

१८. गुनियाङ्ती नदी साढ़े ४ मील

१९. ज्ञानिमामंडी

२०. छूमिक्शला साढ़े १६ मील

२१. कैलाश (तरछेन) १०३ १५१००

कुल २३८ मील

स्वामी प्रणवानन्द जी ने १५ वार कैलाश यात्रा की १७ वार मान सरोवर गए। १२ मार्गों की तालिका में से यह एक है। मङनंग १३३ मील है। मङनङ से कैलाश १२५ मील है। बद्रीनारायण से २८३ मील पर माना घाटा पार करके १०० मील पर थुलिङ मठ पहुँचते हैं। हतभाग्यता अब तो चीन ने सब घर दबाया है। कौन जायगा।

तरछेन से कैलाश की परिक्रमा आरम्भ हो जाती है पास में ही मानसरोवर और और राक्षस ताल हैं। यहाँ सब स्थानों पर ऋषि घूमे थे। यदि अलकनन्दा के स्रोत वाली गति से चले हों ती ऋषि को यह यात्रा केवल ४ दिन की होती है। यदि अवधूत अवस्था के ४०।४० मील चले हों तो ६ दिन की यात्रा हुई होगी। यह सब यात्रा इसी उत्तरा खंड के पौने दो वर्ष के काल में हुई है। देखो

जी० च० पं० लेखराम जी लिखित पृ० ३१

ऋषि का हिमालय के समस्त पर्वतीय स्थलों में घूमना

"बद्रीनारायण में रावल जी ने कहा—'प्राय: ऐसे योगी लोग इस मन्दिर के देखने के लिए आया करते हैं।"

सुनकर ऋषि ने संकल्प किया—"उस समय मैंने (दयानन्द ने) यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि समस्त देशों और विशेषत: पर्वतीय स्थलों में अवश्य ऐसे पुरुषों का अन्वेषण करूँगा।" —आत्मचरित्र पृ० ३४

थुलिङ् गोम्पा और बद्रीनारायण मन्दिर का भक्ति भाव का सम्बंध न जाने कब से बना चला आता है। यह भी ऋषि को पता लगा होगा। उधर जानें में आकर्षण हुआ होगा। पढ़िये—

'थुलिङ् पश्चिमी तिब्बत का सबसे प्रसिद्ध मठ है। कितने ही अमूल्य और प्राचीन संस्कृत ग्रंथों को तुर्कों ने जलाकर नष्ट कर दिया। नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य दीपंकर श्री ज्ञान सन् १०४२ में यहां आकर नौ महीने ठहरे थे। कई ग्रन्थों का प्रणयन किया था। कई भारतीय पण्डितों ने यहाँ रहकर पाली ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बती भाषा में किया था। हंस के बड़े अण्डे के बराबर जौ का दाना अन्य अपूर्व वस्तुओं में यहां रखा है। लगभग प्रति तीन वर्ष बाद १०० लामा-यहाँ रहनेवाले आते जाते हैं।

शीत काल में बद्रीनारायण के पट बंद होने से पूर्व मन्दिर के लिए कुछ प्रसाद और भेंट भेजी जाती है। रावल भी मन्दिर के कुछ प्रसाद और भेंट थुलिङ मठ के लिए भेजते हैं।

—कैलाश मानसरोवर हिन्दी पृ० ३९३-३९४

हृषीकेश से श्रीनगर—इसआत्मचरित्र में हृषीकेश से श्रीनगर (काशमीर) जाने का उल्लेख है, जो थियासोफिस्ट में नहीं। वहां संक्षिप्त होने से यह प्रसंग ऋषि ने छोड़ दिया। कोई विशेष उल्लेखयोग्य घटना थी नहीं।

जाने में समय ३ सप्ताह का लगा है। क्या यह संकलनकर्ता की मन की उड़ान है ? या कोई मार्ग भी है ? जा भी सकते हैं या नहीं ? यद्यपि ऋषि उदानजयी थे, उनके लिए कोई भी मार्ग दुर्गम नहीं था। फिर भी क्या हिमालय यात्रा के अप्रसिद्ध स्थानों का वर्णन और यात्रा संभव भी है या नहीं ? यह प्रश्न थे जिनके तथ्य रूप समझने का पूरा प्रयत्न किया गया। इस आत्मचरित्र का यात्राक्रम इस प्रकार है—

हृषीकेश से श्रीनगर ३ सप्ताह

श्रीनगर से अमरनाथ। अमरनाथ से श्रीनगर।

श्रीनगर से क्षीरभवानी। क्षीरभवानी से श्रीनगर।

श्रीनगर से गान्धार बल, गान्धार बल से तुलमुल, क्षीर भवानी।

—१५ दिन

सिन्धुनद के किनारे-किनारे ओयाइल्ला आदि से कंगन।

कंगन से माटायन, माटायन से कार्गिल।

कार्गिल से मुलबे चम्बा, बौद्ध खर्बु, नुरुल, लिकिर, गुम्फा, बासगो, नीमु, ले, हिमिसमठ, पितुक, फियांग गुम्पा लेशहर, हिमिस गुम्पा।

ले से हृषीकेश

लिकिर गुम्फा, कार्गिल, शालीमार, शालीमार बाग, श्रीनगर धनुष तीर्थ, अगस्त्य आश्रम, ऊषी मठ, रामपुर, रुद्र प्रयाग हृषीकेश।

हृषीकेश से मानसरोवर

हृषीकेश से देहरादून, यमुनोत्तरी, उत्तरकाशी, गंगोत्तरी, गोमुखो, (१।। योजन पर), गंगोत्तरी, त्रियुगीनारायण १।।योजन पर, अगस्त्य मुनि, गुप्त काशी, केदारनाथ, जोशीमठ, बदरीनाथ। ब्रह्मकुण्ड, वसुधारा, सत्पथ, भागीरथी, अलखनन्दा, स्वर्गारोहणशिविर, अलकापुरी, मानसोद्भेद तीर्थ, मानसरोवर, कैलाश, राक्षस ताल, कैलाश से लासा—लासा से दारजिलिंग किचु नदीपार कर लेता स्थान में ब्रह्मपुत्र के उत्तर तट में, च्याकसामपुल, कायरा घाटी, कामपापरत्सि, न्याकरत्सि, उपसिगांव, गियांत्सी (ची), फारि, चुम्बी, इउक (भारतसीमा में) इउक से दारजिलिंग।

कलकत्ता—नाटोर, शिलीगुडी, वारिक पुर, कलकत्ता, गंगासागर, नवद्वीप, कामरूप, कामाख्या, परशुराम, समस्तीपुर, दरभंगा, वेतिया, नेपाल कलकत्ता, पुरी, नासिक, शृंगेरी, बंगलौर, महीशूर, कांची, त्रिचनापल्ली, मदुरै, रामेश्वर, धनुष्कोटि, कन्याकुमारी, काष्ठयान से तैलमन्नार, कोलम्बो, काण्डी, आदममन्दिर, अनुराधापुर, धनुष्कोटि, कन्याकुमारी, रामेश्वर में नाना आदि का मिलन।

इस यात्रा में थियासोफिस्ट वाले सब स्थान आगये हैं। वह संक्षिप्त है, यह आत्मचरित्र विस्तृत है। हिमालय में ऋषि ने दो वर्ष लगाये। यह सब यात्रा की तथ्यता का निर्णय करना था। यह स्थान भी हैं या नहीं। यात्राक्रम ठीक है या नहीं ? क्योंकि उपन्यास हो तो इतना लम्बा यात्रा क्रम ठीक नहीं बैठ सकता। उपन्यास हो तब भी रोचक है। अलख धारी के उपन्यास की तरह। पर मैं इसकी ऐतिहासिकता जांचना चाहता था। कोई हिमालय कैलाश तिब्बत यात्रा का नकशा मिले। इसके लिए देहली में खोज की। कुछ पता नहीं चल रहा था। बाबु कौशल किशोर जी Indian School of international studies इण्डियन स्कूल आफ इन्टर नेशनलस्टडीज में अकाउण्ट आफिसर हैं,उनसे जिकर आया। उन्होंने कहा मैं ऐसे आदमी के पास ले चलता हूं जो हिमालय की चप्पा-चप्पा भूमि को जानता है। बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मुझे अपनी संस्था के मूर्धन्य श्रीराम राहुल जी के पास समय निर्धारित कर ले गये। पता चला यह गौरीशंकर शिखर के विजयी पर्वतारोही दल के घटक हैं। उन्होंने बड़ी उदारता से डेढ घण्टे तक ऊपर का यात्राक्रम सुना। बहुत सी लाभ-दायक नवीन जानकारी भी दी। सब बहुत ध्यान से सुना। अन्त में कहा सब यात्रा बिलकुल ठीक है। स्थानों का यही क्रम है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

मैंने पूछा - यह यात्रा कितने दिन में की जा सकती है ?

राहुल जी—साधन हों तो एक वर्ष में हो सकती है।

मैं—यह यात्रा तो साधनहीन साधु नें की थी !

राहुल जी—तो दो वर्ष में बड़े आराम से हो सकती है।

वे ऋषि दयानन्द का नाम सुनकर चकित हो गये।

बोले—ऐसा था दयानन्द !

उन्होंनें चाय आदि मंगा कर स्वागत किया। चलते समय The 'Himalayan Border Land' १८।०रुपये दाम की अपनी पुस्तक भेंट में

दी। मैं भी अपनी 'पातंजल योग साधना' भेंट में दे प्रसन्न था। साधु की भेंट को बड़े सम्मान से स्वीकार किया पुनः दर्शन देने की बात भी कही।

अलकनन्दा स्रोत के प्रसंग में हम लिख चुके हैं, एक मास की दुर्गम यात्रा असाधारण योगी ने केवल १२ घण्टे में की थी। उसके लिये यह हिमालय यात्रा यदि साधन सम्पन्न लोगों के लिए एक वर्ष की है तोउसके लिए तो दो मास से भी कम की हो सकती है। विश्राम का समय अलग।

श्री राहुल जी ने तिब्बती शब्द जो यात्राक्रम में आये थे उनकी व्याख्या की थी :—

चम्बा—बुद्ध का नाम है। पत्थर पर रंगीन चित्र को चम्बा कहते हैं। लिकिर गुम्फा—लुकिल, सांप, नाग किल=कुण्डली=सांप की कुण्डली गुंफा=मठ विहार।

फियांग गुम्पा—ले से इण्डस नदी से मानसरोवर की ओर ३० मील है।

नीमु—समीपस्थ, ले नगर के पास।

बौधखर्बु—खर्बु किला, गुफा, अब शमस खर्बु कहते हैं।

हिमिस—लामागुफा।

वासगो—बड़ी मूर्ति।

माटायन का अर्थ बौन-बौन बुद्ध लोगों से उलटा करते हैं। परिक्रमा बायें हाथ से करते हैं। स्वस्तिक भी जर्मनों की तरह उलटा बनाते हैं।

सत्पथ—सत्पथ से आगे शीत प्रधान चौखम्बा शिखर है।

राक्षसताल—खारा पानी होने से कहाता है।

मानसरोवर—मीठा पानी है। नीचे से पानी मिलता है।

किचुनदी—हैपी वैली में है। किचु-पानी।

च्याकसाम—खाल की किशती गोल होती है।

चकसम—घाट।

गियांत्सी—ची है। सी बोल लेते हैं।

श्रीनगर से श्रीनगर का मार्ग— मैंने पूछा, क्या श्रीनगर से श्रीनगर भी कोई मार्ग है ?

राहुल जी बोले—"टौंस नदी के किनारे २ घाटी से ने लांग पास। हर्सिल, वास्पाघाटी, चित्रकूट, सतलुज, कुल्लु, मनाली, रोहतांगपास, लाहुल, चम्बा, त्रिलोकीनाथ, पांगी (पांगी) या चम्बा से श्रीनगर जाते हैं।

हर्सिल में स्वामी जी गुफा में रहे भी थे। ऋषि का हस्तलेख आज भी वहाँ विद्यमान है। श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ने भी देखा था।

यह सब वृत्तान्त सुन कर मैंने सोचा ७० मील १२ घण्टे में हिममार्ग को लाँघने वाले उदानजयी के लिये कुछ भी कठिन नहीं है।

काशमीर यात्रा

इस आत्म चरित्र के अनुसार हृषीकेश से काशमीर गये। ३ सप्ताह लगे। हृषिकेश में इतना ही व्योरा दिया—"Passing certain time' लिखा है। केदार Two month with Gangagiri कौन से नहीं लिखा Autum was setting in पतझड़ में श्रीनगर से चल पड़े। कोई निश्चित मास नहीं दिया। शिवपुरी में शीत के चार मास रहे। पीछे म. द. जी. च. में लिखा है— काशमीर से एक बार निमन्त्रण भी आया था। महाराज नहीं गए। यदि महाराज श्री पहले काशमीर न गए होते तो निमन्त्रण अवश्य स्वीकार कर लेते।

कैलाश यात्रा—

१२ घन्टे में अलकनन्दा के स्रोत देखने के बाद,उस समय संभवतः चैत्र लगा होगा, रामपुर आने के पीछे ४मास कोई यात्रा नहीं की यह संभवतः कैलाश यात्रा काल है। वहाँ से कलकत्ता लौटे हैं। कलकत्ता से सन् ५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में भाग लिया है, जिसे कलकत्ता में बताना उचित नहीं समझा। एक तो थियासोंफिस्ट में इस का उल्लेख आ ही गया था। जिसका विवरण देने में असमर्थ होने के कारण थियासोफिस्ट को आगे वृतान्त नहीं दिया। ऐसा प्रतीत होता है कानपुर पर नाना साहब का आधिपत्य हो जाने पर निश्चिन्त से हों, अमरकन्टक की ओर दूसरी वार चले गए हैं, देखो लेखराम जी संगृहीत जीवन चरित्र। पुनः कानपुर का पतन सुनकर लौटे हैं और विठूर का विध्वंस और बाघेरों का शौर्य अपनी आँखों से देखा है। दक्षिण यात्रा क्रान्ति में सफलता न देख दक्षिण की यात्रा की है। रामेश्वर में क्रान्ति संग्राम के अन्तिम समाचार मिले। संभवतः नेपाल के साथ न देने के पीछे यह मिलन और प्रतीक्षा निश्चित रूप से पूर्व निश्चयानुसार हुई है। सन् १८५८ की २६ जनवरीबहादुर शाह की तकदीर का फैसला अंग्रेजों ने किया। ४० दिन लगे। सपरिवार पैगु में रखने की सजा हुई। १८५८ में महारानी ने प्रधान अपराधियों को

छोड़, शेष अपराधियों के अपराध क्षमा किये। महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की —'जिन्होंने हथियार उठाये थे वे अपने घर जाकर शान्ति से अपने काम में लगें, उनके अपराध क्षमा किये जायेंगे। जनवरी से पहले घोषणानुसार जो कार्य में लग जायेंगे उनके अपराध क्षमा। उन पर दया की जायगी।"

—सन् ५७ का इतिहास

सन ५८ की इस घोषणा के उपरान्त जनवरी ५६ तक प्रतीक्षा कर दयानन्द सम्भवत: दक्षिण से गुजरात होते हुए लौटे और १४नवम्बर १८६० को अर्थात् १६१७ संवत् के कार्तिक मास में मथुरा में श्री दण्डी जी के चरणों में पहुँचे।

तिब्बत की यात्रा

जोखम भरी तिब्बत की यात्रा ऋषि ने अवश्य की है। सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है—

प्रश्न—मनुष्य की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ?

उत्तर—त्रिविष्टप में अर्थात् जिसको अब तिब्बत कहते हैं। ऋषि प्रत्येक बात का निर्णय साक्षात् देखकर करते थे। सुन सुनाकर नहीं। देख कर निश्चय किये बिना आदि सृष्टि तिब्बत में नहीं लिख सकते। यहाँ कोई युक्ति नहीं दी गई है। अन्यत्र सर्वत्र अकाट्य युक्ति का प्रयोग करते हैं। यहाँ केवल निर्णय मात्र है। यह निर्णय देखकर ही हुआ। इसीलिए इस आत्मचरित्र के अनुसार ऋषि लंका में आदम मन्दिर ADAM PEAK देखने गए। आदम मन्दिर भी मानव का प्रथम उत्पत्ति स्थान है। दोनों ही भारत में थे। फिर ऋषि क्यों देखने नहीं जाते।

इस आत्म चरित्र में तिब्बत को जितनी घटनायें दी हैं, इसी प्रकार की मिलती जुलती अन्य तिब्बत यात्रियों ने भी लिखी हैं। अत: ऋषि का यह तिब्बत का वर्णन आँखों देखा है। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि तिब्बत में बहुत उच्च कोटि का योग भी सुनने में आता है। The Lost World पुस्तक में दो चेपटर इसी पर दिये हैं। यहाँ स्थान नहीं कि उनका उल्लेख किया जाये। इतना ही ध्यान दिलाना आवश्यक है। योग के लिए भी ऋषि को तिब्बत जाना पड़ा होगा।

तिब्बत की मिलती घटनाएं—तिब्बत के दण्ड—तिब्बत के जेलखाने बहुत ही भयानक हैं। ··· ······ दोपहर दिन को भी उनके भीतर उजाला नहीं पहुंचता। ऐसे ठण्डे देश में मकान के भीतर धूप का न पहुंचने देना ही एक दारुण दण्ड है।

जिसके हाथ काटने होते हैं, पहले हाथों को खूब कसकर बांध दिया जाता है। इस भाँति २४ घन्टे बन्धे रहने पर वह भाग चेतना रहित हो जाता है या रस्सियों से बान्ध कर वृक्ष में लटका दिया जाता है। पकड़ कर नीचे खींचने से टूट जाती हैं।

—तिब्बत में तीन वर्ष—ले. श्री इकाबाई कावागुची पृ. २७६

सबसे कड़ा दण्ड यहाँ पानी में डुबोकर मारने का है। चमड़े की मशक में बन्द करके पानी में डाल देते हैं। मरने पर पानी में टुकड़े कर फेंक देते हैं। सिर काटकर प्रदर्शन के लिए रखा रहता है।

—वहीं

अन्त्येष्टि में पक्षियों को खिलाने का विधान भी है। यह विधि **'लागापो'** कहलाती है।

कैदियों को एक मुट्ठी अन्न मिलता है।

एक दारुण घटना—'सामने जनता का हृदय सम्राट्, सच्चरित्र पूर्ण विद्वान् लामा का शरीर, धर्माधिकार के वस्त्रों से शून्य जेल के वस्त्रों में विराजमान था। जनता रो रही थी।

लामा ने अपना जाप समाप्त किया। १।२।३. तीसरी वार अंगुली उठाई। संकेत दिया। जनता चिंघाड़ मार कर रोने लगी। जल्लादों को आगे बढ़ने का साहस न हुआ। वे भी रो रहे थे।

लामा ने कहा—'तुम लोग क्या कर रहे हो। मेरा समय आ गया है।'

जल्लादों ने दुःख से लामा की कमर में रस्सी बान्धी। भारी पत्थर बांधा। लामा को जीते जी ब्रह्मपुत्र नदी के पानी में डाल दिया। थोड़ी देर बाद रस्सी खेंच कर जांच की। अभी प्राण पखेरु नहीं उडे थे। फिर पानी में फेंका। पुनः दूसरी वार जांच की। जीते थे लामा। सब चिल्ला उठे लामा को छोड़ देना चाहिये। यही कानून है। लामा ने मना किया। कहना मान जल्लादों ने तीसरी वार फिर पानी में डाल दिया। निकाला। शरीर प्राण हीन था।

यह था धर्मगुरु को प्राणदण्ड। लामा का नाम था 'सेगचेन कोरगी-चेन'। अपराध था भारतीय शरत्चन्द्र दास को पढ़ाना। दास भारत लौट चुका था। पीछे तिब्बत सरकार को दास के गुप्तचर होने का संदेह हो गया था।

—पृ. १५

तिब्बत की कठिन यात्रा

पृ. ५५ पर लिखा है—"मानसरोवर तक मुझे (चीन यात्री कावा-गुची को) सीधा उत्तर की ओर जाना था। सूर्य ताप बहुत कम पहुंच रहा था। कहीं-कहीं पर मेरा पैर १४।१५ इञ्च तक बरफ की चट्टानों में धंस जाता था।

खेमे मिले, मैंने कहा—"मैं लासा से आ रहा हूं। कैलाश जाऊंगा। विश्राम करना चाहता हूं। स्थान मिल गया। ऐसा दयालु कभी कोई तिब्बत में मिलता है। वहां से 'गोलांग रिंग पाँच' की गुफा पर पहुंचा। १०० मील के आस पास के लोग इनके भक्त थे। सोने से पहले तीन वार यह लोग गुफा को नमस्कार करते थे। परिचय के बाद ठहरा। विदा के समय उन्होंने पूछा—तुम ऐसे जंगलों में फिरने योग्य नहीं हो। यहाँ क्यों आये?"

७ जुलाई को विदा मांगी। उन्होंने रोटी मक्खन आदि प्रायः बीस पौंड का सामान मुझ को दिया। और कहा यदि तुम्हारे पास खाद्य सामग्री यथेष्ट न होगी तो तुम अवश्य ही मर जाओगे। ८५ पौंड बोझ अपनी पीठ पर लादकर यहां से विदा हुआ। पृ. ६१-६३

कैलाश की राह के विषय में पूछा। बोले—"गुफा से चलकर दो तीन दिन में एक जंगली जाति के लोगों में पहुंचोगे। वहां से आगे १५।१६ दिन तक निर्जन राह से जाना होगा। इस यात्रा में सहायक मिलना असम्भव है। सम्भव है बसती में पहुंचने पर लूट लिए जाओ।

पृष्ठ ६०

'मेरी तिब्बत यात्रा' नामक अपनी यात्रा पुस्तक में यहां पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन नें कहा है—"मोट (तिब्बत) में वैसे भी मनुष्य का प्राण वहुत मूल्य नहीं रखता ...... जहाँ पर लोग मृत्यु से खेलते हैं।'

पृ. ३५

इनाम इकराम देने पर भी यदि तिब्बत में भलामानुस मिल जाये तो उसका शुक्रगुजार होना चाहिये। पृ. ३६

यह यात्रा १७६७ की है। ऋषि की यात्रा १८५५ सन् की है। अर्थात् ५८ वर्ष पीछे की। ऋषि विहंगम अवधूत यात्री थे। खाने को भी कुछ साथ न था। किस योग बल से यात्रा की होगी, योग की बात है। इसीलिए कहते हैं ऋषि की लीला विचित्र है।

हजरत ईसा का भारत में योगाभ्यास

अब से ७२ वर्ष पूर्व लाला जयचन्द्र जी मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने जालन्धर शहर से १८९९ सन् में मि. निकोस नोट विच रूसी पर्यटक के, राजधानी लद्दाख के लेह स्थित बौद्ध मठ से जानकारी प्राप्तकर ह. ईसा के भारत में योगाभ्यास और अध्ययन के वृतान्त फ्रांसीसी और अंग्रेजी का अनुवाद उर्दू में प्रकाशित किया था। यह प्रकाशन १८९४सन् के आरम्भ की बात है। इससे ईसाई जगत् में बड़ी भारी हलचल मची। ईसाईयों ने इन हालात को झूठा बताया बनावटी तक कहा। निकोस नोट विच को धोखा देने वाला बताया। अन्य बहुत सी चालें चलीं। एक मेम महोदया ने तो लिख मारा कि नोट विच लद्दाख गए ही नहीं। किसी ने लद्दाख में उनको नहीं देखा, न किसी ने उनका नाम सुना। लद्दाख के यूरिपियन मिशन के मिशनरी मि. शा नें लिखा कि नोट विच ने कभी तिब्बत में पैर भी नहीं रखा। मेक्स मूलर ने इस सब इतिहास को अवि-श्वसनीय लिखा। डा. हेल साहब ने अमरीका के रिव्यु समाचार पत्र में इसके विरोध में लिखा।

ईसाईयों के इस खण्डन का हमारी तरह मिस्टर वीरचन्द, जी आर गाँधी, विश्व की रिलिजियस पार्लियामेंट के भागीदार ने १८९४ में अंग्रेजी में खण्डन छापा सब ही आरोपों का प्रबल खंडन किया। १८९५ सन् में नोट विच ने अपनी पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण छपवाया और सारे ही पूर्व पक्ष का प्रबल मुंह तोड़ उत्तर दिया।

यह उर्दु की पुस्तक— 'युसुह मसीह की नामालूम जिन्दगी के हालात' मुझे बा. विश्वम्भर दयाल जी, मन्त्री आर्य तर्क शालिनी सभा दिल्ली नें प्रदान की। इसमें ६६ पृष्ठ हैं। सारी तो दी ही नहीं जा सकती। संक्षिप्त देना भी स्थानाभाव से अनुपयुक्त ही होगा। कोई सज्जन दान भेजेंगे तो छपा दिया जाएगा। यहाँ तो इतना ही विचार है कभी ईसा की इन घटनाओं पर पंजाब आ० प्र० सभा के मन्त्री ने प्रसन्नता ही प्रकट नहीं की अपितु पुस्तक को उर्दु में छापा। और आज का प्रतिनिधि सभा का मन्त्री उन्हें झूठा बता रहा है।

भगवान् से प्रार्थना है कि वह उन्हें सुमति प्रदान करें।

०:—.०

सहयोगियों का आशीर्वाद

प्रभु की प्रेरणा से ही योगाभ्यास को बीच में छोड़कर इस पुस्तक के संग्रथन में संलग्न हुआ। मैंने इसे प्रभु का आदेश जानकर पालन किया अब प्रभु से यही अभ्यर्थना है कि किसी गुफा में प्रवेश करा योग की अग्रिम साधना को सफल बनावे।

वैदिक साधना आश्रम, रोहतक, आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर के भेंट कर्त्ता ऋषि भक्तजनों तथा अनुशीलन में साथ देने वाले आर्य वान प्रस्थों को आशीर्वाद।

इस आत्म चरित्र अज्ञात जीवनी को आद्योपान्त हाथ से लिखकर रखनेवाले और अप्रकाशित लेखों की भी प्रतियां देनेवाले तथा लालाचतुर-सेन जी गुप्त सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि श्री प्रेमचन्द जी शास्त्री संशोधक शास्त्रीं संशोधक, जिनके अनर्थक परिश्रम से यह बृहत ग्रंथ इस सुन्दर रूप में निकल सका। सदा सहयोग प्रदान करने वाले दिल्ली के सर्वोत्तम कलाकार श्री आशाराम जी शुक्ल नें समयाभाव में भी सब दो रंगे चित्र ऋषि दयानन्द की अपूर्व छटा के साथ निर्मित किये। योगाभ्यासी फोट-ग्राफर श्री अर्जुनदेव जी गौगिया, कलकत्ता निवासी ने ये सब फोटो भेंट स्वरूप प्रदान किए। योग साधना संघ-कलकत्ता के योग साधकों तथा अन्य सभी प्रकार के सहयोगी व्यय करने वाले भेंट देने वाले योग प्रेमियो को हृदय से आर्शीर्वाद देता हूं। भगवान् योग में उनकी रुचि को दिन-प्रतिदिन वृद्धि दें।

कामाख्या मन्दिर के निर्माण में ७०० ब्राह्मणों की बलि

महर्षि दयानन्द ने अपने आत्मचरित्र में दर्शाया है कि कामाख्या मन्दिर के विभिन्न समयों पर हुए निर्माण एवं पुनर्निर्माण के अवसरों पर क्रमशः १५१ ब्राह्मण बालकों, १४० मनुष्यों एवं ८०० ब्राह्मणों की बलि दी गई थी पृ० २३० इतिहास के ज्ञान व स्वाध्याय से शून्य एक प्रान्तीय सभा के विद्वान् महामन्त्री ने भद्दी भाषा में इस ऐतिहासिक तथ्य का खण्डन ही कर डाला। विस्तार में न जाकर यहाँ संक्षेपतः इतिहास के कुछ प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

❀'सती के नाम से प्रतिष्ठापित कामाख्या मन्दिर ब्रह्मपुत्र नदी से घिरी हुई सुन्दर नीलाचल पहाड़ी पर कामरूप जिले में गौहाटी से दो मील पश्चिम में २६° १०' उत्तरी रेखांश व ९१° ४५, पूर्वी अक्षांश में अवस्थित है। परम्पराओं के अनुसार मूलतः मन्दिर का निर्माण महाभारत के समय में प्रतिष्ठित एक राजकुमार नरक द्वारा हुआ था और उसने पाषाण खचित मार्ग जल से पहाड़ी के ऊपर तक बनवाया था जिसका अस्तित्व अब भी है। नर-नारायण द्वारा इसका पुनर्निर्माण लगभग १५६५ में हुआ जिस अवसर पर देवी को १४० नरमुन्डों की भेंट चढाई गई। किन्तु नर-नारायण के मन्दिर का थोड़ा भाग ही अब शेष है।"

—'इम्पीरियल गजैटीयर ऑव इन्डिया' ईस्टर्न बंगाल एण्ड आसाम पृष्ठ५४६।

❀"Kamakhya—A temple sacred to Sati, which stands on the beautiful Nilachal hill overhaging the Brahmaputra, about two miles west of Gauhati in Kamraup District, Eastern Bangal and Assam in 26°, 10, N. and 9 10, 45 E. According to traditions the temple was originally built by Narak, a prince who is said to have flourished at the time of Mahabharata, anb to have Constructed a stone-paved causeway up the hill, which is still in existince. It was rebuilt by Nar Narayana about 1965, and on tne occasion of its consecration 140 human heads were offered to the goddess, but only a small portion of Nar-Narayam's temple now remains."

—Imperial gazettere of India, Eastern Bengal, Assam, p.546

—*सर एवडर्ड ने निष्कर्ष निकाला है कि उस अवसर पर १४० ममुष्यों को नरवलि के रूप में भेंट चढ़ाया गया।……सर एडवर्ड गेट ने हयग्रीव के लिये सात सौ मनुष्यों की वलि का भी उल्लेख किया है।

—हिस्ट्री ऑफ कूच विहार पृ० १५८ १५९।

---

* Sir Edward has concluded that on this occasion 140 men were offered as human sacrifices……Sir Edward Gait has also referred to seven hundred human sacrifices to Hayagriva."

— History of Cooch Bihar, p. 158, 159.

इस प्रमाण संग्रह के लिए हम श्री भगवत् दुवे दफ्तरी पुराततत्त्व पुस्तकालय नेशनल म्यूजियम का हार्दिक आभार मानते हैं। स्वाध्याय के क्षेत्र में ऐसा गहन ज्ञान अच्छे अच्छे पुस्तकालय निर्देशकों व विद्वानों में भी नहीं मिलता खोज के अनेक प्रसंगों पर इनसे अपूर्व जानकारी मिली है। ऐसे सन्तोषी जीव की पदोन्नति करें, ऐसा अधिकारियों से अनुरोध है।

योगी के आत्मचरित्र का अनुशीलन

आचार्य श्री पं० दीनबन्धु वेदशास्त्री बी.ए., भू० पू० मन्त्री बंगाल विहार आर्य प्रतिनिधि सभा के ४० वर्षीय अथक परिश्रम से संग्रहीत ऋषि दयानन्द की अज्ञात जीवनी के तथ्यों को जांच करने के लिए मैं मार्च १९७० में व्यासाश्रम की खोज में चल दिया। जो चाणोद कर्णाली के परिसर में है इतना तो जीवन-चरित्रों के अध्ययन से मुझे ज्ञात था। चाणोद कर्णाली कहां है। किस मार्ग से कैसे जाऊँ ? यह जानना अभीष्ट था।

सार्वदेशिक को टेलीफोन किया, क्योंकि सार्वदेशिक में ही यह आत्म चरित्र 'अज्ञात जीवनी' के नाम से प्रकाशित हो रहा था। वहाँ से कुछ भी पता न चला। उन्होंने लाजपत नगर में किसी स्नातक महानुभाव का पता दिया। उनके पास प्रोफेसर वेदव्रत महोदय को भेजा, कुछ पता न चला।

पातांजल योग की साधना—ऋषि दयानन्द के नाम से अज्ञात जीवनी में सारगर्भित ढंग से अत्यन्त सरल आर्य भाषा में आई थी प्रामाणिक योग दर्शन की संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दू, उर्दू, गुजराती आदि अनेक भाषाओं की विद्वानों में प्रसिद्ध पचासों टीकाएँ मैंने पढ़ीं थीं। पर व्यास भाष्य भोज-वृत्ति, वाचस्पति मिश्र का विवरण, विज्ञान भिक्षु का भाष्य और योग वार्तिक आदि सभी टीकाएँ पढ़ने पर योग और योग साधना के सम्बन्ध में मेरी पचासों शंकाएँ निवृत्त नहीं हुई थीं। उनके समाधान ढूँडने के लिए पचासों दूसरी सभी मत मतान्तरों की योग पद्धतियों का अध्ययन किया था।]इनकी तालिका के लिए सरल हिन्दी भाषा में लिखे मेरे छोटे से हिन्दी योगदर्शन की शुद्ध बोध वृत्ति के अध्यात्मीयम् में पृष्ठ ३ से ७ तक देखें।]

शंकाएँ वैसी की वैसी बनी रहीं, पर जब-जब सार्वदेशिक में प्रकाशित इस आत्मचरित्र को पढ़ा तो मेरी शंकाएँ निर्मूल होती गईं, परन्तु इस आत्मचरित्र का ऐतिहासिक और भौगोलिक स्वरूप शंकाओं से भरा पड़ा

था। योग दर्शन की इसमें सारगर्भित व्याख्या होने के कारण यह अविश्वसनीय नहीं जंचता था, क्योंकि विद्यमान आर्य जगत् और पौराणिक जगत का कोई भी विद्वान् से विद्वान् योगाभ्यासी मेरा समाधान न कर सका था।

योग की खोज में— ही मैंने बीसियों वर्ष गंवा दिये थे। पांच गुरु भी बना चुका था। योग न मिलने पर उनसे निवेदन कर दिया था, कि मैं सदा आपको गुरु मानता रहूंगा पर आप मुझे शिष्य रूपेण घोषित न करें, क्योंकि मेरा समाधान नहीं हुआ है। घोषणा पर मेरा प्रतिवाद करना सत्य की रक्षा के लिये और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये अनिवार्य हो जायेगा। इस प्रकार के भी अनेक प्रसंग आये कि मुझे उन गुरुओं की संगत में ही उनके समक्ष उनके सिद्धान्तों का आत्मरक्षार्थ प्रतिवाद करना पड़ा। यद्यपि वे मुझे अपने २ मठों का उत्तराधिकार सौंपना चाहते थे। जिसको मैंने आदर प्रदर्शित करते हुए भी स्वीकार न किया। मुझे योग साधना का मार्ग इस 'योगी का आत्म चरित्र' [अज्ञात-जीवनी] स ही मिला था, इसलिये इसकी ऐतिहासिकता और भौगोलिकता को जांचना बहुत आवश्यक था।

इस विषय में अब तक छपे ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र मौन सा धारण किये थे। क्या उनके मौन से इसे अप्रामाणिक मान लिया जाय या उनके साथ इसका किसी प्रकार समन्वय हो सकता है। इस विचार को लेकर मैंने ऋषि दयानन्द के दसियों जीवन चरित्र पुनः पढ़े, जिनके उद्धरणों द्वारा इस आत्म चरित्र की परिपुष्टि और उनके पुनरध्ययन से प्राप्त ऋषि जीवन सम्बन्धी नवालोक से उपलब्ध समन्वय आगे इस प्राक् परिपोषण में पढ़ेंगे।

इस पुनर अध्ययन में देवेन्द्र बाबू के लिखित 'महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र, में पंडित घासीराम जी की दी हुई टिप्पणी में चाणोद, कर्णाली का पता चला। बड़ौदा से चाणोद कर्णाली को छोटी लाइन जाती है।

मार्च १९७० में मैं अपने पुराने गुरुकुल महाविद्यालय के सहपाठी श्री रामचन्द्र वैद्यराज, गाँव पोस्ट परव, जिला सूरत निवासी। के पास पहुँच गया। वैद्य जी और उनके मित्र मोती भाई पटेल, मोर थाना निवासी के द्वारा व्यासाश्रम [चाणोद, कर्णाली] के ट्रस्टी सूरत निवासी देसाई श्री खण्डू भाई कुंवर जी से परिचय पत्र ले गुजरात की यात्रा

करने के बाद मोटरों और रेल की यात्रा द्वारा नर्बदा नदी को नाव से पार करके ३ मार्च को चाणोद पहुँच गये। श्री वेणी भाई नवनिर्वाचित मन्त्री, बम्बई, बड़ौदा आर्य प्रतिनिधि सभा के परिचय पत्र के साथ आश्रम के स्वामी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य के पास जा ठहरे। उन्होंने हमें वह सब स्थान दिखाये जहां २ चाणोद कर्णाली में ऋषि दयानन्द ने सन्न्यासी होने के साथ वास भी किया था। कुबेर भंडारी भी देखा जिसमें स्वामी जी भोजन लेते थे। वह छोटी सी कुटिया भी देखी जिसमें स्वामी जी साधना करते थे। उसके अन्दर एक गुफा भी है जिसमें स्वामी जी अभ्यासार्थ बैठते थे। नर्बदा के किनारे हंसारूढ़ आश्रम के पास गुफा और कुटिया भी देखी जहाँ स्वामी जी नर्बदा के किनारे आते थे। आज कल वह आश्रम बहुत सुन्दर बना हुआ है जहाँ भोजन व्यवस्था हो सकती है। अग्नि तीर्थ स्थान में ब्रह्मचारियों के रहने की जगह थी। आरम्भ में ऋषिवर उसी में रहे थे। आजकल तो ये सब स्थान उजाड़ पड़े हैं। रिट कमिश्नर के अधिकार में हैं। चाणोद कर्णाली में कुछ समय बहुत से मन्दिर और उनमें संस्कृत-पाठशालाएं थीं। शतशः सन्न्यासी और ब्रह्मचारी पढ़ते थे। उन दिनों यह स्थान दक्षिण की काशी माना जाता था। आज तो सब कुछ समाप्त हो गया है। नर्बदा की बाढ़ से बचे हुए मन्दिर धर्मशालाएं नये और पुराने आज भी तीर्थ यात्रियों के लिये विद्यमान हैं। तीर्थों में आज भी यह प्रसिद्ध तीर्थ है।

दूसरे दिन ४ मार्च को नर्बदा की धारा पर नीचे की ओर नौका से ५ मील की यात्रा कर व्यासाश्रम पहुँचे। ५ मार्च को शिवरात्रि थी। वहां पर व्यासेश्वर और व्यास जी के गुरु श्री सिद्धेश्वर सुरेश्वर महादेव, नर्बदा माता और लक्ष्मी नारायण के मन्दिर हैं। व्यासेश्वर में व्यास जी की पादुकाएं और शुकेश्वर में शुकदेव जी की पादुकाएं हैं। राधाकृष्ण की मूर्ति काले पत्थर की है। शुकेश्वर मन्दिर एक लाख की लागत से पुराने समय में बना था। उस पर चढ़ने के लिये १५० के लगभग सीढ़ियाँ होंगी यह मन्दिर नर्बदा के दूसरे किनारे पर है। नौका से जाते हैं। व्यासाश्रम नर्बदा की दो धाराओं के बीच में टापू के रूप में है। गर्मियों में एक धारा सूख जाती है। यहां पर गुरु दत्तात्रेय का भी मन्दिर है। १५० वर्ष पहले कैलाश मन्दिर वासी ऋषि दयानन्द के दादागुरु योगेश्वरानन्द जी ने कैलाश मन्दिर का छः फुट के लगभग मोटा कोट (चार दिवारी) बनवाया था, जो चार वर्ष पहले नर्बदा की भयंकर बाढ़ में बह गया था।

दयानन्द के गुरु श्री योगानन्द जी उनके ही शिष्य थे। उन गुरुवर की पुण्य-तिथि भाद्रपदी षष्ठी शुक्ला को होती है। वह इच्छा मृत्यु से देह त्यागने के लिये भाद्रपदी पंचमी शुक्ला को सिंह द्वार की गुफा में आसन लगा समाधि में बैठ गये थे। सबको सूचित कर दिया था। अब से ३२ वर्ष पूर्व महाराज जी की अस्थियाँ नर्बदा में प्रवाहित कर दी गईं। श्री महाराज योगानन्द जी ने ७५ वर्ष की आयु प्राप्त की। महाराज के भानजे पं० देवदत्त जी दवे ग्राम पोस्ट डाकोर में रहते हैं। ७६ वर्ष की आयु है। वे बड़ौदा में भागवत सप्ताह में गये हुए थे दर्शन न हो सके।

व्यास मन्दिर का मुख पहले बरकाल ग्राम की ओर था। पीछे पलटा गया। यह सूचना व्यास क्षेत्र, बरकाल पो० चाणोद, बड़ौदा स्टेट वासी ज्योतिर्विद निर्भय राम कुवेर जीने सुनाई। इनकी आयु ७१ वर्ष थी।

इस आत्म चरित्र की खोज के लिये श्री पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज ने १००) रुपया देते हुए कलकत्ता जाने की प्रेरणा की। आर्य वान प्रस्थ आश्रम ज्वालापुर से कलकत्ता आर्य समाज से पत्र व्यवहार किया। एक मास प्रतीक्षा की। उत्तर न मिलने पर श्री नारायण स्वामी आश्रम नैनीताल लौट गया। बहुत दिनों पीछे कलकत्ता से स्वीकृति मिली, और मैं २५ मई १९७१ को कलकत्ता पहुँच गया। ३० जून तक ठहरा। आर्य समाज कलकत्ता ने पूरा सहयोग दिया। अपने नियम के विरुद्ध ५ दिन अधिक ठहरने की स्वीकृति भी प्रदान की। पं० दीनबन्धु जी शास्त्री नित्यप्रति आकर बंगला हस्त लेखों और प्रकाशित हिन्दी अनुवाद से मिलान करवाते रहे। वर्षा अत्यधिक हो जाने के कारण; और बीच में आखों के रोग के कारण भी बीच २ में न आ अके। इसलिये कुछ कार्य अधूरा भी रह गया। दीन बन्धु जी का पुस्तकालय बहुत विशाल है, वहुत ही स्वाध्याय शील, सरल प्रकृति देवता स्वरूप विद्वान् हैं। यह सब उन्होंने ऋषि भक्ति से प्रेरित होकर ही किया है। ४० वर्ष जवानी के "दयानन्द का पगला" बन कर और कहला कर भी जीवनी की खोज की है। तीनों ब्राह्म समाजों में जाकर आचार्य पद स्वीकार कर वेद कथा कर अपना प्रभाव उत्पन्न किया। और बीसियों घरों से जीवन के पन्ने एकत्र किये। बहुत से तथ्य मुझे भी बताए और दिखाये। बहुत सी पोषक सामग्री भी प्रदान की। तीन वर्ष तक सार्वदेशिक सभा के प्रतिनिधि भी रहे। कलकत्ते का प्रत्येक आर्य

মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতী

মহর্ষি দয়ানন্দ যে বিরাট ও সর্বতোমুখী প্রতিভা লইয়া
জন্ম গ্রহণ করিয়াছিলেন তাঁহার উজ্জ্বল জীবনী তাহারই
প্রকাশ মাত্র। তিনি শুধু সমাজ সংস্কারক ও বেদজ্ঞ পণ্ডিতই
ছিলেন না। তিনি ছিলেন জীবন ভর বিপ্লবী, সংস্কারক,
দেশ ও ধর্মসেবক, রাজনীতিজ্ঞ ও দেশভক্ত, সাধক, ও পরম
যোগী ও জীবন্মুক্ত পুরুষ। পৃথিবীতে এমন কোনও
মহাপুরুষ জন্মিয়াছিলেন কিনা ইতিহাস সাক্ষ্য দেয় না।

শ্রীদীনবন্ধু শর্মা বেদশাস্ত্রী
২২।৬।৭১

श्री पं० दीन वन्धु जी का हस्त-लेख

बंगला-हिन्दी में

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती यो विराट् ओ सतोमुखी प्रतिभालय्या, जन्म ग्रहण करिया छीलेन। ताहार उज्ज्वल जीवनी ताहारी प्रकाश मात्र। तीनी शुधु समाज संस्कारक औ वैदिक पण्डित छीलेन न। तेनी छीलन जीवन भर विप्लवी संस्कारक, देश औ धर्म-सेवक, राजनीतिज्ञ, ओ देशभक्त, साधक, परम योगी, औ जीवन्मुक्त पुरुष; पृथिवी ते एमन कोनो महापुरुष जन्मिया छीलेन इ न। इतिहास साक्ष्य दैन।

ह० : श्री दीन बन्धु शास्त्री

२२-६-७१

हिन्दी में अनुवाद :

महर्षि दयानन्द ने जिस विराट् और सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर जन्म ग्रहण किया था, उनकी उज्ज्वल जीवनी उसी का प्रकाशमात्र है। वे जीवन भर क्रान्तिकारी, सुधारक, देश और धर्म के सेवक, राजनीतिज्ञ, देशभक्त, साधक, परम योगी और जीवन्मुक्त पुरुष थे। पृथ्वी में ऐसे किसी महापुरुष ने जन्म लिया कि नहीं, इतिहास इसकी साक्षी नहीं देता है।

❀ योगी का आत्म-चरित्र ❀

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री मद्दयानन्द सरस्वतीरर महोदयेर आत्म-चरित्र

(१)

(১)

আমার জন্মস্থান ও জন্মকাল — গুজরাত (গুর্জর) প্রদেশে

কাঠিয়াবাড়ের (সৌরাষ্ট্র) অন্তর্গত (মৌর্বী রাজ্যে) ডেমী নদীর

কিনারায় অবস্থিত এক নগরে সম্বৎ ১৮৮১ (সন ১৮২৪)

ঔদীচ্য ব্রাহ্মণ কুলে আমার জন্ম হয়। এই হিসাবে

আমি গুজরাটি ব্রাহ্মণ সন্ন্যাসী ও অন্য হিসাবে কেবল

এক ভারতীয় সন্ন্যাসী হই। এখন আমার বয়স

आमार जन्म-स्थान व जन्म-काल : गुजरात (गुर्जर) प्रदेशे काठियावाडेर (सौराष्ट्र) अन्तर्गत मौर्वी राज्ये डेमी नदीर किनाराय अवस्थित एक नगरे सम्वत् १८८१ (सन् १८२४) औदीच्य ब्राह्मण कुले आमार जन्म हई। एई हिसाबे आमी गुजराती ब्राह्मण सन्न्यासी आ अन्य हिसाबे केवल एक भारतीय सन्न्यासी हई। ए रवोन आमार वयस प्राय: ४८ वत्सर हुई।

योग विद्या शिक्षा

व्यास आश्रमे योग विद्या शिक्षा : शुकेश्वर तीर्थ नर्मदार दक्षिण तीरे अवस्थित, श्रो ओहार उत्तर तीरे व्यास तीर्थ। ए खानि व्यास महोदयेर नामानुसारे व्यास आश्रम। नरमदार एक धारा आश्रमे दक्षिण दिके प्रवाहित। एई जन्य एई आश्रम दीप परिणत होइया छे।

कराई जलपान। इहातेओ शरीर नीरोग थाके। त्राटक योग-उदयकालीन चन्द्र सूर्ये प्रतिबिम्ब निजेर चक्षुर प्रति अन्य चक्षुर दृष्टीर प्रति पलक हीन ओ अविछिन्न दृष्टि राखाई त्राटक योग, इह द्वारा।

◆

वैराग्य लाभ :

आमार नार्य वत्सर वयसे आमेर पितामहेर मृत्युर होइया छीलो। शक लेई कान्दी ते छीलो आमी, कान्दी ते छालां। मृत्युर सम्बन्धे आमार कोई ज्ञान छीलो न। आमार वयस इयारवन अठारह वर्ष। आमार चौदह वर्षेर भगनीर मृत्युर होइया छीलन। मृत्युर सम्बन्धे आमार अनुभव एइरवान होइते इ आरम्भ होइआ छील। आमार स्नेहोशीला भगिनीर मृत्यु ते हृदये खूब आघात लागिया छील। आमार कान्ता पाइ नाई। केवल एह।

अष्ट सिद्धिर परिचय

१. अनिमा-शरीर आ यतने वृहत होइबे न।
हइले ओ संयमेर प्रयोगे परमाणु तुल्य हइब्रे।

२. लघिमा

◆

अथ नर्मदा तट भ्रमण, सन्न्यास ग्रहणंच

नर्मदा तटे आमि काशी हई ते रवाना हइया। पद व्रजे विन्ध्या चलेर दिके अग्रसर हइते थाकिलाम। विन्ध्याचल औ सतपुरा पर्वतेर मध्ये महाकाल नामे पर्वते आछे। ताहार शृंगेर एक विराट् कुण्ड हइते नर्मदा बहिर्गत होइछे। मध्य प्रदेश ओ

आ संचालक पाइले युद्ध करार जन्य सकले प्रस्तुता आछे। ख्रिस्टान राज्य आ इस्लाम राज्य हइते हिन्दु मुसलमान एक संगे युद्ध करार जन्ये प्रस्तुत हइ आ जाइवे। प्रयोजन आशिले प्राण परियन्त दीवे।

जयपुरेर अनुभव, पुष्कर हइते जयपुर

◆

विष्णु भगवानेर नामानुसारे कर्षण जी एई व्यापार लइया माता पितार मध्ये विरोधेर श्रृष्टि हइया छील। एइ दृश्य देखिया निमन्त्रित शत-शत व्यक्ति स्तम्भित हइया गइया छीलेन। आमार माता मह मीमांसा कइया दीलेन। पुत्रेर दुइ नीति नाम राखा हौक्। एक शिवेर नामानुसारे। द्वितीय विष्णु भगवानेर नामानुसारे। तदनुसारे बाबा ओ मां उभय स्वीकार करिया छीलेन।

सकले निजे के प्रभु शासक मनि करिया सकल के ई शासिकेर दृष्टि ते राखे।
नेटिव निगार काला (कृष्णांग) इडियट, सूग्रार, अनाड़ी, स्पष्ट ई; फुल, डाग।

सदस्य और अधिकारी इनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है। इन्होंने इस अज्ञात जीवनी में एक भी अक्षर अपनी ओर से नहीं मिलाया है। यह मैं मिलान कर देख चुका हूं। इस बत को उन दिनों कलकत्त में पधारे श्री ओउम् प्रकाश जी त्यागी महामन्त्री सार्वदेशिक सभा ने भी सब लेखों को देख कर स्वीकार किया। यह सम्मति सार्वदेशिक में छप भी चुकी है।

पण्डित दीन वन्धु जी ने ऋषि प्रयुक्त संस्कृत शब्दों को बंगला समझ कर उनका अनुवाद उर्दू में कर दिया था। मैंने ऋषि कथित उन्हीं संस्कृत शब्दों को जीवनी में अंकित कर दिया है। यत्र तत्र अनुवाद की सारगर्भित त्रुटियों का संशोधन कर हस्त लेखानुसार पाठ करा दिया। पाण्डु लिपि के पृष्ठों की संख्या भी दी गई है, जो ३७४ है। बंगला भाषा भी हिन्दी में टिप्पणी में दे दी है।

शंकाओं के निवारणार्थ अनेक यात्रा ग्रन्थ, भूगोल और ऐतिहासिक ग्रन्थों को आद्योपान्त पढ़ा।

इस सारी छान बीन से निष्कर्ष यह निकलता है कि:—

१.—अज्ञात जीवनी सारी की सारी पुराने बंगला लेखकों की लिखी हैं। बहुत पुरानी है। कागजा भी पुराना है। शीर्ण-जीर्ण पृष्ठ भी हैं। दीमक के खाये भी हैं।

२. ३७४ पृष्ठ तक के हस्तलेखों का मुद्रित अंकों से संतुलन किया। अगले लेखों का उस समय मिलान न हो सका। 'सार्वदेशिक' के ६१वें लेख तक का मिलान कर सका।

ऋषिकेश से मानसरोवर शीर्षक वाले ६२ वें अंक को कोई महानुभाव ले गये थे। उपद्रवों के कारण वे न आ सके।

३. ऋषिवर के कलकत्ता-वास के समय एक बंगला भाषा की छोटी सी पुस्तक ऋषि को भेंट की गई थी। वह ऋषि के आगमन से पूर्व की प्रकाशित है। उसका कागज इन हस्तलेखों से भी नया लगता है। वह मेरे पास है।

४. कुछ पन्ने स्वामी जी के समक्ष लिखे लेखों के पश्चात् दूसरी बार लिखे गए प्रतीत होते हैं। कुछ खराब होने पर पुनः लिखे गए प्रतीत होते हैं, सभी बहुत पहले के हैं। एक-एक पृष्ट पर आरम्भ और मध्य में अलग-अलग पृष्ठांक हैं।

५. पं० दीनबन्धु जी की कोई कल्पना कहीं पर नहीं है।

६. दो स्थलों की दो २ प्रतियाँ भी हैं। लेख मिलता है।

७. हस्त लेख १०-१२ प्रकार से अधिक हैं। सब भिन्न-२ हैं।

लेखों के फोटो भी मैंने लिए हैं। पं० दीनबन्धु जी के लेख का भी फोटो लिया है। सब भिन्न हैं लेखाक्षर नहीं मिलते। लेख चित्रों में देखें में देखें।

८. कलकत्ता आर्यसमाज के सब ही व्यक्ति पं० दीन बन्धु जी की सच्चाई के कारण उनके प्रति सम्मान भाव रखते हैं।

९. श्री पं० उमकाँत जी तथा पं० सदाशिव जी आदि सब ही सार-हीन समालोचना और पं० दीनबन्धु जी का लेखों में अपमान करने से दुःखी हैं।

१०. पूना प्रवचन और थियासोफिस्ट जीवनी से इस जीवनी का कोई भेद नहीं है। अपितु अज्ञात जीवनी में उनमें आये स्थानों और घट-नाओं का विशद उल्लेख है। पृष्ठ—२७३ से ३२७ तक परिशष्ट ८ देखें

११. कोई भी स्थान अज्ञात जीवनी में ऐसा नहीं है, जिसका पुरा पता-ठिकाना मालूम न कर लिया गया हो। गुफा, नदो, नाले, घाट, मन्दिर, तीर्थ, वन, पर्वत, तालाब सब की ही पूरी जानकारी लिखित मौजूद है। परिशिष्ट १ से ७ में देखें पृष्ठ २५३ से २७१

१२. बड़ौदा से बनारस जाना, थियासोफिस्ट, पं० लेखराम, देवेन्द्र बाबू ने अपने २ ग्रन्थों में स्वीकार किया है। देखें—१२६ से१२८। बनारस के अध्ययन काल केगुरुओं के नाम तकभी देवेन्द्रबाबू के बंगला में प्रकाशित दूसरे संस्करण में मिलते हैं इसकी एक प्रति मुझे पं०दीनबन्धुजी से प्राप्त हो गई है अन्यत्र अप्राप्य है इसे कलकत्ता वासकाल में गोविन्दराम हासानन्द ने छापा था। जिसे कलकत्ता आर्यसमाज ने छापने से इंकार कर दिया था।

१३. ऋषि के पूना प्रवचन के १०वें व्याख्यान और १६वें व्याख्यान में उल्लिखित अलकापुरी,देहविघटन,काश्मीर,कैलाश यात्रापृ. ६७ पृ. १२९ १३२ के उल्लेख की अज्ञात जीवनी पुष्टि करती है।

१४. अलखनन्दा स्रोत की यात्रा में अब तक अज्ञात 'मग्नम्' बद्री-नाथ से १३४ मील पर कैलाश यात्रा के मध्य का पड़ाव है। देखो--पृ.१३० १३२ कैलाश के १३ यात्रा-मार्गों में से यही सबसे कठिन मार्ग है,इस मार्ग से यात्रा का वर्णन केवल एक अंग्रेज यात्री का ही और मिलता है यह सब विवरण १३वर्ष तक कैलाश मानसरोवर पर रहने वाले,स्वा प्रणवानन्द जी की'कैलाश मानसरोवर यात्रा' में मिलता है, जिसकी भूमिका पं० जवाहर लाल नेहरू ने लिखी थी। ऋषि के हिमालय के मार्गों एवं स्थानों की यात्रा वर्णन की पुष्टि गौरीशंकर शिखरारोही श्री रामराहुल जी ने की है। इसमें किंचिन्मात्र भी असत्य नहीं है।

१५. ऋषि की तिब्बत यात्रा का उल्लेख भी 'तिब्बत में तीन वर्ष' नामक पुस्तक में मिलता है जो (पुस्तक) जापानी यात्री 'श्री ईकाई का वागुची रचित है। देखो—१३८-१४०

१६. सन् ५७ में ऋषि दयानन्द ने केवल साधु-संघटन ही नहीं किया था अपितु अश्वारोही बनकर स्वयं भाग भी लिया था। ब्रह्मावती बिठूर के विनाश की घटना का प्रत्यक्ष अवलोकन न किया होता तो 'सत्यार्थ प्रकाश' में भी उल्लेख न होता। देखो—१०३-१४०

१७. नाना साहब, उनकी मुंह बोली बहिन लक्ष्मीबाई, माता गंगा बाई, छोटे भाई बाला साहब, मंत्री अजीमुल्लाखाँ और उनके लिपिक तांत्याटोपे, नाना के साथी वीर विक्रमसिंह, यह सारा परिवार कानपुर से कुम्भ मेले पर हरद्वार गया। इसमें सन्देह की कोई बात नहीं। क्योंकि नाना साहब ही अंग्रेजी पत्र के लेखानुसार दयानन्द के नाम से टंकारा मे ही छुपकर रहे थे। आर्यसमाज के मन्त्री के पत्रानुसार नाना साहब की टंकारा में छतरी बनी है। अपनी मृत्यु पर नाना साहब ने सोने और अशर फियों से भरी छड़ी अपने अन्तिम संस्कार के लिए दी थी। नाना के हाथ से बने चित्र भी वहाँ रखे हैं। नाना साहब यदि दयानन्द के शिष्य न होते तो जान को जोखम में डाल गुरुभूमि की धूलि में वास क्यों स्वीकार करते। देखो—११८-१२२

१८. चपातीं, कमल की प्रथा भी अत्यन्त प्राचीन है। इतिहासकार भी इसके उद्गम का पता न लगा सके। इनकी प्रयोग विधि का पूरा २ उल्लेख The Oxford History of India, By Vincent A Smith C.I.6 के ७१४ पृष्ठ पर है।

बाबू रामगोपाल घोष ने भी G.D. ६१२ P. के पते से उल्लेख किया है। पी- ३५-६६ में भी इसका उल्लेख है। ७२० पृष्ठ परगंगाबाई का लक्ष्मीबाई के साथ सम्बन्ध बताया है। '१८५७ का भारतीय स्वतन्त्र्य संग्राम' नामक जगत् प्रसिद्ध इतिहास में वीर सावरकर ने भी इन सब घटनाओं का वर्णन विस्तार से किया है। अन्य भी अनेक प्रमाण हैं। १२२-१२५

१९ बाल्य-जीवन, वैराग्य, योगाभ्यास आदि के ३८ लेख सबने ही निरापद माने हैं। खोज से सारी अज्ञात जीवनी ही निरापद हैं।

अज्ञात जीवनी की १९२५ से प्रतीक्षा

—श्री पं० दीन बन्धुजी शास्त्री बी.ए. आचार्य आर्य समाज, कलकत्ता अज्ञात जीवनी के पुराने हस्तलेखों की खोज में ४५ वर्ष से लगे रहे।

—१९२५ में मथुरा में श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर आर्य नेताओं से विचार-विमर्श हुआ। सब ही ने उत्साह प्रकट किया।

—१९२६ को टंकारा में श्रीमद् दयानन्द शताब्दी में आर्य नेताओं को अज्ञात जीवनी की क्रमिक उपलब्धि की सूचना दी गयी सबही से अपूर्व उत्साह मिला।

—सन् १९३३ में अजमेर में श्रीमद् दयानन्द अर्धशताब्दी उत्सव में खुले पण्डाल में अज्ञात जीवनी के अनुसन्धान के बारे में भाषण दिया। 'आर्य समाज के इतिहास' में पं इन्द्रजी ने इसका उल्लेख किया।

—श्री हेमचंद्र चक्रवर्त्ती की 'दिन पंजी' से 'महर्षि के बंगाल में चार महीने की दैनं दिनकर्म सूची' मिली। आर्य समाज कलकत्ता ने 'दयानंद प्रसंग'' नाम से प्रकाशित किया।

—स्वामी स्वतंत्रदानन्द जी ने उसका हिंदी अनुवाद भी प्रकाशित किया। पं इंद्रजी विद्यावाचस्पति ने अपने 'आर्य समाज का इतिहास' में इस पर हर्ष प्रकट किया।

—श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर, पं० घासीरामजी एडवोकेट प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रांत, दीवान हर विलासजी शारदा, महाशय रघुनंदन लालजी, पं० मिहिरचंदजी धीमान ने इस अज्ञात जीवनी के उद्धार में बहुत उत्साह दिया।

—इस अज्ञात जीवनी के प्रकाशित होने पर आर्य जगत् में अपार हर्ष है। ऋषि की जोखम भरी यात्राओं और योग का अपूर्व दिग्दर्शन या ऋषि भक्त तथा अन्य धन्य हो गये हैं। हृदय से पं० दीनबंधु के इस ४० वर्ष के अध्यवसाय की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। यदि सूर्य का प्रकाश उल्लूक को नहीं भाता तो उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।
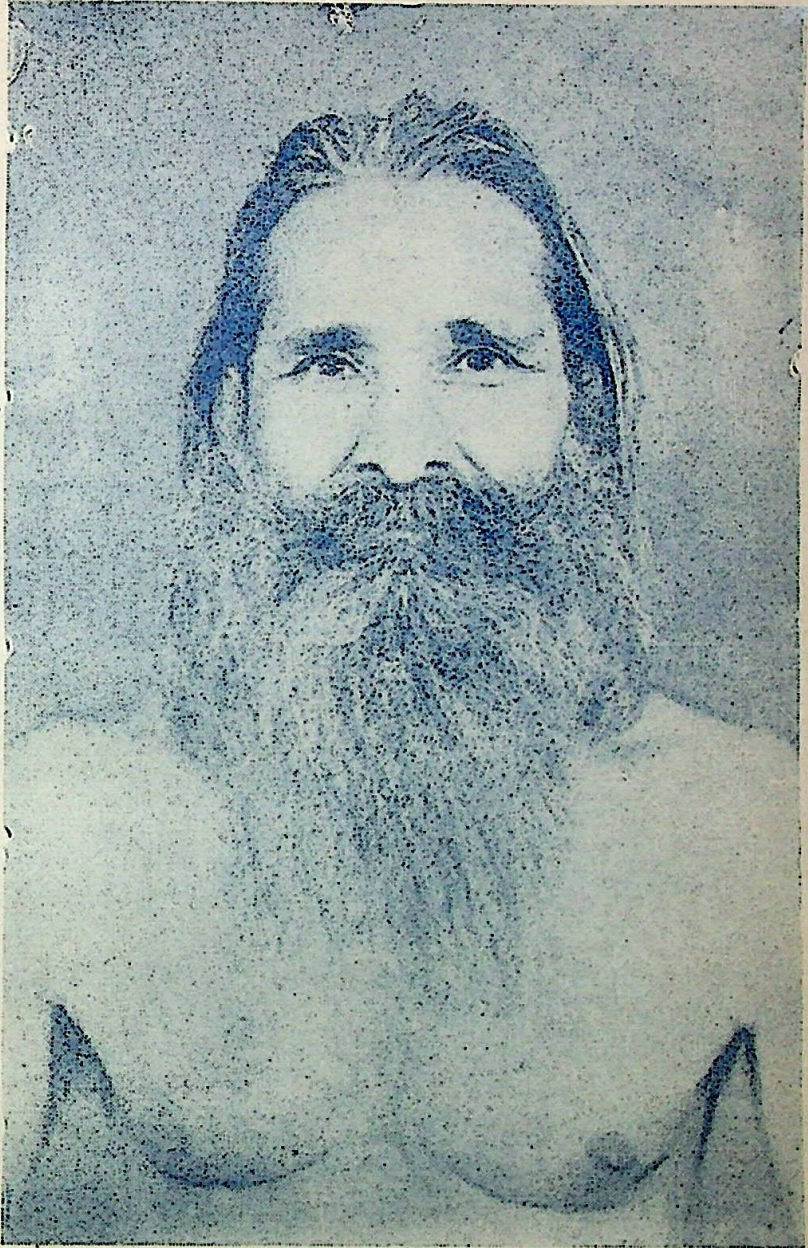
अध्यक्ष : श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती 'योगी' महामहिम, पातञ्जल योग-साधना संघ, श्री नारायण स्वामी आश्रम, नैनीताल।
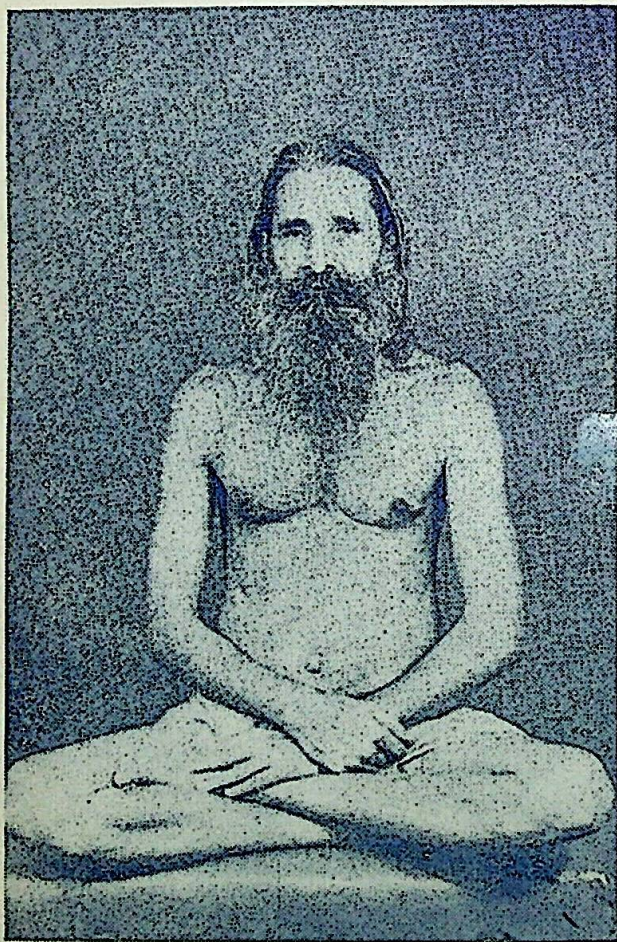
योग गवेषक, पोषक, ऋषि यात्रा-यात्री
स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती योगी
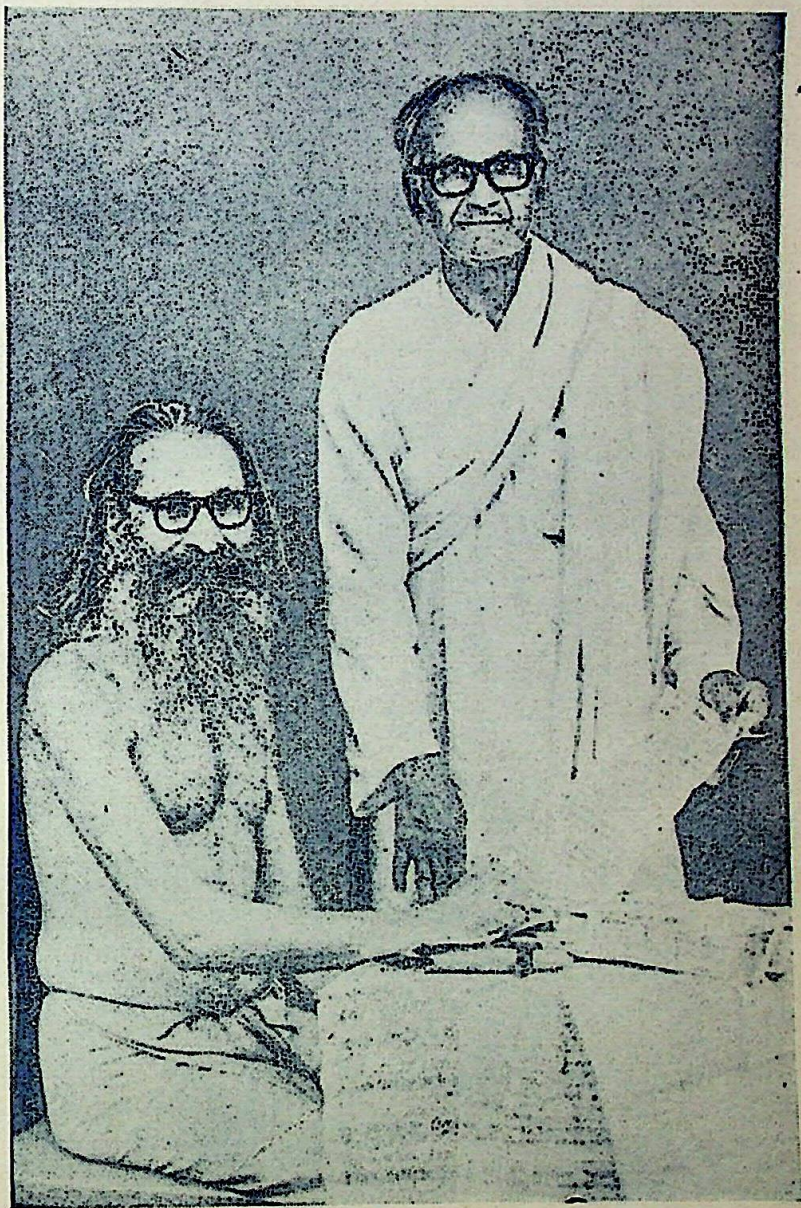
श्री पं० दीन बन्धु जी तथा योग गवेषक, योगी तथा बंगला पाण्डु लिपि के १८७३ के जीर्ण पत्र

श्री पं० दीन बन्धु जी वेद शास्त्री बी० ए०, वेदाचार्य-
शान्तिनिकेतन, कलकत्ता।

पृष्ठ भूमि

सन् १९२३ में आर्यसमाज कलकत्ता के दीपावली उत्सव के सभापति पद से भाषण देते हुए श्री विपिनचन्द्र पाल (बंग-भंग आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलन के नेता, सुप्रसिद्ध राजनीतिक वक्ता और ब्राह्म-समाज के विशिष्ट पुरुष) ने घोषणा की थी—"महर्षि दयानन्द सरस्वती वर्तमान युग के अनन्य श्रेष्ठ महापुरुष थे। बहुत ही खेद की बात है कि उनकी अज्ञात जीवनी का उद्धार आज तक भी हुआ नहीं। यह उत्तर-दायित्व विशेष रूप से आर्यसमाज का है इसके लिये भगीरथ प्रयत्न होना चाहिए।"

श्रीरामानन्द चटर्जी एम० ए० ("Modern Review"), एवं "प्रवासी" पत्र के सम्पादक और साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य) ने कहा था—"महर्षि दयानन्द बंगाल में आकर पूरे चार महीने (१६ दिसम्बर १८७२ से १६ अप्रैल १८७३ तक) रहे। काशी-शास्त्रार्थ (१८६९) के **विजयी वीर** महर्षि दयानन्द के दर्शन के लिये बंगाल के सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक, धर्म संस्कारक, साहित्यिक, कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक और चिन्तनशील मनीषी लोग उनके रहने के स्थान महाराजा यतीन्द्र मोहन ठाकुर के वराहनगरस्थ नाईवान नामक प्रमोद कानन में प्रतिदिन अधिक संख्या में आते जाते थे। विशिष्ट पुरुषों से उनका विचारविनिमय, वार्ता-लाप, आलोचना और शंका-समाधान भी होता था। बहुतों के साथ उनका प्रेम-प्रीति और सौहार्द भी पैदा हो गया था। उनकी मुख निःसृत और संस्कृत भाषा में कथित वाणियों को लिपि-बद्ध करने के लिये **महर्षि देवेन्द्र-नाथ ठाकुर, पं० ईश्वरचन्द्रविद्यासागर और ब्रह्मानन्द श्री केशवचन्द्रसेन** ने कुछ एक विद्वान् लेखकों की नियुक्ति की थी। वे सब संस्कृत में लिखित विवरण आज कहाँ? "दयानन्द-चरित" के लेखक श्री देवेन्द्रनाथ

मुखर्जी को इसका पता नहीं मिला था। आज अगर वह अमूल्य सम्पद् मिल जाय तो धर्म जगत् के लिये बहुत ही उपकार होगा। आर्य-समाज कलकत्ता का इसके उद्धार के लिये पूर्ण प्रयत्न परम कर्त्तव्य है।"

पं० श्री रसिक मोहन विद्याभूषण (वैष्णव दार्शनिक और शताधिक वर्ष-जीवी पुरुष) ने कहा—"उस समय तक महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के करीब ५० वर्षों की प्रधान-प्रधान घटनाओं को सुनाया था,केवल पिता का नाम और जन्म-स्थान का परिचय नहीं बताया। शर्त भी थी कि उनकी मृत्यु से पूर्व यह विवरण मुद्रित न होने पावे। सम्भवतः यह विवरण ब्राह्म समाज के नेताओं के पास ही रह गये और उनका ध्यान ही नहीं रहा।"

पं० श्यामलालजी गोस्वामी (बंगाल के सुप्रसिद्ध धर्मवक्ता) ने कहा —"उस समय से १० वर्ष बाद महर्षि दयानन्द की मृत्यु हुई थी। इन दस वर्षों के अन्दर ब्राह्मसमाजी आदि,नव विधान और साधारण इनतीन नामों में विभक्त होकर परस्पर प्रतियोगिता करते रहे और महर्षि दयानन्द जब राजकोट, बम्बई. पूना, लाहौर,अहमदाबाद आदि स्थानों में आर्यसमाज की स्थापना करने लगे तब वहाँ के प्रार्थना-समाजों (ब्राह्म समाज) के साथ आर्यसमाजों की प्रतिद्वन्द्विता शुरु हो गई थी। इस स्थिति में महर्षि दयानन्द की मृत्यु (१८८३) में हो गयी। उस लिपिबद्ध विवरण के प्रति ब्राह्मसमाज स्वाभाविक रूप से ही उदासीन हो गया था। श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी (बंगदर्शन पत्र के सम्पादक), श्रीनगेन्द्रनाथ चटर्जी (महात्मा दयानन्देर संक्षिप्त जीवनी" के लेखक) और श्री देवेन्द्र नाथ मुखर्जी ('दयानन्द चरित" के लेखक) को भी उस लिखित विवरण का पता नहीं मिला था। आर्य समाज और ब्राह्म समाज के अन्दर वैमनस्य भी इसके लिये एक कारण था। सन् १८७३ से आज १९२३ है - यह तो ५० वर्ष की बातें हैं। महर्षि दयानन्द की मृत्यु (१८८३) के बाद भी आज ४० वर्ष चले गये। वह लिखित विवरण मिल जाये तो अच्छा ही है। लेकिन भगवान् जानते हैं कैसे इसका उद्धार होगा।"

पं० शंकरनाथ (भवानीपुर कलकत्ता ब्राह्मसमाज के सभापति और कलकत्ता हाईकोर्टके विचारपति पं० शम्भुनाथ के सुपुत्र और आर्यसमाज कलकत्ता के सभापति) ने कहा—"आजकल ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज के अन्दर कोई वैमनस्य नहीं है। बहुत पहले महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने आदि ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज को एकत्र करने के लिये कोशिश भी की थी। श्री वलयेन्द्रनाथ ठाकुर को इन्होंने इस उद्देश्य से लाहौर आर्य-

समाज तक भेजा था। उनके प्रबल आग्रह से हमने आर्यसमाज के पं० अच्युत मिश्र को बोलपुर शान्ति निकेतन में दैनिक होम करने के लिए भेजा था। जब तक देवेन्द्रनाथ ठाकुर जीवित रहे तब तक वहाँ दैनिक होम चालू रहा। पंजाब के विशिष्ट आर्यसमाजी श्रीरामभजदत्त चौधरी के साथ महर्षि देवेन्द्रनाथ की दौहित्री श्रीमती सरलादेवी का विवाह हुआ था और उस विवाह का अनुष्ठान मेरे घर पर ही हुआ था। आजकल आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज के अन्दर सामाजिक और व्यावहारिक वैमनस्य कुछ भी नहीं है। दोनों समाजों के विशिष्ट सदस्य लोग परस्पर दोनों के वार्षिक उत्सवों में शामिल होते हैं। महर्षि दयानन्द की अज्ञात जीवनी के उपादान जिनके हाथों में हों, वे अवश्य देने की कृपा करें।"

वर्तमान लेखक ने कहा—"दोनों समाजों में वेद की मान्यता के सम्बन्ध में वैषम्य अवश्य है। ब्राह्मसमाज के प्रवर्तक राजा राममोहनराय वेद को अभ्रान्त और अपौरुषेय नहीं मानते थे। आज भी आर्यसमाज के उत्सवकालीन यज्ञों में आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य पं० श्री सुरेशचन्द्र सांख्य-वेदान्ततीर्थ, नवविधान ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री द्विजदास दत्त (अध्यक्ष शिवपुर इन्जीनियरिंग कालेज और अलीपुर षड़यन्त्र मामले के आसामी श्री उल्लासकर दत्त के पिता) और साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री अनाथकृष्ण शील सम्मिलित होते हैं। मैं भी ब्राह्मसमाज के आमन्त्रणानुसार चितपुर रोड के आदि ब्राह्मसमाज की वेहाला की और उल्टा डांगा साधारण ब्राह्मसमाज की वेदी से शास्त्र-पाठ करता हूं। अगर ब्राह्मसमाज वेद को अपौरुषेय और अभ्रांत मान लेता तो महर्षि दयानंद कभी आर्यसमाज नाम से कोई नयी धर्म संस्था स्थापित नहीं करते। जो कुछ हो, अगर महर्षि की कथित आत्म-जीवनी, वार्तालाप, शंका समाधान और आलोचना-प्रसंगों की पांडुलिपि (Manuscript) विनष्ट न हो गई हो, तो उसका पुनरुद्धार हम लोग जरूर करेंगे।"

उस सभा में **थियोसोफिस्ट** (Theosophist) नेता श्री हीरेन्द्र नाथ दत्त वेदान्तरत्न एम. ए. पी. आर-एच, धर्मवक्ता पं० कुलदाप्रसाद मलिक आदि वक्ताओं ने अपने-अपने व्याख्यानों में हर्ष प्रकट किया था आर्यसमाज कलकत्ता के विशिष्ट पुरुष श्रीमान् सेठ दीपचन्द जी पोद्दार श्रीहरगोविन्द गुप्त, सेठ श्री छाजुरामजी चौधरी, श्री तुलसीदास जी दत्त और श्री वलाई चन्द जी मलिक (प्रथम भारतीय डिप्टी मजिस्ट्रेट श्री रसिककृष्ण मलिक के

पुत्र और 'Hindu Patriot" पत्र के सम्पादक श्रीकृष्णदास पाल के भानजे, आदि व्यक्तियों ने इस जीवनी-उद्धार-कार्य के लिये योजना भी बनाई थी। कृष्ण कुमार मित्र ("संजीवनी" पत्र के सम्पादक, बंग-भंग आन्दोलन के नेता और योगिराज अरविंद घोष के मौसे) ने कहा—"महर्षि दयानंद की अज्ञात जीवनी का उद्धार हो जाय तो मैं अपने पत्र 'संजीवनी" में उसको धारावाहिक प्रकाशित करूँगा।"

वर्तमान लेखक तब ही (सन् १९२३) से आजतक (४५ वर्ष) से इस कार्य में लगा हुआ है। आशाजनक फल भी मिलने लगे। इसके दो वर्ष बाद (सन् १९२५) मथुरा की श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर आर्य नेताओं से इस अज्ञात जीवनी के बारे में विचार-विमर्श किया था। सब ही ने उत्साह प्रकट किया था। सन् १९२६ में टंकारा में श्री मद्दयानंद शताब्दी उत्सव में आये हुए आर्य नेताओं को इन अनुसंधानकार्यों की सम्भाव्य सफलता के बारेमें सूचना दी थो सब से अपूर्व प्रोत्साह न मिला था। सन् १९३३ में अजमेर में श्रीमद्दयानंद-निर्वाण अर्ध शताब्दी उत्सव के चौथे दिन खुले पंडाल में महर्षि की अज्ञात जीवनी के अनुसंधान कार्यों की सफलता के बारे में भाषण दिया था। प्रो० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति ने अपने 'आर्यसमाज का इतिहास" नामक ग्रंथ में उस व्याख्यान के बारे में उल्लेख किया है। महर्षि दयानंद के भक्त श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती (आदि ब्राह्म समाज के उपाचार्य) की दिन पंजी से महर्षि के बंगाल में चार महीने की दैनन्दिन कर्म-सूची 'दयानंदप्रसंग" नाम से मिल गयी थी। आर्य समाज कलकत्ता ने महाशय श्री रघुनन्दनलालजी की प्रेरणा पर उस कर्म-सूची को 'दयानंद प्रसंग" नाम से ही प्रकाशित किया था। पूज्य स्वामी स्वतत्रतानंद जी महाराज ने "दयानंद-प्रसंग" का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया था। प्रो० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति ने अपने "आर्य समाज का इतिहास" ग्रन्थ में 'दयानंद-प्रसंग" का उल्लेख करके हर्ष प्रकट किया है। पं० भगवद्दत्तजी बी.ए. पं० घासीराम जी एडवोकेट और दीवान हरविलासजी शारदा से और कलकत्ता के महाशय रघुनंदन लाल जी और पं० मिहिरचंद जी धीमान से बहुत ही उत्साह मिला है।

आज तक भी इस विषय का अनुसंधान-कार्य बंद नहीं हुआ है। कलकत्ता से बाहर भी मुख्य-मुख्य जीवित जाग्रत ब्राह्मसमाजों के पुराने दफ्तर, कागजात, फाईलें, खाते, पत्र, नाम-पते जो मैंने महर्षि दयानंद के

बारे में खोज किये, उस समय के पुराने समाचार पत्रों की फाईलों से और जिस-जिस घर में महर्षि के उपदेश हुए थे, प्रवचन हुए थे या वार्तालाप हुए थे, वहाँ के अतिवृद्ध नर-नारियों के मुखों से ग्रहणीय बातें कुछ-न-कुछ श्रवण की गयी थीं। उन सब स्थानों के जनप्रवाद और कहानियाँ महर्षि के बारे में सुनीं। जहाँ-जहाँ महर्षि का आना-जाना होता था, वहाँ के लोग उनके ,भक्त, प्रशंसक, अनुयायी या विरोधी बन गये थे। सभी जगह उपादान-संग्रह के लिये गया था। कभी-कभी एक ही स्थान पर कुछ-न-कुछ मिलने की आशा से घण्टों दिन·मास घूमना पड़ा। कभी आशा सफल हुई, कभी विफल भी हुई। किसी-किसी सज्जन ने मुझको 'दयानन्द का दीवाना" "या 'विकृत मस्तिष्क" का खिताब दिया था। मैंने प्रसन्नता से सब कुछ शिरोधार्य कर लिया।

महर्षि दयानन्द के बंगाल पधारने के समय से आज ९५वाँ वर्ष बीत रहा है। आज से २५वर्ष पहले भी बहुत वृद्ध पुरुष मिलते थे, जिन्होंने महर्षि के दर्शन किये थे। आज उन सबों का अभाव हो गया है। महर्षि के बारे में कागज के कुछ पुराने टुकड़े पुरानी बंग लिपि या संस्कृत लिपि में लिखे हुए ढूंढता था पर उनको भी बहुत आदमी पूर्वजों की धरोहर समझकर देना या दिखाना भी नहीं चाहते हैं। इस रूप में उपादान संग्रह करके महर्षि की अज्ञात जीवनी का प्रकाशित करना असम्भव ही मालूम पड़ा था। लेकिन भगवान् की कृपा से इस कार्य में आशा की किरण दीख पड़ी है। जो-जो पुरुष महर्षि की जीवनी -की सारी बातें संस्कृत में कही हुई सुनकर लिखने के लिए नियुक्त हुए थे उन सबके बंगलिपि में बंग भाषा में लिखे हुए विवरण मिल गए हैं। भविष्य में और भी कुछ मिलने की आशा है। उन सब अंशों को क्रमानुसार रखकर लेखों का विन्यास किया गया है। जिन्होंने लिखा था उनके नाम, लिखने की तारीख और मेरे द्वारा उसकी प्रतिलिपि करने की तारीख और विवरण किस रूप से प्राप्त हुए हैं आदि उल्लेखनीय बातें दी जायेंगी।

अज्ञात जीवनी की सूचनाएँ

(१) पं० सत्यव्रत सामश्रमी के गृह से प्राप्त लिखित विवरण से महर्षि दयानन्द के बाल्य-जीवन की बहुत-सी घटनाएँ मिली हैं जो कि बहुत ही विस्मयकर और चित्ताकर्षक हैं। नमूने के रूप में एक घटना दी जाती है। उसमें लिखा है कि दयाराम (दयानन्द) को बहुमूल्य आभूषणों

के साथ चोर चुराकर ले गये थे। दो दिन के बाद लड़के के मिल जाने से लड़के के शरीर के भार के समान सोने चान्दी से तुलादान और देवताओं केपूजा-पाठ और ब्राह्मण-भोजन हुआ था, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्री त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य विद्याभूषण।

(२) ऐतिहासिक श्रीरमेशचन्द्र दत्त आई० सी० एस० के गृह से महर्षि दयानन्द के बाल्य-जोवन के वैराग्य की वर्णना प्राप्त हुई है। अपनी बहन और चाचा की मृत्यु से इहलोक और परलोक के बारे में शंका पैदा हो गई थी। उसमें उल्लेख है कि उनके घर में साधु-संन्यासी भिक्षुक आदि जो कोई आते थे उन सबसे दयाराम (दयानन्द) पूछते थे कि 'मनुष्य-पशु-पक्षी मरकर कहाँ जाते हैं ?" मृत्यु के बाद की हालत जानने के लिए दयाराम कभी-कभी मरने के लिए भी तैयार हो जाते थे इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्रीनृत्यगोपाल चौधरी स्मृति रत्न।

(३) रिषिड़ा (हुगली)के पं० श्री सत्याचरण शास्त्री के गृह से जो विवरण मिला है उसमें है—दयाराम (दयानन्द) गृह से भागकर चार वर्ष तक योगी-साधु-संन्यासी-तपस्वियों की खोज में नाना स्थान घूमे थे। उस समय उनको देवता के सम्मुख बलिदान देने के लिए तांत्रिक साधु पकड़ कर ले गये थे। शिकारी लोगों के शिकार के लिए वहाँ आ जाने से उनके जीवन की रक्षा हो गई थी इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्री नवीन चन्द्र अधिकारी व्याकरण-शास्त्री।

(४) साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री अनाथकृष्ण शील के गृह से जो विवरण मिला है उससे जाना जाता है कि दयाराम (दयानन्द) ने साधु-संन्यासी-तपस्वियों के अन्दर संगठन के लिए प्रयत्न किया था। देश की बुरी हालत मिटाने के लिए साधुओं को तैयार करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने सिपाही विद्रोह (Sepoy mutiny) आन्दोलन के साथ भी सम्पर्क स्थापित किया था मराठी नेता नाना साहब भी महर्षि दयानन्द से विचार-विमर्श करने के लिए आये थे, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे—श्री अवन्ती कांत चक्रवर्ती न्यायरत्न।

(५) श्री महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के प्रपौत्र श्री क्षेमेन्द्रनाथ ठाकुर के गृह से विवरण मिलता है कि दयानन्द ने ५ वर्ष तक अवधूत के रूप में गंगोत्तरी से गंगासागर (बंगाल), गंगोत्तरी से

सेतुबंध रामेश्वर लंका और सेतुबंध रामेश्वर से देश के नाना स्थानों में भ्रमण किया। प्रधान-प्रधान सैन्यावासों में भी आया-जाया करते थे। वैराकपुर सैन्यावास (बंगाल) में भी आये थे। मंगल पांडे नामक सैनिक ने उनसे आशीर्वाद माँगा था। दयानन्द इसके बाद मथुरा में स्वामी विरजानन्द के पास वेदादि ग्रन्थ पढ़ने के लिए आए थे, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे —श्री शिवचन्द्र राय विद्यार्णव।

(६) श्री वलाई चंद जी मल्लिक के गृह से जो विवरण मिला है उससे मालूम हो जाता है कि दयानन्द गुरु विरजानन्द से आशीर्वाद लेकर वेद प्रचारार्थ देश-भ्रमण से पहले साधना में निमग्न हुए थे। इस साधना की वर्णना इस विवरण में मिलती है, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे— श्री नलिनी कान्त भट्टाचार्य विद्याविनोद।

(७) उल्टा डांगा साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य अध्यापक श्री हृदय कृष्ण दे एम०ए० के गृह से जो विवरण मिला है उससे जाना जाता है कि महर्षि दयानन्द वेद विद्यालय की स्थापना के लिए भारत के नाना स्थानों में भ्रमण कर रहे हैं इत्यादि। इस अंश के लेखक थे —श्री मधुसूदन आचार्य वाचस्पति।

(८) वेहाला आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री बेचाराम चटर्जी के वंशधर श्री हेमेन्द्र नाथ चटर्जी के गृह से जो विवरण मिला है उससे काशी शास्त्रार्थ का पूरा विवरण मिल जाता है, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्री प्रफुल्लचंद्र मुखर्जी तर्कलंकार।

(९) वराहनगरवासी आचार्य श्री शशिपद बनर्जी के दौहित्र, अध्यापक श्री देवव्रत चक्रवर्ती के गृह से जो विस्तृत विवरण मिला है उसके लेखक स्वयं श्री शशिपद बनर्जी थे। उसमें महर्षि दयानन्द के रहने के स्थान वराह नगर (कलकत्ता) के नाईवान प्रमोद कानन में कलकत्ता के प्रधान-प्रधान व्यक्ति और महर्षि दयानन्द के साथ जो कुछ वार्तालाप, शंका समाधान हुए थे, सब कुछ लिपिबद्ध हैं, इत्यादि।

(१०) आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री सुरेशचंद्र सांख्य-वेदांत तीर्थ के गृह से जो विवरण का अंश मिला है उसमें महर्षि दयानंद और पं० ताराचरण तर्करत्न से हुगली में जो शास्त्रार्थ हुआ था उसका पूरा विवरण है इत्यादि। इस अंश के लेखक थे—श्री सतीशचंद्र सान्याल विद्यालंकार। श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती, ऋषि के योग शिष्य से प्राप्त किया।

(११) आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर के गृह से जो विवरण का अंश मिला है उसमें महर्षि दयानन्द प्रदत्त योग-साधन विषयक उपदेश है। वह विवरण आदि ब्राह्मसमाज के उपाचार्य श्री हेमचंद्र चक्रवर्ती का लिखा हुआ है। हेमचंद्र महर्षि से योग विद्या सीखते थे। हेमचंद्र अधिकांश समय महर्षि के साथ-साथ ही रहते थे। यह आपने स्वयं लिखा है।

(१२) साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य पं० श्री सीतानाथ तत्त्व-भूषण के गृह से जो विवरण का अंश मिलता है उससे जाना जाता है कि महर्षि दयानन्द प्रत्यक्ष रूप से कभी किसी स्त्री को उपदेश नहीं देते थे। एक दिन वराहनगर में आचार्य शशिपद वनर्जी के आश्रम में महर्षि दयानन्द के उपदेश का प्रबन्ध हुआ था। उपदेश शुरू होने के बाद उस स्थान पर अगल-बगल गाँवों की स्त्रियाँ धीरे-धीरे शताधिक हो गई थीं। महर्षि के उपदेश के बाद सब स्त्रियों ने एकत्र होकर उनको प्रणाम करना शुरु कर दिया। महर्षि ने मना किया किन्तु किसी ने भी नहीं सुना। महर्षि निरुपाय होकर आँखें बन्द करके प्रार्थना करने लगे। फिर स्त्रियों के शान्त होके बैठ जाने पर महर्षि ने स्त्रियों के लिए विशेष धर्म पर भाषण दिया था। इस उपदेश के लेखक थे—श्री धरणीधर मैत्र विद्यारत्न।

अब तक उपरिलिखित भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त महर्षि दयानन्द के मुख से निःसृत आत्म-जीवनी के आभास मिल पाए हैं उन सबको धारा-वाहिक रूप से हिन्दी में अनुवाद किया गया है। बाल्य-जीवन. वैराग्य गृह-त्याग, साधुसंग, देशभ्रमण. वेदविद्यालय, प्रचार, वेदविद्यालय-स्थापन, शास्त्रार्थ, शंका-समाधान आदि नामों से महर्षि की अपनी जीवनी के बारे में अपने मुख से निःसृत वाणियाँ रखी गयी हैं जो कि क्रमानुसार, यहाँ प्रकाशित की जा रही हैं।

—दीनबन्धु वेदशास्त्री
आचार्य आर्यसमाज, कलकत्ता

—उत्तरार्द्ध

योगी का आत्मचरित्र

(प्रवचन तिथि : १६-१२-१८७२ से १६-४-१८७३)

पृष्ठ संख्या ६ से २४३

परिशिष्ट

योगेश्वर महर्षि दयानन्द सरस्वती

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।वेद

यति दयानन्द के लिये भालु मधु से परिपूर्ण छत्ता छोड़ रहा है । (पृष्ठ ४२)

योगेश्वर महर्षि दयानन्द का आत्मचरित

प्रथम अध्याय

बाल्य-जीवन

(१)

मेरा जन्म-स्थान और जन्म-काल :—गुजरात (गुर्जर) प्रदेश के काठियावाड़ (सौराष्ट्र) के अन्तर्गत मौर्वी राज्य में डेमी नदी के किनारे अवस्थित एक नगर में सम्वत् १८८१ (सन् १८२४) में औदीच्य ब्राह्मण कुल में मेरा जन्म हुआ था। इस हिसाब से मैं गुजराती ब्राह्मण (सन्त) संन्यासी हूं और दूसरे हिसाव से मैं केवल एक भारतीय संन्यासी हूं। मेरी अवस्था अब (सन् १८७३ में) प्राय: ४८ वर्ष की है।

मेरा बंश-परिचय—वेद-विरोधी बौद्ध और जैन मतों के प्रबल प्रचार होने के कारण कई एक प्रान्त प्राय: वेद-भ्रष्ट हो गये थे। यथा—

'अंग-बंग-कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च।
तीर्थ-यात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति ॥"

(प्राचीन स्मृति वचन)

अर्थात् तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य के विना दूसरे उद्देश्य से अंग (उत्तर विहार), बंग (पूर्व-पश्चिम बंगाल), कलिंग (उड़ीसा और आगे दक्षिण देश), सौराष्ट्र (काठियावाड़ राज्य) और मगध (दक्षिण विहार) प्रदेश में जाने से प्रायश्चित्त का भागी बनना पड़ता है।

सौराष्ट्र को वेद-भ्रष्टता के पाप से बचाने के लिये आज से लगभग आठ सौवर्ष पूर्व वहाँ के धर्म-भीरु राजा मूलराज ने उत्तर भारत से करीब एक हजार वेदज्ञ ब्राह्मणों को लाकर सौराष्ट्र देश में बसाया था। सारे गुजरात प्रान्त में ये लोग फैल गये थे। मैंने उन्हीं में से एक ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया था। वंशगत रूप में मेरा परिचय दिया जाय तो यह है कि मैं साम

वेदी, ताण्ड्य ब्राह्मणों के अन्तर्गत, दाल्भ्य गोत्रीय त्रिपाठी हूं। त्रिपाठी का तात्पर्य है—जो लोग वेदमन्त्रों के पद-पाठ, क्रमपाठ और जटा पाठ—इन तीन पाठों को जानते हैं।

माता-पिता का परिचय—मेरे पिताजी धनाढ्य जमीदार कुसीद-जीवो (Money lender), सरकार के राजस्व आदायकारी (Revenue-officer) और प्रभाव-शाली कट्टर शैव ब्राह्मण थे। माता देवी, अति सरल, अमायिक, दयावती और वैष्णवमत की अनुगामिनी थीं। पिताजी शैव थे और माता जी वैष्णवी थी। पिता को चाकचमक और आडम्बर अच्छा लगता था। (ह०ले०पृ०१) बाहर जाने के समय पिताजी के साथ सदा ही पाईक (सैनिक) वकन्दाज (अंगरक्षक) और सिपाही रहते थे। पिताजी शैव धर्म के आचरण में दृढ़ थे, माताजी वैष्णव धर्म के आचरण पर, इसलिये आपस में कभी-कभी द्वन्द्व कलह विवाद-विसम्वाद भी होजाता था। लेकिन कोई उग्र नहीं था। पिताजी संस्कृत व्याकरण और वेद के अभिज्ञ थे। माताजी हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान, संस्कृत का मामूली ज्ञान और रामायण-महाभारत, पुराणों की कहानियों का पूरा ज्ञान रखती थीं। पारिवारिक स्थिति की रक्षा के लिये दोनों ही सजग थे और दोनों ही सदाचारी थे। पिताजी के अन्दर क्रोध आने पर माताजी क्षमा-प्रार्थना कर लेती थीं और माताजी के अन्दर क्रोध आने पर पिताजी भी क्षमा मांग लेते थे। इसलिये आपस में कभी वैमनस्य का भाव नहीं आता था। संसार में किसी भी वस्तु का अभाव नहीं था।

मेरा जन्म--परन्तु दोनों के चित्त कभी-कभी अप्रसन्न हो जाते थे क्योंकि लोग विवाह के दीर्घकाल उपरान्त निःसन्तान थे। विवाह के समय पिताजी की आयु इक्कीस और माताजी की वयः बारह वर्ष की थी। पिताजी की वयः पैंतीस और माताजी की वयः छब्बीस वर्ष की हो गयी थी, तो भी सन्तान उत्पन्न नहीं हुई थी। इसलिये दोनों के चित्त में अप्रसन्नता स्थायी रूप से बैठ गयी थी। पिताजी अपने उपास्य देव शिव से और माताजी भी अपनी उपास्य देवता विष्णु जी से सन्तान मांगते थे। प्रार्थना सबकी सब व्यर्थ बन गयी थी। कभी-कभी माता-पिता समझते थे कि विष्णु भक्त माता की प्रार्थना से शिवजी रुष्ट हो जाते हैं और उसी समय शिव-भक्त पिताजी की प्रार्थना के कारण विष्णु भी रुष्ट हो जाते हैं। (ह.ले. पृ०२ इसलिये दोनों की प्रार्थनाएँ ही व्यर्थ हो जाती होंगी। अतः दोनों ने

ही प्रार्थना करना बन्द कर दिया था। सन्तानाभाव के कारण सांसारिक सुख दोनों को शान्ति नहीं दे सका।

मेरे मातामह का गृह हमारे गृह से लगभग पाँच कोस की दूरी पर था। माता-पिता दोनों मेरे मातामह से परामर्श करने के लिये वहाँ गये थे। विचार-विमर्श के बाद निश्चय हुआ कि मेरे पिता जी दूसरा विवाह कर लेवें और वह विवाह मेरा माता जी की चौथी बहन पन्द्रह वर्ष आयु वाली मेरी मौसी से हो जाय। माता जी ने भी इसमें सम्मति दी थी। दो-तीन महीने के बाद ही विवाह होगा,ऐसा निश्चय होगया था। लेकिन एक महीने के अन्दर-अन्दर ही पता लग गया कि माताजी के सन्तान होने वाली है। दूसरा विवाह करने का संकल्प वन्द हो गया। यथासमय मेरी माता ने पुत्र-सन्तान प्रसव किया था। वह सन्तान ही मैं हूं। माता-पिता के पुत्र-सन्तानलाभ होने के कारण सब कोई आनन्दित और प्रसन्न हुए थे। माता जी ने बहुत दिन पहले मान्यता रखी थी कि सन्तान-लाभ होने से विष्णु भगवान् के नाम पर एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगी, संतान के वजन के अनुरूप सोना और चान्दी ब्राह्मणों को दान दूँगी। ऐसा ही हुआ था। सोना और चांदी के अन्दर माताजी के जेवर पिताजी के मोहर सम्मिलित थे।

नामकरण-संस्कार—मेरे जन्म के दिन से सौ दिन बाद मेरे पितामह और हमारे कुल-पुरोहित के सहयोग से मेरा नामकरण-संस्कार हुआ था। उस समय भी एक झंझट पैदा हो गया था। पिता जी ने चाहा था कि पुत्र का नाम शिव जी के नाम पर हो और माता जी चाहती थी कि पुत्र का नाम (ह०ले०पृ० ३) विष्णु भगवान् के नाम के अनुसार हो। इससे माता-पिता के बीच में विरोध पैदा हो गया था। इस दृश्य को देखकर निमंत्रित शतशः आदमी स्तम्भित हो गए थे। मेरे मातामह ने मीमांसा की कि पुत्र के दो नाम रखे जाते हैं—एक शिवजी के नाम के अनुसार और दूसरा विष्णु भगवान् के नाम के अनुसार। ऐसा ही दोनों को स्वीकार हो गया था। तदनुसार पिता जी और माता जी मुझको अपने-अपने रुचिकर नाम से पुकारते थे।

एक दुर्घटना—मैं धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। देखभाल करने के लिए पिताजी ने मुझको रत्नाबाई नाम की धात्री के हाथों में समर्पण कर दिया था। मुझे स्नान करवाना, खिलाना, पिलाना, बाहर-लेकर घुमाना सब कुछ रत्नाबाई के ऊपर छोड़ दिया गया था। एक वर्ष के बाद मेरी जन्म-

तिथि का उत्सव मनाया गया। ब्राह्मणों को भोजन करवाना, गरीब-दुःखियों को अन्न-वस्त्र देना, नृत्य संगीत और हो-हल्ला शोर-गुल चल रहा था। रत्नाबाई को माताजी ने पुत्र को बाहर शांति से धुवा लाने का आदेश दिया था। रत्नाबाई हमारी धाई माँ थी। आदर, यत्न और स्नेह के साथ हमको खिलाती-पिलाती थी। मेरी रुग्णावस्था में रत्नाबाई को निद्रा नहीं आती थी, खाना-पीना छोड़ देती थी। मेरी शय्या के पास आँखों में आँसू लेकर उपविष्ट रहती थी, मेरे प्रति उसका माता का-सा स्नेह और ममता लगी रहती थी। आज उस धाई माता का चंचल मन विकृत हो गया। हजारों रुपये के जेवर पहने हुए मुझको गोदी में लेकर घूमती हुई मेरी धाई माता नदी के किनारे तक ले गई थी। निर्जन स्थान पर पहुँच गयी थी। मेरे शरीर से सारे आभूषण उतार लिए थे, अपने कपड़े के आँचल में सब बाँध लिये थे, मेरे मुख को अन्तिम वार के लिए चूम लिया था। मुझको नदी के पानी में फेंक देने लिए तैयार होगई थी, दो वार मुझको (ह.ले.४पृ.) फैंकने के लिए पानी के अन्दर उतरकर भी फेंक नहीं सकी, मैं हँसने लगा था, मेरे मुख पर धाई माता ने अस्वाभाविक रूप की हँसी देखी थी। उसका हृदय परिष्कृत हो गया, मुझको चूमती हुई पानी से ऊपर उठी और भीगे कपड़े पहने हुए रत्नाबाई ने मुझे माता के सम्मुख लाकर छोड़ दिया, रत्ना के पीछे-पीछे बहुत आदमी एकत्र हो गए थे। रत्नाबाई ने चिल्लाते हुए सबों के सम्मुख सारा हाल विस्तृत रूप से कह दिया। आँचल से जेबरों को खोलकर मेरी माता के सम्मुख रखकर, मुझको और एक वार गोदी में उठा के चूम लिया और "मैं प्रायश्चित्त करूँगी" "मैं प्रायश्चित्त करूँगी" बोलती हुई दौड़कर चली गई। पिताजी भी आ गए। उन्होंने सब कुछ सुना। सब आदमियों ने एक स्वर से यही कहा कि "धात्री पागल हो गई उसका इलाज होना चाहिये।" रत्नाबाई को वापस लाने के लिए तीन सिपाही भेजे, किन्तु मेरी धाई माता मिली नहीं। तीन दिन बाद समाचार मिला कि दो कोस की दूरी पर एक पुराने मंदिर में रत्ना ने गले में रस्सी लगाकर आत्महत्या कर ली है। रत्नाबाई का कोई नहीं था। पिता जी ने रत्नाबाई के लिए पण्डितों की सम्मति के अनुसार श्राद्ध, शांति और मेरी जीवन-रक्षा के लिए पूजा-पाठ किया था और पीछे बोध गया तक आकर रत्नाबाई के उद्धार के लिए पिण्डदान किया था। इस घटना को मैंने माता-पिता और दूसरों के मुख से वार२ सुना था। मेरे मन में संन्यास जीवन के अन्दर भी, इस घटना से मेरे माता-पिता और रत्नाबाई के चरित्र उज्ज्वल होकर रहे हैं, उनको भूल नहीं सका।
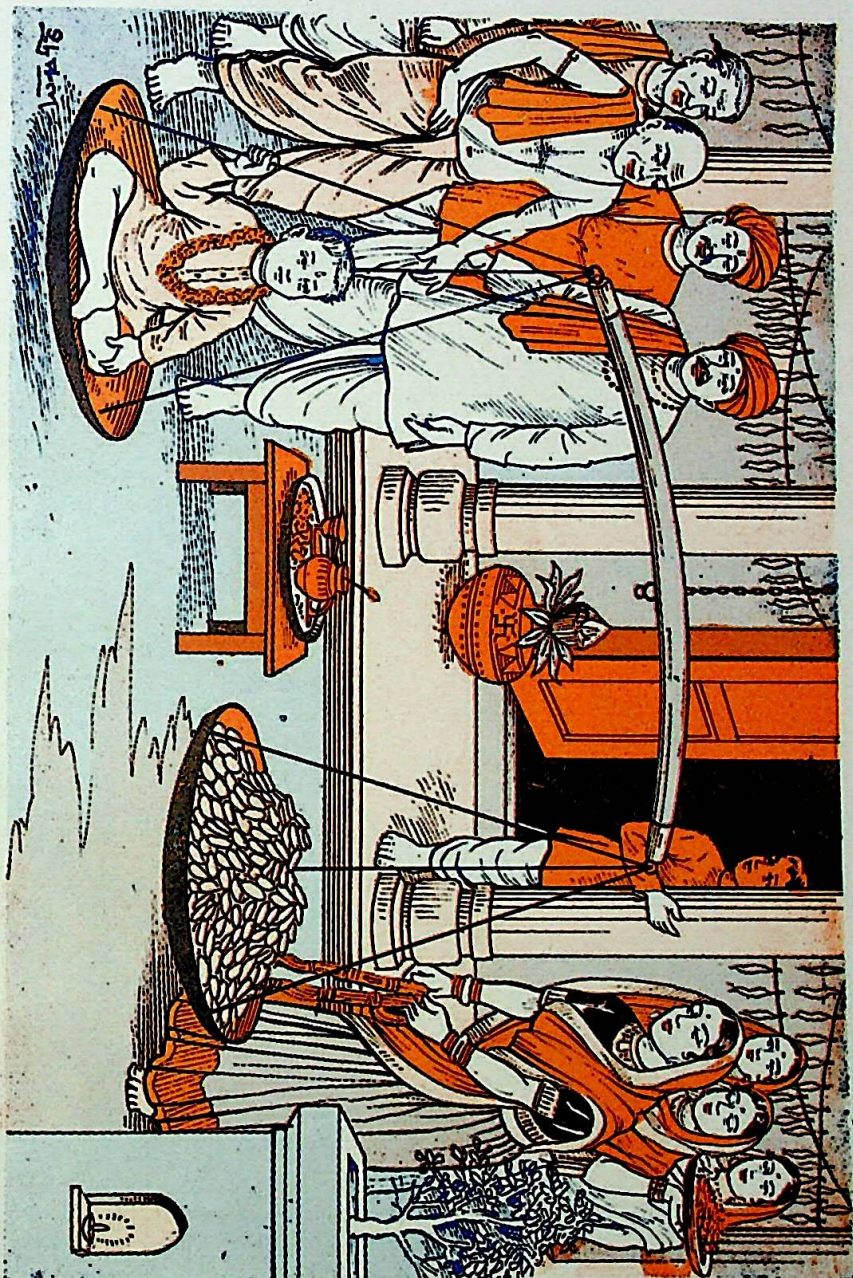
शिशु दयानन्द का स्वर्ण-रजत तुलादान

(पृष्ठ ११)
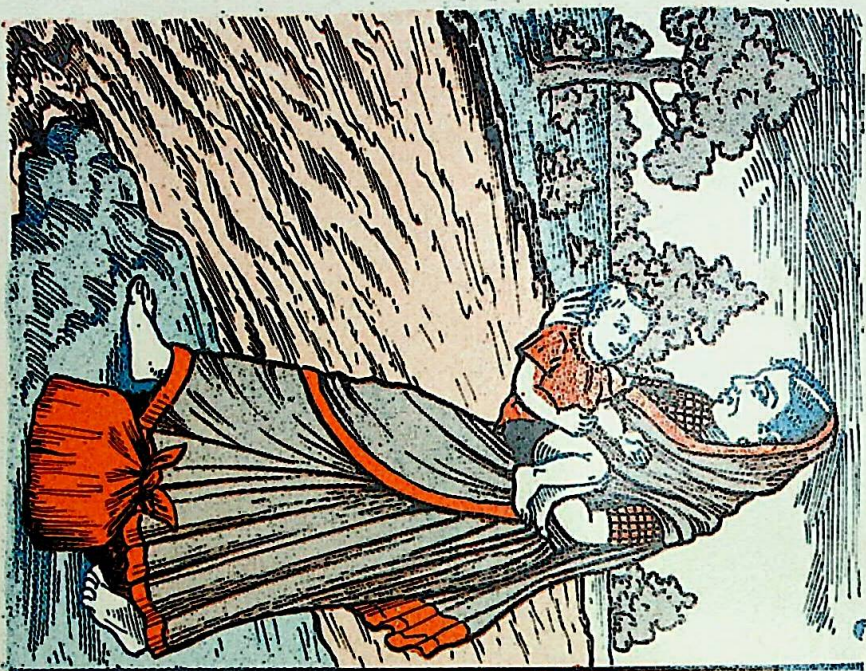
नदी में प्रवाह्यमान शिशु दयानन्द मुस्का दिया   शिशु दयानन्द की मुस्कान से विक्षिप्त धाया (पृष्ठ १२)

पं० ईश्वरचंद्र जी विद्यासागर ने इस कथा को हमसे दो वार सुना है। उस समय उनकी आँखों में हमने आँसू भी देखे हैं।

इस रूप से मैं माता-पिता को संतान-लाभ का सुख और दुःख देता हुए वड़ा होने लगा। माता-पिता पहले-पहल भगवान् से केवल एक ही संतान के लिए प्रार्थना करते थे। अब पिता जी शिवजी से कार्तिक और गणपति जैसे पुत्र माँगते थे और माताजी विष्णु भगवान् से लक्ष्मी-सरस्वती जैसी कन्या माँगती थी। पीछे और संतान माता-पिता को प्राप्त हुई थीं। हम सब मिलकर माता-पिता के पाँच संतान पैदा हुए थे। प्रथम मैं, दूसरी लड़की, तीसरा लड़का, चौथी लड़की और पाँचवाँ लड़का। पाँच संतान पाकर माता-पिता दोनों सुखी थे। (ह० ले० पृ०५)

(२)

मेरा विद्यारम्भ संस्कार—पंचम वर्ष की वयः में मेरे पिता ने मेरा विद्यारम्भ संस्कार किया था। पिता ने चा-खड़ी से कृष्णवर्ण के प्रस्तर पर मेरे हाथ से स्वर वर्ण और व्यंजन वर्ण लिखवाये थे। इस उपलक्ष में पूजा पाठ और ब्राह्मण-भोजन हुआ था। अब से मेरे पिता और अभिभावक मुझ को कुल-परम्परागत धर्माचरण के साथ-साथ धर्मशास्त्र-पाठ और भिन्न-भिन्न स्तवन-श्लोक और रामायण, महाभारत, पुराणादि से कहानियाँ याद कराने लगे। तब से मैं वेदमंत्र भी कण्ठस्थ करने लगा था। इस रूप से मेरे तीन वर्ष बीत गए थे। मेरे अपर भ्राताओं को भी इस रूप की शिक्षा दी जाती थी। मेरी बहनों के लिए इस रूप की शिक्षा-दीक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। हम माता के पास भाई-बहन सब मिलकर महाभारत और रामायण की कहानियाँ सुना करते थे। माता जी को लिखना नहीं आता था, लेकिन पढ़ना आता था। माता जी ने बोल दिया था कि लड़कियों के लिए लिखना पाप है और पढ़ना पुण्य है। गुरुजनों के प्रति, अतिथियों के प्रति कैसे व्यवहार होने चाहिएँ, माता जी और पिता जी हम सब भाई-बहनों को यह शिक्षा देते थे। गृह में हमको तीन वर्ष में इस रूप की कुल-परम्परागत धर्म की और व्यवहार की शिक्षा मिल गई थी।

(३)

मेरा यज्ञोपवीत संस्कार—अष्टम वर्ष की वयः में मेरे यज्ञोपवीत संस्कार का प्रबन्ध हुआ था। इसके उपलक्ष्य में एक सौ वेदज्ञ औदीच्य

ब्राह्मण निमन्त्रित हुए थे। इन लोगों ने एक दिन पहले ही आकर प्रारम्भिक यज्ञ और वेद-पाठ आरम्भ कर दिया था। मेरे पिताजी ने मेरे लिये सोने का तीन तार वाला यज्ञोपवीत बनवाया था। प्रत्येक ब्राह्मण को भोजन के बाद एक-एक कपड़ा, लोटा और दस-दस रुपये दक्षिणा दी गयी थी। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद मुझको १० दिन के लिए घर में बन्द रहना पड़ा था। यह १० दिन गायत्रीमन्त्र के जप में और सन्ध्योपासना में ही बीत गए। १० दिन के बाद यज्ञोपवीत धारण करके बाहर निकल आया था। मेरी झोली में कुछ न कुछ भिक्षास्वरूप (ह. ले. ६ पृ.) सबने दिया था। बड़ौदा और पूना के दो राजकर्मचारी पिताजी के बन्धुओं के रूप से इस यज्ञोपवीत-संस्कार में उपस्थित थे। इन दोनों ने और पिता जी ने मेरी झोली में कई एक मोहरें डाली थीं और माताजी ने फल और कच्चे चावल डाले थे। यज्ञोपवीत-संस्कार के पश्चात् प्रतिदिन हम तीन वार संध्योपासना करते थे और गायत्री मन्त्र का जप करते थे। पिताजी ने स्वयं हमको रुद्राध्याय की शिक्षा दी थी और समग्र शुक्ल यजुर्वेद का पढ़ाना आरम्भकर दिया था दोवर्ष के अन्दर हमने समग्र शुक्ल (ह. ले. ७पृ.) यजुर्वेद और शेष तीनों वेद के चुने हुए अंशों को कण्ठस्थ कर लिया था। इसके बाद पिता जी ने शिवपूजा की नियम-विधि-व्यवस्था की शिक्षा दी थी। शिवपूजा के लिए भिन्न-भिन्न उपासना, व्रतधारण और उपवासादि की भी शिक्षा दी थी। अब हमने स्वयं शिवपूजा करना शुरू कर दिया था।

पिता जी ने मेरी चौदह वर्ष की वय में शिव चतुर्दशी के व्रत-धारण के लिये मुझे आदेश दे दिया—'इसके लिये कठोर उपवास करना है'। माता जी ने प्रतिवाद किया था। इस विषय में माता और पिता के अन्दर कलह-विवाद-विसम्वाद शुरु हो गया था। माताजो ने पराजय स्वीकार किया था और मैंने शिवपूजन के लिये व्रत धारण कर लिया था। पिता जो से हमने इस व्रत धारण का क्या प्रकार है' पूछा था। पिताजी ने कहा था—'कि शिवरात्रि के ४ प्रहर तक जागते हुए ४ वार पूजा करने से शिव जी स्वयं आकर दर्शन देंगे। मैं परम श्रद्धा-भक्ति के साथ पूजा के लिये तैयार हो गया। पिता जो के हाथों से माताजी मेरी रक्षा नहीं कर सकीं। मैं भी जगत् के प्रलयकर्ता शिवजो के दर्शन के लिए लालायित हो गया था। माताजी मुझको इस सौभाग्य से वंचित करना चाहती थीं।

मैंने माताजी की बातें नहीं सुनीं और मैं शिवपूजा के लिए सब कष्ट सहन करने के लिए उद्यत हो गया था।

सनातन कुल-धर्म की रक्षा—मेरे पिताजी के सम्मुख अब सनातन कुलधर्म की रक्षा का दिकट प्रश्न उपस्थित हो गया था। पिताजी जन्मगत कट्टर शैव-ब्राह्मण थे और माताजी (ह. ले. ७ पृ.)जन्मगत कट्टर विष्णु भक्त ब्राह्मणी थी। गुजरात प्रान्त के महाराष्ट्र के शासनाधीन होने से, वहाँ महाराष्ट्र प्रान्त के सर्वप्रधान धर्म शैव-मत का व्यापक प्रचार था। वीठल रावदेव जी ने सारे गुजरात प्रान्त में सैकड़ों शिव-मंदिरों की स्थापना की थी। मेरे पिताजी ने भी डेमी नदी के किनारे अनेक शिव-मंदिर बनाये थे।

हमारे पूर्वजों ने कुलके नियम बनाये थे कि उनके कुल में उत्पन्न होने वाले पुत्रों की पाँच वर्ष की वय: में ही देवनागरी अक्षर का परिचय, वर्णमाला का लेखन और पठन की शिक्षा पूरी होनो चाहिए। आठ वर्ष की वय में यज्ञोपवीत संस्कार होने के साथ ही वेदाध्ययन और मृण्मय-शिव-लिंग पूजा का अभ्यास शुरू होना चाहिए। चौदह वर्ष की आयु में शिव-चतुर्दशी के उपलक्ष्य में व्रतधारण करके शिव पूजा की दीक्षा लेनी चाहिए। पिताजो इस कुलगत क्रम के अनुसार मेरे धर्म-जीवन को निर्मित करना चाहते थे। माताजी ने इसमें बाधा डाल दी थी। छोटी अवस्था में शिव पूजा का उपवास रखना मेरे लिये बहुत ही कष्टदायक होगा–यह उनको चिन्ता थी। पिताजी ने मुझको शिवचतुर्दशी के व्रत धारण करने के माहात्म्य को सुनवा दिया था। मुझे वह बहुत ही रुचिकर मालूम हुआ था। मैं शिवचतुर्दशी के व्रतधारण और दीक्षा लेने के लिए सहर्ष तैयार हो गया। इस कार्य के योग्य १४ वर्ष की आयु मेरी भी हो गयी थी।

नगर से बाहर डेमी नदी के किनारे पिताजी के विशाल शिव मंदिर में पूजा करने और दर्शन के लिये रात्रि को बहुत जनसमुदाय एकत्र होने लगा। पिताजी के साथ मैं भी वहाँ पहुँच गया। व्रतधारण किया गया, अब पूजा और दीक्षा लेनी बाकी है। रात्रि में जागते हुए चारों प्रहरों में चार बार पूजा करने के नियम हैं। प्रथम प्रहर में दूध के द्वारा, द्वितीय प्रहर में दधि के द्वारा, तृतीय प्रहर में घृत के द्वारा और चतुर्थ प्रहर में मधु के द्वारा शिवलिंग को स्नान कराके अर्घ्यदान और पूजादि करने का नियम है। मैंने देखा कि प्रथम और द्वितीय प्रहर की पूजा देने के बाद एक-एक

करके सबके सब व्रतधारी सोने लगे। मेरे पिताजी भी सो गए। पुजारी लोग एक-एक करके बाहर चले गये। मैं शिवजी का दर्शन करने की लालसा से जागरूक रहा। मैंने देखा कि एक चूहे ने शिवजी के सिर पर चढ़ कर चावल, दूध, दही और शक्कर खाना आरम्भ कर दिया और शिवजी चुपचाप ही रह गए। मेरे दिमाग में तत्काल चिन्ता उत्पन्न हुई कि जगत् के प्रलयकर्त्ता यह शिव नहीं हैं। ये सब पूजा, उपवास और रात्रि-जागरण ढोंग-मिथ्या और वृथा है। मैंने पिता जी को जगाया। शिवजी की अकर्मण्यता के बारे में प्रश्न किया।

उन्होंने मुझको धमका दिया और बोले "कलि काल में शिवजी का दर्शन सदा नहीं होता। इस रूप से पूजा करने से प्रसन्न होकर कभी-कभी दर्शन भी देते हैं।"

मेरा प्रश्न था "कि यह शिव वही शिव हैं कि नहीं" ?

पिताजी ने कहा—"यह शिव उनकी प्रतीक है।"

मुझे सारे जीवन के लिए ज्ञान प्राप्त हुआ कि शिव जालशिव है और अक्षम है। इसकी पूजा करना व्यर्थ है। मैंने घर जाना चाहा। पिता जी ने एक सिपाही के साथ मुझे घर भेज दिया और बोले दिया कि घर जाकर भोजन नहीं करना। व्रत को नहीं तोड़ना। मैंने भूख के कारण, घर जाकर ही माताजी से मिठाई मांगकर भरपेट खा ली। माताजी ने मेरे प्रति स्नेह के कारण पिताजी से डरते-डरते मुझको खिला दिया मैं सो गया और सवेरे देर से उठा। और जागते ही देखा कि माता-पिता के अन्दर प्रचण्ड झगड़ा हो रहा है। मैं भयभीत होकर रोने लगा। पिताजी भी मेरा अकल्याण सोचकर रोने लगे, पिताजी भूखे थे। इसी अवस्था में वे झट घर छोड़कर चले गये और एक सिपाही को साथ ले लिया।

(४)

व्रत-भंग का प्रायश्चित्त—मेरे व्रत-भंग के महापाप का प्रायश्चित्त क्या है ? इसका विधान जानने के लिये दो कोस की दूरी पर एक स्मृति-शास्त्र के पंडित के पास पिता जी पहुंच गये। पंडित जी अन्य पंडितों से सलाह करने के लिये अगल-बगल दो-एक गांवों में गये। चार पंडितों ने निर्णय दिया कि "यह महापाप उस नाबालिग लड़के को नहीं लगा, यह महापाप आप पिता को ही लग गया। पुराण के पूजा-धर्म की अवज्ञा की गयी। इसके लिये एक हो(ह ले. १०पृ०)

प्रायश्चित्त है, आपके घर में शुक्ल पक्ष में एक-एक करके एक-एक रोज १८ पुराणों और कृष्ण पक्ष में १८ उपपुराणों का पाठ हो, तदनुसार दान-दक्षिणा हो और अन्तिम रोज इन कुल ३६ ब्राह्मणों को एक साथ भोजन और दक्षिणा की व्यवस्था हो। तय हो गया कि आगामी शुक्ला द्वितीया तिथि से ही पुराण का पाठ शुरू होगा। पिताजी ने पंडितों के हाथ से पानी पीकर उपवास का पारण कर लिया।

पिताजी डेमी नदी में स्नान कर सायंकाल घर पहुँचे और सबको प्रायश्चित्त का पूरा विवरण सुना दिया। इस प्रायश्चित्त का नाम "महा-पापघ्न" प्रायश्चित्त है। आगामी दिन अमावस्या में हमारे घर में ३६ पुराण-पाठी ब्राह्मणों का शुभागमन हुआ। संकल्प पाठ के साथ उन सब को वरण किया गया और भोजन करवाके दक्षिणायें दी गयीं तृतीय दिवस शुक्ला द्वितीया तिथि से पुराणपाठ शुरू होगा* मैंने जाकर पंडितों से पूछा मैं भी तो पुराण-पाठ सुन सकूँगा ?" पंडित लोगों ने हर्ष के साथ सम्मति दी। एक वृद्ध पंडित ने मुझे आशीर्वाद दिया—"वत्स तुम! यशस्वी बनो!" पिता जी ने प्रार्थना की "पुराणों के अश्लीलअंशों को छोड़ दिया जाय। पंडितों ने स्वीकार कर लिया।

तीसरे रोज से यथारीति* पुराण पाठ आरम्भ हो गया। क्रम इस प्रकार का रहाः—

प्रथम ६ दिन सात्विक महापुराणों का पाठ हुआ - यथा (१) विष्णु पुराण, (२) भागवत पुराण, (३) नारदीय पुराण, (४) गरुड़ पुराण, (५) पद्म पुराण और (६) वराहपुराण। दूसरे ६ दिन राजसिक पुराणों का पाठ हुआ—यथा (१) ब्रह्म पुराण, (२) ब्रह्मांड पुराण, (३) ब्रह्म वैवर्त पुराण, (४) मार्कण्डेय पुराण (५) भविष्य पुराण और (६) वामन पुराण। तीसरे ६ दिन तामसिक पुराणों का पाठ हुआ- यथा (१) शिव पुराण, (२) लिंग पुराण, (३) स्कन्द पुराण, (४) अग्नि पुराण (५) मत्स्य पुराण, और (६) कूर्म पुराण। शेष १८ दिन १८ उपपुराणों का पाठ हुआ— यथा (१) सनत्कुमार पुराण, (२) नरसिंह पुराण, (३) वायु-पुराण, (४) शिव धर्म पुराण, (५) आश्चर्य पुराण, (६) नारद पुराण,

---

* जहाँ-जहाँ शिवपुराणादि की कथा होती थी वहाँ पिताजी मुझको पास बिठाकर सुनाया करते थे। (थियासोफिस्ट उद्धृत आत्मचरित्र)

* इसी प्रकार पुराण-पारायण रीति आज भी पौराणिक जगत् में प्रचलित है। १५ सहस्र व्यय कर जो चाहे करा ले। सं०

(७) नान्दिकेश्वर पुराण (८) उशना पुराण, (९) कपिल पुराण, (१०) (१०) वरुण पुराण, (११) साम्ब पुराण, (१२) कालिक पुराण, (१३) महेश्वर पुराण (१४) कल्कि पुराण, (१५) देवी पुराण (१६) पराशर-पुराण, (१७) मरीचि पुराण और (१८) सौर पुराण।

प्रतिदिन पुराण-पाठक को १ मोहर, १ कपड़ा, १ लोटा और दक्षिणा के साथ भोजन दिया जाता था। ३६ दिन के बाद दूसरे दिन ३६ पुराण पाठी पण्डितों ने एकत्र होकर दक्षिणा के साथ भोजन किया और हम सबको आशीर्वाद दिया था। पिता जी उस दिन महापाप से मुक्त होकर प्रसन्न हो रहे थे। मैं ३६ दिन ही पिताजी के साथ बैठा हुआ सवेरे और सायं नियमित रूप से पुराणों की कहानियाँ सुना करता था। पिताजी के निदेशानुसार पुराणों के अश्लील भद्दे अंशों को छोड़ दिया जाता था। केवल उल्लेख करते जाते थे। जैसे कि गोपियों का वस्त्र हरण, या रासलीला, या शिवजी का मोहिनी मूर्ति धारण या कार्तिकेय का जन्म-लाभ इत्यादि। इस रूप से पिता जी ने अपने सनातन कौलिक धर्म की रक्षा की थी और मैंने पुराणों के रहस्य को जान लिया था इसलिये सारे जीवन पुराणों का विरोधी बन कर रहा।

प्रायश्चित्त के बाद पिता जी ने मेरे अध्ययन की ओर अधिक ध्यान दिया। पिताजी स्वयं वेदज्ञ पंडित थे। उनसे मैंने पहले ही शुक्ल-यजुर्वेद पढ़-कर सब-के-सब मन्त्र कण्ठस्थ कर लिये थे। हम लोग सामवेदी ब्राह्मण थे, किन्तु सस्वर सामवेद पढ़ाने के लिये ब्राह्मणों की विरलता होने के कारण शुक्ल यजुर्वेद पढ़ने की रीति हमारे अन्दर प्रचिलित हो गयी थी। पिता जी ने हमको इस चौदह वर्ष की आयु में वेदांग पढ़ाने के लिये ६ पंडित नियुक्त कर दिये थे। लगातार ४ वर्ष क्रमशः पंडितों से (१) याज्ञव-ल्क्य की शिक्षा (२). कात्यायन का कल्प (३) भट्टोजी दीक्षित का व्या-करण (४) यास्क का निरुक्त (५) पिंगल का छन्दः और (६) पराशर का ज्योतिष अध्ययन किया। (ह०ले०पृ०११) उसके साथ-साथ जैमिनि का पूर्व मीमांसा दर्शन और धर्मसूत्र, श्रौतसूत्र और गृह्य सूत्र अध्ययन के लिये एक याज्ञिक और साग्निक मराठी पंडित को नियुक्त कर दिया था। इस रूप से अध्ययन-समाप्ति में मेरी आयु १८ की हो गयी थी।

उस समय मैं माता-पिता का १८ वर्षीय ज्येष्ठ पुत्र सन्तान था। मुझसे छोटी १४ वर्ष की बहन थी, उससे छोटा १० वर्ष का भाई था,

उससे छोटी ५ वर्षीय बहन थी और उससे छोटा २ वर्ष का भाई था। इस रूप से कुल मिलाकर माता-पिता के ५ सन्तान थे। मैं बड़ा था और मेरे पीछे दो भाई और दो बहनें थीं।

मेरे माता-पिता दोनों नातिदीर्घ और नातिह्रस्व देह वाले और गौर वर्ण के थे। पिता तेजस्वी भी थे, कोमल-हृदय वाले भी थे। माता सरल सीधी सादी नारी थीं। दोनों ही धर्म-भीरु थे। माता जी की मिष्ट भाषा और मिष्ट आचरण से हम भाई-बहन मुग्ध थे। माता जी ने हम सब ही भाई-बहनों को रसोई बनाना सिखाया था। पिता जी ने हम सब भाइयों को दण्ड, बैठक, कुश्ती करना सिखा दिया था। ब्राह्म मुहूर्त में उठना यथा समय शौच जाना, नहाना, भगवान् की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, यथासमय भोजन करना, विश्राम करना, स्वाध्याय करना सिखाया था (ह० ले० १२ पृ०) रात्रि-जागरण नहीं करना, असत्संग नहीं करना, कलह-विवाद नहीं करना, देव, द्विज, अतिथि, गुरुजनों के प्रति नम्र भाव रखना, प्रणिपात नमस्कारादि करना, रोगी की सेवा-शुश्रूषा करना और घर के कार्य अपने हाथों से करना—इत्यादि कार्यों का हम सबको अभ्यास करवाया था पिता जी मसालेदार तम्बाकू पीते थे, लेकिन हम सब भाई-बहनों को हुक्का या तम्बाकू छूना तक का भी निषेध कर दिया था। माता जी हम सबको नियमित रूप से रामायण और महाभारत की कहानियाँ सुनाया करती थीं। इस रूप से सुख और शान्ति से समय बीतता था।

वैराग्य लाभ

मेरी ६ वर्ष की आयु में मेरे पितामह की मृत्यु हो गई थी (ह.ले.पृ.१३) सब आदमी रोते थे, मैं भी रोता था मृत्यु के सम्बन्ध में मुझे कुछ कुछ ज्ञात हुआ था। मेरी १८ वर्ष की अवस्था में, मेरी १४ वर्ष की बहन की मृत्यु हुई थी। मृत्यु के बारे में यहाँ से मेरा अनुभव शुरू हुआ। मेरी स्नेहशीला बहन की मृत्यु से मेरे हृदय पर बहुत ही आघात लगा था। लेकिन मुझे रोना नहीं आया था। केवल यह सोचने लगा कि वह कहाँ किसके पास चली गयी? मुझे १८ वर्ष की आयु में भी कुछ समझ में ही नहीं आया था। सबसे जिज्ञासा की थी कि मेरी बहन की क्या दशा हुई? एक ने कहा—तुम्हारी बहन प्रेत हो गयी। तुम एकाकी कहीं नहीं जाना। तुमसे वह मुलाकात कर सकती है। मैं उससे मुलाकात के लिए एकाकी ही घूमने लगा। नदी के किनारे श्मशान भूमि में बैठा रहता था। उसका नाम लेकर

जोर-जोर से पुकारने लगा। लेकिन बहन से कुछ जवाब नहीं मिला, कुछ पता भी नहीं चला। श्राद्ध के दिन पिताजी ने मेरी वहन के लिए पिंडदान किया। सबके सब कहने लगे—"अब तुम्हारी बहन उद्धार होकर चली गई, और कभी तुमसे मुलाकात होने का डर नहीं है। ठीक उसी समय मुझे रोना आया, रोना बन्द नहीं हो पाता था क्योंकि मैंने समझ लिया कि अब बहन से मुलाकात होने की आशा भी नहीं है।

ठीक एक वर्ष के बाद मेरी १९ वर्ष की आयु में मेरे चाचाजी की मृत्यु हो गई। चाचा जी की मृत्यु से मृत्यु का स्वाभाविक और अवश्यं-भावी रूप नजर आया। जीवन-भर के लिए वह हृदय में दृढ़ होकर बैठ गया। मृत्यु के साथ-साथ यहाँ का सब कुछ समाप्त हो जाता है। मृत्यु से बचने के लिये कोई उपाय भी नहीं है। मन में शंका उत्पन्न हुई कि मृत्यु से बचने के लिये कोई उपाय है कि नहीं! मैंने जान-पहचान के पंडितों से पूछा और पिताजी से भी पूछा—"मृत्यु से बचने का कोई उपाय है कि नहीं?" सभी ने मुझे कह दिया "कि योग विद्या ही एकमात्र उपाय है जिससे मनुष्य जन्म और मृत्यु (ह. ले. पृ. १४) से बच सकता है, द्वितीय कोई रास्ता नहीं है।" तब से मेरा मन योगविद्या और योगियों के प्रति आकृष्ट हो गया था। "योगविद्या कहाँ से और किससे मिलती है!"—मैंने पिताजी से सर्वप्रथम यह प्रश्न पूछा था। इस प्रश्न को सुन कर ही पिताजी घबरा गये। उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। केवल माताजी से कह दिया कि लड़के की तरफ कड़ी नजर रखो। लक्षण अच्छा नहीं है। योग और योगियों के बारे में जब स्थानीय पंडित ज्ञानी और साधुओं से शंका-समाधान के लिये इधर-उधर घूमने लगा उस समय मेरी आयु करीब बीस वर्ष की हो गई थी। निर्जन स्थान में और एकाकी चिन्ता करना ही मुझे सबसे अच्छा मालूम होने लगा। भीड़-भाड़ अच्छी नहीं लगती थी।

उस समय मेरे पिताजी के बन्धुओं ने सलाह-परामर्श दिया कि देर नहीं करना, लड़के का विवाह कर दो, नहीं तो फिर पश्चात्ताप करोगे। लड़का संन्यासी बनने वाला है। माता-पिता को यह परामर्श अच्छा लगा मेरे लिये कोई अच्छी लड़की ढूंढ़ने के लिए जगह-जगह बन्धुओं को पत्र भी लिखे गए थे। जगह-जगह से मेरे विवाह के लिए पत्र आने लगे। कोई-कोई मुझको देखने के लिए और पूछताछ के लिए भी आने लगे। मैंने पिताजी से अति विनीत भाव से निवेदन और प्रार्थना की थी कि मेरा

अध्ययन अब तक असम्पूर्ण ही है। विवाह के प्रश्न को अभी बन्द रखिये अभी तक उपनिषद् और वेदान्त दर्शन पढ़ना बाकी है। वेदान्तदर्शन पढ़ने के लिए काशी ही सर्वोत्तम स्थान है। आप हमें अनुमति प्रदान करें, हम वेदान्त पढ़ने के लिए काशी में चले जायें। इस प्रस्ताव को सुन कर मेरी माताजी रोने लगीं काशी साधु-संन्यासियों का स्थान है। मेरा लड़का वहाँ जाकर साधु-संन्यासी बन जायेगा, फिर घर को वापस नहीं आयेगा। पिताजी ने गम्भीर होके सोचा और मुझको कह दिया—"तुमको काशी जाने नहीं दूँगा। मेरी जमींदारी और कृषि—व्यापार कर्म की कौन देख-भाल करेगा?" पिताजी का आदेश लंघन करना मेरे लिये कठिन हुआ। मैंने दूसरा प्रस्ताव पिताजी के सम्मुख रख दिया। हमारे वास-स्थान से तीन कोस दूरी पर एक प्रसिद्ध पंडित का नाम बताया। वे हमारे पिता से सुपरिचित थे। उनसे वेदांत पढ़ने के लिए प्रस्ताव रखा। पिता-जी ने सोच-विचार करके स्वीकृति दे दी। मैं वेदान्त पढ़ने के लिए वहाँ पहुँच गया। माता और पिता करीब-करीब निश्चिन्त हो गए कि काशी जाना तो बन्द हो गया—यही परम लाभ है। वहाँ जाके मनोयोग के साथ वेदान्त पढ़ने लगे। जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, बन्धन-मुक्ति वासना-कामना, आसक्ति-अनासक्ति आदि विषय पर आलोचना के समय मेरे मुख से निकल गया था कि "मैं विवाह नहीं करूँगा।" इस बात को सुनकर ही पंडित जी ने मेरे पिताजी को मेरे भाव के बारे में सूचना देदी थी।

इस सम्वाद को सुनते ही पिता जी ने इस कठोर आदेश के साथ घर से एक नौकर को भेज दिया था—"तुम एक मुहूर्त के लिए भी वहाँ नहीं ठहरना। तुम तुरन्त घर आ जाओ।" इस जरूरी आदेश के पाते ही गुरुजी के साथ मैं पिताजी के सम्मुख उपस्थित हो गया था।

पिताजी बहुत ही दुःख के साथ गुरुजी से कहने लगे—'अति शैशव में इस हतभाग्य पुत्र को जेवरों की लालसा से नौकरानी नदी में फेंक देने वाली थी। किन्तु अलंकारों सहित इसको घर पर पहुँचा कर वह चली गई। दो वर्ष की उम्र में फिर उन्हीं अलंकारों की लालसा से चोर इसको चुरा के कहीं ले गये और दो रोज के बाद अलंकारों को रख कर इसको घर पर ही छोड़ गये थे। मानो भगवान् इसको अपने माता-पिता से पृथक् करना नहीं चाहता। हर्ष के कारण हमने इसके शरीर के वजन के समान सोने से ब्राह्मण-भोजन, पूजा-पाठ, हवन, यज्ञादि कराए थे। मेरे प्रति धाय और चोरों को भी दया आई थी। लेकिन इस

निष्ठुर पुत्र में हम माता-पिता दोनों के प्रति दया का लेश-मात्र भी नहीं है। अब से कभी इसको घर से बाहर नहीं रखेंगे। इसका विवाह ठीक हो गया। लेकिन सुनते हैं कि वह नहीं करेगा। किसी रोज घर छोड़कर संन्यासी (ह० ले० १६ पृ०) बन जायेगा। हमारे लिए यह असहनीय है। इसको छोड़कर हम दोनों माता-पिता जीवन-धारण नहीं कर सकेंगे।

माता जी ने कहा—'इसके विवाह के लिए किसी कन्या के पिता को वचन दिया गया है। लड़की रूपवती, गुणवती और सुशीला है। अब कन्या अरक्षणीया हो गयी है। विवाह के लिये एक महीने का और समय भी लिया गया है। अब विवाह के लिए सब कुछ प्रयोजनीय सामग्री संगृहीत हो गई है। इस महीने के अन्दर ही विवाह करना जरूरी है।

(मेरे प्रति)—बेटे ! तुमने बहुत कुछ पढ़ लिया है। ज्यादा पढ़ने की जरूरत ही क्या है ? हमारे घर में किसी वस्तु का अभाव नहीं है।

फिर पिताजी ने कहा—इसके अन्दर बाल्यकाल से ही परलोक की चिन्ता आ गई थी। मेरे घर पर जो साधु, संन्यासी, भिक्षुकादि आते थे, उनसे पूछा करता था—'मैं मृत्यु के बाद क्या बन जाऊँगा ? पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि भी मरने के बाद क्या बन जायेंगे। तुम लोग नहीं बोलोगे तो मैं किसी प्रकार से मर कर ही जान लूँगा।"

एक दिन इसने इस बात को जानने के लिए लड़कपन से वस्त्रों में आग लगा ली थी। लेकिन भगवान् ने इसको बचा दिया था। आज यह हम सबको छोड़ना चाहता है। वह अकेला नहीं जा सकेगा। हम साथ-साथ चलेंगे। बेटे ! मेरी जमींदारी, धन-दौलत, व्यापार, घर-बार यह सब कुछ तुम्हारे लिये हैं। तुम्हारे छोटे-छोटे भाई-बहनों का पालन-पोषण और शिक्षा दीक्षा भी तुम्हारे ही जिम्मे है। तुम सब कुछ ग्रहण करो। मेरी आयु तो साठ वर्ष से भी ऊपर हो गई है। हम थोड़े रोज के बाद ही काशी जाकर श्री विश्वनाथ जी की शरण में पड़े रहेंगे। तुम विवाह कर लो तुम्हारी विवाहित स्थिति को देखकर ही हम दोनों शान्ति के साथ मर सकेंगे।

पिताजी बोलते-बोलते रोने लगे। माता जी भी रोने लगीं। मैंने बहुत ही कष्ट के साथ आँसुओं को आँखों में ही रोक रखा। (ह० ले० १७ पृ०) अपनी स्थिति को सम्हालने के लिए तीन रोज मैं घर में ही रहा। माता पिता के वचनों को मैंने धीर, स्थिर और शान्त भाव से ही सुन लिया

था। लेकिन मेरे सिर पर मानो वज्रपात होने लगा था। मेरे अन्दर घर-वार छोड़ने के लिए वैराग्य का भाव अत्यन्त प्रबल हो गया था। पितामह, बहन और चाचा जी की मृत्यु के दृश्यों ने मुझको नया जीवन दिया था। मैंने पंडितों से बहुत वार पूछा था—"मृत्यु से बचकर-अमृत लाभ करने के लिये रास्ता क्या है?" सब ही ने एक ही बात बोल दी थी—'योग विद्या का लाभ, योगियों से उपदेश ग्रहण और तदनुसार साधना करने से मृत्यु पर विजय-लाभ होता है।"

'मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर योगियों की संगति में रहूंगा और योग-विद्या प्राप्त करके मनुष्य समाज में इसका प्रचार करूँगा"। मेरे अन्दर यह संकल्प दृढ़ हो गया था। मेरी आयु उस समय इक्कीस वर्ष की थी।

माता-पिता से मैंने बहुत ही शान्त भाव से बोल दिया था—"मैं विवाह नहीं करूँगा। मेरे एक और भाई हैं। आप लोग उन सब पर सब आशा रखिये। घर में रहना मेरे लिये कठिन है।"

गुरुजी ने पिताजी से कह दिया—आप लोग लड़के पर कड़ी दृष्टि रखें। धीरे २ इसकी बुद्धि ठीक हो जायेगी। मेरी रक्षा के लिए पिताजी ने रक्षक नियुक्त कर दिया। माता-पिता ने मुझको संसार-धर्म के बारे में उपदेश सुनाये। लेकिन मेरे मन का संकल्प घर-वार छोड़ने के बारे में अचल-अटल था।

माता जी ने मेरे मन को पिघलाने के लिये मेरे साथ विवाह के सम्बन्ध वाली लड़की को और उसकी माता को मेरे सम्मुख बुलवा लिया था। उन लोगों ने मुझे कुछ जेवर उपहार में दिये थे। मैंने बहुत ही नम्रता के साथ उस उपहार को वापस दे दिया था। नमस्कार करके कन्या को और उसकी माता को बोल दिया था—"आप लोग हमारे जीवन के व्रत-साधन में बाधा मत डालिये। मेरे व्रत-साधन के लिए आप लोग हमें आशीर्वाद दीजिये।" विवाह का प्रसंग उस रोज से ही बंद हो गया था।

गृहत्याग

मैं अब घर छोड़कर चला जाने के लिये सुयोग ढूँढ़ने लगा था। मेरा रक्षक एक दिन सायंकाल अन्यमनस्क हो रहा था। मैं भी जाने के लिये तैयार हो गया। उसने पूछा—"कहाँ जाते हैं? हमने कुछ भी नहीं कहा। उसने संदेह भी नहीं किया (ह० ले० १८ पृ०)। मेरे

शरीर पर एक ही कपड़ा था। दो हाथों को चार अँगुलियों में सोने की चार अंगूठियाँ थीं। कानों में और हाथों में दो-दो अलग-अलग अलंकार थे। मेरे कपड़े के आँचल में सौ रुपया बँधा हुआ था। नंगे पैर मैं घरसे निकल पड़ा। सदा के लिये माता-पिता, भाई-बहन, घर-बार छोड़ के एकमात्र भगवान् के आश्रय ही अपने को सौंपकर अतिद्रुत गति से कृष्ण पक्ष के अंधेरे में सायंकाल नदी के किनारे-किनारे चलने लगा था। कहाँ जा रहा हूं यह मुझे भी पता नहीं था। लगभग चार कोस जाने के बाद मैंने एक छोटे गाँव के अन्त में नदी के किनारे श्मशान घाट देखा। वहाँ एक छोटी निर्जन कुटिया थी। उसमें विश्राम के लिए प्रवेश किया। वहाँ सारी रात जगा हुआ निश्चिन्त होकर मैं भविष्य की कार्यसूची सोचने लगा था। आधी रात बीतने के बाद कई ठग (दस्यु) अचानक उस घर में प्रवेश कर मुझ को सरकारी गुप्तचर समझकर मुझ पर कटारों से चोट पहुँचाने के लिए तैयार हो गए थे। मैंने अपना सच्चा परिचय दिया। सब ही ने हमको पहचान लिया। सब ही ने मुझको अपने दल में सम्मिलित होने के लिये कहा। मेरे राजी न होने पर उन लोगों ने मेरी अंगुलियों से दो अंगूठियाँ लेकर मुझको छोड़ दिया और बटमारी से उन लोगों ने जो कुछ संग्रह किया था सब वहाँ बैठकर आपस में बाँटा और वहाँ से चल दिये। प्रभात होने पर, मैंने अपनी यात्रा फिर शुरू कर दी।

—:०:—

द्वितीय अध्याय

(१)

भ्रमण और संन्यास ग्रहण

(ह. ले. पृ. १८)योगियों के सन्धान में मैंने भ्रमण किया था। भ्रमण करना मेरे लिये कष्टकर नहीं था। पिता जी की प्रेरणा से परिश्रम करने की आदत-पान-आहार का संयम,शारीरिक और मानसिक व्यायाम, क्षुधा-तृष्णा का सहन आदि का अच्छा अभ्यास मेरे अन्दर विद्यमान था। भ्रमण के पहले दिन रात को ठग-डाकुओं से भी मैंने पूछा था—"योगविद्या सीखने के लिए योगी कहाँ मिलते हैं?" उन लोगों ने मेरी दो अंगूठियाँ लेने के बाद बताया था कि सिद्धपुर के मेले में जाने से वहुत से योगी मिलेंगे। अन्य साधुओं से भी सिद्धपुर जाने के लिए मुझे परामर्श मिला था। दूसरे दिन अति सवेरे श्मशान की कुटिया से रवाना होकर पन्द्रह कोस से भी अधिक रास्ता पार करके चला गया था। कोई मुझको पहचान न सके इसलिये प्रधान-प्रधान मार्गों को छोड़ कर मैदान, जंगल आदि निर्जन स्थानों से अग्रसर होने लगा, अगर कहीं मन्दिर मिल गया तो वहाँ विश्राम और जलपान भी कर लेता था।

किसी राजकर्मचारी ने मुझे पकड़ लिया था और मेरी तलाशी भी ली थी। किसी आदमी ने कह दिया कि "यह अवधूत साधु है, यह किसी मठ मन्दिर या आश्रम में नहीं रहता। केवल मनमाना भ्रमण करता है।" मेरे पास रुपये थे कानों में और हाथों में जेवर थे इसका भी किसीने ख्याल नहीं किया। राज-कर्मचारी ने मुझको छोड़ दिया था। उनसे पता लगा था कि एक नव-जवान घर से भाग गया है, उसके सन्धान में उसके पिता कई एक अश्वारोही सैनिकों के साथ घूम रहे हैं। मैंने अनुमान कर लिया कि मेरे पिता जी ही मेरे संधान में घूम रहे हैं। मैंने निरुपाय होकर समीप के किसी श्मशान से कुछ भस्म लेकर वदन में लगा लिया जिससे झट मेरी

पहचान न हो सके। चिन्ता रही केवल अलंकार और रुपये के लिये। मन में इस बन्धन के कारण उद्वेग और अशान्ति बढ़ने लगी थी।

थोड़े क्षण के बाद एक भिक्षुक-ब्राह्मणों के झुण्ड से साक्षात् हुआ। सब के सब मंत्रपाठ के साथ आशीर्वाद देने लगे और बोलने लगे—'बच्चा! कितने दिन से साधु बन गया है। देखने में राजपुत्र-सा मालूम पड़ता है। अरे, कुछ त्याग होना चाहिये। बिलकुल मुक्त हो जाओगे, शान्ति मिलेगी, दो नावों में पैर मत रखो। अलंकार रुपये आदि तुम्हारे पास जो कुछ है भगवान् की सेवा में अर्पण कर दो। हम लोगों ने ऐसे ही किया है। भगवान् की सेवा के लिये हम लोग भिक्षा माँगते हैं। तुम भी हमारे साथ सम्मिलित हो जाओ। शान्ति मिलेगी। उनके उपदेश का प्रथमांश अच्छा ही मालूम पड़ा। हमने शेष दो अंगूठियाँ, कान-हाथों के अलंकार और सौ रुपये भिक्षुक ब्राह्मणों को वितरण कर दिये। उनके झुण्ड में सम्मिलित होने के लिये मैं राजी नहीं हुआ। अब अपने को बहुत हल्का समझने लगा।

यहाँ हमने सर्वप्रथम शैलानगर के अधिवासी लाला भगत नाम के प्रसिद्ध विद्वान् और योगी के विषय में सुना था। भ्रमण करता हुआ उन्हीं की सेवा में पहुँच गया। मुझे देख कर वे सन्तुष्ट भी हुए थे। उनके पास मैं योग-साधना सीखने लगा। शरीर और मन की शुद्धि के लिये उन्होंने एक आसन और मुद्राओं की शिक्षा दी थी। मैं उत्साह से उनके साथ योग-चर्या सीखने लगा। एक दिन उन्होंने कहा—"योगी बन जाना या योग-साधना में सिद्धि आदि का लाभ करना मानसिक और शारीरिक स्थिति पर ही है, तुम किसी आश्रम में नहीं हो। तुम न ब्रह्मचारी, न गृहस्थ, न वानप्रस्थ और न संन्यासी हो।" उन्होंने मुझको ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश के लिये परामर्श दिया। वहाँ निर्मल चैतन्य नाम के किसी ब्रह्मचारी के साथ मेरा आलाप तथा परिचय हुआ था। मैंने उनसे दीक्षा ग्रहण के लिए प्रार्थना की। वे राजी हो गये।

ब्रह्मचारी निर्मल चैतन्य ने मुझ को समझा दिया था—"आचार्य शंकराचार्य प्रतिष्ठापित चार मठ हैं—हिमालय में जोशी मठ, दाक्षिणात्य में शृंगेरि मठ, पूर्व में श्रीक्षेत्र में गोवर्धन मठ और पश्चिम में द्वारिका में शारदा मठ। चारों मठों में ब्रह्मचारियों की उपाधियाँ पृथक्-पृथक् हैं—जैसे उत्तर मठ की आनन्द, दक्षिण मठ की चैतन्य, पूर्व मठ की प्रकाश और

पश्चिम मठ की स्वरूप। मैं दक्षिण मठ के अन्तर्गत निर्मल चैतन्य ब्रह्मचारी हूं।" दीक्षा लेने के लिये किसी निश्चित तिथि में मैंने ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करके 'शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी' नाम ग्रहण कर लिया था। मेरे पास जो जेवर और रुपये थे, वह सब दान कर दिये थे। घर का एक मात्र चिन्ह एक वस्त्र था। अब उसको भी छोड़ दिया और गैरिक कपड़े पहन लिये। घर का दिया हुआ नाम और निशानी वस्त्र को छोड़कर मैंने बाह्य बन्धनों को तोड़ दिया है। मैं दक्षिण मठ का ब्रह्मचारी हूं—यह ही मेरा एकमात्र परिचय हुआ। अब मेरे अन्दर योगविद्या सीखने की स्थिति, योग्यता और अधिकार आ गये थे। अब अच्छे गुरु चाहिएँ। योगी लाला भगत ने मुझको सिद्धपुर मेले में जाने के लिये प्रेरणा दी थी। कोठकांग (डा०) में भी सिद्धपुर मेले के बारे में सुना था।

सिद्धपुर का मेला

कार्तिक महीने का समय था। कार्तिक महीने में ही सिद्धपुर में मेला लगता है। "वहाँ भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से योगी और योगसिद्ध पुरुषों का आगमन होता है" इस बात को सुन कर सिद्धपुर जाने के लिये मुझ में भी उत्साह आ गया था सिद्धपुर का प्राचीन नाम था "श्रीस्थल"। यह प्राचीन काम्यक वन के अन्तर्गत है। यहाँ महर्षि कर्दम का आश्रम था। सांख्यदर्शन सूत्रकार कपिल का यह जन्मस्थान था। गुर्जर देश के राजा मूलराज सोलंकी का कार्य यहाँ सिद्ध होने से इसका नाम सिद्धपुर पड़ा था। यह तीर्थ स्थान सरस्वती नदी के किनारे पर है। गुर्जर राज मूलराज सोलंकी और सिन्धुराज जयसिंह ने यहाँ सरस्वती नदी के किनारे पर (सिद्धपुर नामक तीर्थ स्थान में) रुद्र-महालय नाम का विशाल मन्दिर बनाया था! अलाउद्दीन खिलजी ने इसको नष्टभ्रष्ट कर दिया था। अब वह मसजिद के रूप में है। सिद्धपुर में पुराने-पुराने बहुत मन्दिर हैं। वहाँ नाना देशों से योगी योगसिद्ध साधक लोग मेले में आते हैं। सिद्धपुर जाकर योगी पुरुषों से मिलने से मृत्यु जय करने के बारे में मन की शंकाओं का समाधान हो जायेगा—इस आशा से मैंने वहाँ जाने के लिये संकल्प धारण किया था।

इससे पहले एक दुर्घटना घटी थी। मेरे जन्म स्थान के समीप बहुत से वैरागियों का वास है। एक दिन जब मैं ब्रह्मचारी के रूप में योगियों के सन्धान में घूम रहा था तब हमारे परिवार से सुपरिचित किशोरी वैरागी से अहमदाबाद के समीप मेरी भेंट होगयी थी। मुझे देखते ही वह दौड़कर

मेरे पास आ गया था। उसने पूछा—"तुमने गैरिक वस्त्र क्यों पहन लिया? कहाँ जा रहे हो? घर कब जाओगे? अपने माता-पिता का समाचार कुछ जानते हो कि नहीं?" मैंने जवाब दिया—"मैंने ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश कर लिया है। इस लिये गैरिक वस्त्र मैंने पहन लिया है। मैं सिद्धपुर मेले में जाऊँगा वहाँ योगियों से मिलूँगा। घर नहीं जाऊँगा। माता-पिता के समाचार नहीं जानता हूं।" उसने कहा—"जैसे पिता दशरथ ने राम के अदर्शन के कारण देह छोड़ दिया था, तुम्हारी माता ने भी तुम्हारे शोक के कारण देह छोड़ दिया है। तुम सिद्धपुर नहीं जाकर पिता के पास चले जाओ।" मैं माता की मृत्यु के समाचार का विश्वास नहीं कर सका। मैंने उसेको कह किया "योग के सन्धान करने के पुण्यकार्यमें तुम बाधा मत डालो।"

मैं सिद्धपुर मेले में पहुंचा और वहाँ नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में रहते हुए योगी, साधु और महात्मा लोगों का संग करने लगा और साथ-साथ योग विद्या के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करता था। किशोरी वैरागी ने मेरा सब हाल पत्र के द्वारा पिताजी को सूचित कर दिया और सिद्धपुर मेले में जाने के लिये सनिबन्ध अनुरोध किया। पिताजी मेरे बारे में सूचना पाते ही चार सिपाहियों को साथ लेकर सिद्धपुर मेले में पहुंच गये थे। मुझको ढूँढ़ते हुए वहाँ नीलकंठ शिव मन्दिर में उन्होंने मुझे देख लिया। मैं वहाँ साधु और संन्यासियों के साथ शास्त्रार्थ और सत्संग कर रहा था, वे अचानक वहाँ चार सिपाहियों के साथ पहुंच कर मुझे डपटने लगे। "तू मेरे कुल में कलंक रूप में पैदा हुआ है, तूने मातृ-हत्या की है,* और भाग कर साधु-संन्यासियों के अन्दर बैठ गया है। तुझको पकड़ने के लिये मैं यहाँ तक पहुँच गया हूं।" इस बात को सुनते ही चारों तरफ शोरगुल मच गया। मैं भाग न जाऊँ इसलिए एक साधु ने मुझको पकड़ लिया था। किशोरी वैरागी से मैंने माता जी का मृत्यु-संवाद सुना था लेकिन विश्वास नहीं किया था अब पिताजी की बात से विश्वास हो गया। साधु मुझको "खूनी खूनी" पुकार कर मारने के लिये तैयार हो गये। पिता जी ने घोषणा कर दी "मैं इसका पिता हूं। यह घर से भाग कर लापता हो गया था। पुत्रशोक के कारण इसकी माता की मृत्यु हो गयी है। यह ज्येष्ठ पुत्र और श्राद्धाधिकारी है। अगले चौथे दिन में

---

* यह ठीक हो था, देखें—"क्रोध के वश में होकर मेरे गेरुए कपड़े फाड़ डाले, तूम्बा फैंक दिया और मुझे मातृहन्ता कह कर भर्त्सना करने लगे।'—थ्यासोफिस्ट-गोविन्दराम०।

इसको श्राद्ध करना है। इस बात को सुनकर ही साधु-संन्यासी लोगों ने मुझको छोड़ कर पिताजी को घेर लिया और चिल्लाहट के साथ बोलने लगे —'इस पर माता-पिता का हक नहीं है। यह माता-पिता और संसार को छोड़कर हमारे साथ मिल गया है। और यह हमारे अन्दर एक बन गया है'। सरकारी कर्मचारी ने आकर संन्यासियों के आक्रमण से मुझ को बचाया था।

पिताजी के अन्दर भी साहस आ गया। अपने शिर से सफेद पगड़ी को उतार कर मेरे हाथों में देकर बोले—"इसको पहन लो।" गैरिक वस्त्रों को उन्होंने छीन लिया और टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डाला। तूम्बे, भिक्षा-पात्र को भी उन्होंने तोड़ डाला। मैं पिताजी के चरण पकड़के बोला— "आप चलिये, मैं आप के साथ चल रहा हूं।"भीड़-भड़क्के से हम दोनों बचकर सिपाहियों के साथ चल दिये। सिद्धपुर मेले से कोस भर दूर आकर पिताजी ने सिपाहियों को आदेश दिया—"इस पर कड़ी नजर रखो, फिर भाग न जाय।' हमने एक पुराने सिपाही से पूछकर सुन भी लिया था कि मेरे शोक के कारण ही माताजी का देहान्त हो गया और श्राद्ध के लिये मेरा वहाँ पहुंचना जरूरी है। रास्ते में मैं बन्दी के समान जा रहा था। पिताजी का दृढ़ संकल्प था—मुझको घर संसार के कारागार में कैदी बनवाके ही रखेंगे।' मेरा दृढ़ संकल्प था—"मैं वहाँ कभी कैदी नहीं बनूँगा। माताजी तो चली ही गयी, पिताजी भी किसी रोज चले ही जायेंगे और कभी मुझे भी जाना होगा। तब क्यों मैं घर जा रहा हूं।" पिताजी जोर-जबर दस्ती से घर लेजा रहे हैं। मैंने रास्ते में खाना छोड़ दिया और केवल पानी पीकर और दूध पीकर रहने लगा। सिपाही लोग निश्चिन्त हो गये कि मैं अवश्य ही घर जाऊँगा। लेकिन मैं पिताजी से मुक्त होने के उपाय ढूँढ़ने लगा। एक रोज रात्रि के अन्त में पिताजी और सिपाही लोग गंभीर निद्रा में निद्रित थे। तब मैं पानी भरा हुआ लोटा लेकर धीरे-धीरे सबों के दृष्टि-पथ से बाहर जाकर द्रुत गति से जाने लगा। गांवों को छोड़ कर किसी बगीचे में घने वृक्ष पर छिपकर बैठ गया। वृक्ष के नीचे एक शिव मन्दिर था भूखा रात भर वृक्ष पर ही रहा। अति सवेरे वृक्ष से उतर कर फिर चलने लगा। सवेरे वृक्ष के ऊपर से मैंने देख लिया कि सिपाही लोग मुझको इतस्ततः ढूँढ रहे हैं। मैं वृक्ष से नहीं उतरा और समस्त दिन और आगे शाम को अन्धेरा होने तक वृक्षपर ही छिपकर रहा।

धीरे-धीरे वृक्ष से उतर कर फिर अति द्रुत गति से चलने के बाद मैं अहमदाबाद पहुँच गया। वहाँ पहुंचकर मैंने स्नान किया, कुछ चना खा लिया और पेट भर कर पानी पी लिया था अब सोचने लगा कि योगियों❀ के सन्धान में अब कहाँ जाऊँ ?

अहमदाबाद में—अहमदाबाद में आकर मैं योगियों की खोज में ही रहा। वहाँ मंदिरों की कमी नहीं है, वैष्णव तांत्रिक और जैनों के विशाल-विशाल मंदिर हैं। सब ही मंदिरों में आडम्बर अत्यधिक है। साधु-संन्यासियों के भोजन के लिए अभाव और कठिनाइयाँ नहीं हैं। किसी योगी से मिलने के लिए मेरी प्रबल इच्छा थी। सभी मंदिरों में संधान किया गया, मेरी प्रार्थना और इच्छा पर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। पास ही साबरमती नदी है। नदी के तट पर बहुत संख्या में एकांत और निर्जन आश्रम या कुटीर देखे। एक आश्रम में योगिराज-बाबा जी नाम के एक तांत्रिक साधु मिले। योगविद्या सीखने की इच्छा सुन कर आपने बहुत ही हर्ष प्रकट किया। उन्होंने मेरे स्वल्प भोजन के लिये दूसरे आश्रम में प्रबंध कर दिया और खड्ग धारेश्वर बाबाजी के आश्रम में योगविद्या सिखाने के लिये उनके आधीन मुझे छोड़ दिया। वहाँ मैं लगभग एक मास तक रहा। वहाँ मुझे पता लगा कि वैषयिक कार्यों के लिये योग तेरह प्रकार के हैं और परमार्थिक कार्यों के लिये चतुर्विध हैं।

वैषयिक योग—किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में परिवर्तित करना, दुर्लभ वस्तु को चिन्ता द्वारा जान लेने के उपाय जानना, प्राप्त वस्तु का संरक्षण करना, शब्दों की अर्थ-बोध-शक्ति को जानना, शब्दों का यथा-योग्य विन्यास करना, देह को स्वस्थ रखना, वस्तुओं के प्रकृत तत्वों को छिपाना, युक्ति पूर्वक वाक्यों का प्रयोग करना, अस्त्र धारण करने के

❀ इसे महर्षि दयानंद ने ता० २२-१२-७२को कलकत्ते में अपने ठहरने के स्थान "नाईवान उद्यान" में संस्कृत भाषा में वर्णित किया था। इन अंशों के लेखक थे श्री नृत्यगोपाल चौधरी स्मृतिरत्न और श्री नवीन चंद्र अधिकारी व्याकरण-शास्त्री। पं० श्री विभूतिभूषण विद्यार्णव ने उसका बंगला में अनुवाद किया था। लेखक ने इसका प्रथमांश श्री रमेशचंद्र दत्त के गृह से और शेष अंश प्रसिद्ध ऐतिहासिक और साहित्यिक पं० श्रीसत्याचरण शास्त्री के गृह (रिषिड़, हुगली) से और पूर्वापर तथ्यों का संग्रह किया है।—संग्रह कर्त्ता

कौशल जानना, किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ मिलान, करना, एक तत्त्व के साथ दूसरे तत्त्व को मिलान कर देना और कार्य के कारणों को एक साथ जान लेना—ये त्रयोदश प्रकार के वैषयिक योग हैं।

पारमार्थिक योग—ये चार प्रकार के हैं—चित्त को एकतान यानी एकाग्र करना, सब-की-सब मनोवृत्तियों को रोक देना वस्तुविषयक चिन्ता-प्रवाह को उद्दीप्त करना और आत्मा को आत्मा के साथ या परमात्मा के साथ संयोग कर देना।

तेरह प्रकार के वैषयिक योग के आदि उपदेष्टा थे—उशना बृहस्पति इन्द्र, पुनर्वसु और अग्निवेश। पारमार्थिक योग के आदि उपदेष्टा थे—हिरण्यगर्भ, महेश्वर, शिवानी, कपिल, पंचशिख, जनक, वसिष्ठ, दत्तात्रेय, जैगीषवव्य, याज्ञवल्क्य और पतञ्जलि।

तेरह प्रकार के वैषयिक योगों के अवलम्बन से नीति, धनुर्वेद, आयुर्वेद, गांधर्ववेद, शिल्प, कृषि, वाणिज्य और कला-कौशलों के शास्त्रों की रचना हुई है और चार प्रकार के योगों के अवलम्बन से अध्यात्म शास्त्रों की रचना हुई है।

पारमार्थिक योग-साधन के लिये चार प्रकार के पथ आविष्कृत हुए हैं। इनके नाम चतुष्पथ हैं। मन्त्र योग, लययोग, राजयोग और हठयोग ये चतुष्पथ हैं। राजयोग के लिये ऋषि पतञ्जलि का योग सूत्र सर्वोत्तम ग्रन्थ है।

खड्ग-धारेश्वर बाबाजी से मुझको योग-विद्या के सम्बन्ध में बहुत ग्रन्थों का परिचय मिला था। इसलिये उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूं। लेकिन वहाँ बहुत दिन हम नहीं रह सके। बाबाजी मुझको योगविद्या की साधना के प्रथम पाठ सिखाने के लिए अति सवेरे नदी के किनारे ले गये और मेरे हाथ में "सिद्धि" नाम की वस्तु को खाने के लिये दिया। पूछने से पता लगा कि मंत्र से शुद्ध की हुई भंग ही सिद्धि है। मेरे सिर पर मानो वज्र-पात हुआ। मुझको मालूम था कि भंग नशा है। मैं तत्काल ही दौड़कर भागने लगा और गुरुजी भी मेरे पीछे-पीछे दौड़ने लगे। एक राज-कर्मचारी ने मुझे पकड़ लिया और थाने में बन्द करके रखा। गुरुजी पहले ही भाग गये थे। मेरी सब बातें सुनकर मेरे प्रति थानेदार को दया आई। उन्होंने मुझे डाँटा और अहमदाबाद के नशाखोर साधुओं के कुसंगों को छोड़कर बड़ौदा जाने के लिये सलाह दी क्योंकि वहाँ अच्छे-अच्छे मठ हैं। मैं 'तथास्तु'

बोलकर थाने से चला आया और योगिराज बाबा जी की सलाह के अनुसार बड़ौदा चला गया।

बड़ौदा में—अहमदाबाद से बड़ौदा पहुँच गया। रास्ते में किसी गृहस्थ के घर पर नहीं गया। मठ-मन्दिरों में जाने से ही प्रसाद के नाम पर भोजन मिला करता था। रास्ते में तीन रुद्राक्ष और त्रिशूलधारी मेरे साथ मिल गये थे। विदेश-भ्रमण की विद्या में ये बहुत ही दक्ष थे।

बड़ौदा पहुँचकर हम लोगों ने वहाँ के चैतन्य मठ में आश्रय लिया। चैतन्य मठ वेदान्त प्रचार का प्रसिद्ध केन्द्र है। भोजन के लिये पूरा प्रबन्ध है। अधिकांश संन्यासी वहाँ शंकराचार्य के एकान्ताद्वैतवादी हैं लेकिन वहाँ सभी सम्प्रदायों के संन्यासियों और सिद्धान्तों से मेरा परिचय हुआ था। मुझे वहाँ बहुत गुरु मिल गये थे। सब ही गुरु मुझ को पुत्र-दृष्टि से देखते थे। सभी ने मुझको वेदान्त के भिन्न-भिन्न भाष्य पढ़ाये। स्वामी मुक्तानन्द से आचार्य शंकर का 'शारीरिक भाष्य" विवरण टीका "भामती टीका मंडन मिश्र की, "इष्ट सिद्धि" विद्यारण्य की, 'पंचदशी" सदानन्द की, "वेदान्तसार", आनन्द गिरि का, "न्याय-निर्णय" गोविन्दानन्द का, "रत्न प्रभा" प्रकाशानन्द की, 'सिद्धान्त मुक्तावली", और मधुसूदन सरस्वती की "अद्वैत सिद्धि" पढ़ने के लिये मुझे पूरा अवसर मिला था।

स्वामी जीवानन्द ने मुझे वेदान्त दर्शन पर भास्कराचार्य का "भेदाभेदवाद", मध्वाचार्य का "द्वैतवाद", वल्लभाचार्य का 'शुद्धाद्वैतवाद" और श्री कृष्णचैतन्य का "अचिन्त्य भेदाभेदवाद" पढ़ाये थे। वेदान्त दर्शन पढ़ने के लिये चैतन्य मठ में मेरा लगभग एक वर्ष का समय लग गया था। मेरे साथ तीस और ब्रह्मचारी वेदान्त पढ़ते थे। निर्मलानन्द, ब्रह्मानन्द, ज्ञानानन्द, विपुलानन्द, कृपानन्द, विश्वानन्द, विभानन्द, प्रेमानन्द और अभेदानन्द—ये सब हम सबके गुरु थे। ये लोग हम सब ब्रह्मचारी लोगों को वेदान्त पढ़ाते थे और वेदान्त के विभिन्न विषयों पर आपस में आलोचना के लिये मौका देते थे। जीव और ब्रह्म के एकत्व विषय पर ही अधिक आलोचना होती थी।

गौरी देवी (काशी की रहने वाली एक साधुमाता) द्वारिका से वापस जाती हुई चैतन्य मठ में आयी थीं। तीन रोज वहाँ रहते हुए उन्होंने वेदान्त पर आलोचना सुनी थी। उन्होंने जाने के रोज हम सब ब्रह्मचारियों से कहा था कि यहाँ वेदान्त पर आलोचना मामूली ही होती है। काशी

में वेदान्त के दिग्गज पंडित लोग हर महीने वेदान्त पर आलोचना करते हैं। आगामी वार्षिक सभा में भारत के विभिन्न प्रान्तों से पंडित लोग और विभिन्न मठों से साधु-सन्न्यासी लोग आयेंगे। वहाँ जाना चाहिए। हम चारों ब्रह्मचारी—उत्तर मठ के विभवानन्द, पूर्व मठ के कृपाप्रकाश, पश्चिम मठ के भक्ति स्वरूप और दक्षिण मठ का मैं शुद्ध चैतन्य वाराणसी* की ओर रवाना हो गये और यथासमय वहाँ पहुँच गए थे। चैतन्य मठ में केवल वेदान्त पर ही मेरा एक वर्ष का समय बीत गया था। किन्तु किसी योगसिद्ध साधु पुरुष का सन्धान नहीं मिला था। वाराणसी में इनका सन्धान अवश्य मिल जायेगा, इस आशा पर ही मैं बनारस पहुँच गया था।

(२)

वाराणसी में—वाराणसी में आकर हम लोग दशाश्वमेध घाट के निकट साधु-आवास में ठहरे थे। भोजन का प्रबन्ध जयपुराधीश के राज-गृह में था। वेदान्त विषय पर आलोचना भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती थी। उन सब आलोचनाओं से मैंने समझ लिया था कि दूसरे-दूसरे दर्शन शास्त्रों में भी अधिकार रखना चाहिये और व्याकरण शास्त्र को और अच्छी तरह पढ़ना चाहिए। और यह भी देख लिया कि वाराणसी में तीर्थ-यात्रियों का भी अन्त नहीं है, पंडितों का अन्त नहीं है और साधु-सन्न्या-सियों का भी अन्त नहीं है, मैं और तीनों ब्रह्मचारी यहाँ रहकर उपनिषद्, दर्शन और व्याकरण पढ़ने लगे। पं० रामनिरंजन शास्त्री से वैशेषिक और न्याय, पं० विश्वम्भर तर्करत्न से सांख्य और योग, पं० हर प्रसाद विद्या-रत्न से पूर्व-मीमांसा और उत्तर-मीमांसा और पं० रासमोहन सिद्धान्त-वागीश से भी व्याकरण पढ़ने लगे।

---

* इस समय बड़ौदा में एक काशी की रहने वाली स्त्री से मैंने यह संवादपाया कि वहाँ पण्डितों की एक महासभा होगी। इस संवाद के पाते ही मैंने काशी की ओर यात्रा आरम्भ कर दी, और वहाँ पहुँच कर सच्चिदा-नन्द परमहंस से मनस्तत्त्व के विषय में बातचीत करने लगा।

—(आत्मकथा गोविन्द राम हासानन्द दिल्ली से प्रकाशित-पृ०२६)

बड़ौदा में एक स्त्री ने उन को पहचान लिया अतः वहाँ से विद्वानों के बनारस सम्मेलन में चला गया। (बंगला—देखो पोषण-प्रमाण में') देवेन्द्र बाबू का जीवन-चरित्र।

—पहचाने जाने पर बड़ौदे के आस-पास रहना नहीं हो सकता अतः स्वामी जी बनारस पहुँचे।—सं०

मेरे तीनों साथी मुझ को छोड़कर प्रयाग चले गये। मैं अकेला ही काशी में रह कर पंडितों से भिन्न-भिन्न व्याकरण के पाठ पढ़ने लगा। पं० श्री निखिलेश शास्त्री से मैंने कात्यायन का वार्तिक, पं० श्री रुद्रदेव विद्यालंकार से वाक्यपदीय, पं० श्री सोमदेव तर्करत्न से वामन और जयादित्य की काशिका, पं० श्री महादेव शास्त्री से जितेन्द्र बन्धु का न्यास, पं० श्री विमलेन्दु काव्यनिधि से हरदत्त की पदमंजरी, पं० श्रीशशिकान्त भट्ट से रामचन्द्र की प्रक्रिया कौमुदी, पं० श्री अखिलानन्द भट्टाचार्य से भट्टोजीदीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी और पं० श्री महावीर शर्मा से बोपदेव का मुग्धबोध पढ़ा था।

व्याकरण दो या तीन वार भिन्न-भिन्न पंडितों से पढ़ लिया था। मैं ब्रह्मचारी के वेश में ही रहता था। गृहस्थ पण्डित लोग मुझ को स्नेह और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। पं० श्री विमलेन्दु काव्यनिधि और पं० श्री रामनिरंजन शास्त्री मुझको दर्शन शास्त्र पढ़ाने के लिये बड़े ही उत्सुक थे। मैंने उन दोनों से न्याय और वैशेषिक दो वार तथा सांख्य और योग तीसरी वार भी पढ़ा था। काशी के बहुत पण्डित हमसे शंका-समाधान के लिये भी आते थे। मैं पं० श्री हरदेव शास्त्री से मनस्तत्त्व के बारे में भी पाठ पढ़ा करता था।

मेरा मन इन सब विद्याओं को पढ़ने में रहा करता था और रात्रि को शय्या ग्रहण करने के समय योगियों के संधान करने के लिये मेरे मन के अन्दर दूसरे भाव जागृत हो जाते थे। कभी-कभी ख्याल आता था कि पंडितों का भार वहन करने से लाभ नहीं है। यदि मृत्यु को जय करने का कार्य ही बाकी पड़ा रहा तो देश-भ्रमण और विद्या-संग्रह मेरे लिये सब व्यर्थ है। जो घरबार माता-पिता को छोड़कर चला यह सब किस कार्य में आया? यह चिन्ता मुझे दिनरात सताने लगी।

इस दुश्चिन्ता के कारण मेरा चित्त चंचल और अशान्त हो गया था, काशी छोड़कर अन्यत्र जाऊँगा—इस विचार को मैंने पक्का कर लिया था। काशी के सब ही पण्डितों से मैं विदाई और आशीष माँगने लगा। सुनकर सब ही ने दुःख प्रकट किया था। मैं गुरुओं का प्रिय शिष्य था। परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती ही मेरे काशी रहने के एकमात्र आश्रय थे और द्वार बंगाधीश ही मेरे आर्थिक सहायक थे। इन दोनों की कृपा से ही मैंने काशी में रहकर ज्ञानोपार्जन का सुयोग पाया था। मेरे अन्यत्र जाने के विचार से इन दोनों ने भी दुःख प्रकट किया था। इन

लोगों ने चाहा था कि मैं और कुछ समय काशी में रहूँ और शेष शास्त्रों का अध्ययन करूँ। इन्होंने काशी में रहकर योगसिद्ध साधक को ढूँढ़ने के लिये और प्रेरणा दी थी। मैंने कुछ दिन के लिये काशी छोड़ने का विचार छोड़ दिया और दूसरे-दूसरे शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

उपनिषद् पाठ—पं० श्री अच्युतानन्द शास्त्री ने मुझे ११ प्राचीन उपनिषद् और पं० श्री बलदेव शिरोमणि ने उपनिषदों के नवीन १०१ ग्रन्थों का पाठ पढ़ाया था।

स्मृतियों का पाठ—पं० श्री रत्नाकर शिरोमणि से मैंने प्राचीन स्मृति और पं० श्री महेशचन्द्र स्मृतिरत्न से नवीन स्मृतियों का अध्ययन किया था।

बौद्ध दर्शनों का पाठ—भिक्षु तथागत धर्मपाल से मैंने महायानी बौद्ध सम्प्रदाय के माध्यमिक और योगवाद सिद्धान्त तथा साधु राहुल मणिभद्र से हीनयानी बौद्ध सम्प्रदाय के वैभाषिक और सौतान्त्रिक के सिद्धान्त पढ़े थे।

जैन दर्शनों का पाठ—श्री साधु युगल किशोर पारेख से मैंने दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के उमास्वामिकृत "तत्त्वार्थाधिगम" सूत्र और श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के हरिभद्र कृत "लोकतत्त्व निर्णय" आदि ग्रन्थों का विस्तृत पाठ पढ़ा था।

तन्त्र शास्त्रों का पाठ—तान्त्रिक साधु बेताल भैरव बाबाजी ने मुझे तन्त्र शास्त्रों के योग, क्रिया और चर्या को, शैवों के आगम को, शाक्तों के शक्ति तन्त्र को, वैष्णवों के विष्णु तन्त्र को और बौद्ध-जैनियों के अवैदिक तन्त्र को पढ़ाया।

चार्वाक और बार्हस्पत्य दर्शनों के पाठ—पं० श्री विभूति भूषण तर्क-वागीश से "सर्वदर्शन संग्रह" को और श्री पं० क्षेमकरण दर्शन शास्त्री से मैंने बृहस्पति और चार्वाक के नास्तिकवाद, संजय के संशयवाद, केश कम्बली के जड़वाद, कश्यप के औदासीन्यवाद, गोपाल के अदृष्टवाद और काकुद-कात्यायन के पंच भौतिकवाद के पाठ पढ़े।

मनस्तत्त्वों का पाठ—और अन्त में परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी ने मुझे मनस्तत्त्व विषयपर कपिल के सांख्य-प्रवचन सूत्र के, ईश्वर कृष्ण की सांख्यकारिका और पतञ्जलि के योगसूत्रों के साधनपाद सूत्रों के व्याव-हारिक पाठ पढ़ाये थे।

इन सब शास्त्रों के अध्ययन से मेरे अन्दर विभिन्न शास्त्रपाठ की

प्रबल इच्छा और तुलना-आलोचना की रुचि पैदा हो गई थी। मेरा चित्त पहले से बहुत शान्त हो गया था। काशी के बड़े-बड़े विद्वान् साधु-साधक तपस्वियों के सत्संग से और विभिन्न शास्त्रों की विचार-धाराओं से परिचय प्राप्त होने से अपने जीवन को मैं बहुत ही धन्य और कृतार्थ समझने लगा। हृदय में सिंह सदृश बल आ गया और ज्ञानालोक से चित्त उद्भासित हो गया। अब मैं काशी के विभिन्न मठ-मन्दिर, आश्रम-तपोवनों में योग-सिद्ध पुरुषों का सन्धान करने लगा। तीर्थयात्रियों की भीड़भाड़ में और विभिन्न साम्प्रदायिक कोलाहलों में योग-सिद्ध पुरुषों को ढूँढ़ निकालना मेरे लिये कठिन था। इस स्थिति में परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी※ने योगियों के सन्धान के लिये नर्मदा नदी के तटवर्ती तीर्थस्थानों में जाने के लिये मुझे प्रेरणा दी थी और यह भी बोल दिया था कि चाणोद, कर्नाली और व्यासाश्रमादि स्थानों में अवश्य ही जाना चाहिये। तदनुसार काशी से प्रस्थान करने की तिथि निश्चित की गई।

गुरुजनों का आशीर्वाद—परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी के प्रबन्धानुसार प्रस्थान से पहले दिन मेरे सब ही ज्ञानदाता गुरु लोग मुझे आशीर्वाद देने के लिए दशाश्वमेध घाट पर इकट्ठे हो गये थे। गुरुओं को दक्षिणा देने के लिये द्वार-बंगाधीश (दरभंगा) ने मेरे हाथों में ५००) रुपये भेज दिये थे। सब गुरुओं ने मेरे ललाट में चन्दन का टीका लगा के और शिर पर हाथ रख के मन्त्रोच्चारण के साथ आशीर्वाद दिया था। मैंने सबके चरणों को स्पर्श करके प्रणाम किया। उनमें बौद्ध, जैन और नास्तिक गुरु लोग भी थे। मैंने ५००) रु० (पाँच सौ रुपये) गुरुओं को दक्षिणा के रूप में समर्पण कर दिये। परमहंस सच्चिदानन्द सरस्वती★ ने सब गुरुओं की ओर से मुझे आशीर्वाद दिया था—'ब्रह्मचारिन्! सौम्य शुद्ध-चैतन्य! पवित्र

※ नर्मदा के उत्पत्ति स्थान [अमर कण्टक] के दर्शन करने के बाद दयानन्द तीन वर्ष तक नर्मदा के तट पर भ्रमण करते रहे थे और अनेक साधु-महात्माओं के साथ मिले थे—"पं० लेखराम"

—देवेन्द्र बाबू के समान पण्डित लेखराम भी सत्यान्वेषी थे। वह कोई स्वकपोल-कल्पित बात नहीं लिख सकते थे। उन्हें ऐसी सूचना किसी न किसी से मिली होगी—"पं० घासीराम टिप्पणी पृ०५३, म द च. भाग १॥

★ हस्तलेख में 'स्वरूप'

काशीधाम से सौभाग्य के कारण तुम बहुत ही मूल्यवान् ज्ञान-सम्पद् को प्राप्त हुए हो। लेकिन तुम्हारे अन्दर योग विद्या सीखने की प्रबल इच्छा उद्दीप्त हो रही है। हम लोग उस आग को बुझाना नहीं चाहते हैं। हम तुम्हें नहीं छोड़ रहे हैं। तुम ही हम सबको छोड़कर जा रहे हो। हम लोग तुम्हारा आध्यात्मिक उत्कर्ष भी चाहते हैं। तुम यहाँ से नर्मदा (रेवा) नदी के किनारे जाने के लिये प्रस्थान करो। वहाँ नदी के दोनों तटों पर आश्रम बनवा के बहुत से योगी पुरुष रहा करते हैं। नर्मदा नदी के स्थान-स्थान में दूसरी बहुत-सी नदियों के संगम स्थल मिलेंगे। भिन्न-भिन्न साधन क्षेत्र और तीर्थ स्थल मिलेंगे। किन्तु हिंस्र पशु जंगलों में विचरण करते हैं। वृक्षों में फल मिलेंगे, सरोवर में जल मिलेगा। वृक्षों के नीचे और ऊपर सोने के स्थान मिलेंगे, वनचर मनुष्य तुम को आश्रय देंगे। जैसे वहाँ तपोवन और आश्रम हैं, ऐसे ही वहाँ चोर और डाकुओं के भी आश्रयस्थल हैं। अपने साथ में डण्डा रखो और थैली रखो और दिल में ईश्वरभक्ति रखो, विपद् आयेगा लेकिन तुम पार हो जाओगे।" गुरुओं का आदेश और आशीर्वाद मैंने शिरोधार्य किया। सब ही गुरुओं के चरण छूकर प्रणाम करके मैं प्रस्थान की तैयारी में लग गया। मैं अपने परम हितैषी द्वारबंगाधिपति से विदाई लेने को गया। वे मेरे प्रति स्नेह और श्रद्धा दोनों ही भाव रखते थे। मेरे प्रस्थान के कारण वे भी सन्तप्त थे। उन्होंने कहा —"तुम अपने प्रयोजन के अनुसार रुपये-पैसे और सामग्री जो-जो और जितनी चाहो ले जाओ।" मैंने कहा—"आप ही की कृपा से काशी से अमूल्य ज्ञान-सम्पद् मुझको मिला है। मेरे लिये वह बहुत है। लेकिन वे माने नहीं। मैंने विवश होकर एक लोटा, एक कम्बल, एक अंगोछा और एक डण्डा लेकर काशी से नर्मदा नदी की ओर प्रस्थान किया।

नर्मदा तीर्थ भ्रमण

(१)

नर्मदा के तटों में:—मैं काशी से रवाना होकर पैदल विन्ध्याचल की तरफ अग्रसर होने लगा।* और बिलासपुर होता हुआ अमर

* वहाँ [काशी में] पहुँच कर सच्चिदानन्द परमहंस से मैंने सुना कि नर्मदा के तीर पर चाणोद, कल्याणी (कण्णाली) नाम के स्थान में बहुत से उन्नतचरित्र संन्यासी और ब्रह्मचारी रहते हैं। इसके अनुसार मैंने वहाँ जाकर बहुत से योगदीक्षित साधुओं को देखा, इत्यादि।

(—आत्मकथा थ्योसोफिस्ट पृ० २६)

कण्टक पहुँच गया था। विन्ध्याचल और सतपुड़ा पर्वतों के बीच में महाकाल नाम का पर्वत है। उसके अमरकंटक नामक शृंग के विराट कुण्ड से नर्मदा निकली है। मध्यप्रदेश और गुजरात होती हुई नर्मदा अरब-सागर की खाड़ी काम्बे में मिल गयी है। नर्मदा करीब एक सौ योजन लम्बी है। मैं धीरे-धीरे नर्मदा नदी के उत्पत्ति-स्थल की तरफ अग्रसर होने लगा। दोनों तटों में दूसरी-दूसरी बहुत-सी उपनदियाँ आकर मिली हैं। नदियों के संगम स्थलों में बहुत से तीर्थ हैं। प्राचीन काल से ऋषि-मुनियों के नाम पर बहुत से आश्रम बन गये हैं। साधु-तपस्वी लोगों के साधना करने के लिये और साधना-शिक्षा देने के लिये वहाँ साधन-क्षेत्र भी बन गये हैं। परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी से यहाँ के चाणोद, कर्णाली, व्यासाश्रम और आबू-पर्वतादि साधन-क्षेत्रों के विषय में बहुत-कुछ सुना करता था, आबू अर्वली पर्वत का शृंग-विशेष है। उन सब स्थानों के प्रति मेरा विशेष आकर्षण था। घने जंगलों के अन्दर मैं कम-चौड़े छोटे-छोटे रास्तों से जाने लगा। कभी-कभी तो रास्ता समाप्त हो जाता था। वहाँ के स्थानीय आदमी मिल जाते तो वे बता देते थे कि इस रास्ते से किस तरफ जाने से, कौन-सा तीर्थ या आश्रम मिल जाता है। दोपहर के समय भी घने जंगलों में अंधेरा बना रहता था। भूख-प्यास लगने से या शाम हो जाने से अधिक कठिनता होती थी। बीच-बीच में चोर-डाकुओं का अड्डा भी मिल जाता था। जाते-जाते बड़े-बड़े सांप, हाथी, शेर, रीछ, वराह, जोंक, जहरीले कीट पतंगों के झुंड और बड़े-बड़े मांस-भुक् पक्षी मिलते थे। लेकिन उनमें से किसी ने भी मुझे हानि नहीं पहुँचायी और मैंने किसी को हानि पहुँचाने के लिये सोचा भी नहीं। इस रूप से मैं नर्मदा नदी के इस पार से उस पार आया-जाया करता था। कहीं-कहीं घाट-उतराई के लिये नाव का भी प्रबन्ध नहीं था। एक लकड़ी के टुकड़े के सहारे पर ही नदी पार होना पड़ा। जहाँ कुछ प्रबन्ध नहीं था वहाँ मैं तैर के ही नदी के उस पार चला जाता था, इस रूप से मेरा लोटा, कम्बल, थैली और डंडा बहुत पहले ही खो गये थे। मैं इस रूप से द्वार-बंगाधीश की दी गयी स्नेह, श्रद्धा, प्रेम-प्रीति की निशानी से भी मुक्त हो गया था।

नर-बलि—एक दिन की घटना को मैं आज तक भी भूल नहीं सका। शाम होने वाली है। सामने नदी है। अमावस्या की अंधेरी रात आने वाली है। आज मैं किस रूप से रात्रि बिताऊँगा—यही सोच रहा था। देखते-देखते और सोचते-सोचते अन्धेरा आ ही गया। दूर से आवाज

आने लगी हर्षध्वनि की । धीरे-धीरे भीड़ नदी के किनारे पहुँच गयी। मैंने दूर से देख लिया कि एक दस वर्ष के बालक को लोग नहला रहे हैं। सब पुरुष हर्ष के कारण नाच रहे हैं और स्त्रियाँ गाना गा रही हैं। एक माता बार-बार उस लड़के को पकड़ने के लिये जा रही थी और लोग माता को धकेल देते थे। यह क्या बात है इसे जानने के लिये मैं वहाँ पहुँचा। मैंने सुना कि 'आज अति पुण्य तिथि मणि-अमावस्या है। काल भैरव की गुफा में आज मध्य रात्रि को काल भैरव की सेवा में इस निष्पाप, निर्दोष और शुभ लक्षणयुक्त ब्राह्मण-बालक को बलिवेदी पर चढ़ाया जायेगा। उसके माता-पिता और वंश धन्य हो जायेंगे। ऐसा सौभाग्य सब के लिये नहीं होता है। इस एकमात्र पुत्र-बालक के पिता को पुजारियों की तरफ से ५०)रु० (पचास रुपये) प्राप्त हुए हैं, पिता काल भैरव की कृपा को अनुभव करके धीर स्थिर शान्त रहा। लेकिन मूर्ख और अभागिनी माता ने काल-भैरव की इतनी बड़ी कृपा को नहीं समझा। हर वर्ष केवल एक बार इस मणि-अमावस्या की पुण्य तिथि में काल भैरव को इस रूप से एक-एक सुलक्षणयुक्त ब्राह्मण बालक भेंट के रूप में दिया जाता है, इसमें रोने की क्या बात है? आज मध्यरात्रि को ही यह बालक बलिदान के साथ-साथ मनुष्य-देह को छोड़ कर गन्धर्व लोक को चला जायगा।"

इस बात को सुनते ही मेरे मन में तीन चिन्तायें उत्पन्न हुईं।

पहली—"मेरी माता ने मुझ पुत्र को केवल खोकर ही देहत्याग किया था। अपने पुत्र का बलिदान देख यह माता जीवन कैसे रखेगी ?"

दूसरी—"इस सामाजिक महापाप के दण्ड भोग के लिए ही हमारी पुण्य-मातृ-भूमि धीरे-धीरे विदेशी वणिकों के कवल में जारही है।"

तीसरी—'धर्म के नाम पर ऐसे-ऐसे महापाप ऋषि-मुनियों के देश में कैसे चालू हो गये ?"

मुझसे यह करुण और भयंकर दृश्य सहा नहीं गया। यह काल-भैरव का स्थान धर्मपुरी से लगभग दो योजन की दूरी पर जंगल के अन्दर रास्ते के पास वारंगा नाले के साथ-साथ है। धर्मपुरी* पुनघाट के सम्मुख नर्मदा के उत्तर तट पर है। फतेहगढ़ से कोई एक योजन दूरी पर ही यह स्थान है।

* ह० ले० में बंगला में—"पुनेर पुनेर"

बलिदान की शोभा-यात्रा के अन्दर जाकर रक्त चन्दन से अनुलिप्त रुद्राक्षमाला-परिहित प्रधान पुरोहित से मैंनें कहा—"कृपया आप इस बालक को छोड़ दीजिये। इसके बदले मुझ को ले जाइये। मैं भी ब्राह्मण का बालक हूं।" पुरोहित ने कहा—"यह सौभाग्य सबको नहीं मिलता। इस बालक को नहीं छोड़ सकता हूं, क्योंकि यह काल-भैरव को पहले ही उत्सर्ग किया गया है। तुम भी जा सकते हो, वहाँ पुरोहित-राज कापालिक की आज्ञा हो तो बालक को छोड़ दूंगा और तुमको ही बलि पर चढ़ा दूंगा।" मैं सहर्ष राजी होकर शोभायात्रा में शामिल होकर चला। लड़के की माता के कंठ की आवाज रोने के कारण बन्द हो गयी थी। केवल पगली की तरह शोभा यात्रा में शामिल होकर आ रही थी। शोभा यात्रा कालभैरव की गुफाके सम्मुख पहुँच गयी,भीड़भाड़ वहाँ भयंकर थी सात कपड़े की पट्टियाँ सिर पर बाँध कर करीब पचास आदमी कटारी हाथों में लेकर नाच रहे थे। करीब सौ स्त्री-पुरुष शराब पी-पीकर वहाँ गाना गा रहे थे। मेरें बारे में पुरोहित और कापालिक के अन्दर बातचीत हो गयी। उन्होंने मुझको सुझाव दिया-"अगर तुम राजी हो तो काल भैरव की सेवा में तुम को ही बलिदान दिया जायेगा।"मैं राजी हो गया। पुत्र-शोकातुरा जननी को पुत्र वापस दिया गया। पुत्र को पाकर गले से आलिंगन कर के माता बेहोश होकर गिर पड़ी।

मुझको पुरोहितों ने स्नान करवाया, रक्त चन्दन बदन में लगवाया, फूलों की माला पहना पुरोहित मेरे सिर पर हाथ रख कर मन्त्र-पाठ करनें लगा। कपाल में कुमकुम लगवाया गया। खड्ग की पूजा हुई। कालभैरव की गुफा के सम्मुख काठ की वेदी में मेरे सिर को रखवा कर पुरोहित लोग मिलकर मन्त्रपाठ करने लगे। चारों तरफ से "कालभैरव बाबा की जय" का उद्घोष होने लगा। मैंनें जनता को एक बार देख कर आँखें बन्द कर लीं और मरने के लिये तैयार हो गया। पुरोहित ने कानों में मुख लगा के मन्त्र पढ़ दिया—"ओम् नर त्वं बलि-रूपेण मम भाग्यादुपस्थितः। प्रणमामि ततस्त्वां वै गच्छ त्वं गन्धर्व-सदनम्।"—"यज्ञार्थे पशवः सृष्टा यज्ञार्थे पशुघातनम्॥

यज्ञे च मरणे त्वं हि ध्रुवं गन्ता त्रिविष्टपम्!"

इस मन्त्र को पढ़कर पुरोहित ने खड्ग को घातक के हाथों में दे दिया और मेरी आँखों को कपड़े की पट्टी से अच्छी तरह कसके बाँध दिया। अब बलिदान बाकी है, लेकिन साथ-साथ अचानक बन्दूकों से गोलियाँ छोड़ने की तीव्र अति भयंकर आवाजें आ गयीं। साथ के आदमी लोग

वारङ्गा नाला पर काल भैरव को नर-बलि

नर-बलि के लिये उपहृत ब्राह्मण बालक व ब्राह्मणी के परित्राणार्थ आत्म-बलिदान के लिये दयालु दयानन्द की दयार्द्रता ! (पृष्ठ ४१)

आत्म-बलि के लिये तत्पर देवदूत दयालु दयानन्द योग-यात्री (पृष्ठ ४०)

चिल्लाने लगे—'भागो! भागो! भाग जाओ! मरहठी फौज आ गई!" सब कोई जंगल के अन्दर भाग गये। मैं अकेला बलिदान के लक्कड़ में बँधा हुआ पड़ा रहा। तुरन्त वहाँ चार बंदूकधारी सिपाही पहुँच गये और उन्होंने मुझ को मुक्त कर दिया। मैंने सुना कि वे लोग अमावस्या की रात्रियों में नरबलि बंद कराने के लिये घूमा करते हैं। ये लोग मरहठी फौज के सिपाही हैं। वह माता डर के मारे लड़के को साथ लेकर जंगल के अन्दर छिपी हुई थी। मैंने वहाँ जाकर माता को आशा बंधाई कि अब इन फौजी सिपाहियों से डरने का कोई कारण नहीं है। हमने इन सिपाहियों से सब बातें आनुपूर्व कह दी थीं। माता से, लड़के से और मुझसे इन्होंने सब कुछ सुन लिया। वे लोग वहाँ ही रहे। सवेरे दो सिपाही माता को और लड़के को साथ लेकर उनके घर पहुँचाने के लिये रवाना हो गये। दो सिपाहियों ने निरापदता के लिये साथलेकर मुझको धर्मपुरी छोड़ दिया। मैं धर्मपुरी से थोड़ी दूरी पर मानधारा में आया। वहाँ नर्मदा नदी का प्रपात है। वहाँ स्नान करके प्रभु के चिन्तन में बैठ गया।

प्रभु को मैंने स्मरण किया—हे प्रभो! हमसे कौन सा कार्य होगा जिसके लिये तुमने हमको बलिवेदी से भी बचा लिया? देश समाज और धर्म की अवस्था पर मैं सोचने लगा। मैंने समझ लिया था कि देश सेवा, समाज सेवा, जाति सेवा या धर्म सेवा के लिये योग्यता की आवश्यकता है याद आ गयी थी कि मैं इसीलिये नर्मदा के किनारे आया हू। योगसिद्ध साधकों के सन्धान में मैं दोनों किनारों पर प्रत्येक आश्रम में जाऊँगा। नदी-संगम पर आश्रम में योगी लोग रहते हैं। ये ही इनके साधना के लिये सर्वोत्तम स्थान समझे जाते हैं। प्रभु ने मेरी परीक्षा की है, और भी परीक्षाएँ सामने हैं।

मैं दृढ़चित्त होकर नर्मदा के प्रवाह के अनुसार पूर्व दिशा की ओर जाने लगा। रास्ते में बहुत साधुओं का संग मिला। उन के अनुभवों को सुन कर पारमार्थिक जगत् के लिये लाभ भी उठाया। प्राकृतिक दृश्यों से मन-बुद्धि-चित्त निर्मल होने लगे। हिंस्र पशु भी साधुओं को पहचानते हैं। ये लोग साधुओं को किसी तरह से हानि नहीं पहुँचाते हैं। शिकारी लोगों को देखने से ही ये लोग बिगड़ जाते हैं। बन्दूक या बारूद के गन्ध को पाकर ही ये लोग शिकारियों को मारने के लिये संघबद्ध हो जाते हैं। जंगल के निवासी भी बहुत ही सरल, अतिथि-सेवा-परायण और कृतज्ञ होते हैं। इस भरोसे पर मैं नर्मदा नदी के आदि से अन्त तक योगियों के सन्धान के लिये तत्पर हुआ।

व्याध, हिंस्र पशु और पक्षियों की करुणा—नर्मदा के तटों पर योगियों के सन्धान में घूमते हुए मुझे व्याध, हिंस्र पशु और पक्षियों की करुणा भी प्राप्त हुई थी। दो-तीन घटनाएँ मुझे आज तक भी याद आती हैं। इन घटनाओं के संक्षिप्त विवरण के बाद नर्मदा-भ्रमण के पूरे विवरण प्रस्तुत करूँगा।

गहरे वन के अन्दर जाते हुए एक दिन मार्ग दिखाई नहीं दिया, सायंकाल हो गया। निश्चेष्ट होकर धीरे-धीरे जाने लगा। अन्धेरे में गड्ढे में गिर गया। दाहिनी टांग भंग हो गई। गड्ढे में ही पड़ा रहा। मेरी कातर आवाज सुनकर वन के रहने वाले व्याध लोगों ने आकर मुझे ऊपर उठाया, तीन रोज उन्हीं के घर पर ही रहा। उन लोगों ने टाँग पर नानाविध औषध जड़ी-बूटी लगाई, भोजन के लिए फलों का प्रबन्ध किया। यथा-शक्ति मेरी सेवा की, आरोग्य होने के बाद मुझे ठीक रास्ते तक पहुँचा दिया।

एक दिन क्षुधार्त्त होकर जंगल के अन्दर पेड़ के नीचे बैठा रहा। दो रोज भोजन नहीं मिला। फलवाले वृक्ष भी नजर नहीं आये। किसी आदमी को भी नहीं देखा। तीसरे रोज भूख के कारण अशक्त होकर पेड़ के नीचे लेट रहा, क्षुधा-पिपासा के कारण प्राण जाने वाले हो गये। धीरे-धीरे दो भालू मेरे पास पहुँच गये। मैंने जीवन की आशा छोड़ दी। दोनों भालू मेरे शरीर को सूँघने लगे और चले गये। कुछ देर बाद एक भालू मुँह में मधु मक्खियों का छत्ता लेकर मेरे पास छोड़कर चला गया। छत्ता मधु से पूर्ण था। मधु को मैंने भरपेट चाट लिया। शरीर में शक्ति आई और धीरे-धीरे मैं वहाँ से आगे चलने लगा।

एक दिन जंगल के रास्ते में चलता हुआ परिश्रान्त होकर किसी पेड़ के नीचे लेट गया और सो गया। किसी आवाज के कारण नींद टूट गयी। देखा एक साँप मेरे सिर के पास फन उठाये फुफकार कर रहा था, मैं क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आया। तुरन्त एक पक्षी (बाज) झपट करके आ गया और साँप को उठाकर ले गया। इन तीनों घटनाओं से मुझे मालूम हुआ कि भगवान् की करुणा सब ही जीवों के अन्दर विद्यमान है, किन्तु उसकी करुणा चिन्ता से अतीत है।

(२)

नर्मदा का तीर्थ भ्रमण

वाराणसी से अमर कंटक—मैं वाराणसी से पैदल रवाना होकर विलासपुर होता हुआ अमरकंटक पहुँच गया था। रास्ते में गृहस्थों के

घरों से आसानी से भोजन मिल जाता था। साधु-संग और ईश्वर-चिन्तन में समय व्यतीत हो जाता था।

अमरकंटक में एक बड़ा कुण्ड है जिससे नर्मदा निकली है। उस कुण्ड का नाम कोटि-तीर्थ है। अमरकंटक में प्राचीन और नवीन मन्दिरों की संख्या बहुत है। यहाँ मार्कण्डेय ऋषि, भृगु ऋषि और कपिल ऋषि के आश्रम प्रसिद्ध हैं। कबीरदास जी का सामयिक विश्राम-स्थान कबीर चौतरा है। वहाँ से कपिलधारा और दुग्धधारा नाम के दो जलप्रपात समीप ही हैं। ज्वाला नदी का उद्गम, नलगंगा का संगम और चक्रतीर्थ भी समीप हैं। थोड़ी दूर जाने से आचार्य शंकर द्वारा स्थापित ऋण-मुक्तेश्वर मन्दिर और कुकरी मठ मिलते हैं। शोणभद्र नदी का उद्गम भी यहाँ से अधिक दूर नहीं है। मैं सब ही स्थानों में योग सिद्ध साधकों के सन्धान में गया था। सब ही जगह पुजारी लोगों की ही भीड़-भाड़ देखी।

अमरकंटक से नन्दिकेश्वर - अमरकंटक से मैं मंडला आ गया था। मंडला में भी पुराने मन्दिर बहुत हैं। नर्मदा के उस पार व्यासाश्रम है। वहाँ जाकर वहाँ के महन्त श्रीमान् कर्मानन्द स्वामी से मिला। उन्होंने मुझको सात रोज हठयोग के बारे में उपदेश दिया था। उनके उपदेश का सारांश यह है:—

"हठ योग के अभ्यास से योगी शीत-ऊष्म, क्षुधा-तृष्णा, निद्रा-आलस्य, जरा और वार्द्धक्य पर विजय-लाभ करते हैं; अटूट स्वास्थ्य, मानसिक बल और आत्म संयम की शक्ति प्राप्त होती है। हठ योगी का आहार स्वल्प होता है और आहार छोड़कर भी योगी महीनों रह सकते हैं, तुम हठयोग का स्वाध्याय-अभ्यास करो।"

मैंने उनका उपदेश शिरोधार्य किया और उनसे विभिन्न आसन और मुद्राओं का अभ्यास सीखा। त्राटक, नाड़ी-शुद्धि, नेति क्रिया (नासापान), वस्ति क्रिया, धौति क्रिया, प्राणायामादि का भी अभ्यास किया।

मंडला में रहते हुए मैंने हृदय नगर, मधुपुरा घाट, सीता-रपटन, लुकेश्वर और नन्दिकेश्वर-घाट में जाकर भी योगियों की खोज की थी, हृदय नगर बंजर नदी के किनारे है। यह नदी नर्मदा में मिल गयी है और दो नदियाँ सुरपन और माटेयारी बंजर नदी के साथ मिल गयी हैं। इसलिये इसका नाम त्रिवेणी है। मधुपुरा घाट का दूसरा नाम घोड़ा घाट है। यहाँ मार्कण्डेय ऋषिका आश्रम है। योगिनी गुफा नामक स्थान भी इस स्थान के पास है। यहाँ बहुत साधुओं से भेंट हुई। उनमें कोई योगी पुरुष नहीं मिला। नन्दिकेश्वर घाट से थोड़ी दूर

पर हिंगना नदी नर्मदा में मिलती है। योगियों के संधान में यहाँ के सब ही स्थानों में मैं कई वार गया था, लेकिन केवल भक्त साधु पुरुषों को ही देखा, योगी साधक एक भी नहीं मिला। मंडला से मैं देवगांव, सिधरपुर और देवकुंड में भी गया। शृंगी ऋषि का आश्रम सिधरपुर में था और महोगाँव में जमदग्नि ऋषि का आश्रम था। देवकुंड में जलप्रपात देखा। बहुत ऊपर से यहाँ जल गिरता है। देवगांव के पास नर्मदा में बड़नेर नदी और देवकुंड के पास नर्मदा में खरमेर नदी मिलती है। इन सब स्थानों में भी योगी साधक नहीं मिले।

नन्दिकेश्वर से मुकुट क्षेत्र - मंडला से मैं जबलपुर आया। इसका दूसरा नाम जाबालि पत्तन है। यहाँ जाबालि ऋषि का आश्रम था। यहाँ से मैं योगियों की खोज में तिलवारा घाट, मुकुट क्षेत्र, त्रिशूल घाट, लमेटी घाट, गोपालपुर घाट, भेड़ा घाट, जलेरी घाट और बेल पटार घाट आदि स्थानों में गया था। भेडाघाट के पास धुआंधार जलप्रपात है। त्रिशूलघाट में त्रिशूलतीर्थ, लमेटीघाट में नर्मदा में सरस्वती नदी का संगम, भेड़ाघाट में भृगु आश्रम और रामनगरा में मुकुट क्षेत्र को देखा। जलेरीघाट में एक साध से पता चला कि जबलपुर के आसपास कोई योगी पुरुष नहीं है।

मुकुटक्षेत्र से ब्रह्माण्डघाट—जबलपुर से मैं ब्रह्मांडघाट आया, नर्मदा के अन्दर द्वीप है और सप्तधारा तीर्थ है। वहाँ से मैं पिठेरा-गरारु, पिपरियाघाट, हरणी-संगम, बुधघाट, ब्रह्मकुंड, सहस्रावर्त तीर्थ, सौगन्धिक तीर्थ, सप्तर्षि वन, अंडियाघाट, शांकरी गंगा-संगम, कश्यपाश्रम, शक्कर नदी संगम, जनकेश्वर-तीर्थ, धर्मशाला, दुग्धीनदी-संगम, साई खेड़ा और खांड़े नदी का संगम है। इसका नाम केउधान घाट है। इनके अन्दर लगभग सभी तीर्थों में मैंने भ्रमण किया लेकिन अनुभवी योगी पुरुष दीख नहीं पड़े।

केउधानघाट से कालभैरव गुफा—केउधानघाट से योगियों के संधान के लिये आगे बढ़ा, वहाँ से रवाना होकर मैं कालभैरवगुफा तक आया। इस कालभैरवगुफा में ही मेरे लिये बलिदान का प्रबन्ध हुआ था। केउधानघाट से होशंगाबाद आया। वहाँ बहुत मन्दिर हैं। नर्मदा के दक्षिण तट पर तवा नदी का संगम है। इसके आगे सूर्यकुंड है। यहाँ से आगे गौघाट में १६ योगिनियों और दो सिद्ध पुरुषों के स्थान हैं। यह तांत्रिक और वाममार्गियों का प्रधान केन्द्र है। चांदनेर में कालभैरव और महाकालेश्वर

शिव के मन्दिर हैं। सुना गया था कि यहाँ कभी-कभी नरबलि होती है। इसके आगे महर्षि भृगु का भृगु कच्छ आश्रम है। इसके आगे मारू नदी के संगम में पाँडवों की तपोभूमि है। इसका नाम पांडुदीप पड़ा। वहाँ से आगे नर्मदा के दक्षिण तट पर पलकमती नदी का संगम है। यह पुरानी यज्ञ भूमि है। आगे नारदी गंगा का संगम है। यह नारद ऋषि की तपोभूमि थी। इससे आगे वरुणा नदी का संगम है। इससे आगे आकाशदीप तीर्थ है। इससे आगे कुब्जा नदी का और आगे अंजनी नदी का संगम है। यहाँ शाँडिल्य ऋषि का आश्रम और गौरी तीर्थ हैं। इससे आगे गोमुख-घाट है और हत्याहरण नदी का संगम है। वहाँ से आगे नर्मदा के अन्दर पहाड़ पर भीमकुंड है। इसके आगे इंदाना नदी का और गंजाल नदी का संगम है। आगे गोनी नदी के संगम में जमदग्नि ऋषि की तपोभूमि है। आगे वागदी नदी का संगम है। यह स्थान नर्मदा का नाभिस्थान बोला जाता है। यह कालभैरव की तपोभूमि है। कुछ आगे दांतोनी नदी का संगम है। इस से आगे पुनघाट में गौतम ऋषि की तपोभूमि है।

गौतम ऋषि की तपोभूमि के समीप धर्मपुरी है और मानधारा का जल-प्रपात है। इसी के आगे जंगल के अन्दर पूर्वोक्त कालभैरव गुफा है। वहाँ के योगी और सिद्ध पुरुषों की आशा मैंने छोड़ दी थी।

काल भैरव की गुफा से मंडलेश्वर—मंडलेश्वर जाने का सन्धान मुझे किसी साधु से मिल गया था। नर्मदा के अन्दर एक टापू है। महाराज मान्धाता ने यहाँ तपस्या की थी। इसी से इस टापू का नाम मान्धाता पड़ गया था। इसके एक ओर नर्मदा से निकली हुई काबेरी वहती है। कावेरी आगे जाकर नर्मदा में ही मिल गई है। इस टापू में बहुत से मंदिर हैं। इस स्थान का नाम ओंकारेश्वर भी है। कोटि तीर्थ और चक्र तीर्थ भी समीप हैं। नौका से पार होके यहाँ आना होता है। नर्मदा पार कर के ब्रह्मपुरी और विष्णुपुरी होकर अमलेश्वर आना पड़ता है। योगियों के सन्धान में मैं इन सब स्थानों में आया-गया। लेकिन सफल नहीं हुआ। काबेरी धारा के आरम्भ में पशुपतिनाथ तीर्थ है और अन्त में काबेरी-नर्मदा के संगम में कुबेर की तपोभूमि है। वहाँ से थोड़ी दूर पर च्यवन ऋषि का आश्रम है। कुबेर की तपोभूमि से आगे सप्त-मातृका तीर्थ है। वाराही, चामुण्डा, ब्रह्माणी, वैष्णवी, इन्द्राणी, कौमारी और माहेश्वरी—इन सप्त मातृकाओं के पृथक्-पृथक् मन्दिर हैं। इन सब ही मन्दिरों में तांत्रिक साधुओं से वार्तालाप हुआ था। इनकी पंच-मकार की साधन-

प्रणाली बहुत ही भयावह और अश्लील मालूम पड़ी। वहाँ ६४ योगिनियों और ५२ भैरवों के विशाल मन्दिर हैं। मन्दिरों में विशाल २ मूर्तियाँ भी हैं। वहाँ से मैं, नर्मदा के सर्वश्रेष्ठ जलप्रपात के पास आ गया था। वहाँ से कोटेश्वर और नीलगढ़ तीर्थ समीप हैं। वहाँ से आगे जाते हुए मैंने नागेश्वर कुण्ड, भस्म टोला, विमलेश्वर, गोमुखघाट और गंगेश्वर तीर्थों में योगियों का सन्धान किया था। वहाँ से आगे मतङ्ग मुनि का आश्रम है और नर्मदा के साथ खुलार नदी का संगम है। वहाँ से मर्दाना और पिप्पलेश्वर होता हुआ मैं मण्डलेश्वर तीर्थ में आया। मण्डलेश्वर में कई-एक योगी और वैष्णव साधकों से भेंट हुई। मण्डलेश्वर के प्रमुख योगी आनन्दी बाबा ने मुझे राजयोग सीखने के लिए परामर्श दिया था। उन्होंने मुझे धारणा, ध्यान और समाधि की सिद्धि के लिए अति आवश्यक सत्य आदि के सम्बन्ध में उपदेश दिया था और आगे अग्रसर होने के लिए कहा था। मैं मण्डलेश्वर में कई एक दिन रहकर माहिष्मती पुरी की ओर चल दिया।

मण्डलेश्वर से धर्मराय तीर्थ—माहिष्मतीपुरी का आधुनिक नाम महेश्वर है। महेश्वर नगर से थोड़ी दूर माहेश्वरी नदी नर्मदा में मिलती है। ज्ञानवादी शंकराचार्य से कर्मवादी मण्डन मिश्र का यहाँ ही शास्त्रार्थ हुआ था। प्राचीन काल में चन्द्रवंशीय राजा महिष्मान् ने इस नगर को बसाया था। माहेश्वरीसंगम में ज्वालेश्वर शिव का मन्दिर है। इससे आगे सहस्रधारा नामक स्थान है। वहाँ मेरी मुक्तेश्वर नामक साधु बाबा से भेंट हुई थी। उन्हीं के साथ मैं बहुत दूर तक घूमता-घामता पर्वत के ऊपर मांडवगढ़ में पहुँचा। साधु मुक्तेश्वर बाबा के साथ ही पर्वत और वनों के अन्दर जाता हुआ पगारा, धर्मपुरी और खलघाट में गया। कुब्जा नदी का संगम, दधीचि आश्रम, साटक नदी का संगम, कारम और बुटी नदी के संगम, कसरोद, बोधपाडा, चिखलदा, राजघाट, कोटेश्वर, मेघनाद नाम के स्थान, गोयद नदी का संगम और धर्मराय तीर्थ तक दोनों ने भ्रमण किया था। धर्मराय तीर्थ के पास हिरनफाल तीर्थ के मार्ग की निम्न घटना याद है :—

जंगल के अन्दर दोपहर के समय पेड़ के नीचे दोनों विश्राम कर रहे थे। अचानक वन्य वराहों का विशाल झुण्ड भयंकर गर्जन के साथ हमारे चारों तरफ से पहुँच गया। मुक्तेश्वर बाबा डर के मारे चिल्लाते हुए पेड़

पर चढ़ गये और मुझको भी अपने पीछे चढ़ने के लिये कहा। शीघ्र पेड़ पर चढ़ना मुझे नहीं आता था। मैं बिलकुल निरुपाय हो गया था। जंगलों के रहने वाले लोग दूर से मेरे लिये चिल्लाने लगे। साधु बाबा पेड़ पर चढ़ गये लेकिन उनकी बहुत ही मजबूत लाठी पेड़ के नीचे दिखाई दी, मैं उस लाठी को हाथों में लिये हुए साहस के साथ बचने की आशा को छोड़कर ही लाठी खड़ी करके वराहों के सम्मुख अग्रसर हो गया। बार-बार मैं लाठी से मिट्टी पर आघात करके खड़ा रहा। वराहों का झुण्ड चुपचाप क्षण भर खड़ा रहकर विकृत और भयंकर आवाज के साथ भागकर चला गया। जंगल के रहने वाले स्त्री-पुरुष वहाँ पेड़ के नीचे जमा होने लगे। सब कोई पूछने लगे कि "आप कौन-सा मंत्र जानते हैं जिसके कारण वन के हिंस्र पशु भी डर के मारे भाग जाते हैं?" साधु बाबा धीरे-धीरे पेड़ के ऊपर से नीचे उतर आये और सबसे कहने लगे—"यह साधु बहुत ही गुणी है।" इस बात को सुनकर जंगल के सौ-सौ स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी भविष्यत् का हाल जानने के लिये, दवाई के लिये और विभिन्न प्रार्थना-पूर्ति के लिए मेरा घिराव करते रहे। मैं अति सवेरे ही किसी तरह यहाँ से भागकर अकेला ही चलने लगा। बहुत देर बाद मैंने देखा कि मुक्तेश्वर बाबा भी मेरे पीछे-पीछे दौड़ कर आ रहे हैं। हम दोनों फिर एक साथ मिलित हो गये थे।

धर्मराय तीर्थ से चाणोद—धर्मराय तीर्थ के अति समीप हिरणफाल का जंगल है। जंगल के अन्दर से नर्मदा का प्रवाह है। मैंने और मुक्तेश्वर बाबा ने जंगल के अन्दर प्रवेश किया और पैदल चलते हुए असुरों की तपोभूमि हिरणफाल में पहुँच गए। वहाँ एक और साधु तपस्वी को देखा। साधु ने हम लोगों से कुछ भी बातचीत नहीं की। वे मौनी थे। उन्होंने उस रोज रहने के लिए इशारा कर दिया। खाने के लिये फलवान् वृक्ष और रात बिताने के लिये और भगवान् के चिन्तन के लिए एकान्त वृक्ष तल दिखा दिये। हम दोनों ने रात को फल खा लिये थे। आधी रात को उस तपस्वी ने अति जोर से लगातार शब्द करना आरम्भ कर दिया। वहाँ के रहने वाले चार आदमियों ने आकर हम दोनों से कह दिया कि ये मेंढक बाबा पुकार रहे हैं, अब पानी बरसने वाला है और शेर भी पुकारने वाले हैं। आप लोग डरना नहीं। बोलकर वे लोग चले गये। थोड़ी देर के बाद प्रबल पानी बरसने लगा, चारों तरफ शेर पुकारने लगे और पानी जब तक बरसता रहा तपस्वी भी पुकारते रहे। पानी जब बन्द हो गया तपस्वी भी मौन हो गये और शेर भी चुप हो गये। दूसरे रोज सवेरे

तपस्वी को प्रणाम करके हम दोनों चल दिये थे। वहाँ से हम लोग शूल-पाणि तीर्थ में आये थे। शूलपाणि से राजघाट आये। यहाँ से वन और पहाड़ों के कठिन मार्ग पकड़ के नर्मदा के किनारे-किनारे जाने लगे। नज-दीक भृगुतुंग पर्वत और मार्कण्डेय गुफा है। थोड़ी दूर बाद नर्मदा के किनारे रणछोड़ जी का प्राचीन जीर्ण मन्दिर है। वहाँ से कपिल तीर्थ, मोक्षगंगा का नर्मदा से संगम, बड़गाँव, पिपरिया, मार्कण्डेय आश्रम, गरुडे-श्वर, वाल्मीकि आश्रम, कनखोड़ा घाट, इतनी नदी का संगम, मोखड़ी, भोगकुल्या संगम, चक्रतीर्थ, भीमकुल्या संगम और गमोण तीर्थ आ गये थे। यहाँ से एक-एक स्थान पर दो-तीन वार भी गये थे और भिन्न-भिन्न स्थानों में आया-जाया करते थे। यहाँ से मुक्तेश्वर बाबा अलग होकर हमको छोड़कर चले गये। शूलपाणि का वन वहाँ पर समाप्त हो गया।

सब ही से मैंने चाणोद जाने के लिए रास्ता पूछा था। चाणोद, कर्णाली, सीनोर, व्यासाश्रम प्रभृति स्थानों के प्रति मेरा आकर्षण था। हमारे गुरु परमहंस सच्चिदानन्द ने काशी में मेरे विदाई-कालीन आशीर्वाद के अन्दर चाणोद, कर्णाली, सीनोर और व्यासाश्रम में योगी सिद्ध महापुरुषों के सन्धानार्थ जाने के लिए उपदेश दिया था। मैं पूछ-पाछ करके चाणोद पहुँच गया। मेरी अवस्था उस समय २३ या २४ वर्ष की थी।

(३)

सन्न्यास लेना और चाणोद से व्यासाश्रम—चाणोद एक नामी धर्म-क्षेत्र नर्मदा के किनारे है। यहाँ सप्ततीर्थ विद्यमान हैं। सप्ततीर्थ ये हैं—चण्डादित्य, चण्डिका देवी, चक्रतीर्थ, कपिलेश्वर, ऋण मुक्तेश्वर, पिंगलेश्वर और नंदाह्लद, हर एक तीर्थ में साधु योगी, साधक और संन्यासी देखे गये। हर एक पूर्णिमा और विशेष पुण्य-तिथि में हर एक तीर्थ में मेला लगता है। मैं योगी, मुक्त पुरुष और साधकों का सन्धान करने लगा था। चाणोद में एक वेदान्ती साधु श्रीमत् स्वामी परमानन्द परमहंस से वेदान्त सार, वेदान्त परिभाषा, वेदान्त चिन्तामणि पढ़ने लगा था। उन्होंने कहा ब्रह्म, जीव और जगत् के बारे में पूर्ण निश्चय का अनुभव आ जाने के बाद ही मुक्ति की पिपासा आ जायेगी। तव तक वेदान्त के वास्तव रूप की आलो-चना होनी चाहिए। उनसे नव्य वेदान्त के वहुत ग्रन्थ अध्ययन किये। उस समय मुझे भिक्षान्न से या स्वयं रन्धन कर के देह-रक्षा करनी पड़ती थी। दोनों कार्यों में भी समय नष्ट हो जाता था। तब तक शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी

ही मेरा नाम था। परमहंस परमानन्द ने मेरी स्थिति को सोच समझ करके ही मुझको सन्यसाश्रम ग्रहण करने के लिए प्रेरणा दी थी क्योंकि सन्न्यासी बनने से खाने के लिए मुझे अपने हाथ से रसोई पकानी नहीं पड़ेगी। हमने सन्यास लेने के लिए ही विचार पक्का करलिया। सन्न्यासाश्रम में प्रवेश करना ही उचित समझा था। सन्न्यास देने के लिए योग-दीक्षित सन्न्यासी का प्रयोजन था। किसी के मतानुसार मेरे सन्न्यास लेने के लिए महाराष्ट्री साधु चाहिए और किसी के मतानुसार गुजराती चाहिए। ठीक इसी समय चाणोद के समीप जंगल के अन्दर पूर्णानन्द नाम के संन्यासी और शिव चैतन्य नाम के ब्रह्मचारी श्रृंगेरी मठ से आते हुए द्वारिका मठ को जाने वाले थे। बहुत विचार के पश्चात स्वामीपूर्णानन्द ने मुझे सन्न्याश्रम में आनुष्ठानिक रूप से दीक्षित कर दिया। तब से मेरा नाम हो गया स्वामी दयानन्द सरस्वती। दोनों साधु अपने-अपने स्थान को चले गये थे। मैं वहाँ से व्यासाश्रम में आकर योग विद्या सीखने लगा।

—:०:—

तृतीय अध्याय

योगविद्या-शिक्षा

व्यासाश्रम में योग-शिक्षा—शुकेश्वर तीर्थ नर्मदा के दक्षिण तट पर है और उत्तर तट पर व्यास तीर्थ। यहाँ व्यास जी के नाम पर व्यासाश्रम है*। नर्मदा की एक धारा आश्रम के उत्तर की ओर भी बह रही है इसलिए यह आश्रम द्वीप में परिणत हो गया है। इसके लिए अगल-बगल चारों तरफ झंझर, ओरी, कोहिब्रभूं, अनसूया आदि तीर्थ हैं। चाणोद से अनसूया तक नौका से आना भी सम्भव है। मैं सब ही तीर्थों में योगियों के सन्धान में घूमा था। निराश हो कर मैं व्यास तीर्थ में पहुँच गया।

वहाँ पहुँचने के साथ ही एक साधु वहाँ आकर "तुम दयानन्द सरस्वती हो" ऐसा बोलकर मुझ को व्यासाश्रम में ले गये।

मैं चकित हो गया। मैं समझ नहीं सका कि कैसे इनको नाम मालूम हो गया! उन्होंने रहने के लिये मुझे एक कुटिया दे दी और खाने के लिए आश्रम के फलवान् वृक्ष दिखा दिये। वहाँ एक अतिवृद्ध साधु को दिखाकर उन्होंने कहा—"इनकी सेवा का भार तुम्हारे ऊपर रहा। ये तुम्हें योग विद्या

---

* व्यासाश्रम में एक योगानन्द स्वामी को सुना कि वे योगाभ्यास में अच्छे हैं। उनके पास जा के योगाभ्यास की क्रिया सीखी।

(पं० भगवद् दत्त लिखित जन्मचरित्र—पृ० २४)

—"नर्मदा तीरवर्त्ती प्रदेश में गया। वहाँ योगानन्द स्वामी के साथ साक्षात् हुआ।" आत्मकथा-पृ० १२ (पूना प्रवचन में)

– व्यासाश्रम को चला गया। व्यासाश्रम में योगानन्द नामक योग-विद्या विशारद साधु रहते थे। उनके पास विद्यार्थी रूप में रहा।

—थ्योसोफिस्ट से।

की शिक्षा देंगे और मैं बीच-बीच में तुम्हारी विद्या की परीक्षा लूंगा। मन को शान्त रखो।" साधु बाबा का नाम था स्वामी योगानन्द। इनके साथ रहता हुआ मैं योगविद्या सीखने लगा।

दिनचर्या—उन्होंने मेरा दिनचर्या का कार्यक्रम इस प्रकार बनवा दिया :—

रात्रि के तृतीय प्रहर में शैय्या से उठकर सूर्योदय तक धारणा और ध्यान में बैठे रहना।

सवेरे नित्यकर्म और नैमित्तिक कर्म के बाद योगशास्त्रों का स्वाध्याय करना और अल्प समय के लिए शंका-समाधान करना।

दोप्रहर में आहारादि के बाद विश्रामान्त में क्रिया योग का अभ्यास करना।

अपराह्ण को वन-भ्रमण और वृक्ष-मूल में बैठकर भगवच्चिन्तन और—

सायं को नित्य और नैमित्तिक समापनान्त में धारणा, ध्यान और क्रिया योग के अनुशीलन।

दोप्रहर का आहार भिक्षान्न से और सायं का आहार फलों के द्वारा;

रुग्णावस्था में पूर्ण विश्राम ग्रहण करना।

सर्वदा वाक् संयम, सम्पूर्ण बृहस्पतिवार मौन धारण और एकान्त-वास।

किसी अशुभ इच्छा या कुचिन्ता के आने पर गुरु के पास बोल देना और हर रोज गुरु के निर्देशानुसार आसन-प्राणायाम-मुद्रादि का अभ्यास करना।

क्षुधा पर विजय लाभ—दैनन्दिन कार्यक्रम में अभ्यस्त होने के बाद गुरुजी ने मुझे क्षुधा पर विजय लाभ के लिए उपदेश दिया।

"क्षुधा मनुष्यों का परम मित्र है, लेकिन क्षुधा को संयत नहीं रखने से वह शत्रु बन जाती है। योगी या योग के शिक्षार्थी को तो इस पर विजय-लाभ करना ही चाहिए। क्षुधा एक तरह की इच्छा है इसके द्वारा शरीर के क्षय की पूर्त्यर्थ खाद्य की जरूरत समझी जाती है। इस क्षय-पूर्ति के बिना देह यातना भोगता है और शरीर से प्राण निकल जाता है। जिस वस्तु से

शरीर का पोषण असम्भव हो उस के भी ग्रहण से क्षुधा की निवृत्ति देखी जाती है। लेकिन देखा जाता है कि बहुत बीमार आदमी विना भोजन के मासाधिक काल तक रह जाते हैं। विना भोजन के बहुत से उन्मादी सुदीर्घ काल तक रह जाते हैं और बहुत शोक-ग्रस्त व्यक्तियों को क्षुधा लगती भी नहीं। खाद्यों से हम लोगों को जो प्राण वायु मिलता है और जिसके द्वारा हम लोग जीवित रहते हैं वह प्राण-वायु मिट्टी, पानी, आग, हवा और आसमान से यथेष्ट मिल सकता है। योगी प्राणायाम के यथायथ साधन से भी शरीर की क्षय-हानि को पूर्ण कर सकते हैं। जितने परिमाण के खाद्य को आदमी ग्रहण करते हैं, शक्ति के अभाव के कारण पाकस्थली उससे सम्पूर्ण प्राण-शक्ति को लिए बिना छोड़ देती है। लेकिन प्राणायाम की शक्ति-वृद्धि होने पर योगी पंच भूतों से भी अपनी जरूरत के अनुसार प्राण-वायु लेकर जीवित रह सकते हैं।

दैनन्दिन श्रमादि के द्वारा देह के उपादानों का क्षय होता है। आहार आदि के द्वारा उसकी पूर्ति होजाती है। श्रम अल्प होने से आदमी अल्प भोजी होता है। श्रम अधिक होने से अधिक भोजी होता है। श्रमादि की स्वल्पता से शरीर का स्वल्पक्षय और स्वल्पाहार का प्रयोजन होता है। अन्तःकरण सात्विक आनन्द से, चिरतृप्ति से, मन में सन्तोष रहने से और शरीर निश्चल रहने से देह का क्षय नहीं होता है। सुदीर्घ चिन्ता के द्वारा भी क्षुधा की निवृत्ति होती है। दुश्चिन्ता से शरीर का क्षय ज्यादा होता है और प्रगाढ़ आनन्द पूर्ण चिन्ता के द्वारा शरीर की वृद्धि ही होती है। आनंद स्वरूप परमात्मा में अपने को नियमित रूप से उपासना के अन्दर निमज्जित रखने से शरीर और मन अपक्षय से बचकर सदा प्रफुल्लित कमल के रूप में रहते हैं।

(ह० ले०पृ० १०१ से ११० तक) यह उपदेश लेने के बाद मैंने अच्छे रूप से इस पर सोचा और कई एक महीनों के बाद इस को क्रियात्मक रूप से ग्रहण करने के लिये ही इच्छा की थी। गुरुजी ने मुझ को रोक दिया। तीन महीनों के बाद शीत ऋतु आने पर गुरु जी ने इसके लिए नियम बनवा दिये।

१—दिन के अन्दर प्रचुर परिमाण में जल पीने के लिए कहा गया।

२—दिन में पूर्णाहार और रात को स्वल्पाहार का नियम।

३—पीछे महीने में दो रोज उपवास रखने का नियम।

४—पीछे सप्ताह में एक रोज उपवास का नियम।

५—पीछे केवल फलाहार या दुग्ध पान का नियम।

६—पीछे क्रमानुसार सप्ताह में एक रोज, दो रोज, तीन रोज केवल जल पीकर रहना।

७—पीछे सप्ताह भर ही केवल जल पीकर और वायु सेवन कर प्रवल ध्यान और प्राणायाम के साथ आसन में बैठे रहना।

८—और अति अल्प आंगन के अन्दर भ्रमण करने के नियम बनाये गये थे!

मैं उन नियमों पर बहुत दिन प्रतिष्ठित रहा था। आज भी यह क्रिया मेरे आयत्व में ही है। धारणा, ध्यान और समाधि का इन्हीं नियमों के द्वारा मुझे अभ्यास हो गया था। क्षुधा मुझको क्लेश नहीं देती है।

दुर्घटना—बाद में व्यासाश्रम में जितने योग-शिक्षार्थी आते थे, गुरुजी उनकी शिक्षा का भार मेरे ऊपर छोड़ देते थे। एक घटना मुझे आज तक भी याद आती है।

मध्यभारत के किसी प्रसिद्ध राजा के पुत्र ने पूरे प्रबन्ध के साथ नर्मदा के किनारे सपत्नीक शिकार खेलने के लिए जंगल में प्रवेश किया। दो रोज के बाद किसी कारणवश राजपुत्र और राजवधू के अन्दर मतद्वैध्य, अभिमान और रोष पैदा हो गया था। राजा ने अपने सैन्य और भृत्यों में से बहुत थोड़े रख कर शेष सभी को राजधानी जाने के लिए आदेश दे दिया था। और थोड़े सैन्य, भृत्य और दासी वधूरानी के साथ कई दिन तक वन के अन्दर ही रहे। बीच-बीच में राजपुत्र और वधूरानी दोनों व्यासाश्रम में उपदेश लेने लगे। एक दिन दोनों ही आपस में झगड़ा करके मध्यरात्रि में मीमांसा के लिए व्यासाश्रम में पहुँच गये थे। गुरुजी ने मेरे ऊपर मीमांसा का भार छोड़ दिया था। मैंने वधूरानी के अन्दर अपराध पाया और राजपुत्र से क्षमा मांगने के लिये उनको विवश किया। इस लिये वधूरानी मेरे प्रति विद्वेष के भाव रखने लगी।

तीन-चार रोज के बाद मेरे चरित्र पर कलंक आरोपण के लिये राजवधू मध्य रात्रि को पाँच दासियों के साथ कई हजार रुपये के जेवरों से भरी हुई पेटिका लेकर मेरी कुटिया में पहुँच गयी और बहुत ही विनीत भाव से उस पेटिका के साथ करीब १७-१८ वर्ष की परम सुन्दरी दासी

को कई एक रोज आश्रम में रखने के लिए छोड़ कर तुरन्त चली गयी। दासी रोती हुई कहने लगी—वधूरानी नें किसी अपराध के कारण मुझे राजपुत्र के तम्बू से निकाल दिया है। इस पेटिका के अन्दर करीब साठ हजार रुपये का जेवर है। "आपके चरणों में इस पेटिका के साथ में अपने को समर्पण करती हूं। आप मुझको लेकर किसी दूसरे स्थान को चलिये। एक मुहूर्त भी देर न करें।" ऐसे बोलती हुई आँखों से आँसू बहाने लगी।

मैंने प्रभु का स्मरण किया और कहा—"प्रभो ! यह मेरे लिए तुमने कौन-सी परीक्षा रख दी है ? तुम ही मुझे बताओ।" मेरी आँखों से भी आँसू बहने लगे। झट गुरुजी को जोर-जोर से चिल्लाकर पुकारने लगा।

गुरुजी भी दूसरी कुटिया से चिल्लानें लगे '**मा भेतव्यं, मा भेतव्यम् एषोऽहमागतः**"-डरो मत, डरो मत, मैं आरहा हूं।

गुरुजी आ गये, जेवर की पेटिका वहाँ ही पड़ी हुयी है। लेकिन दासी वहाँ नहीं है। दासी वहाँ से अचानक भाग गई। मैं गुरु जी को सब वृत्तान्त बताने लगा।

तुरन्त चार बन्दूकधारी पलटन के साथ राजपुत्र भी वहाँ पहुँच गए और बोलने लगे—हम इन महात्मा दयानन्द सन्न्यासी को वधूरानी के कलंक-चक्र से बचानें के लिए आए हैं।

मैंने कहा—"हाँ राजकुमार, दयालु प्रभु ने मुझे बचा लिया। यह है दासी की पेटिका।"

राजपुत्र ने कहा—"हाँ महाराज ! यह पेटिका मेरी ही है। राजवधू के परामर्श से दासी चोरी से ले आई थी, आप इसको स्वीकार कीजिए।"

मैंने इस पेटिका को स्वीकार करके गुरुजी के चरणों में भेंट कर व्यासाश्रम के कार्य के लिए दे दिया। इस घटना के अन्दर प्रभु की अपार लीला का भी सन्दर्शन किया।

श्वास और दीर्घजीवन—गुरुजी ने अनाहार के बारे में कहा—

नाश्नन्ति दर्दु राः शीते फणिनः पवनाशनाः।
कूर्माश्चैवांगगोप्तारो, दृष्टान्ता योगिनो मताः।"

अर्थात् योगी लोग मानते हैं—"शीत काल में मेंढक खाते नहीं, सांप वायु का भक्षण करते हैं और कछुए अपने अंग को छिपा के रखते हैं।"

योगी लोग इन सब जीवों के अनुकरण से समाहित हो सकते हैं। उन्होंने आविष्कार किया था कि जिन प्राणियों की श्वास-संख्या जितनी कम है और अल्पायत (थोड़ी लम्बी) है वे प्राणी उतने ज्यादा समय तक जीवित रहते हैं, और जिन प्राणियों की श्वास संख्या जितनी ज्यादा है वे प्राणी उतने अल्प समय तक जीवित रहते हैं। ये लोग इस सिद्धान्त पर पहुँच गये थे कि (ह० ले० पृ० १११) मनुष्य यदि अपने श्वास को कम कर सके तो अपने निर्दिष्ट जीवन काल से भी अधिक काल तक जीवित रह सकते हैं।

आसन-शिक्षा*—गुरुजी ने कहा 'चित्त स्थिर करने के लिए योग के भिन्न-भिन्न अंगों की साधना-करना। शरीर को स्थिर करने में आसन का प्रयोजन हैं। आसन सिद्ध न होने से धारणा, ध्यान या समाधि कुछ भी सम्भव नहीं है। शरीर स्थिर होने से चित्त स्थिर होता है। चित्त से शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध है। चित्त में जिस भाव का उदय होता है, शरीर में वही भाव प्रकट होता है। विभिन्न आसनों की सिद्धि से चित्त के भावों का भी परिवर्तन होता है। जिन आसनों के अभ्यास से चित्त में उच्च भावों का उदय होता है वे आसन ही योग सम्बन्धी आसन हैं। योग के अनुकूल आसनों के अभ्यास से चित्त में नीच भावनायें प्रकट नहीं होतीं। अपितु शुद्ध भाव प्रकट होते हैं। शरीर की स्थिरता से चित्त की स्थिरता आती है, चित्त स्थिर होने से प्राण वायु भी स्थिर हो जाता है।

आसन दो प्रकार के हैं—

प्रथम—किसी वस्तु से निर्मित आसन, जैसे—कुशासन, मृगचर्मासन, व्याघ्र-चर्मासन, लोमासन या कार्पास-वस्त्रासन।

विना आसन के मिट्टी पर बैठ कर किसी प्रकार की साधना नहीं करनी चाहिए। मिट्टी पर सो जाने से या बैटने से पृथ्वी हमारी शक्ति को खींच लेती है। किसी वस्तु से निर्मित आसन पर बैठने से पार्थिव आकर्षण से हमको कोई हानि नहीं पहुँचती।

---

* योग दर्शन 'स्थिरसुखमासनम्' २-४३ से मिलान करो।
—जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो उसको आसन कहते हैं।
—अथवा जैसी रुचि हो वैसा आसन करे। (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका उपासना प्रकरण)

द्वितीय—देह को किसी कौशल से विन्यस्त रखना। दैहिक आसन बहुत प्रकार के हैं। जिस आसन में अभ्यस्त होने से जिस का शरीर निश्चल और सुखकर मालूम होता है, वह आसन ही उसके लिए हितकर है। अधिकांश साधकों के लिए मुक्त-पद्मासन ही बहुत अच्छा है। जितनी कम आयु से आसन का अभ्यास होता है उतना ही अच्छा है। अधिक आयु में आसन का अभ्यास करना कठिन हो जाता है। पैर की हड्डी मोटी हो जाने से पैर को मोड़ने में कष्ट होता है।

सभी आसनों में मेरुदंड को सीधा रखना होता है। मेरुदंड के अन्दरसुषुम्ना नाड़ी है। उस नाड़ी पथ से शक्ति ऊपर उठती है। मेरुदंड के निम्नतम स्थान से शक्ति ऊपर उठकर मस्तक के अन्दर सहस्रार तक पहुँच जाती है। साधकों की उन्नति के साथ-साथ शक्ति ऊर्ध्वगामिनी होती है। जितनी विषयासक्ति कम हो जायगी और वैराग्य की वृद्धि होगी वह शक्ति उतनी ही ऊपर की तरफ जायगी। साधना की उन्नति इस पर ही निर्भर करती है। मेरुदंड सीधा रखने से सुषुम्ना सीधी और टेढ़ा रखने से टेढ़ी होती है। सुषुम्ना सीधी रहने से शक्ति सीधी यातायात कर सकती है। जिसकी सुषुम्ना टेढ़ी हो वह उच्च भावना या उच्च धारणा नहीं कर सकता है समाधि लाभ तो असम्भव ही है।✻

प्राणायाम शिक्षा

—गुरुजी ने उपदेश दिया—"आसन का अभ्यास होने पर शीतोष्ण, क्षुधा-तृष्णा, सुख-दुःखादि द्वन्द्व चित्त को प्रभावित और पराभूत नहीं कर सकते हैं★ आसन जय होने से प्राणायाम सम्भव होता है। प्राणायाम-शिक्षा के साथ-साथ 'नाड़ी शुद्धि' भी करनी चाहिए।

✻मिलाओ—ततो द्वन्द्वानभिघातः। २।४८

जब आसन दृढ हो जाता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता है। और न सर्दी गर्मी अधिक बाधा करती है। (ऋ० भा०भू०पृ०)

★ इस प्राणायाम प्रकरण का बंगला लेख मिलान के लिये नहीं आ पाया था। स० स०

प्राणायाम के तीन अंग हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक। नासारन्ध्र से श्वास वायु का ग्रहण'पूरक' है। नासारन्ध्र से उस वायु को छोड़ देने का नाम 'रेचक' है और पूरक के बाद रेचक न करके निःश्वास को बन्द रखने का नाम 'कुम्भक' है। कुम्भक दो प्रकार के होते हैं—पूरकान्तक कुम्भक और रेचकान्तक कुम्भक। **कुम्भक का दूसरा नाम गति-विच्छेद है।**❀

बाहर श्वास-प्रश्वास का गति-विच्छेद करना होता है। और अन्दर भी चित्त की गति का विच्छेद करना होता है। चित्त सर्वदा चञ्चल है। चित्त की चञ्चलता ही चित्त की गति है। श्वास-प्रश्वास स्थिर हो जाने से प्राण शक्ति का गति-विच्छेद होता है। और चित्त की चञ्चलता दूर होने से चित्त का गति-विच्छेद होता है। चित्त की स्थिरता ही चित्त का गतिविच्छेद है, इसलिये कुम्भक के समय भीतर भी चित्त को स्थिर रखना चाहिये। प्राणशक्ति ही चित्त को चञ्चल करती है इसलिए **चित्त को स्थिर करना और प्राणशक्ति को स्थिर करना एक ही** बात है। बाहर कुम्भक के द्वारा प्राणशक्ति को स्थिर करना और अन्दर चित्त को स्थिर करके प्राणशक्ति को स्थिर करना, प्राणशक्ति को दोनों ओर से स्थिर करना है, इसलिये प्रथमतः आसन का अभ्यास करके शरीर को स्थिर करना और इसके बाद ध्यान का अभ्यास करके मन को स्थिर करना।

शरीर और मन को स्थिर करने से ही कुम्भक अभ्यास ठीक होता है मन और शरीर को स्थिर न करके कुम्भक का अभ्यास करने से अनिष्ट होता है। इसलिए जो लोग अत्यन्त संसारी और विषयसेवी हैं उनका कुम्भक करना अपने को खतरे में डालना है। मन के चाञ्चल्य के साथ कभी कुम्भक नहीं करना चाहिये। जो लोग त्रिताप से प्राप्त वैराग्य के साथ और विषयासक्ति छोड़कर चित्त को स्थिर करके कुम्भक का अभ्यास करते हैं उनको बहुत ही सुफल मिलता है। प्रथम प्राणायाम-शिक्षार्थी को आसन-अभ्यास के साथ नाड़ी शुद्धि भी करनी चाहिये।

नाड़ीशुद्धि किसे कहते हैं? हमारे मेरुदण्ड के अन्दर तीन नाड़ी हैं—इडा पिंगला और सुषुम्ना। ये नाड़ी आध्यात्मिक हैं आधिभौतिक नहीं, आध्यात्मिक विषय सूक्ष्मतत्त्व है स्थूलतत्त्व नहीं है। बहिरिन्द्रिय के द्वारा स्थूलतत्त्व का ज्ञान होता है और अन्तरिन्द्रिय के द्वारा सूक्ष्मतत्त्व का ज्ञान होता है।

❀ मिलाओ—'तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥२.४९॥ (ऋ० भू० २४। उपसनाप्रकरण)।

नाड़ी शुद्धि—प्राणायाम से पहले नाड़ीशुद्धि करने का विधान है आसन में नियमित रूप से बैठकर प्रथमतः दक्षिण नासारन्ध्र को वन्द करके* वाम नासारन्ध्र के द्वारा यथाशक्ति वायु को खींचना। जितना ज्यादह वायु खींचा जाये उतना ही अच्छा है। जबरदस्ती वायु खींचने से बीमारी हो सकती है! वाम नासारन्ध्र से यथाशक्ति वायु खींचने के बाद ही दक्षिण नासारन्ध्र द्वारा यथाशक्ति रेचक करना। पूरक करने के बाद ही तुरन्त रेचक करना, बीच में कुम्भक नहीं करना। रेचक समाप्त होने के साथ-साथ ही दक्षिण नासारन्ध्र के द्वारा पूरक करना और वाम नासारन्ध्र से रेचक करना। इस प्रकार हर रोज आसानी से जब तक सम्भव हो करना। पूरक और रेचक के समय वायु को धीरे-धीरे खींचना और धीरे-धीरे छोड़ना। नासारन्ध्र के सम्मुख रुई धरने से रुई न सञ्चालित हो। इस प्रकार धीरे-धीरे वायु को खींचना और छोड़ना। वायु को झट अचानक नहीं खींचना या नहीं छोड़ना। खींचने के समय और छोड़ने के समय समान ताल रखनी चाहिए। इस प्रकार की नाड़ी-शुद्धि के समय दूसरी कुछ चिन्ता नहीं लानी चाहिए। इसी क्रिया में ही मन लगाना चाहिए। श्वास-प्रश्वास में ही मन को निवद्ध रखना चाहिए।

वहुत दिन तक नाड़ी-शुद्धि का अभ्यास करने से आसन जय होता है। शरीर लघु होता है। तामसिक भाव हट जाता है,मन में आनन्द आता है। उच्च विषय के चिन्तन करने की और धारण करने की शक्ति आती है और दूसरे वहुत प्रकार के उपकार होते हैं। खास करके इससे फेफड़े में वल आने लगता है और फेफड़े प्राणायाम करने के लायक वन जाते हैं।

नाड़ी-शुद्धि करने के समय निम्न विषयों के प्रति ध्यान रखना चाहिए—

१. व्रह्मचर्य व्रत धारण करना।
२. सात्त्विक और परिमित आहार करना।
३. निर्जन घर में रहकर अभ्यास करना।
४. कसे कपड़े नहीं पहनना।
५. घर का हवादार व साफ सुथरा होना।
६. यथारीति आसन लगाके वैठना।

*संकल्प बल से दक्षिण नासारन्ध्र से वायु को न आने देना। मन को बायें रन्ध्र पर केन्द्रितकर टिका कर,अत्यन्त मन्दगति से वाम नथुने से यह क्रिया सिद्ध हो जाती है। स०

७. हवा को यथाशक्ति धीरे-धीरे खींचना व छोड़ना।
८. श्वास-प्रश्वास पर मन को एकाग्र करना।
६. मन में बाहर की चिन्ता को नहीं आने देना।
१०. पेट के अन्दर मल व दूषित वायु नहीं रहे।

असंयमी, अत्यन्त इन्द्रियभोगी व ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति नाड़ी-शुद्धि क्रिया करने से अति कठिन रोगों से आक्रान्त होंगे। कुम्भक अभ्यास से पहिले आसन स्थिर, मन स्थिर और नाड़ी शुद्धि होने से बहुत अच्छा होता है क्योंकि आसन-जय, चित्तस्थिरता और प्राणायाम के अन्दर गहरा सम्बन्ध है।

प्राणशक्ति को विश्राम देना भी प्राणायाम है। हमारे अंग-प्रत्यंगों के सदैव कर्मों में लगे रहने के कारण इनको विश्राम न देने से हमें कष्ट होता है इनको विश्राम देने से हमें सुख होता है। शरीर चंचल रहने से चित्त चंचल होता है। शरीर स्थिर होने से चित्त भी स्थिर होता है। प्राण चंचल रहने से और स्थिर रहने से चित्त भी चंचल और शान्त होता है। प्राण और शरीर के साथ चित्त का निकट सम्बन्ध है। शरीर और चित्त को स्थिर करने से प्राण स्वयं स्थिर हो जाता है। आसन और चित्त सम्यक् स्थिर हो जाने से प्राण की गति का विच्छेद अर्थात् विराम होता है। जो श्वास-प्रश्वास विरामहीन रूप से चला करता है उसके अन्दर विराम और विश्राम आ जायेगा। साधारण मनुष्य दिनरात श्वास-प्रश्वास लेकर रहते हैं लेकिन साधक दिनरात कुम्भक करके भी रहते हैं। प्राण के विराम होने से कुम्भक होता है। कुम्भक होने से चित्त स्थिर होता है और चित्त स्थिर होने से भी कुम्भक होता है। चित्त को स्थिर करने की साधना आभ्यन्तर साधना है। चित्त को स्थिर न करके जो केवल नाक टीप के [रोक के] ही कुम्भक करता है उसके हृत्पिण्ड, फेफड़े, पाकस्थली आदि यन्त्र कठिन रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं।

त्रिदेव तत्त्व—वात (वायु), पित्त (अग्नि) और कफ (श्लेष्मा या वरुण) ये तीन देवता शरीर के अन्दर रहते हैं। प्राणायाम से सब देवता तुष्ट होते हैं।

वायुतत्व—प्राणशक्ति को संयत करना भी प्राणायाम है। शक्ति का

नाम ही प्राण है। प्राण पाँच अंशों में विभक्त होकर शरीर को चलाता है। पञ्च प्राणों के रहने के पाँच स्थान हैं। यथा—हृदय में प्राण, गुह्यदेश में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान और सारे शरीर में व्यान रहता है।

१. प्राण का कार्य—श्वास का ग्रहण और त्याग, हृदय-परिचालन, खाद्य वस्तुओं को पाक स्थली में प्रेरणा करना, धमनी के द्वारा सारे शरीर में रक्त संचालन, शिरा और स्नायुओं को कर्मिष्ठ रखना आदि।

२. अपान का कार्य—प्राणवायु के आकर्षण के साथ श्वास-प्रश्वास-क्रिया में सहायता पहुँचाना, मलमूत्रादि को अधोदेश से निःसारित करना, माताओं के देहों से सन्तान-प्रसव कराना आदि।

३. समान का कार्य—जठराग्नि को सक्रिय रखना, पाकस्थली से अर्धजीर्ण खाद्यों को ग्रहणो नाड़ी में ले जाना, जीर्ण खाद्यों का सार और अजीर्ण खाद्यों को पृथक्-पृथक् कर देना। प्राण और अपान वायु की समता, रक्षा करना आदि।

४. उदान का कार्य—शब्द करना, बातचीत करना, गाना, मन बुद्धि स्मृति शक्तियों को बढ़ाना, साधकों के मन को अतीन्द्रिय राज्य में ले जाना आदि।

५. व्यान का कार्य—शरीर में खून को सर्वत्र शीघ्रता से संचालन करना, शरीर में संकोचन-प्रसारण करना, मस्तिष्क में रक्त-प्रवाहित करना, देह से पसीना आदि निःसारण करना आदि।

प्राणायाम से ये पाँच प्राण और इनके साथ पाँच उपप्राण—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय शरीर में सक्रिय और सतेज होते हैं। मन बुद्धि चित्त यथार्थ रूप से तत्पर हो जाते हैं। तन्द्रा, आलस्य व जड़ता का नाश हो जाता है। सदा सर्वदा शरीर नीरोग, स्वास्थ्यवान् कर्मठ और मन तेजस्विता से पूर्ण हो जाते हैं।

पित्त तत्त्व

देहस्थ शरीर-गठनकारी अग्नि ही पित्त नाम से अभिहित है। पित्त पाँच भागों में विभक्त है—पाचक पित्त, रंजक पित्त, साधक पित्त, आलोचक पित्त, भ्राजक पित्त। पित्त शरीर में रहता हुआ निम्न कार्य करता है—शारीरिक शक्ति, शारीरिक ताप रक्षा, दृष्टि शक्ति विधान, क्षुधा-तृष्णा को जागृत करना, शरीर की मृदुता की रक्षा करना,

शरीर की उज्ज्वलता की रक्षा, मेधा वृद्धि में सहायता और शरीर को मनोरम व सुन्दर बनाना।

१. पाचक पित्त का कार्य—पाचक पित्त अग्न्याशय में उत्पन्न होता है। खाद्य वस्तुओं को जीर्ण करना, खाद्यों के सार-भाग को रस में परिणत करना, मूत्र-पुरीष, पसीना, थूक, सर्दी आदि, असार अंशों को रसांश से अलग कर देना, शरीर में उचित प्रकार से तापवृद्धि करके रोगविष नष्ट कर देना, तापमान की समता की रक्षा करके देह-रक्षाकारी और देह-पोषणकारी जीव कोषों को उत्पत्ति में सहायता करना आदि पाचक पित्त के कार्य हैं। पाचक पित्त के दोषयुक्त होने से अजीर्ण, अम्ल, कोष्ठ-बद्धता **उदामय** आदि रोगों की उत्पत्ति होती है।

२. रंजक पित्त का कार्य—रंजक पित्त यकृत् में उत्पन्न होता है। पाचक पित्त जीर्ण अंशों के सारांश रस को समान वायु की सहायता से यकृत् में भेज देता है। यकृत् रंजक पित्त की सहायता से उस रस का शोधन करता है। उस शोधित खाद्य रस में और कुछ रंजक पित्त मिल जाने से खाद्य रस रक्तवर्ण में रंजित होकर खून बन जाता है। खाद्य रस को रक्त वर्ण में रंजित करने से इसका नाम रंजक पित्त पड़ गया है। रंजक पित्त का बाकी अंश उदरस्थ खाद्य वस्तु को जीर्ण करने में लग जाता है। रंजक पित्त दूषित होने से रक्तहीनता, कमला रोग आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

३. साधक पित्त का कार्य साधक पित्त के प्रभाव से ही मानव देह में उत्साह और उद्यम की सृष्टि होती है। दुःसाध्य कार्यों को सुसाध्य करने के लिये इससे ही प्रेरणा मिलती है। पाचक पित्त और रंजक पित्त का सूक्ष्मांश ही साधक पित्त के रूप में रूपान्तरित होता है। मन को प्रबल इच्छाशक्ति सम्पन्न करने में यह साधक पित्त ही विशेष रूप से मदद करता है। यह साधक पित्त ही बुद्धि, धृति और स्मृति के वर्द्धन में सहायता पहुँचाता है। साधक पित्त दोषयुक्त होने से मूर्च्छा रोग, संन्यासरोग, मस्तिष्क-विकृति आदि रोगों की उत्पत्ति होती है।

४. आलोचक पित्त का कार्य—पित्त का जो सूक्ष्मांश चक्षुओं में रहता हुआ, दृष्टि-शक्ति में रूपान्तरित होता है, उसका नाम ही आलोचक पित्त है। साधकों को अतीन्द्रिय दर्शन या दिव्य दृष्टि-लाभ भी इस आलोचक पित्त की सहायता से होता है। आलोचक पित्त दोषयुक्त होने से आँखों की दृष्टि-शक्ति घट जाती है और आँखों में मोतिया विन्द भी हो जाता है।

५. भ्राजक पित्त का कार्य—पित्त का जो सूक्ष्मांश या सारभाग देह में दीप्ति के रूप में प्रकाश पाता है वह शरीर में वर्ण की आभा पैदा करता है, उसका नाम ही भ्राजक पित्त है। यह भ्राजक पित्त ही चर्म में रहता हुआ रोग-विष और रोग-कीटाणुओं के आक्रमण से शरीर के चर्म की रक्षा करता है। इस भ्राजक पित्त के दोषयुक्त होने से विविध चर्मरोग और गात्र विवर्णता आ जाते हैं।

पित्त अम्ल को पैदा करता है। जिस खाद्य को जीर्ण होने में पित्त की सहायता का प्रयोजन होता है उस खाद्य को जीर्ण करके पित्त खुद भी जीर्ण हो जाता है। पित्त के द्वारा जीर्ण खाद्य ही अम्ल रस में परिणत हो जाता है। देह का स्वस्थ रक्त हमेशा ही लवणाक्त रहता है। इस पर भी कुछ अंश अम्ल रस है। पित्त के द्वारा जीर्ण खाद्य ही रक्त को प्रयोजनीय अम्लरस देकर रक्त की देह-पुष्टि के विधान करने की शक्ति को ठीक रखता है। यह पित्त खाद्य वस्तु को यदि जीर्ण न कर सके तो अजीर्ण खाद्य के साथ यह पित्त खुद भी विकृत हो जाता है। इस विकृत पित्त से देह में अम्लविष पैदा होता है और देह रोगाक्रान्त हो जाता है।

श्लेष्मा तत्त्व

रसप्रधान पंचभूतों का सारांश ही श्लेष्मा है। देह की सब ग्रन्थियों को और देह के सब धातुओं को यह श्लेष्मा ही पोषण करता है। यह श्लेष्मा ही विशेष रूप से जीर्ण होकर लवण रस में परिणत हो जाता है। श्लेष्मा ही देह के बलस्वरूप ओजः धातु नाम से अभिहित है। श्लेष्मा ही देह रक्षण, देह गठन और देह पोषण करता है। रस, रक्त, मांस, मेदः, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन धातुओं का सारस्वरूप यह ही तेज या ओज है। ओज देहस्थिति का कारण है। देह में ओज की वृद्धि होने से देह की तुष्टि, पुष्टि, बल का उदय होता है। श्लेष्मा भी पाँच भागों में विभक्त होकर देहों को धारण कर रहा है।

श्लेष्मा के पाँच भाग ये हैं:—

१. क्लेदन श्लेष्मा

२. अवलम्बन श्लेष्मा

३. रस श्लेष्मा

४. स्नेहन श्लेष्मा
५. शोषण श्लेष्मा

१. क्लेदन श्लेष्मा का कार्य—क्लेदन श्लेष्मा अन्नों को रस से जारित करके उसको क्लिन्न अर्थात् चूर्ण और गन्धित करता है। खाद्य वस्तुओं को उदर में प्रविष्ट करने के साथ-साथ पाकस्थली के धमनी गात्र की क्षुद्र-क्षुद्र ग्रन्थियों से यह रस निकल कर खाद्य वस्तुओं को जारित करता है और फेनमय करता है। यह क्लेदन श्लेष्मा ही पाक स्थली का पाचक रस है। अग्निताप से जल उत्तप्त होकर अन्न को जिस रूप में सिद्ध करके कोमल और नरम करता है ठीक उसी तरह पाचक पित्त के ताप से यह पाचन रस या क्लेदन श्लेष्मा उत्तप्त होकर अन्न को क्लिन्न और आर्द्र करता है और अन्न को रस के रूप में परिणत होने में मदद करता है। अन्न से भी एक प्रकार का पाचक रस निकल कर अजीर्ण या अर्धजीर्ण अन्न को जीर्ण करने में मदद करता है, यह ही क्लेदन श्लेष्मा है। यह क्लेदन श्लेष्मा दूषित होने से अजीर्ण अग्नि-मान्द्य और रक्त की कमी आदि रोगों को उत्पन्न करती है।

२. अवलम्बन श्लेष्मा का कार्य—लौहयन्त्र तैलचर्चित न होने से गतिमान् नहीं होता है, तैलचर्चित रहने पर ही लौहयन्त्र के एक अंग के साथ दूसरे अंग का घर्षण नहीं होता है। अवलम्बन श्लेष्मा का शैत्यगुण पित्त के उत्ताप से भी देह यन्त्रों को बचाता है। अवलम्बन श्लेष्मा सम्पूर्ण शरीर में रहता है, लेकिन वक्षः स्थल ही उसके रहने का प्रधान स्थान है। हृदय-यन्त्र और फेफड़ा इस अवलम्बन श्लेष्मा से सिक्त रहता है। इसलिये वक्षःअस्थियों से इन का संघर्षण नहीं होता है। वायु ही इस अवलम्बन श्लेष्मा को देह के सर्वांशों में भेज देता है। और देह-यन्त्रों को सिक्त करके संचालन करता है। अवलम्बन श्लेष्मा दूषित होने पर शरीर में अलसता और जड़ता आ जाती है।

३. रसनश्लेष्मा का कार्य—रसना-स्थान अर्थात् जिह्वा को केन्द्र करके जिस श्लेष्मा की उत्पत्ति होती है उसी का नाम रसनश्लेष्मा है। इसका दूसरा नाम "बोधक श्लेष्मा" है। साधारण भाषा में इसका नाम "लार" या लाल" है। यह लाला ग्रन्थि-निःसृत रस है। यह रसन श्लेष्मा ही जिह्वा में रसास्वादन को जगाता है। यह अन्न की परिपाक क्रिया में मदद करता है। दूति होने से अक्षुधा की सृष्टि होती है। सब खाद्य ही स्वादहीन मालूम पड़ता है।

४. **स्नेहन या तर्पक श्लेष्मा** यह श्लेष्मा अपने रसस्राव द्वारा सब इन्द्रियों की तृप्ति, तुष्टि और पुष्टि करतो है। देह की ग्रन्थियाँ रक्त के सारांश रस को जीर्ण करके ही सुपुष्ट होती हैं। इन सुपुष्ट ग्रन्थियों से ही स्नेहन या तर्पक श्लेष्मा क्षरित होती है। यह तर्पक श्लेष्मा ही सब देह-यन्त्रों की पुष्टि करती है। इस तर्पक श्लेष्मा के आंशिक अभाव से भी देह का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। सब देह-यन्त्रों पर ही तर्पक श्लेष्मा का विशेष प्रभाव है। चक्षु और कर्णेन्द्रियादि तर्पक श्लेष्मा से अपनी-अपनी पुष्टि ले लेते हैं। इस श्लेष्मा के अभाव हो जाने से दृष्टि-शक्ति और श्रवण आदि का ह्रास हो जाता है। तर्पकश्लेष्मा का प्रधान केन्द्र या कर्म स्थान मस्तिष्क है। तर्पकश्लेष्मा को ही सोमधारा या अमृत धारा बोला जाता है। मस्तकस्थित और मस्तकक्षरित इस सोमधारा के द्वारा ही देहस्थ सब धातु सदा प्राणवान् रहते हैं। यह स्नेहन या तर्पक श्लेष्मा ही सूक्ष्म रूप से सब चर्मस्थानों में व्याप्त रहकर स्थानों को नीरोग रखती है। श्लेष्मा के दोषयुक्त होने से स्मृति-शक्ति और श्रवण-शक्ति ह्रास को प्राप्त होती है।

५. **शोषण श्लेष्मा का कार्य**—देह की सब अस्थि-सन्धियाँ या अन्य-सन्धियाँ जिस रसधारा से सदा प्लावित रहती हैं उसी का नाम शोषण श्लेष्मा है। इसके रहने से अस्थि-अस्थियों में संघर्षण नहीं होता है। यह शोषण श्लेष्मा अस्थियों के सन्धि स्थानों में स्नायु और मांस पेशियों को सबल, स्वस्थ और सरस रखता है। इसलिये अंग-प्रत्यंग वगैरह यथोचित रूप से सञ्चालन करने में असुविधा नहीं होती। इस शोषण श्लेष्मा के दूषित होने से अस्थि-सन्धि-स्थानों में रोगविष सञ्चित होता है और वहाँ वात रोग का आक्रमण होता है।

त्रिदोष— केवल वायु,केवल पित्त या केवल श्लेष्मा के दूषित होने से जिस रोग की उत्पत्ति होती है वह एकदोषज रोग है। इसकी चिकित्सा सहज है। वायु पित्त-वायु-श्लेष्मा या पित्त-श्लेष्मा के प्रकोप से जो रोग उत्पन्न होता है उसका आरोग्यलाभ एक दोषज से कठिन होता है। त्रिधातु के प्रकोप से जो रोग उत्पन्न होता है वह बहुत ही मारात्मक होता है।

श्वास-प्रश्वास व आयु

गुरुजी ने कहा था—मनुष्येतर प्राणी पशु, पक्षी, सर्प आदि भी

प्राणायाम करते हैं। मनुष्यों ने उनसे ही प्राणायाम को सीखा है। श्वास-प्रश्वास के साथ जीवों की आयु का निकट सम्बन्ध है। श्वास-प्रश्वास जिस प्राणी का जितना कम है उसकी आयु उतनी ही अधिक हो जाती है और श्वास-प्रश्वास जितना अधिक होगा उतनी ही आयु कम हो जाती है। प्राचीन योगियों ने समय का परिमाण और श्वास-प्रश्वास की संख्या के अनुपात से आयु का हिसाब निकाला था। आधुनिक योगियों ने एक मिनिट समय लेकर हिसाब प्रकाशित किया है :—

प्राणी	श्वास-प्रश्वास की संख्या एक मिनट में	आयु के वर्ष
१. कछुआ	४/५	१५०/१५५
२. सर्प	७/८	१२०/१२२
३. हस्ती	११/१२	१००/१२०
४. मनुष्य	१२/१३	१००/१५०
५. घोड़ा	१८/१९	४८/५०
६. बिल्ली	२४/२५	१२/१३
७. छाग	२३/२४	१२/१३
८. कुत्ता	२८/२९	१३/१४
९. बन्दर	३१/३२	२०/२१
१०. कबूतर	३७/३८	८/९
११. शशक	३८/३९	८/९

मनुष्य एक दिन-रात में १८ हजार ७ सौ २० वार श्वास-प्रश्वास निर्वाह करता है। प्रति मिनट में १३ वार श्वास-प्रश्वास के हिसाब से २४ घण्टे = १४४० मिनट में = १८७२० श्वास-प्रश्वास लेता है। इससे कोई-कोई योगी कहते हैं कि प्राचीन काल में मनुष्यों के श्वास-प्रश्वास का परिमाण आज कल से कम था। इसलिए आयु अधिक होती थी। आज कल श्वास प्रश्वास का परिमाण अधिक होने के कारण आयु का परिमाण कम होता जा रहा है। आजकल भी प्राणायाम का अभ्यास मनुष्यों में जितना होता रहेगा उतनी ही आयु बढ़ती रहेगी।

सीनोर और चाणोद में

गुरु स्वामी योगानन्द सरस्वती के साथ व्यासाश्रम में रह कर

योगविद्या के विभिन्न अंगों के बारे में शिक्षा ग्रहण की थी। व्याकरण के जटिल प्रश्नों के समाधान के लिये किसी अच्छे वैयाकरण के पास जाना जरूरी समझ कर गुरुजी ने मुझे सीनोर में पं० श्री कृष्ण शास्त्री के पास भेज दिया था। वहाँ रह कर मैं व्याकरण की उच्चतर शिक्षा प्राप्त करता रहा था।

(२)

पुनः चाणोद में

सीनोर में प्रसिद्ध वैयाकरण पं० श्रीकृष्ण शास्त्री से व्याकरण शास्त्र का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये और क्रियात्मक रूप से योगविद्या सीखने के लिए मैं चाणोद में पहुँच गया था। पता लगा था कि वहाँ स्वामी श्री ज्वालानन्द पुरी और स्वामी शिवानन्द गिरि नाम के दो योगी पुरुष रहते हैं। दोनों ने मुझे योगविद्या सिखाने के लिए शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। पहले स्वामी ज्वालानन्द ने मुझे वचनात्मक रूप से हठयोग की शिक्षा दी थी और स्वामी शिवानन्द ने मुझे क्रियात्मक रूप से राजयोग की शिक्षा दी थी। आज तक भी उन दोनों की योग-शिक्षा के पाठ पर ही मेरा यौगिक जीवन चालू है। उन दोनों का मैं आभारी हूं। उन्होंने मुझे कठोर परीक्षाओं में रखा और उत्तीर्ण होने पर शिष्य के रूप में ग्रहण कर लिया। सीनोर से आकर मैंने तीन वर्ष का काल चाणोद और अहमदाबाद में योग-शिक्षा के लिए बिताया था। तत्पश्चात् और तीन वर्ष का काल आबू पर्वत में रह कर योग-सिद्ध पुरुषों की संगति में बिताया था। इस छःवर्ष के काल को मैं अपने जीवन का सर्वोत्तम अंश समझता हूं, योगविद्या की शिक्षा और अनुभव के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देना मेरी इच्छा के प्रतिकूल है। तो भी कलकत्ते के शिक्षित,ज्ञानी और भक्त लोगों के ऐकान्तिक मनोभाव और आग्रह को देखकर मैं इसका संक्षिप्त वर्णन अवश्य ही करूँगा।

मेरे मृत्यु-काल तक उस का प्रकाशन नहीं होना चाहिए।

हठ-योग※

यह पहले ही वता दिया गया था कि योग चार प्रकार के हैं—१. हठ योग, २. राज योग, ३. मन्त्र योग, ४. लय योग। इनमें हठयोग से शरीर और मन स्वस्थ और सतेज होकर दूसरे योगों के लिए उपयोगी वन जाते हैं। हठ योग के साधन से योगी क्षुधा-तृष्णा, निद्रा-आलस्य, शीतोष्ण, आधि-व्याधि, रोग-शोक, जरा-वार्धक्य आदि द्वन्द्व-समूह पर विजय-लाभ करते हैं। हठ-योगी 'त्राटक-योग' के अभ्यास से दूर दृष्टि, सूक्ष्म दृष्टि और अव्याहत दृष्टियों को बढ़ाते हैं'कुम्भक योग' के द्वारा योगी लोग बहुत दिन तक निराहार तथा नीरोग होकर रह सकते हैं। इन सब यौगिक विभूतियों का मैंने स्वयं अनुभव किया है। हठ योग दो प्रकार का है—गोरक्ष मुनि का छः अंग वाला योग और मार्कण्डेय मुनि का आठ अंग वाला योग। उभय प्रकारों का उद्देश्य कैवल्यलाभ ही है।

हठ-योग के पाठ—शरीर को नीरोग और दृढ़ रखने के लिए गुरुजी ने मुझे इन सब प्रक्रियाओं की शिक्षा दी थी—धौति, नेति, वस्ति, श्वास-परिवर्तन, आतप-स्नान, जल-स्नान, नासा-पान, जल-पान, कुम्भकयोग, त्राटक-योग, आसन और मुद्रा।

धौति-क्रिया—धौति से शरीर को पूर्णतया नीरोग और स्वास्थ्यवान् किया जा सकता है। वायु-धौति, अग्नि-धौति, जल-धौति, और वस्त्र-धौति के अभ्यास साधारणतः प्रचलित हैं। रोगी या भोगियों के लिए इसका अभ्यास करना कठिन है। इससे उदर और वक्षः स्वच्छ होते हैं।

नेति-क्रिया—नासा के द्वारा नेति-क्रिया की जाती है। नेति-क्रिया से कंठ और ललाट निर्मल होते हैं।

※हठ-योग में वस्ति उसे कहते हैं कि गुदा के रास्ते से पानी चढ़ा कर सफाई करना। टकटकी लगाकर इस तरह से देखने को कि जिसमें पलक न झपके त्राटक कहते हैं। नासिका में सूत्र डाल कर मुख से निकालने को नेति कहते हैं। मलमल का चार अंगुल चौड़ा और १६ से लेकर ८० हाथ तक लम्बा कपड़ा मुख के रास्ते पेट में लेकर, डाल कर फिर वाहर निकालने को धौती कहते हैं। यह वाजीगर का खेल है। इनसे कत्र निवृत्ति पाकर योग प्राप्त कर सकते होंगे, यह हठयोग वाले ही जानें। इन कामों से वीमारियाँ पैदा हो जाती हैं—(उपदेश मञ्जरी ११ व्याख्यान)।

वस्ति-क्रिया—योगी लोग जल-वस्ति, स्थल-वस्ति आदि के द्वारा पाक-स्थली के और अन्त्र के दूषित और संचित मल को निकाल देते हैं।

श्वास-परिवर्तन किसी रोग का आक्रमण समझने के बाद इड़ा नाड़ी के श्वास को पिंगला नाड़ी और पिंगला नाड़ी के श्वास को इड़ा नाड़ी में लाने से ही आक्रमणकारी रोग वन्द हो जाता है। वाम नासा-रंध्र से इड़ा नाड़ी को और दक्षिण नासा-रंध्र से पिंगला नाड़ी को सूक्ष्म प्राण पहुँचता है।

आतप-स्नान—धूप में अनावृत शरीर को परिमित और नियमित रूप से रखने से चर्मरोगादि और कुष्ठ जैसी व्याधियों तक का विनाश हो जाता है।

जल स्नान—जलाशय में विशेष कर के स्रोतस्विनी नदी में नियमा-नुसार अवगाहन स्नान करने से शरीर नीरोग, स्वच्छ और स्निग्ध हो जाता है।

नासा-पान—उषा काल में प्रशस्त और गम्भीर पात्र में जल रखकर जल पात्र को मुख के समीप रख कर नासारन्ध्रों को उसमें डुबा के नासा-रन्ध्रों से ही धीरे-धीरे जल आकर्षण कर भीतर को लेना और पी लेना ही नासा-पान है। इससे शरीर के अन्दर रोगों के बीजाणु नासारन्ध्र तक टिक नहीं सकते हैं और शरीर नीरोग रहता है।

जल-पान—सवेरे निद्रा-भंग होते के साथ ही साथ मुख धोकर यथाशक्ति केवल पानी ही पी लेना, पिपासा हो तो दोपहर के खाना खाने से कुछ पहले पानी लेना, खाना खाने के कुछ देर बाद पानी पी लेना और रात को भी सोने से पहले नियमित पानी पी लेना ही जलपान है। इससे भी शरीर नीरोग रहता है।

त्राटक योग—उदयकालीन चन्द्र-सूर्य के प्रति, प्रतिविम्ब में अपनी आँखों के प्रति, दूसरे की आँखों की दृष्टि के प्रति पलकहीन और अवि-च्छिन्न दृष्टि रखना ही 'त्राटक योग" है। इससे एकाग्रता, धारणा शक्ति और दृष्टि-शक्ति की वृद्धि होती है। गुरु जी ने मुझे इसी प्रकार सम्पूर्ण क्रिया योग की शिक्षा दी थी।

आसन—योगाभ्यास और रोगनिवारण के लिए आसन बहुत प्रकार के हैं। योगाभ्यास के लिए प्रधान आसन चौरासी या बत्तीस प्रकार

के हैं। इन में से **पद्मासन और सिद्धासन** सहज योगाभ्यास के लिए उपयोगी हैं।

धारणा, ध्यान और समाधि के लिए पद्मासन, सिद्धासन और अर्ध पद्मासन ही ग्रहणीय हैं।

गुरुजी से मैंने इस प्रकार सौ प्रकार के आसन सीख लिए थे—अर्ध कूर्मासन, गोमुखासन, चक्रासन, जानुशीर्षासन, त्रिकोणासन, धनुरासन, पादहस्तासन, पद्मासन (मुक्त और बद्ध], पवन मुक्तासन, पश्चिमोत्तान, वज्रासन, भुजंगासन, मत्स्येन्द्रासन, मयूरासन, शवासन, शयन पश्चिमोत्तान आसन, शलभासन, शशांगासन, सुप्त-वज्रासन, हलासनादि। इनसे मन अचंचल होता है।

मुद्रा—मुद्रायें स्वरूपतः आसनों के ही प्रकार-भेद हैं। शरीर के स्नायु तन्तु और मांसपेशियों को सबल बनाना आसनों का काम है और अन्तःस्रावी और बहिःस्रावी ग्रन्थियों को सक्रिय और सबल रखना मुद्राओं का काम है। मुद्रा भी बहुत प्रकार की हैं। गुरुजी ने मुझको लगभग पचास प्रकार की मुद्रायें सिखायी थीं। उनमें ये प्रधान हैं—अश्विनी मुद्रा, उड्डयन मुद्रा, उड्डयन-बन्ध मद्रा, विपरीत-करणी मुद्रा, मत्स्य मुद्रा, शीर्षासन मुद्रा (मस्तक मुद्रा,) महाबन्ध मुद्रा, महामुद्रा, मूलबन्ध मुद्रा, योग मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, सर्वांगासन मुद्रा और सहजशीर्षासन मुद्रा। मुद्राओं से शरीर-साधना के लिये उपयोगी बन जाता है।

कुम्भक योग—राजयोग के अनुसार प्राणायाम के तीन अंग हैं—पूरक, कुम्भक और रेचक। हठयोग में कुम्भक स्वतन्त्र क्रिया के रूप में ही गिना गया है। प्राण शक्ति को कैवल्य लाभ के साधन में उपयोगी बनाना ही कुम्भकयोग है। प्राण शक्ति की वृद्धि और मन के नियन्त्रण का भी कुम्भक योग से सम्भव है। गुरुजी के उपदेश, निर्देश और नियन्त्रण में रहते हुए मैंने कुम्भक योग का अभ्यास किया था। प्राणायाम सुसिद्ध होने से शरीर रोगमुक्त रहता है। गुरु के पास रहकर नियमित रूप से प्रतिदिन प्राणायाम का अभ्यास करने से अतिद्रुत प्राणायाम का फल मिल जाता है। निःश्वसित वायु का स्वाभाविक परिमाण और प्रश्वसित वायु का भी स्वाभाविक परिमाण जानना आवश्यक है। भीतर गये हुए वायु को आबद्ध रखने का भी परिमाण साथ-साथ जानना जरूरी है। अन्यथा नितान्त अस्वाभाविक रूप से पूरक, रेचक या कुम्भक करने से प्राणशक्ति की वृद्धि के स्थान में प्राण के नाश का ही भय रहता है। देह से

द्वादश अंगुलि तक श्वास जाय तो यह स्वाभाविक है। चलने के समय षोडश अंगुलि तक, भोजन के समय विंश अंगुलि तक, दौड़ने के समय चतुर्विंशति अंगुलि तक, निद्रा के समय ३० अंगुलि तक ही प्राणवायु की स्वाभाविक गति है। इसमें अस्वाभाविक गड़बड़ी होने से आयुक्षय होता है। प्रथम सिद्धार्थी का इस पर ध्यान रखना जरूरी है।

योगाभ्यास* के समय प्रातः स्नान, उपवास, अतिरिक्त शारीरिक परिश्रम, एक कालीन आहार और स्वल्पाहार यह योगियों के लिये निषिद्ध हैं। लेकिन ध्यान और समाधि सीखने के समय निषिद्ध नहीं है। शुद्धचेता और एकाहारी होकर कोई-कोई योगी प्रतिदिन केवल जल-मिश्रित दुग्ध का पान करने से भी बल प्राप्त करते हैं। मैं योग-शिक्षा के सुदीर्घ काल में दुग्धपान करके ही सबल और स्वस्थ रहा था। योगी के लिए सब प्रकार का नशा सर्वथा वर्जनीय है। नशाबाज़ योगियों ने तीन वार विभिन्न स्थानों में मुझको नशाबाज़ बनाने के लिये प्रयत्न भी किया था। लेकिन मैं इस पर बहुत ही कठोर हूं, मैंने उनकी संगत को ही छोड़ दिया था। योग-शिक्षार्थी और योगियों के लिये आमिष-आहार भी सम्पूर्णतया वर्जनीय है। गुरुजी ने मुझको दिनरात साथ-साथ रख कर ही हठ-योग की शिक्षा दी थी। पितृगृह से आने के बाद मेरा देह और मन गुरुओं के प्रभाव से योग-शिक्षा और योग-साधन के लिए सर्वथा उपयोगी बन गया था। इसलिए उन के प्रति मैं चिर-ऋणी हूं। गुरुजी हर रोज मेरे श्वास की गति की भी जांच करते थे।

मन्त्र-योग—गुरुजी ने मुझको मंत्रयोग की शिक्षा दी थी। प्रणवादि मन्त्रों के नियमित और दीर्घ काल तक जप करने से मन लीन हो जाता है। मन्त्र-योग का यह ही उद्देश्य है। इससे भी मोक्ष लाभ होता है। भृगु, कश्यपादि ऋषि लोग इस मंत्रयोग के उपदेष्टा हैं। मैं वहुत दिन तक हर रोज दो वार छःहजार—छःहजार करके गायत्री मंत्र जप करके तब खाना खाता था।

लय-योग—वेदव्यासादि कई-एक ऋषि लय-योग के उपदेष्टा हैं। इनके कथन के अनुसार हमारे शरीरों में तीन मुख्य शक्तियाँ हैं--ऊर्ध्वशक्ति, मध्य-शक्ति और अधः शक्ति। ऊर्ध्वशक्ति के निपातन से और अधः शक्ति के संकोचन से मध्य शक्ति का उद्‌बोधन होता है। इस प्रक्रिया से सात्विक

*कुम्भक योगाभ्यास के समय में तात्पर्य है। सं.

आनन्द का प्रवाह उपलब्धि में आता है। इस उपलब्धि के लिए शरीर के इन चक्रों में ध्यान करना होता है—स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिचक्र, हृदयचक्र, कण्ठ चक्र, तालुचक्र, भ्रूः चक्र, ब्रह्मरन्ध्र चक्र और अन्तिम ब्रह्म चक्र। इनमें ध्यान से आनन्द मिलने लगता है। इसके अभ्यास से भी मोक्षलाभ होता है। गुरुजी ने मुझे इस लय योग के बारे में साधन-विषयक बहुत गुप्त रहस्य का भी उपदेश दिया था मुझे स्नायविक शक्ति-केन्द्रों का पता लग गया था।

लेकिन मुझे केवल राज-योग पर ही पूर्ण विश्वास था।※ दूसरे योगों को मैंने आनुषंगिक योग ही समझ लिया था। मंत्र योग, लय योग, राज योग और हठ योग--इन चार प्रकार के योग-पथों का भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न महायोगी लोगों ने आविष्कार किया था। हर प्रकार के योग में ही लय का सम्बन्ध है। लय के विना योग होता ही नहीं। किसका लय ? चित्त का लय। पंतजलि ने चित्त के लय पर बहुत ही जोर दिया है। योग का सुफल और अलौकिक क्षमता निःसन्दिग्ध है। योगी लोग बहुज्ञ, दीर्घजीवी और सदा प्रसन्नचित्त होते हैं। निराहार से या श्वास-रोध से भी इनकी जीवन-रक्षा होती है - यह सब बातें नितान्त अविश्वसनीय नहीं हैं। हठ-योग की सभी क्रियाओं को गुरुजी ने मुझे सिखाया था।

राजयोग—हठयोग-शिक्षा के बाद मेरे गुरु स्वामी ज्वालानन्द पुरी ने मुझको राजयोग की शिक्षा के लिये स्वामी शिवानन्द गिरि को समर्पित कर दिया। मैंने सफलता के साथ उनसे राजयोग का पाठ आरम्भ कर दिया था।

राजयोग आठ अंगों★ में विभक्त है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम,

※ यह (हठ योग] बाजीगर का खेल है। इन से निवृत्ति पाकर कब योग कर सकते होंगे। यहहठ योग वाले ही जानें। इन कामों से बीमारियां पैदा होती हैं।--(उपदेश मञ्जरी ११ व्याख्यान)

★ यम-नियमा-सन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टा-वंगानि (यो० २-२९)। अर्थात् एक यम, दूसरा नियम तीसरा आसन, चौथा प्राणायाम, पाँचवाँ प्रत्याहार, छठा धारणा, सातवाँ ध्यान, आठवाँ समाधि, ये सब उपासना-योग के अंग कहाते हैं। (ऋ. वे. भा. भू. उपा०)

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। ऋषि पतंजलि ने इसके पाठों को चार भागों में विभक्त किया है—समाधिपाद, साधन पाद, विभूति पाद और कैवल्य पाद। इन सबका परिचय मुझे पहले से ही था।

इससे पहिले मैंने काशी में बड़ौदा से आकर विभिन्न दर्शन शास्त्र और विभिन्न सिद्धान्तों को विना ग्रन्थों के मौखिक रूप से सुनकर ही और आलोचना-शंका-समाधानों के द्वारा ही कुछ-न-कुछ समझ लिया था। अब मेरे गुरु ने पतञ्जलि के राजयोग और उसके साथ व्यास भाष्य, वाचस्पति की तत्त्व विशारदी टीका, भोज की राजमार्तण्डवृत्ति, विज्ञानभिक्षु का योगवार्तिक भाष्य आदि ग्रन्थों के सारांश को समझा दिया। मैंने विशेष रूप से उनसे कैवल्य, मोक्ष या मुक्ति लाभ के लिये ही उपदेश माँगा था। उन्होंनें तदनुसार मुझको योगदर्शन के क्रियात्मक रूप की ही शिक्षा देनी आरम्भ कर दी थी।

आहार—सर्वप्रथम उन्होंने आहार के सम्बन्ध में उपदेश दिया और मेरे लिये परिमित हितकर और पवित्र वस्तुओं के आहार के लिये प्रबन्ध करवा दिया था। साथ साथ योग के लिये निर्जन कुटिया में रहनें का प्रबन्ध भी कर दिया था। गुरु जी मेरे ऊपर तीव्र दृष्टि रखने लगे। विन्दुमात्र भ्रम और प्रमाद होने से वे उसका संशोधन करवा देते थे। अब से उन्होंने मेरे पथ्य के लिए केवल दुग्ध का प्रबन्ध करवा दिया और अन्य सब स्वल्पाहार बन्द करवा दिये। मैंने अति शीघ्र उत्साहपूर्वक इस को सहन कर लिया और वर्षों के लिए दुग्धपान मात्र को अपने अभ्यास के अन्दर डाल लिया था और इस पर ही जीवन-धारण किया था। गुरुजी हर सप्ताह श्वास-प्रश्वास के अनुसार शरीर की परीक्षा लेते थे।

योग विद्या की शिक्षा के बारे में गुरु जी का द्वितीय उपदेश था :—

स्थान और आसन—योग साधना के लिये कुटीर, कानन, पर्वत-गुफा वा किसी मठ का ही आश्रय लेना होगा यह बात नहीं है। ये सब स्थान अनुकूल हैं। इसमें सन्देह नहीं है लेकिन मन के अनुकूल कोई निरुपद्रव स्थान मिलने से ही वहाँ योगाभ्यास किया जा सकता है। कुशा के ऊपर मृगचर्म और उसके ऊपर कपड़ा रखकर उसके ऊपर सिद्धासन या पद्मासन लगाकर अभ्यास करना चाहिये। केवल मिट्टी पर कभी योगासन नहीं लगाना चाहिए; क्योंकि पृथिवी माता हर क्षण शरीर की शक्ति को खींच

रही है। आजतक भी आसन के बारे में मेरा यह नियम चालू है। ग्रीवा, मस्तक और मेरुदण्ड को समान रूप से सरल रखके बैठे हुए धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास प्रतिदिन नियमित समय पर ही होना चाहिए।

अष्टांग योग के पहिले पाँच अंग—१. यम २. नियम ३. आसन ४. प्राणायाम ५. प्रत्याहार—बहिरंग साधना हैं और बाकी तीन अंग—६. धारणा ७. ध्यान ८. समाधि अन्तरंग साधना हैं। बहिरंग साधना के द्वारा चित निर्मल हो जाता है। चित्त जितना निर्मल होगा, सिद्धि उतनी ही शीघ्र होगी। मलिन चित्त से ध्यान होना ही असम्भव है, चित्त में रजोमल रहने से चित्त चंचल होता है और तमोमल से ध्यान के समय निद्रा आ जाती है।

प्रथम धारणा है। धारणा अधिक समय स्थायी होने से उसका नाम ध्यान है और ध्यान के गाढ़ और गम्भीर होने से उसका नाम समाधि है।

यम पाँच हैं—१. अहिंसा २. सत्य ३. अस्तेय ४. ब्रह्मचर्य ५. अपरिग्रह। नियम भी पाँच हैं—१. शौच २. संतोष ३. तप: ४. स्वाध्याय ५.ईश्वर-प्रणिधान। ये दोनों यम और नियम मानवधर्म की भित्ति हैं। सब ही के लिये इन दोनों की आवश्यकता है। जब पाँच यम जाति, काल, स्थान के उपलक्ष्य से आहत और विच्छिन्न नहीं होते हैं तब उसका नाम सार्वभौम महाव्रत है।

शारीरिक और मानसिक शौच यानी पवित्रता के साधन से शरीर स्वस्थ होता है और चित्त प्रसन्न होता है। योगसाधन के लिये यह भी आवश्यक हैं। मैं गुरुजी के उपदेशानुसार इनके अभ्यास के लिए तत्पर हो गया था।

क्रिया योग ❀

महर्षि पतञ्जलि के राजयोग के अनुसार क्रियायोग का विधान है। गुरु जी ने मुझे इसके रहस्य के विषय में उपदेश दिया था। क्रियायोग तीन हैं—१. तप २. स्वाध्याय और ३. ईश्वर प्रणिधान। इनके अभ्यास से हमारे

❀ तप: स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि क्रियायोग:। (यो. २-१) ।। योगी पुरुष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानादि योग के साधनों (क्रियाओं) से धारणा ध्यानरूपी संयम के बल को प्राप्त होते हैं।। (ऋषिका यजुर्वेद भाष्य—अ० १७ मं० ७१) ।।

तीनों शरीरों की शुद्धि होती है। हमारे शरीर तीन हैं—(१) स्थूल शरीर (२) सूक्ष्म शरीर, और (३)कारण शरीर। तप के द्वारा हमारे शरीर व इन्द्रियों की परिशुद्धि होती है। स्वाध्याय के द्वारा हमारे मन, अहंकार और बुद्धि की परिशुद्धि होती है और ईश्वर-प्रणिधान के द्वारा चित्तशुद्धि होती है यानी चित्त के रजस्तमोमल विदीर्ण हो जाते हैं। मैं प्राणपण से इस शुद्धि-कार्य में लग गया था। गुरुजी ने कहा—हम लोगों ने जिन उपकरणों के साथ जन्म लिया है उन सबकी परिशुद्धि न होने से सम्यक् ज्ञान या परोक्ष अनुभूति नहीं होगी। प्रत्यक्ष ज्ञान के विना मुक्ति नहीं मिलेगी। इस साधना में जिनकी चेष्टा जितनी प्रबल होगी उनकी सफलता उतनी ही द्रुतगति से होगी। इस साधना का नाम ही क्रिया योग है।

हमारे तीन शरीरों में पाँच कोष हैं। (१) अन्न द्वारा निर्मित स्थूल शरीर अन्नमय कोष है। प्राण मन बुद्धि द्वारा निर्मित सूक्ष्म शरीर में क्रमानुसार (२) प्राणमय (३) मनोमय (४) विज्ञानमय कोष हैं। (५) अस्मिता द्वारा निर्मित कारण देह का नाम ही आनन्दमय कोष है। जीवात्मा इन पाँच कोषों के आवरण से आबद्ध है। पंचकोषों से मुक्ति ही जीवात्मा की मुक्ति है। सर्वोपरि अन्नमय कोष है। उसके अन्दर प्राणमय और उसके अन्दर मनोमय कोष है। उसके अन्दर विज्ञानमय कोष है और उसके अन्दर आनन्दमय कोष है।

तप—स्थूल शरीर के संस्कार के लिये तप, सूक्ष्म शरीर के संस्कार के लिये स्वाध्याय और कारण शरीर के संस्कार के लिये ईश्वर-प्रणिधान का प्रयोजन है★। केवल धर्मानुष्ठान के लिये ही इसकी आवश्यकता नहीं है। सभी कार्यों में सब को ही इस संस्कार या तप का प्रयोजन है, क्योंकि इस संस्कार पर ही सबके शरीर और मन का स्वास्थ्य निर्भर करता है। क्रियायोग ही इस संस्कार कार्य का एकमात्र उपाय है। इसके अभाव के कारण मनुष्य संस्कारहीन शरीर और मन के द्वारा पाप कार्य करते हैं। असंस्कृत जीवन अतीव दुर्बल और पापिष्ठ है। तप ही संयम, कठोरता, सहिष्णुता और दृढ़ संकल्प है, इसी के द्वारा स्थूल देह शुद्ध होता है।

★अत्युग्रतपश्चरण से इस संसार में मोक्ष पद को सिद्ध कर और करा सकते हैं।—(सत्यार्थ प्रकाश-५ समुल्लास)

—शान्त विद्वान् लोग वन में तप, धर्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके परमात्मा की प्राप्ति होके आनन्दित हो जाते हैं—(वहीं)

स्वाध्याय—के द्वारा सूक्ष्म देह संस्कृत या शुद्ध होता है। इससे प्राण, मन और बुद्धि की मलिनता दूर होती है। वेदादि मोक्षशास्त्र पाठ, गायत्री प्रणवादि मन्त्रों का नियमित पाठ ही स्वाध्याय है। प्राण, मन और बुद्धि की गति साधारणतः वाहर की तरफ है। इनकी आसक्ति वाहर के विषयों में अधिक है। इस विषयासक्ति का नाम ही मलिनता है। इसलिये इनकी गति को अन्तर्मुखी करने की आवश्यकता है। स्वाध्याय ही इस कार्य में एकमात्र उपाय है। चित्त को अन्तर्मुखी करने के लिए स्वाध्याय-रूप क्रियायोग की परम आवश्यकता है।

ईश्वर-प्रणिधान★के द्वारा सांसारिक वन्धन से चित्त मुक्त होकर परमात्मा की तरफ धावित होता है।✽परमात्मा में सर्वकर्मों के फल अर्पण करके निष्काम भाव से कर्म करना ही ईश्वरप्रणिधान है। इससे चित्त के संस्कार-समूह का नाश हो जाता है। असंख्य जीवनों के असंख्य कर्म संस्कार चित्त में जमा रहते हैं। हमारे विभिन्न शरीरों में आवद्ध होकर सुख और दुःख के भोग इसी से होते हैं। ईश्वरप्रणिधान के द्वारा हमारे संचित कर्म-संस्कार दुर्वलता और क्षय को प्राप्त होते हैं। साधना के लिए ईश्वरप्रणिधान जरूरी है। इसके द्वारा साधक कर्म-संस्कारों की मलिनता से मुक्त हो जाते हैं और परमानन्द-प्राप्ति के लिए परमात्मा की तरफ आकृष्ट हो जाते हैं।

क्रिया योग के द्वारा चित्त में किसी नई शक्ति की सृष्टि नहीं होती है। हमारे अन्दर असीम शक्ति छिपी हुई रहती है। क्रियायोग से इसका उद्वोधन होता है और आत्मविश्वास की सृष्टि होती है। जिस शक्ति से हम लोग शुभ कार्य करते हैं उसी शक्ति से ही हम लोग अशुभ कार्य भी

★ ईश्वर प्रणिधान—'जो मेरे प्रेम और सत्याचरण भाव से शरण लेता है, उस की अन्तर्यामी रूप से मैं अविद्या का विनाश कर, उसके आत्मा का प्रकाश करके, शुभ गुण, कर्म, स्वभाव वाला कर, सत्य स्वरूप का आवरण स्थिर कर, शुद्ध योग से हुए ज्ञान को दे, दुःखों से अलग करके मोक्ष को प्राप्त कराता हूं।" (यजुर्वेद भाष्य)

✽सर्वं क्रियाणां परम गुरावर्पणं तत्फलसन्न्यासो वा—सब क्रियाओं को परम गुरु परमात्मा की उपलब्धि निमित्त करना या कर्मों के फलों को छोड़ देना—निष्काम होना ईश्वरप्रणिधान है—(योग व्यास भाष्य २-१)

करते हैं। साधारणतः मनुष्य दिन-दिन अशुभ कार्यों के द्वारा अपने को अधः पतित करता है। इन अशुभ कार्यों के संस्कार विनष्ट करने के लिए क्रिया योग जरूरी है। गुरु जी ने मुझको क्रिया-योग के प्रति प्रेरणा दी थी आज भी मैं उसका अनुसरण कर रहा हूं।

(४)

नाड़ी-शुद्धि

गुरु जी ने मुझे कहा कि राजयोग में भी नाड़ी-शुद्धि का प्रयोजन है। मेरुदण्ड के अन्दर इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी हैं। इनकी शुद्धि ही नाड़ीशुद्धि है। प्राणायाम करने से पहले नाड़ी-शुद्धि कर लेनी चाहिए। आसन में यथाविधि बैठकर पहले दाहिनी नासा की श्वास-क्रिया रोक के बायें नासा से यथा-शक्ति वायु को खींच लेना चाहिये। वायु को जितना अधिक खींचोगे उतना ही अच्छा है। लेकिन ज्यादा जबरदस्ती खींचने से बीमार पड़ जाओगे। साथ २ बायीं नासा की श्वासक्रिया को बन्द करके दाहिनी नासा से यथाशक्ति वायु को छोड़ते रहना। इसी का नाम पूरक के वाद रेचक है। पूरक करके साथ २ ही रेचक करना, कुम्भक नहीं करना अर्थात् भीतर बन्द करके नहीं रखना। रेचक पूरा होने के बाद ही दाहिने नासा के द्वारा पूरक करना और बायें नासा से रेचक करना। इसी प्रकार हर रोज आराम से जब तक कर सकते हो, करो। पूरक और रेचक के समय वायु को धीरे-धीरे खींचना और छोड़ना। नासा के सम्मुख रुई रखने से भी उसका संचालन नहीं हो। वायु को झट एक ही दफा वेग के साथ नहीं खींचना और न ही छोड़ना। खींचने के समय और छोड़ने के समय धीरे-धीरे ताल से खींचना और छोड़ना। इस नाड़ी-शुद्धि के समय दूसरे किसी विषय की चिन्ता नहीं करना। श्वास और प्रश्वास में ही मन को संलग्न रखना और चित्त को आबद्ध रखना। इस नाड़ी-शुद्धि के अभ्यास को बहुत दिन तक करने से आसन-जय होगा अर्थात् एक आसन में बहुत देर तक आराम से रह सकोगे। तमो-भाव नष्ट हो जायेगा अर्थात् आलस्य और तन्द्रा नहीं सतायेंगी। इससे शरीर लघु होगा, मन में आनन्द आयेगा, चित्त प्रसन्न रहेगा, उक्त विषय पर चिन्ता और धारणा की शक्ति बढ़ जायेगी। इससे फेफड़े में वल आयेगा और फेफड़े में प्राणायाम के लायक शक्ति आ जायेगा।

नाड़ी-शुद्धि के समय इन विषयों पर ध्यान रखना जरूरी है। अन्यथा

कठिन रोगों के शिकार बन जाओगे। इन नियमों का लंघन करने से पीछे पश्चात्ताप करना पड़ेगा। वह नियम ये हैं—

१. पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य रक्षित हो,

२. साधना का अभ्यास एकान्त में हो,

३. साधना का घर वायु-संचालन युक्त हो, साफ-सुथरा हो,

४. आहार सात्विक और परिमित हो,

५. साधना का घर एकान्त और निर्जन हो,

६. देह में कपड़े कस के पहने हुए नहीं हों, ढीले हों,

७. बैठने का आसन ठीक हो,

८. नासारन्ध्रों से वायु को धीरे-धीरे खींचना और छोड़ना हो,

९. नासा-रन्ध्रों से वायु खींचना और छोड़ना ताल के साथ हो,

१०. मन की एकाग्रता श्वास-प्रश्वास पर ही रहे,

११. मन में दूसरी चिन्ता न रहे,

१२. उदर में दूषित मल या वायु जमा न रहे,

१३. ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति नाडी शुद्धि की प्रचेष्टा न करें अन्यथा विविध रोगों से आक्रान्त हो जायेंगे।

१४. कुम्भक के अभ्यास के लिए इससे पूर्व ही आसन को स्थिर रखना, मन को स्थिर करना और नाड़ी-शुद्धि का अभ्यास जरूरी है।

राजयोग का प्राणायाम

राजयोग के अनुसार भी प्राणायाम तीन प्रकार के हैं★—बाह्य वृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति।

१. ❀प्राण वायु को प्रश्वास के साथ बाहर धारण करके रखना बाह्यवृत्तिक प्राणायाम है।

★बाह्याभ्यन्तर स्तम्भ वृत्तिर्देश काल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ-सूक्ष्मः। (यो. २-५०)

❀व्यास भाष्य—यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः ।। ऋषि-भाष्य—जब भीतर से श्वास को बाहर निकाले तब उस को बाहर ही रोकदे।

२. प्राण-वायु को श्वास के साथ भीतर धारण करके रखना ही आभ्यन्तर वृत्तिक❀ प्राणायाम है।

इन दोनों प्राणायामों को नाड़ी-शुद्धि अच्छे रूप से होने के बाद ही करना चाहिए और इन प्राणायामों को अच्छे रूप से करने के बाद ही स्तम्भ वृत्तिक प्राणायाम करना चाहिये।

३. श्वासप्रश्वास को रोक कर कुछ धीरे २ पूरक और कुछ रेचक के साथ **फेफड़े के कार्य को रोकने से** स्तम्भ★वृत्ति हो जायेगा। स्तम्भक वृत्तिक प्राणायाम का अभ्यास धीरे २ होना चाहिये। गुरु जी अपने अत्यन्त समीप बिठा कर मुझको सर्व प्रकार की प्राणायाम-शिक्षा देते थे।

प्राणायाम-परिदर्शन—बाह्य, आभ्यन्तर और स्तम्भ इन तीन प्राणायाम वृत्तियों को ध्यान में रख कर इनकी स्थिति को क्रमशः दीर्घ से सूक्ष्म की तरफ लेजाना और इसके कौशल को स्थान (देश), काल और संख्या के अनुसार उत्कर्ष की तरफ ले जाना—इसी का नाम प्राणायाम-परिदर्शन है।

देश (स्थान)-परिदर्शन—देश दो प्रकार के हैं वाह्य देश और आभ्यन्तर देश। वाह्य देश का दूसरा नाम आधिभौतिक देश और आभ्यन्तर देश का दूसरा नाम आध्यात्मिक देश है। स्वाभाविक प्रश्वास के समय प्रश्वास-वायु नासिका से करीब १२ अंगुली तक वाहर जाता है। नाड़ी-शुद्धि के अभ्यास से प्रश्वास वायु क्रमशः १२ अंगुली से ११, १०, ९, ८ और इसी रूप से अन्त में नासिका से बाहर आयेगा ही नहीं। नासिका के अन्दर ही प्रश्वास वायु समाप्त हो जायगा। इसी रूप से प्रश्वास में वायु के प्रति दृष्टि रखने का नाम बाह्यदेश परिदर्शन है। फिर श्वास लेने के समय जब श्वास वायु हमारे वक्षःस्थल की तरफ आता है उस पर ध्यान रखने से और शेष करने से उसी का नाम आध्यात्मिक परिदर्शन है।

❀ यत्र श्वासपूवको गत्यभावः स आभ्यन्तरः=जब श्वास बाहर से भीतर को आवे तब उसको जितना रोक सके उतना भीतर ही रोक दे।

★तृतीयः स्तम्भवृत्तिः यत्रोभयाभावः=तीसरा स्तम्भ वृत्ति है, कि न प्राण को बाहर निकाले, न बाहर से भीतर ले जाये। किन्तु जितनी देर सुख से हो सके उस को जहाँ का तहाँ ज्यों त्यों एक दम रोक दे। —(ऋ.भा.भू. उपासना०)

काल-परिदर्शन—प्रणव मन्त्र या गायत्री मन्त्र का जप करते हुए जो काल का परिमाण हिसाब में रखा जाता है उसी का नाम काल-परिदर्शन है। पूरक में ४ वार, कुम्भक में १६ वार और रेचक में ८ वार मन्त्र जप करना या पूरक में ६ वार, कुम्भक में २४ वार और रेचक में १२ वार मन्त्र जप करना। इसका अनुपात है १, ४, २। साधक अपनी शक्ति के अनुसार जप करें। जप पूरक में जितने वार होगा, कुम्भक में उसके चार गुणा होगा, और रेचक में उसका द्विगुणा जप होगा। इसी का नाम काल-परिदर्शन है।

संख्या-परिदर्शन—(ह०ले०४५५) यह काल-परिदर्शन के ही अनुरूप है। इसमें जप की संख्या नहीं रखनी है। इसमें श्वास-प्रश्वास की संख्या रखनी है।

गुरुजी ने मुझको सावधान कर दिया था कि प्राणायाम का अभ्यास बहुत ही सावधानी से और धीरे-धीरे करना चाहिए। सद्गुरु के उपदेश के अनुसार इसका अभ्यास होना चाहिए, ज़बरदस्ती नहीं करनी चाहिए। यथाशक्ति धीरे-धीरे पूरक, कुम्भक और रेचक करना और धीरे-धीरे इनकी संख्या और काल को बढ़ाना। इस रूप से धीरे-धीरे दीर्घ काल के अन्दर अभ्यास करने से जो प्राणायाम की सिद्धि होती है उसका नाम दीर्घ-प्राणायाम है। प्राणायाम में जब क्रमशः श्वास-प्रश्वास बाहर आता ही नहीं, नासिका के अन्दर ही रहता है और कुम्भक* करने में अधिक नष्ट नहीं होता है—तब उसका नाम सूक्ष्म प्राणायाम है।

विषयाक्षेपी प्राणायाम★

देश, काल और संख्या के प्रति दृष्टि रख कर बहुत दिन प्राणायाम

---

* श्वास गति का विच्छेद करने में—

★बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः(यो०२-५१)।। चौथा यह है—कि जब श्वास भीतर से बाहर को आवे तब बाहर ही कुछ रोकता रहे। और जब बाहर से भीतर आवे तब उसको भीतर ही थोड़ा-थोड़ा रोकता रहे। इस को बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी कहते हैं। (भा-भू) उपासना चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी'—अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उसके विरुद्ध उसको न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले। और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये। ऐसे एक-दूसरे के विरुद्ध किया करें। तो दोनों की गति रुक कर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं।। (सत्यार्थ प्रकाश ३, स,)

करते-करते जब साधक अभ्यस्त हो जाते हैं तब देश, काल और संख्या के प्रति दृष्टि न रखने से भी प्राणायाम सुचारु रूप से साधित होता है। इसी का नाम विषयाक्षेपी प्राणायाम है।

प्राणायाम से लाभ—गुरुदेव ने प्राणायाम-शिक्षा के प्रारम्भ में ही प्राणायाम की उपकारिता को वर्णित किया था। तमो गुण के आधिक्य के कारण सत्व गुण के प्रकाश और रजो गुण की कर्मशीलता पर आवरण आ जाता है। प्राणायाम के प्रभाव से शरीर और इन्द्रियों का जाड्य और आलस्य छुट जाता है। तमो गुण का कार्य तन्द्रा और निद्रालुता भी नष्ट हो जाती हैं। स्वल्प निद्रा के कारण तब कष्ट नहीं होता है। देह कर्मपटु होता है, मन मोह-शून्य होता है और बुद्धि स्वच्छ होती है। विचार-शक्ति और विवेक-शक्ति की वृद्धि होती है, विवेक शक्ति की वृद्धि से तत्त्व-ज्ञान और सूक्ष्म दर्शन का उदय होता है, मिथ्या और विषम ज्ञान का लोप होता है और शुद्ध ज्ञान का उदय होता है।

चित्त की निर्मलता*

स्वर्णादि धातुओं में मल या खोट मिश्रित रहने से उसकी उज्ज्वल आभा आवृत हो जाती है और देखने में मलिन लगती है और उसको अग्नि में दग्ध करने से मल दग्ध हो जाता है और सुवर्णादि धातुओं की स्वाभाविक उज्ज्वलता प्रकाशित होती है। ठीक इसी प्रकार हमारा विवेक मोह के आवरण से आवृत होकर आभाशून्य हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा मोह का आवरण नष्ट हो जाता है। प्राणायाम से हमारे शरीर, इन्द्रिय, मन और चित्त की मलिनता और अशुद्धि भी कट जाती है और विशुद्धि के भाव का उदय होता है। स्वाभाविक स्थिति में हमारी इन्द्रियों में मलिनता रहती है इसलिए ये इन्द्रियाँ दुर्बल हैं। यह मलिनता कट जाने पर ये प्रबल हो जाती हैं। और इनको प्रकृति के सूक्ष्म उपादान दर्शन करने की शक्ति मिलती है। तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धादि

---

* ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।। (यो २-५२) जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता है ।।　　　　　　(—सत्यार्थ प्रकाश ३, समुल्लास)

के तन्मात्रादि दर्शन करने की शक्ति भी मिलती है। दूर दर्शन और दूर श्रवणादि की शक्ति भी उत्पन्न होती है। जब तक मलिनता रहेगी तब तक दूरदर्शनादि अतीन्द्रिय शक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। प्राणायाम के द्वारा यह मलिनता क्षीण हो जाती है और सूक्ष्म तत्त्वों का दर्शन होता है। गुरुदेव की कृपा से मुझे इसका फल प्राप्त हुआ था।

गति-विच्छेद

नासिका के द्वारा श्वास को भीतर लेने का नाम "पूरक" और उसको छोड़ने का नाम "रेचक" है। पूरक के बाद रेचक न करना या रेचक के बाद पूरक न करना, इसका नाम "गति-विच्छेद"※ है। गति-विच्छेद में श्वास-प्रश्वास बन्द किया जाता है। एक का नाम "पूरकान्तक कुम्भक" और दूसरे का नाम "रेचकान्तक कुम्भक" है। श्वास-प्रश्वास का गति-विच्छेद बाहर होता है और चित्त का गति-विच्छेद भीतर होता है। चित्त सर्वदा चंचल है। चित्त की चंचलता का नाम ही चित्त की गति है। श्वास-प्रश्वास स्थिर होने से प्राणशक्ति का गति-विच्छेद होता है और चित्त स्थिर होने से चित्त का गति-विच्छेद होता है। जिस समय कुम्भक होगा ठीक उसी समय भीतर चित्त को भी स्थिर रखना है। प्राण-शक्ति ही चित्त को चंचल करती है। चित्त को स्थिर करना और प्राणशक्ति को स्थिर करना एक ही बात है। बाहर कुम्भक के द्वारा प्राणशक्ति को स्थिर किया जाता है और भीतर चित्त को स्थिर करके प्राणशक्ति को स्थिर किया जाता है। ध्यान के द्वारा चित्त को स्थिर रखना या चित्त को बिलकुल शून्यवत् रखना जरूरी है। कुम्भक के समय अगर चित्त में चंचलता रहे अर्थात् चित्त चारों तरफ घूमता-फिरता रहे तो विविध चिन्ता आकर चित्त पर आक्रमण करती हैं। इसलिए इससे सुफल के बदले कुफल ही होगा और इससे अनिष्ट की सम्भावना है। इसलिए बाहर जैसे कुम्भक करना ऐसे ही भीतर भी चित्त को पूर्णतया स्थिर रखना है। तब ही योगांग प्राणायाम हो जायगा। प्राणशक्ति को दोनों तरफ से ही रोकना—गतिहीन करना पड़ेगा। गुरुदेव के निर्देशानुसार साधन से मुझे सुफल मिला।

※ तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोः गति-विच्छेदः प्राणायामः ॥ (यो० २-४९)॥—उन दोनों श्वास-प्रश्वास के जाने-आने को रोके। नासिका को हाथ से कभी न पकड़े किन्तु ज्ञान से ही उसके रोकने को [अर्थात् चित्त के रोकने को] प्राणायाम कहते हैं। (ऋ० भा० भू० उपा०)

इसलिये पहले आसन-स्थिर करके शरीर-स्थिर करनें का और ध्यान-अभ्यास करके मन स्थिर करने का नियम है। शरीर को और मन को स्थिर करके तब कुम्भक अभ्यास करने का नियम है।(ह.ले. ५१)शरीर और मन को स्थिर न करके अगर कुम्भक किया जाय तो अनिष्ट होता है। मन की चंचलता में कभी कुम्भक नहीं करना चाहिये। बहुत आदमी इस विषय में बहुत ही भूल करते हैं। वे लोग समझते हैं कि किसी उपाय से बहुत समय तक कुम्भक करके रहनें से ही सर्वसिद्धि मिल जाएगी। लेकिन चित्त स्थिर करने के विना कुम्भक करके बहुतों को विपरीत फल ही मिलता है।

(५)

यम नियमों की साधना

पाँच यम और पाँच नियमों को गुरुजी ने मनुष्य धर्म की नींव बताकर वर्णन किया था। फिर उन्होंने यम और नियमों को तपस्याओं के अंगीभूत कह कर उनका वर्णन किया था। यम और नियम के साधन से मन की स्वेच्छाचारिता की निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति होती है। इनकी साधनाओं की बाधायें भी बहुत हैं। बाधाओं के निवारणार्थ उपाय भी बहुत हैं। यम-साधना इस प्रकार की है—

(१) **अहिंसा-साधना**—मन-वचन-कर्म द्वारा किसी को हानि नहीं पहुँचाना और किसी के प्रति द्रोह-भाव न रखना ही अहिंसा है।❋ सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अद्रोह अहिंसा के सहायक हैं। मैत्री (सुखी के प्रति),करुणा (दुःखी के प्रति),मुदिता (पुण्यवान् के प्रति) और उपेक्षा (पापी के प्रति)★ की साधना से अहिंसा-साधना की उन्नति होती है। अहिंसा-साधना करने में स्वार्थ त्याग की आवश्यकता है। दूसरे के शरीर के मांस को खाकर अपनें शरीर की पुष्टि करने से अधिक हिंसा नहीं है। जो दूसरे के प्रति हिंसा करता है, दूसरे लोग भी उसकी हिंसा

❋ "तत्राहिंसा—सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः ।।यो. २-३० व्यासभाष्य

—सब प्रकार से, सब काल में, सब प्राणियों के साथ वैर छोड़ के प्रेम प्रीति से वर्तना······ऋ. भा. भू. उपा०)

★ मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख-दुःख पुण्यापुण्य विषयाणाँ भावनातश्चित्त प्रसादनम् ।। (यो० १-३३)।।—मैत्री सुखी जनों से मित्रता, करुणा=दुःखी जनों पर दया,मुदिता=पुण्यात्माओं से हर्षित होना, उपेक्षा दुष्टात्माओं में न प्रीति न वैर करना।—(सत्यार्थ प्रकाश ६ समु०)

करेंगे। उसको वन्धु नहीं मिलेगा। सब कोई उसके शत्रु वन जाते हैं। "अहिंसा परमोधर्मः" । अहिंसा पालन करके चित्त को शुद्ध करना चाहिये।

हिंसा तीन प्रकार की है❀—कृता, कारिता और अनुमोदिता। क्रोध, लोभ और मोह से हिंसा सम्पन्न होती है। हिंसा अनन्त दुःख और अज्ञानता का कारण है। हिंसा के इन दोषों को सोच कर हिंसा को त्याग देना चाहिये।

कृता-हिंसा—जिस हिंसा को आदमी खुद करता है। जैसे पशुवध, पक्षिवध, आदि।

कारिता हिंसा--खुद न करके जो हिंसा दूसरे के द्वारा करायी जाती है। जैसे अपने नौकरों के द्वारा पशुवध पक्षि-वध आदि।

अनुमोदिता हिंसा—दूसरे की हिंसा की प्रशंसा करना। जैसे कसाई-खाने या मन्दिर में पशुवध को देख प्रसन्नता प्रकट करना।

इन तीन प्रकार की हिंसाओं में प्रत्येक हिंसा भी तीन-तीन प्रकार की है क्रोधपूर्वक, लोभ पूर्वक, मोह पूर्वक। जैसे क्रोध से किसी का वध करना, धनैश्वर्य के लालच से किसी को जान से मार देना और पुण्य के मोह से मन्दिर में बकरी-भैंसों का बलिदान देना।

देखा जाता है कि कोई-कोई आदमी वृद्धावस्था में कठिन असाध्य रोग से आक्रान्त होकर छटपटाते हैं। ये लोग प्रतिक्षण मृत्यु को ही चाहते हैं। किन्तु इनके प्रति मृत्यु देवता की दया नहीं होती है। दीर्घकाल तक ये लोग असहनीय रोग-यन्त्रणाओं को सहन करके भी जीवित रहते हैं। इस जीवन में हो या पूर्व-जीवनों में हो, ये लोग घोरतर हिंसा-कार्य करके इस स्थिति को प्राप्त होते हैं। हिंसा का फलभोग जब तक पूरा नहीं होता तब तक इनकी मृत्यु नहीं होती।

अहिंसा प्रतिष्ठित होने से सब प्राणी योगी के प्रति वैरभाव को छोड़ देते हैं। व्याघ्रादि हिंस्र पशु भी उनके प्रति हिंसाभाव को छोड़ देते हैं। ऋषि-मुनियों के आश्रमों में हरिण-शिशु और व्याघ्र-शिशु एक साथ

❀ वितर्का हिंसादयः कृत कारितानुमोदिता लोभ क्रोध मोह पूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।।यो० २ ३४

खेलते हैं। अहिंसा-साधना की सिद्धि के कारण योगी के आश्रम का वातावरण अहिंसामय हो जाता है।

(२) सत्य-साधना❋

मन वचन-आचरण से सत्य के पालन से ही सत्य-साधना होती है। सत्य प्रतिष्ठित होने से योगी वाक्-सिद्ध होते हैं। उनके वाक्य अमोघ होते हैं। सत्य-प्रतिष्ठ योगी अन्याय से शक्ति के बाहर व्यर्थ संकल्प भी नहीं करते हैं। उनके आशीर्वाद और अभिशाप दोनों ही सफल होते हैं अर्थात् जिस प्राणी को कर्म फलानुसार दुःख मिलेगा योगी के मुख से उसके प्रति अभिशाप ही निकलता है और जिस प्राणी को कर्म फलानुसार सुख मिलेगा योगी के मुख से उसके प्रति आशीर्वाद ही निकलता है। मिथ्या वाक्य भी अगर दूसरे के लिए हितकर हो तब वह मिथ्या वाक्य भी सत्य वाक्य बन जाता है। और सत्य वाक्य भी अगर दूसरे के लिए अहितकर होता है तो वह सत्य वाक्य भी मिथ्या वन जाता है। योगी आशीर्वाद से दूसरे को शुभ फल दे सकते हैं। योगी इच्छा करने से बीमारों की कठिन पीड़ा भी दूर कर सकते हैं। महापापी के अन्दर शुभ इच्छा के द्वारा पुण्य का संचार कर सकते हैं। योगी सर्वदा विचारपूर्वक दूसरे के लिए हितकर वाक्य ही बोलते हैं, अल्प वाक्य प्रयोग करते हैं और कभी-कभी मौन भी धारण करते हैं। सत्य प्रतिष्ठित योगी ज्यादा वाक्य नहीं बोलते हैं और वाचालता भी छोड़ देते हैं। सत्यस्वरूप परमात्मा के ध्यान में ही योगी अधिक समय बिताते हैं, सत्य धर्म के प्रचार में भी अपने जीवन को समर्पित करना चाहते हैं, ऐसे योगी का सब कोई विश्वास करते हैं।

(३) अस्तेय साधना★

लोभ के कारण दूसरे की किसी वस्तु को चोरी करके लेना "स्तेय" है,

---

❋जैसा अपने ज्ञान में हो वैसा ही सत्य बोले, करे और माने। (ऋ. भा. भू. उपासना०)

—तब (सत्याचरण के ठीक-ठीक सिद्ध होने पर) वह जो २ योग्य करता और करना चाहता है वे सब सफल हो जाते हैं।। (ऋ.भा.भू. उ०)

★मन-वचन-कर्म से चोरी का त्याग - (स.प्र. ३स०) विना आज्ञा छल-कपट, विश्वासघात व किसी-किसी व्यवहार तथा वेदविरुद्ध उपदेश से पर पदार्थ का ग्रहण करना चोरी, और इस को छोड देना साहूकारी कहाती है। (स. प्र. ५. समु०)

और इसके विपरीत "अस्तेय" है। अधर्म से उपार्जित अर्थ से धर्मोपार्जन नहीं होता है। बिना बताये दूसरे की वस्तु को ग्रहण करना भी 'स्तेय' है। जिस वस्तु में अधिकार नहीं है उस वस्तु को किसी उपाय से लेना भी 'स्तेय' है। इस रूप से पुरोहित या यजमान का एक-दूसरे को प्राप्ति के विषय में धोखा देने से दूसरे की नौकरी करते हुए नौकर का स्वामी के कार्य को ठीक रूप से न करने से व्यवसायी का व्यवसाय में धोखा देने से, चिकित्सक का रोगी को चिकित्सा कार्य में धोखा देने से, शिक्षक-छात्रों गुरु-शिष्यों में एक दूसरे को धोखा देने से भी स्तेय हो जाता है। इन सब में विपरीत—प्रतिकूल व्यवहार ही अस्तेय है। स्तेय का फल अविश्वास और भीति है और अस्तेय प्रतिष्ठित होने से प्रकृति के सब रत्न ही साधक के सम्मुख उपस्थित होते हैं।❀काय, मनः, वाक्य से दूसरे के धन के अपहरण की मनोवृत्ति न रहने से जगदीश्वर साधक को सर्व आवश्यक वस्तु ही प्रदान करते हैं। अस्तेय प्रतिष्ठित होने से साधक को देख कर ही दाता दान करके अपने को धन्य समझते हैं। अस्तेय-साधक सब के विश्वासपात्र और प्रियपात्र बन जाते हैं। और स्तेय के द्वारा आदमी दूसरे के अविश्वासमय और घृणा के पात्र बन जाते हैं।

(४) ब्रह्मचर्य-साधना

काम-भावना के साथ कुछ-कुछ स्मरण करना, बात करना, देखना, गुप्त-मंत्रणा करना, संकल्प करना, श्रवण करना, और व्यभिचार कर्म करना—यहसबके सब ब्रह्मचर्य-विरोधी हैं। इसके विपरीत शुद्ध भावसे और काम-वर्जित भाव से सब कुछ करना ही ब्रह्मचर्य है।★ ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होने से शारीरिक और मानसिक बल-लाभ होता है और धर्मभाव वर्द्धित

❀ अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्व रत्नोपस्थानम् ॥ यो. २।३७॥ जब मनुष्य अपने शुद्ध मन से चोरी को छोड़ देने की प्रतिज्ञा कर लेता है तो उस को सब उत्तम पदार्थ यथायोग्य प्राप्त होने लगते हैं।—(ऋ.भा.भू.-उपा०)

★ ब्रह्मचर्य—उपस्थेन्द्रिय का सदा नियमन (ऋ. भा. भू. उपा०) 'ब्रह्मचर्य सेवन से यह बात होती है······ब्रह्मचर्य से वीर्य अर्थात् बल बढ़ता है। एक शारीरिक दूसरा बुद्धि का उसके बढ़ने से मनुष्य अत्यन्त आनन्द में रहता है।—(वहीं)

होता है, सत्त्व, आयुः, यश, कीर्ति, उत्साह, उद्यम, उच्चाशा, त्याग, शान्ति और आनन्द की वृद्धि होती है। अन्यथा इन सब गुणों के विपरीत दुर्गुणों की वृद्धि से मनुष्यता का लोप और पशुत्व की वृद्धि होती है सब ही घृणा और अवमानना का व्यवहार करते हैं। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होने से साधक महाशक्तिशाली होते हैं। साधक के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की वृद्धि होती है। इन्द्रियों की तेजोवृद्धि होने से सूक्ष्म और अलौकिक विषयों का प्रत्यक्ष होता है। प्रकृष्टरूप से तत्त्वज्ञान की उपलब्धि होती है। ब्रह्मचर्य-हीन मानवों के शरीर कमजोर और विभिन्न रोगों के गृह बन जाते हैं। इनके मन निस्तेज, उत्साह-हीन, उच्चाशाहीन और अकर्मण्य हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य-हीनता से जीवन पशुओं के स्तर से भी नीचे उतर जाता है। व्यक्ति अर्द्धमृत और अन्त में विनष्ट ही हो जाता है।

(५) अपरिग्रह-साधना*

केवल शरीरादि की रक्षा के लिये जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता है तदतिरिक्त वस्तुओं का त्याग करना अपरिग्रह है। अधिक वस्तुओं की इच्छा अच्छी नहीं है। प्रयोजनातिरिक्त वस्तुओं के ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। अधिक भोग्य वस्तु सम्मुख रहने से योगसिद्धि नहीं होती है। आवश्यकता से अतिरिक्त वस्तुओं का संचय करना महापाप है। स्तूपीकृत धन और योग्य वस्तु दूसरे अभाव-ग्रस्त व्यक्तियों को दे देना चाहिये। क्योंकि जगत् की सब वस्तु ही भगवान् की हैं। दूसरे को वंचित करके किसी वस्तु का भोग और अपव्यवहार महापाप है, अर्थ के तुम रक्षक हो, भक्षक नहीं हो, प्रभु के अर्थ को प्रभु के कार्यों में खर्च करो। जिसका अभाव है उसके अभाव को मिटा दो। तब अपरिग्रह-सिद्धि होगी। मुमुक्षु लोग प्रयोजनातिरिक्त विषयों को सर्वतोरूप से छोड़ देते हैं। इस से भोग्य वस्तुओं के मानसिक बन्धन से मुक्त होकर वे लोग चित्त को निर्मल बना लेते हैं। चित्त के निर्मल होने से उनके चित्त में पूर्व-पूर्व जीवन और भविष्य जन्मों का ज्ञान जागृत होता है।★

---

* अपरिग्रह-विषयाणामस्वीकरणम्=विषयों को न अपनाना-(वहीं)

★जब सर्वथा जितेन्द्रिय रहता है तब मैं कौन हूं, कहाँ से आया हूं, और मुझ को क्या करना चाहिए इत्यादि शुभगुणों का विचार उसके मन में स्थिर होता है—(ऋ. भा. भू. उपासना०)

नियमों की साधना इस प्रकार है :—

शौच-साधना

शौच दो प्रकार के हैं—आभ्यन्तर शौच और बाह्य शौच।❀ शौच का तात्पर्य शुचिता है, पवित्रता है। बाह्य शौच से शरीर शुद्ध और स्वस्थ रहता है और आभ्यन्तर शौच से मन शुद्ध और स्वस्थ रहता है। मिट्टी और जल से बाह्य शौच साधित होता है और शुद्ध आहार और सत् चिन्ता और पवित्र मनोभाव ग्रहण करने से आभ्यन्तर शौच साधित होता है। पवित्र वस्त्रों के परिधान, सज्जनों के संग और सत् वातावरण में साधकों को रहना चाहिए। राजसिक और तामसिक आहार और वातावरण का परित्याग करना चाहिए। किसी प्रकार के उत्तेजक या मादक द्रव्य का सेवन नहीं करना चाहिए। अनेक साधु भ्रान्ति के कारण चित्त-स्थिर करने के नाम पर मादक द्रव्यों का व्यवहार करते हैं। इससे चित्त अपने वश में कभी नहीं रहता है। चित्त को अपने वश में रखना ही तो योग का उद्देश्य है। इसलिए मादक द्रव्य योगसाधन के लिए सम्पूर्ण विघ्नकर हैं। भूल से भी मादक द्रव्यों का व्यवहार नहीं होना चाहिए। (हृ.ले.पृ.६०)

शौच साधन से★ मल मूत्र, स्वेद, श्लेष्मा से परिपूर्ण शरीर से आसक्ति धीरे-धीरे हट जाती है। शौच-साधन से शारीरिक मल के साथ मानसिक मल भी धीरे-धीरे विदूरित होते हैं। चित्त-मल दूर होने से मन भी शान्त होता है। मन में शान्ति न रहने से किसी कार्य में मन निविष्ट नहीं रह सकता। मन शान्त रहने से चित्त एकाग्र होता है। शुद्ध और एकाग्र चित्त होने से ही इन्द्रिय-जय सम्भव है। जितेन्द्रिय नहीं होने से चित्त धारणा, ध्यान और समाधि-लाभ की योग्यता प्राप्त नहीं करता। इन तीनों से ही आत्मदर्शन की योग्यता आती है।

❀ भीतर की शुद्धि धर्माचरण, सत्यभाषण, विद्याभ्यास, सत्संग आदि शुभगुणों के आचरण से होती है और बाहर की पवित्रता जलादि से शरीर, स्थान, मार्ग, वस्त्र, खाना, पीना आदि शुद्ध करने से होती है। (ऋ० भा० भू० उपा०)

★ सत्त्वशुद्धिः—सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शन योग्यत्वानि च ॥२।४१ यो.॥ शौच से अन्तःकरण की शुद्धि, मन की प्रसन्नता और एकाग्रता, इन्द्रियों का जय तथा आत्मा को देखने अर्थात् जानने की योग्यता प्राप्त होती है।

सन्तोष साधना

सन्तोष* से उत्कृष्ट सुख-लाभ होता है। तृष्णा-क्षय नहीं होने से सन्तोष-साधन नहीं होता है। सन्तोष परम धन है। लाखों रुपयों से भी इसको खरीद नहीं सकते हैं। सन्तोषी भिक्षुक जीर्ण वस्त्र पहनता हुआ, एक टुकड़ा रोटी खाता हुआ और भग्न कुटीर में रहता हुआ जिस शान्ति की उपलब्धि कर सकता है, राज-राजेश्वर केवल भोग-सुख में वेष्टित होता हुआ ऐसी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। सन्तोष, तृप्ति और आसक्ति-हीनता ही सन्तोष ला सकती है और सन्तोष ही शान्ति को ला सकता है। विषयासक्त धनी या गरीबों के लिए सन्तोष और सुख स्वप्नवत् हैं। विषयासक्ति सर्वसुख का कण्टक है। अपनी स्थिति में सन्तुष्ट रहते हुए उत्कर्ष-लाभ के लिए कोशिश करनी चाहिए। पूर्व जीवन के संस्कार के अनुसार इह जीवन की स्थिति मिल गई है। पूर्व जीवनों में हमने जिनके उपकार किये हैं आज वे लोग हमारा उपकार कर रहे हैं। जिसको हमने प्रतारित किया है, वे लोग हमको प्रतारित कर रहे हैं। पूर्व जन्मों में जिसके ऋण को नहीं चुकाया आज उन्होंने ही ऋण आदाय के लिए हमारे घर में सम्बन्धी रूप से जन्म लिया है। मेरे पूर्वजन्म-कृत कर्मों के फल के अनुसार मुझको इस जन्म में सब कुछ मिल गया है। संस्कारानुयायी कर्मफल सुख या दुःख मुझको भोगना ही पड़ेगा। फल की कामना के साथ कर्म करने से सुख के या दुःख के संस्कार लेकर ही जन्म ग्रहण करूँगा। भोग रहने से तदनुसार देह और सुख-दुःख मिलेगा। प्राणपण से और यथाशक्ति कर्त्तव्यपालन करना और चित्त में सन्तोष रखना ही परम कल्याण है। सन्तोष महामूल्यवान् वस्तु है। जिनके अन्दर सन्तोष है उनको अभाव नहीं है। वे सर्वदा सुखी हैं। विषय-तृष्णा ही सन्तोष का परम शत्रु है। सन्तोष की परम यत्न से रक्षा करनी चाहिए।

तपः साधना★

भोगवृत्ति ही शरीर और इन्द्रियों में मलिनता लाती है।

* लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता करे। (स० प्र० ३ समु०)।

सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः—२।४२यो०—सन्तोष से जो सुख मिलता है वह सर्वोत्तम है, उसी को मोक्ष-सुख कहते हैं।—(ऋ. भा. भू. उ.)

★तप सदा सुख-दुःखों का सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करना कायेन्द्रियसिद्धिर शुद्धिक्षयात्तपसः ॥(२।४३ यो०) (स०प्र०७समु०)तप से शरीर और इन्द्रियाँ अशुद्धि के क्षय में दृढ़ होके सदा रोग रहित रहती हैं। (वहीं)

वैराग्य-वृत्ति ही इस की शुद्धि करती है। बाहर की दृष्टि से सबके शरीर और इन्द्रिय एक से मालूम पड़ते हैं। लेकिन इसके अन्दर सात्त्विक, राजसिक, तामसिक संस्कार छिपे हुए हैं। इन संस्कारों के अधीन होकर हम लोग मन, वचन, देह से कार्य करते हैं। तामसिक प्रकृति को राजसिक बनाना और राजसिक प्रकृति को सात्त्विक बनाना ही तपः है। सात्त्विक संस्कार-युक्त आदमी देव-प्रकृति के होते हैं। राजसिक प्रकृति के आदमी मनुष्य-प्रकृति के होते हैं और तामसिक प्रकृति के आदमी पशु-प्रकृति के होते हैं। पशु-प्रकृति के मनुष्यों को मनुष्य-प्रकृति का होना और मनुष्य-प्रकृति को देव-प्रकृति का होना ही परम तप है। आत्म-शुद्धि के लिए तप जरूरी है। सबसे अच्छा तप मन और ज्ञानेन्द्रियों का निग्रह करना ही है। इन्द्रियों का स्वेच्छाचार निवारण करना, शीत-ग्रीष्म, क्षुधा-तृष्णा सुख-दुःख, सम्पद्-विपद्, जय-पराजय आदि को सहन करना तितिक्षा है। यह तितिक्षा परम तप है। भोग-विलास, आलस्य-तन्द्रा सुख-स्वाच्छन्द्य के प्रभाव से अपने को मुक्त रखना परम तप है और असंयत इन्द्रियों को संयत बनाना परमोत्कृष्ट तप है। षड् रिपुओं को वश में रखना सर्वोत्कृष्ट तप है। इनकी साधना से मानव देवत्व का लाभ करते हैं।

स्वाध्याय-साधना

नियमित रूप से वेदाध्ययन, मोक्ष-शास्त्रों का पाठ और आत्मानुसन्धान करने के लिए गुरुजी का कठोर आदेश था। उन्होंने कहा था कि दो-एक रोज खाना नहीं खाने से ज्यादा हानि नहीं होगी लेकिन जिस स्वाध्याय*के द्वारा आत्मपुष्टि होती है उसको एक रोज किसी कारणवश बन्द रखने से तुम्हारी ज्यादा हानि हो जायेगी। स्वाध्याय से इष्ट देवता का दर्शन होगा। इष्ट देवता परमात्मा तुम्हारे अन्दर छिपे हुए हैं स्वाध्याय★ के साधन से तुम उनका स्वरूप-ज्ञान [नेत्रों-प्रज्ञालोक] से देख सकोगे। प्रमाद से एक रोज के स्वाध्याय से भी अपने को वंचित न करो। अभ्यासका गुण असाधारण है। चित में जो कुछ अभ्यास करोगे चित्त उसी में

---

*योग-साधना में नियमित दैनन्दिन प्रणव-जाप और नियमित दैनन्दिन शास्त्राध्ययन को स्वाध्याय कहा है। यह स्वाध्याय प्रणव जप ही है—स०।

*स्वाध्यायादिष्ट-देवता-संप्रयोगः (यो० २-४४) स्वाध्याय से परमात्मा के साथ साझा होना है। परमेश्वर का अनुग्रह होना है—(ऋ.भा.भू.उपा.)

प्रतिष्ठित हो जायेगा। निरन्तर जिसका संग करोगे वह तुम्हारा अपना बन जायेगा। स्वाध्याय के द्वारा तुम परमात्मा का संग करते रहो, तो सत्यद्रष्टा ऋषि-मुनियों का संग भी कर सकोगे। निरन्तर स्वाध्याय के द्वारा उन सबको और भगवान् को अपना संगी-साथी बना लो। जीवन सार्थक हो जायेगा। मनुष्य सामाजिक जीव है। इसलिए मनुष्य दूसरे के संग को ढूँढ़ते हैं। तुम्हारे चिर-साथी भगवान् तुम्हारे लिए अनन्त ज्ञान और आनन्द का भण्डार लेकर बैठे हुए हैं। धर्म ग्रन्थ वेद के अन्दर उन के अनन्त अपार ज्ञान की विभूति के दर्शन करते रहो। ज्ञानामृत-पान करते रहो। असंख्य जीवनों की क्षुधा-तृष्णा मिट जायेगी। शास्त्रग्रन्थों के अन्दर रहते हुए ऋषि-मुनि लोग तमसावृत जगत् के अन्दर भटकते हुए तुमको गन्तव्य स्थान का सन्धान बतला देंगे। दुःखी अन्तःकरण को सान्त्वना देंगे, शोकार्त, दुःखार्त निराश-जीवन को अमृतधारा से संजीवित कर देंगे।"

गुरुदेव के ये अमूल्य उपदेश आज भी मेरे कानों में और अन्तःकरण में प्रतिध्वनित हो रहे हैं। वह उपदेश आज भी जीवित, जागृत हैं, प्रेरणा देने वाले हैं। त्यागी-भोगी, संसारी-ब्रह्मचारी, बालक-बालिका, युवक-युवती, वृद्ध-वृद्धा सब ही के लिए स्वाध्याय परम साधना है। यह परम कल्याणकर है।

योग-शास्त्र के **क्रिया योग** ये हैं—तपः, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। स्वाध्याय-क्रिया तपः और ईश्वर-प्रणिधान के बीच में है। स्वाध्याय दोनों को पुष्ट करता है। प्राण, मन और बुद्धि की गति सर्वदा ही बाहर की तरफ है। बाहर के विषयों के प्रति ये बड़े ही आसक्त रहते हैं। यह विषयासक्ति ही मलिनता है। तुम स्वाध्याय के प्रभाव से ही मन, बुद्धि और प्राण को अन्तर्मुखीन कर सकते हो। सूक्ष्म देह के संस्कार के लिए स्वाध्याय बहुत ही उपयोगी है। बाहर का सुख अस्थायी और मलिन है और भीतर का सुख स्थायी और निर्मल है। भीतर के सुख का सन्धान एकमात्र स्वाध्याय के द्वारा ही मिल सकता है।

मन्त्र-जप भी स्वाध्याय का एक अंग है। प्रणव अर्थात् ओंकार का और गायत्री मन्त्र का अर्थभावना के साथ जप करना ही जप है। जप करते, करते ध्यान की स्थिति आ जाती है और आगे समाधि की तन्मय स्थिति भी आ जाती है। यह तन्मय अवस्था ही समाधि की सूचना है। जिस के चित्त में रजोगुण अधिक है उसकी तन्मय स्थिति अल्पक्षण स्थायी होती

है। जप में अभ्यास होने से रजोगुण की मात्रा कम हो जाती है, सत्त्वगुण की मात्रा बढ़ती है। अभ्यस्त योगी का जप श्वास-प्रश्वास के साथ भी चल सकता है। इससे भी समाधि का रास्ता खुल जाता है। स्वाध्याय के अंग ग्रन्थपाठ और जप दोनों ही समान उपयोगी हैं। एक दूसरे का परिपूरक है। यह स्वाध्याय मेरे लिए चिर-साथी है। स्वाध्याय से प्राण, मन बुद्धि की मलिनता कट जाती है।

ईश्वर प्रणिधान-साधना

सब कार्यों के फल को भगवान् में अर्पण कर देना ही ईश्वर-प्रणिधान है। ईश्वर प्रणिधान से भी समाधि होती है ❀। छोटा शिशु जैसे स्नेहमयी जननी की गोद में लेटकर निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है, साधक उसी प्रकार अपनी अहंकार-भावना को छोड़ कर सब भगवान् में समर्पण कर के पूर्णतया निश्चिन्त और निर्भर हो जाते हैं। संग हमारी उन्नति और अवनति का कारण है। स्थूल विषय के संग करने से हम स्थूल विषय में आकृष्ट होकर प्रवृत्तिपथ में धावित होते हैं। सूक्ष्म विषय का संग करने से हमारा मन प्रवृत्ति के पथ को छोड़कर निवृत्ति के पथ पर पहुँच जायेगा। भगवान् परम सूक्ष्म तत्त्व है, इसलिए समाधि योग से उनका संग करने से भगवान् की उपलब्धि होगी। इस समाधि-लाभ का प्रथम सोपान ईश्वर-प्रणिधान है। ईश्वर-प्रणिधान से सामयिक उद्वेग, अशान्ति, दुश्चिन्ता एक क्षण के लिए भी ठहर नहीं सकते, यह मेरा अनुभव है।

प्रत्याहार साधना

पंच ज्ञानेन्द्रिय—चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक्—अपने-अपने विषय रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श के साथ स्वाभाविक रूप से ही संयुक्त होते हैं। जब यह संयोग बन्द हो जाता है और इन्द्रिय चित्ताकार हो जाते हैं तब इसका नाम प्रत्याहार है★ चित्त के

❀ समाधि-सिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् (यो० २.४५) पूर्वोक्त ईश्वर-प्रणिधान से उपासक मनुष्य सुगमता से समाधि के प्राप्त होता है। -ऋ० भा० भू० उपा०—'ईश्वर में विशेष भक्ति होने से मन का समाधान होने से मनुष्य समाधि-योग को शीघ्र प्राप्त होता है। —वहीं

★ जब पुरुष अपने मन को जीत लेता है, तब इन्द्रियों का जीतना अपने आप हो जाता है। क्योंकि मन ही इन्द्रियों को चलाने वाला है।-(ऋ० भा० भू० उपा०) देखो—स्वविषया० यो० २-५४॥

इच्छानुसार ही इन्द्रिय गण विषयों से संयुक्त होते हैं। चक्षु रूप से, कर्ण शब्द से, नासिका गन्ध से, जिह्वा रस से, और चर्म स्पर्श से संयुक्त होते हैं। केवल मन जब चाहता है तब। मन एक ही समय में केवल एक ही इन्द्रिय को विषय में संयुक्त कर सकता है। (ह.ले.७१पृ) दूसरे इन्द्रिय तब अपने-अपने विषयों से वियुक्त रहते हैं। इस प्रकार सब इन्द्रियों (अर्थात्-पाँचों इन्द्रियों) के विषयों से वियुक्त होने पर प्रत्याहार सम्भव होता है। इन्द्रियगण के तब निष्कर्म की स्थिति में आजानेसे चित्त में इन्द्रियाँ लय को प्राप्त हो जाती हैं। तब इन्द्रियगण का मन के स्वरूप को प्राप्त हो जाना है इनके लिए अलग कोई कार्य नहीं रहता। इन्द्रियगण के विषयों से प्रत्या-वर्तन करने का नाम ही 'प्रत्याहार' है। प्रत्याहार बाहर से भी होता है और भीतर से भी होता है।

चित्त में धारणा-शक्ति प्रबल होने से हम लोग किसी एक विषय पर दीर्घ समय तक एकाग्रता के साथ रह सकते हैं। बाहर से प्रत्याहार का साधन होने से अधिक फल लाभ नहीं होता है। चक्षु बन्द करने से रूप दर्शन क्रिया बन्द होती है। यह कच्चा प्रत्याहार है। क्योंकि उस समय भी मन से तुम दर्शन कर सकते हो। लेकिन मन से दर्शन क्रिया बन्द करना यह पक्का प्रत्याहार है। कच्चा प्रत्याहार टूट जाता है। लेकिन पक्का प्रत्याहार टूटता नहीं। प्राणायाम के बाद प्रत्याहार का साधन सम्भव होता है। प्रत्याहार-सिद्धि से इन्द्रिय संयम की सिद्धि होती है इन्द्रिय संयम के बिना सर्व प्रकार की साधना ही विफल हो जाती है। मैंने गुरुदेव के उपदेश से प्रत्याहार साधना शुरू कर दी थी और यथासमय इसकी सिद्धि मिल गई थी। इस की सिद्धि में सब ही को देर लगती है। मुझे भी काफी देर लगी थी।

इस रूप से मेरे गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी गिरि ने राजयोग की शिक्षा प्रत्याहार तक क्रमानुसार दी थी। मेरे दोनों गुरुदेव स्वामी ज्वाला-नन्द पुरी और स्वामी शिवानन्द गिरि ने मुझ पर असीम कृपा की थी। दोनों का ही मैं आभारी हूं। दोनों ने,एक महीने भर आबू पर्वत में रहने के लिये मेरे ऊपर आश्रम का भार छोड़ दिया और चाणोद से प्रस्थान किया। यहाँ एक महीने एकान्त में रहकर साधना के लिए समय मिला। गुरुओं का आदेश था कि एक महीने की समाप्ति पर स्वामी धर्मानन्द के यहाँ आने से उनके ऊपर आश्रम का भार छोड़ कर अहमदाबाद में वहाँ

के दुग्धेश्वर मन्दिर में जाकर उन दोनों से मिलना। वहाँ उन दोनों से धारणा, ध्यान और समाधि के विषय में शिक्षा मिल जाएगी।

मैं तदनुसार चाणोद आश्रम में ही रहा और एकान्त जीवन पाकर हठ-योग और राज-योग के अनुसार साधन करने लगा। एकान्त साधना से बहुत ही उपकार हुआ। महर्षि पतंजलि की उक्ति ही ठीक है। जिनके संगत में हम लोग हमेशा रहते हैं उन्हीं के दोष या गुण हमारे अन्दर आने लगते हैं। निरन्तर भगवत्-चिंतन करने से चित्त भगवत्-भाव में रूपान्तरित हो जाता है। मन्त्रों की अर्थ चिन्ता कर के निरन्तर जप और ध्यानादि करने से हमारी बुद्धि विषयों को छोड़ कर ईश्वराभिमुखीन होती है। इस बुद्धि या चेतना का नाम **प्रत्यक्-चेतना** है। इस प्रत्यक्-चेतना के आने पर योग-साधनाके अन्तराय और विघ्न नष्ट हो जाते हैं।

योग-साधना के अन्तराय—योग-साधना के अन्तराय नव प्रकार के हैं✽—व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति-दर्शन, अलब्ध-भूमिकत्व और अनवस्थितत्व। ये अन्तराय साधना में विघ्न डालते हैं। चित्त में विक्षेप लाते हैं और चित्त को स्थिर होने नहीं देते हैं। चित को स्थिर करना ही साधना है। ये नव प्रकार के अन्तराय रहने से चित्त स्थिर नहीं हो सकता। अपितु चंचल होता है। इन अन्तराय और विघ्नों को हटाने के लिए मैंने बहुत प्रकार से सोच-विचार करके कुछ उपाय ठीक कर लिये थे। ये उपाय बहुत ही उपयोगी मालूम पड़े।

१. **व्याधि**—शारीरिक अस्वस्थता का नाम व्याधि और मानसिक अस्वस्थता का नाम आधि है। व्याधि के साथ आधि का निकट सम्बन्ध है। शरीर अस्वस्थ होने पर मन भी अस्वस्थ हो जाता है। शरीर और मन अस्वस्थ होने पर साधना असम्भव है। स्वास्थ्यकर, पुष्टिकर और सुस्वादु आहार परिमित रूप से ग्रहण करने से शरीर स्वस्थ होता है और भगवत्-संगति और स्तवन-स्तुति से मन स्वस्थ होता है।

२. **स्त्यान**—साधना कर्तव्य है और आवश्यक है—इसको जानते हुए भी साधना में बहुत आदमी तत्पर नहीं होते हैं। क्योंकि साधना के

✽व्याधि-स्त्यान-संशय-प्रमादालस्या-विरति-भ्रान्तिदर्शना-लब्धभूमिकत्वा-नवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः। (यो० १।३०।। ऋ० भा० भू० उपा०)

लिए इच्छा पैदा नहीं होती है। इसी का नाम स्त्यान है। कठोर पुरुषकार, अध्यवसाय और मानसिक बल के प्रयोग से स्त्यान को हटाना चाहिए।

३. **संशय**—जिस कार्य में संशय है उस कार्य को उत्साह और उद्यम के साथ करना कठिन है। इसलिए प्रथमतः संशयभंजन की आवश्यकता है। शास्त्रों के उपदेश, गुरु के आदेश, विवेक बुद्धि से आलोचना आदि के द्वारा संदेह-भंजन होता है।

४. **प्रमाद**— समाधि-लाभ के लिए गुरु से जो कुछ साधन-प्रणाली जानी जाती है वह सब कुछ भूल जाना, साधना को छोड़ देना और पुनः पुनः विषय-भोग में लिप्त हो जाना इसी का नाम प्रमाद है। ऐसी भूल फिर नहीं हो, आत्म-विस्मृति न हो, इसलिए अनुताप आने से ही साधना-भंग के कारण कौन-सा सर्वनाश हुआ इस पर बार-बार चिन्तन करना और इसके प्रायश्चित्त के लिए दो दिन उपवास के बाद दृढ़ संकल्प के साथ साधना का अभ्यास आरम्भ कर देना कर्तव्य है।

५. **आलस्य**—शरीर में दोष होने से ही आलस्य आ जाता है। शरीर साधना करना नहीं चाहता है आसन आदि के अभ्यास में अप्रवृत्ति आती है। लेटे हुए रहना ही अच्छा मालूम पड़ता है। मन में भी ऐसे आलस्य का आ जाना, भगवत्-विषयक चिन्तन करना कठिन होना, ध्यानादि में भी अप्रवृत्ति आना—तमःगुण की वृद्धि से शरीर और मन की इस रूप की अवस्था होने से तमःगुण के प्रभाव और आलस्य को हटाने के लिए किसी निर्जन स्थान में बैठकर एक हजार वार गायत्री मन्त्र का जप करना पर्याप्त है।

६. **अविरति**—विषय-भोग से विरति न होना अविरति है। विषय-भोग में मग्न हो जाना भी अविरति है। अविरति त्याग करने के लिए विषय का विषमय फल बार-बार चिन्तन करके साधन में व्रती हो जाना चाहिए। विषय भोग के संकल्प छोड़ने से विषयासक्ति कम हो जाती है।

७. **भ्रान्ति-दर्शन**—भूल का अनुभव होना ही भ्रान्ति-दर्शन है। सत्य को मिथ्या समझना और मिथ्या को सत्य समझना भ्रान्ति-दर्शन है। शरीर को आत्मा समझना, नश्वर शरीर को चिरस्थायी समझना, दूसरे सम्बन्धी जनों को चिर साथी समझना भ्रान्ति-दर्शन है। साधन करने से अन्तर्दृष्टि का लाभ होता है और इससे ही भ्रान्तिदर्शन दूर होता है।

८. **अलब्ध-भूमिकत्व**—योग-साधना करते-करते किसी उच्चतर स्थिति में पहुँचने में असमर्थ होना अलब्ध-भूमिकत्व है। पुरुषकार और अध्यवसाय व्यर्थ नहीं होता है। इस पर पूर्ण विश्वास रखकर ही साधना में लगे रहने से ही यथासमय उत्कर्ष समक्ष आ जायेगा।

९. **अनवस्थितत्व**—किसी उच्चतर स्थिति के लाभ करने पर भी उसमें दीर्घ काल तक चित्त उन्नत और स्थिर नहीं रहता। उससे फिर नीचे आ जाता है। अध्यवसाय के साथ फिर उच्च स्थिति में ले जाने के लिए दृढ़ संकल्प धारण करने से यह हट जायेगा।

मैंने आश्रम में एक महीने तक एकान्तवास का सुयोग पाकर इन सब साधन-विरोधी स्थितियों पर बहुत गम्भीर रूप से चिन्तन किया था। ये सब रजः और तमः प्रभाव से ही आते हैं और चित्त को इतस्ततः विक्षिप्त कर देते हैं और चित्त को एकाग्र होने नहीं देते। मैंने अच्छी तरह समझ लिया था कि ईश्वरोपासना और योगांगों के सम्यक् अनुष्ठान से ही साधक इस स्थिति से पार हो सकता है।

१०. **योग-साधना के विघ्न**—इन ९ अन्तरायों के अलावा चित्त में विक्षेप उत्पादनकारी ४ प्रकार के विघ्न हैं। ये विघ्न भी साधक को उत्कर्ष से वंचित रखते हैं। ये ४ विघ्न इस प्रकार हैं :—दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व और श्वास-प्रश्वास।*

(१) **दुःख**—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक-इन तीन दुःखों का नाम ही त्रिताप है। शारीरिक और मानसिक पीड़ा का नाम ही आध्यात्मिक दुःख है। दूसरे प्राणी से प्राप्त दुःख का नाम ही आधिभौतिक दुःख और प्राकृतिक दुर्योग से प्राप्त दुःख का नाम आधिदैविक दुःख है। (ह. ले. पृ. ८०)

(२) **दौर्मनस्य**—त्रिविध दुःख या ताप से पीड़ित होकर साधक कभी-कभी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं। चित्त दुःख के कारण अभिभूत हो जाता है। इसी का नाम दौर्मनस्य है।

(३) **अंगमेजयत्व**—त्रिविध दुःख या ताप के कारण साधक का शरीर कभी-कभी कम्पित होने लगता है। मन अस्थिर हो जाता है, शरीर भी अस्थिर हो जाता है। इच्छा के विरुद्ध इस प्रकार के कम्पन साधक को अभिभूत करते हैं।

* दुःख-दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व-श्वास प्रश्वासाः विक्षेप सह भुवः ॥यो. १-३१॥ (ऋ. भा. भू. उपा०)

(४) श्वास-प्रश्वास—दुःख के कारण साधक के श्वास-प्रश्वास भी चंचल हो जाते हैं। इनके चंचल होने से योगसाधना चल हो जाती है। प्राणायाम के द्वारा यह श्वास-प्रश्वास का क्लेश दूर हो जाता है।

उपाय समूह—इन सब अन्तराय और विघ्नों को दूर करने के लिये बहुविध उपाय हैं। ऋषि पतंजलि ने एक तत्त्व के अभ्यास का आदेश सर्व-प्रथम दिया है।

(१) एक तत्त्व का अभ्यास*

इन दोनों अन्तरायों और विघ्नों के निवारण के लिये किसी अभिमत मनोरम या प्रीतिकर तत्त्व का ध्यान करना चाहिये। ध्यान के समय मन दूसरी किसी वस्तु के प्रति धावित न हो। इसको ध्येय वस्तु में ही आबद्ध रखना चाहिये। इन्द्रियों के किसी (विषय-वस्तु शब्द-स्पर्श-रूप-रस गन्ध) पर ध्यान करना निरापद् नहीं है। इससे विषय वस्तु के प्रभाव के कारण मन चंचल भी हो सकता है। भगवान् के गुणों पर ध्यान जमाना ही निरापद् है। लेकिन स्थूल से सूक्ष्म की तरफ जानेका ही विधान है। भगवान् द्वारा रचित इस विराट्, विशाल और विस्मयकर विश्व के समग्र स्थूल रूप में ध्यान करने का विधान है, मनुष्य रचित किसी वस्तु पर ध्यान से विपरीत फल होता है। एक तत्त्वाभ्यास में भगवत्-तत्त्व ही सर्वोत्तम है। इससे शारीरिक यन्त्र और क्रियायें एकतान में आती हैं। शरीर और इन्द्रियों के द्वारा भगवान् के आदिष्ट कर्म करने से और उनके प्रति लक्ष्य रखने से एकतत्त्वाभ्यास हो जायेगा। आसन, मुद्रा और प्राणा-यामादि के द्वारा साथ-साथ शरीर, मन और श्वास-प्रश्वासादि को स्थिर करने से चित्त का विक्षेप नष्ट हो जाता है। भगवान् के प्रति श्रद्धा भक्ति नहीं रखने से ईश्वर तत्त्व या एक तत्त्व लाभ करना कठिन है। जो कुछ हो, ईश्वर में एक तत्त्वाभ्यास करना ही सर्वोत्तम है।

(२) चित्त की प्रसन्नता★

चित्त की प्रसन्नता आने से भी मन स्थिर हो जाता है। चित्त की प्रसन्नता के लिए ऋषि पतंजलि ने विधान किया है—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना करो। इससे मन एकाग्र होकर स्थिर हो जाता है। दूसरे के सुख से अपने अन्दर सुख बोध करना मैत्री है। दूसरे का

*तत् प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यास ॥योः. १।३२॥ देखो ऋ.भा.भू.पृ. २१६

★मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षणा सुख-दुःख-पुण्यापुण्य विषयाणां भावना-तश्चित्तप्रसादनम् ॥यो. १।३३॥ देखो ऋ.भा.भू.पृ. २१८

दुःख देखने से अपने अन्दर दुःख का बोध करना करुणा है। दूसरे के पवित्र कार्य को देख कर मुदिता अर्थात् आनन्द का अनुभव करना और दूसरे के पाप कार्य को देख कर उपेक्षा करना मानो तुमनें देखा ही नहीं। इस प्रकार मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा से भी मन सुस्थिर हो जाता है। इनके अभ्यास से चित्त धीरे-धीरे, शान्त सुस्थिर होता है।

(३) प्रच्छर्दन और विधारण❀

भीतर के वायु को कौशल से बाहर कर देना प्रच्छर्दन है। इससे और प्राण को संयत करने से चित्त स्थिर होता है। प्रच्छर्दन का कौशल यह है—

१. श्वास को धीरे धीरे भीतर लेना।

२. प्रश्वास को धीरे-धीरे छोड़ते रहना।

३. उस समय शरीर को सम्पूर्ण स्थिर और शिथिल रखना।

४. मन के अन्दर कोई चिन्ता न रखना।

५. मन को संकल्पहीन रखना और मन में शून्यवत् भावना रखना। इसी का नाम रेचन है।

रेचन के बाद वायु को झटपट पूरण न करना, बाहर ही कुछ समय वायु को धारण करना, मन को शून्यवत् रखना इसी का नाम विधारण है। सहज भाव से पूरण करना, धारण करना और रेचन करना ही कौशल है। इससे भी मन की स्थिरता आ जाती है।

(४) ज्योति-ध्यान★

मन के अन्दर स्वच्छ अनन्त आकाश के सदृश विराट् और विशाल ज्योतिः का ध्यान करना 'मेरी सभी दिक् ज्योति से परिपूर्ण है" इस भावना में दृढ़ रूप से अभ्यस्त होने से मन में परम शान्ति का आविर्भाव और उसके प्रभाव से मन शान्त और सुस्थिर हो जायगा।

❀प्रच्छर्दन विधारणाभ्याम् वा प्राणस्य ।।यो. १. ३४।। देखो—ऋ. भा. भू. पृ. २१८, सत्यार्थप्रकाश ३समु । संस्कार विधि-गृहस्थ प्रकरण ।पंचमहा०)

★ विशोका वा ज्योतिष्मती ।।यो. १।३६।। देखो—हुगली शास्त्रार्थ।

महापुरुषों की चिन्ता॰

वीतराग महापुरुषों के पवित्र मनोभाव की धारणा करने की प्रचेष्टा से चित्त अनासक्त हो जाता है और इस भाव के ध्यान करने से भी चित्त सुस्थिर हो जाता है।

(६) चित्त का वशीकरण★

जब योगी अपने चित्त को परमाणु से लेकर महत् तत्त्व तक किसी वस्तु में स्थापन करने के लिये समर्थ हो जाता है तब वह असाधारण क्षमता-प्राप्त होता है। तब मानो सब वस्तुओं पर उनका अधिकार हो गया है।

चित्त को सुस्थिर करने से ९ प्रकार के अन्तराय और ४ प्रकार के विघ्न दूर हो जाते हैं जो सब साधना को नष्ट कर देते हैं, इस लिये इनके विनाश के लिये इन सब प्रणालियों और पद्धतियों का ऋषियों ने आविष्कार किया है। आज तक भारतीय आध्यात्मिक साधना इन नियमों पर ही चल रही है।

चित्त पाठ

साधकों के लिये अपने और दूसरे के चित्तों का पाठ करना जरूरी है। चित्तों में नाना प्रकार के संस्कार पड़े हुए हैं। उन संस्कारों से ही कामना और वासना की उत्पति होती है। जिसने पूर्व जीवनों में बहुत असत् कार्य या सत् कार्य किया है उसके चित्त में उन असत् या सत् कार्यों का संस्कार जरा हुआ है। उसके मन में उन सत् या असत् कार्यों की वासना उठेगी। हर एक मनुष्य के मन में जो-जो वासनायें हैं वे सब चित्त के संस्कार से आती हैं। जिसने पूर्व जीवन में चोरी के संस्कारों का संग्रह करके रखा है, इस जन्म में उसमें चोरी की इच्छा जमा होगी और वह चोर बनेगा। पूर्व जन्मों में जिन्होंने दान किया था, उनके चित्त में उस दान का संस्कार जमा हुआ है और इस जन्म में उसमें दान का संस्कार जगेगा और वे दान करेंगे। चित्त के संस्कार के अनुसार बाध्य होकर लोग

॰ वीत राग विषयं वा चित्तम् ।।यो. १।३७।।

★ परमाणु परम महत्तत्वान्तोऽस्य वशीकारः ।।यो. १।४०

विभिन्न कार्य करते हैं। हम लोग अगर इस जीवन में सत् कार्य करते हैं तो पर जीवन में हमारे अन्दर सत् कार्य करने की वासना उत्पन्न होगी।

योगी साधकों को चाहिए कि चित्त में जब-जब जिन-जिन वासनाओं का उदय हो, तब-तब उनके प्रति ध्यान रखें। इस रूप से धीरे-धीरे उनके अन्दर चित्त-दर्शन का अभ्यास आ जायगा। तब वे आसानी से समझ सकेंगे कि पूर्व जन्म में हम कौन-सी प्रकृति के जीव थे। इस रूप से चित्त-पाठ करना बहुत आनन्ददायक है। अपने चित्त का पाठ करना ही है, दूसरे के चित्त का भी पाठ करते जाना।

ऐसे चित्त-पाठ में अभ्यस्त हो जाने से तब कौन किस प्रकृति का है उसको आसानी से समझ सकोगे और उसके प्रति यथा-योग्य व्यवहार कर सकोगे। इस जन्म के कार्यों का विचार करके हम अगले जन्म में क्या होंगे इस बात को भी समझ सकेंगे।

भगवत् तत्त्व❀

साधना के लिये ईश्वर-विषयक किसी तत्त्व को लेकर अभ्यास करने से हमारे विक्षेप सब के सब नष्ट हो जायेंगे और चित्त निर्मल और एकाग्र हो जायगा। चित्त की स्थिरता और एकाग्रता ही साधना की मूल वस्तु है। प्रतिक्षण चित्त की संस्कार-वृत्ति के उदय के प्रति ध्यान रखने से एक तत्त्वाभ्यास सुगम हो जाता है। यह भी उत्तम साधना है। भगवत्तत्त्व सर्वतत्त्वों से ऊपर है। प्रकृति के चतुर्विंशति तत्त्वों के किसी एक तत्त्व को लेकर साधना करने से ही तत्त्वाभ्यास का फल मिलेगा। लेकिन भगवान् के असंख्य तत्त्वों या स्वरूप को लेकर योग-साधना करने से चरम फल अति शीघ्र मिल सकता है। इस प्रकार भोगी और प्रकृतिभक्त एक ही पथ के पथिक बन जाते हैं।

योगविद्या का गुरुत्व—मेरे गुरुदेव श्रीमत् स्वामी ज्वालानन्द★ पुरी ने

❀ तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ यो. १. ३२ ५ देखो— ऋ. भा. भू. पृ. २१६

★ वहां दो योगी मिले कि जिन का नाम ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि था। उन से योगाभ्यास की बातें हुईं और उन्होंने कहा कि तुम अहमदाबाद में आओ। वहाँ हम नदी के ऊपर दूधेश्वर महादेव में ठहरेंगे। वहाँ तुम आओगे तो तुम को योगाभ्यास की और रीति सिखलायेंगे।...फिर एक महीने पीछे मैं भी उन से मिला। (जन्म चरित्र पृ० २४)

मुझको योग-विद्यार्थी शिष्य रूप में प्राप्त कर जो उपदेश दिया था वह आज तक मेरे हृदय में उज्ज्वल रूप से विद्यमान है। उन्होंने कहा था— 'चित्तवृत्ति का निरोध करना ही योग है। यह योग-साधन ही मानव-जीवन का एक मात्र उद्देश्य है। योग-साधन के लिये ही हमको मनुष्य-जीवन मिला है। पशु-वृत्ति चरितार्थ करने के लिये मनुष्य-जीवन नहीं है। मनुष्य-जीवन अति दुर्लभ है। अनेक सुकृत और भगवान् की कृपा से हम को मनुष्य-जीवन मिला है, मानवदेह से मानव के उपयोगी कार्य करना ही जरूरी है। पशुवृत्ति से पशुवृत्ति की तृप्ति नहीं होती है। उत्तरोत्तर इसकी वृद्धि ही होती है और इससे ज्यादा से ज्यादा कष्ट मिलता है।

चित्तवृत्ति क्या है? चित्त के स्रोत का नाम ही चित्तवृत्ति है। कामना ही चित्तवृत्ति है। जिसका चित्त जितना चंचल है उसको उतना ही कष्ट मिलता है। जिसके चित्त में कामना नहीं है वह ही सुखी है। विषय वासना ही दुःख का मूल हेतु है। जिसके जितना वैराग्य है वह उतना ही सुखी है। विषयों में आसक्ति-हीन होना ही वैराग्य है। विषयासक्ति से ही संस्कार बनता है। संस्कार ही दुःख-कष्ट का मूल है। हम लोग अनादि काल से संस्कारों का संचय कर रहे हैं। संस्कार के अनुसार अनादिकाल से हम लोगों ने लाखों प्रकार के देहों को धारण किया है और कर रहे हैं। संस्कारों को दूर करने के लिये ही साधना की आवश्यकता है और इस साधना का नाम ही योग-साधना है। योग-साधना के द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करना ही मूल साधना है।

विषयासक्ति ही पाप है। विषयासक्ति ही हमको पाप की तरफ ले जाती है। विषयासक्ति के कारण रूप रस शब्द स्पर्श गन्ध हमारे अन्दर चित्त में छाप दे देते हैं (ह.ले.९०पृ.) और वह छाप अनन्त काल के लिये रह जाती है। वह छाप ही संस्कार हैं। अनन्तकाल से यह छाप संचित हो रही है। इसी का नाम कर्माशय, हृदयग्रन्थि या अविद्या का बन्धन है। इस कर्माशय से ही वासना का उद्रेक होता है। उस वासना के आधीन होके ही हमारे इन्द्रिय गण परिचालित होते हैं। इस वासना का प्रतिरोध करना साधना का अंग विशेष है। संस्कार के क्षय होने से ही चित्त-शुद्धि होती है और चित्त-शुद्धि होने से ही चित्तवृत्ति का निरोध होता है। इसी का नाम योग है।

मानव-जीवन में योग-सिद्धि न होने से मानव-जीवन बेकार बन

जाता है। दयानन्द ! तुमने योग-साधना के द्वारा इस मानव-जीवन को सार्थक और धन्य करने के लिये ही सन्न्यासाश्रम ग्रहण किया है।

योग-साधना की प्रस्तुति—मेरे गुरुदेव श्रीमत् स्वामी शिवानन्द गिरि ने मुझे योग-शिक्षार्थी शिष्य रूप में पाकर जो उपदेश दिया था वह भी आज तक मेरे हृदय में उज्ज्वल रूप से विद्यमान है। उन्होंने कहा था—"दयानन्द ! योग-विद्या-शिक्षा के लिये ही तुमने पितृगृह को छोड़ा है। यह तो वैराग्य का परिचय है लेकिन केवल वैराग्य से ही योग-विद्या का लाभ नहीं होता है। इसके साथ अभ्यास चाहिये। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही योग अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध होता है। अभ्यास के विना कोई कार्य सफल नहीं होता। कार्य में जितना कठोर अभ्यास करोगे उस कार्य की सिद्धि उतनी ही शीघ्र सफल होगी। बारबार निष्ठा और श्रद्धा के साथ कार्य की सफलता के लिये यत्न करना ही अभ्यास है। अभ्यास के ऊपर कार्य की सिद्धि निर्भर करती है। अभ्यास से जो सिद्ध नहीं हुआ हो ऐसा कोई कार्य नहीं है। जो विद्यार्थी उत्तमरूप से विद्या-भ्यास करता है वह उत्तम रूप से विद्यालाभ करता है, उसी प्रकार योग-अभ्यास उत्तम रूप से करने से उत्तम योगी बन जाओगे।

"योगाभ्यास ही श्रेष्ठ अभ्यास है। योग-साधन के विना परम सुख-प्राप्ति का दूसरा उपाय नहीं है। धैर्य के साथ अभ्यास करना है। बहुत शिक्षार्थी कुछ देर तक साधना और अभ्यास के बाद ही धैर्य खो बैठते हैं और योग-साधना छोड़-छाड़ कर चले जाते हैं। योगसाधन जितना भी कठिन हो इसको छोड़ना नहीं। जो कार्य जितना ही कठिन हो, अभ्यास करते-करते वह सुगम हो जाता है। बालक हो, युवक हो या वृद्ध हो तुमको अष्टांग योग-साधन करना ही पड़ेगा। सुख और शान्ति के लाभ का दूसरा रास्ता नहीं है। जो वृद्ध हो गया है और अन्त तक समय व्यर्थ नष्ट किया है, उसके लिये भी चिन्ता का कोई कारण नहीं है। आयु अगर एक रोज के लिये भी बाकी रहे तो भी योग-साधना से निवृत्त नहीं होना चाहिए। एक रोज के लिए योग-साधन करने के बाद भी अगर मृत्यु हो जाय तो भी वह श्रेयष्कर है, क्योंकि तुम उत्कृष्ट योगी के वंश में जन्म लोगे। मृत्यु काल से भी अगर योग-साधना की प्रबल आकांक्षा रहे तो दूसरे जन्म में तुम निश्चित रूप से ही उत्तम और अनुकूल देह लाभ करोगे। प्रभु तुम्हें ऐसा सुयोग दे देंगे कि तुम सत्संग में रहकर योगसाधन में सिद्धिलाभ करोगे।

"हताश या निराश नहीं होना चाहिये। भगवान् के ऊपर सब न्यस्त करके योग-साधना में व्रती हो जाओ। वृद्ध के लिये भी एक ही बात है। इतने रोज आयु को वृथा नष्ट कर दिया है। जीवन का आधा आयु निद्रा में खो दिया, बाकी आधे को बाल्यकाल के लड़कपन में, यौवन को सब सम्बन्धियों के कृतदासत्व में खो दिया। अब वृद्धावस्था में रोग, शोक और जरा से आक्रान्त हो कर, शरीर और मन का बल खोकर दुश्चिन्ता में चारों तरफ निराशा का अन्धकार देख रहे हो। लेकिन डरो मत, मन में साहस रखो। भगवान् की शरण में आ जाओ, पाप-कार्यों को बिल्कुल छोड़ दो, इस मुहूर्त्त से ही योगाभ्यास में प्रयत्नशील हो जाओ, तुम्हारा मंगल होगा"।

"दयानन्द! केवल मात्र योगाभ्यास से ही काम नहीं चलेगा। साथ-साथ वैराग्य भी चाहिये[1]। विषयों के प्रति वैराग्य नहीं होने से मुक्ति, मोक्ष कैवल्य या परमानन्द नहीं मिलता। वैराग्य के विना केवल अभ्यास से योग की सिद्धि नहीं होती है। इन्द्रियों को यदि विषयों से निवृत्त नहीं कर सकोगे, विषय-लालसा से इन्द्रियों को यदि संयत नहीं कर सकोगे तो योग-साधना कठिन हो जायगी। इन्द्रियों को संयत रखो। पशुवृत्तियों को छोड़ दो, योग में सिद्धि-लाभ करोगे"

एक महीने की एकान्त साधना—दोनों गुरुओं के आबू पर्वत पर चले जाने के बाद मुझको एक महीने के लिए चाणोद आश्रम में अकेले ही रहना पड़ा। इस एक महीने में मुझको एकान्त और निष्षंग साधना में निमग्न रहने का मौका मिल गया था। अष्टांग राजयोग के वहिरंग साधन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार के अभ्यास और अनुशीलन में ही यह एक मास बीत गया। दुग्धेश्वर मन्दिर में जाकर उन लोगों से अन्तरंग साधना–धारणा, ध्यान, समाधि की शिक्षा ग्रहण की जाएगी, ऐसा ही तय हुआ। श्रीमान् स्वामी ज्वालानन्द पुरी ने मुझे हठयोग की शिक्षा देने के समय कहा था कि यम-नियम साधना के द्वारा योगविद्या[2] का बीज

---

१. दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्॥(यो० १. २५.॥ देखो स. प्र. ९ समु०, संस्कार विधि—वानप्रस्थ-सन्न्यास०)

२. यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावंगानि॥(यो० २-२९॥ देखो—ऋ० भा० भू० उपासना)।

रोपा जाता है—आसन, प्राणायाम के द्वारा वह अंकुरित होता है, प्रत्याहार के द्वारा वह पुष्पित होता है और धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा वह फलवान् होता है। हठयोग के द्वारा इसके पौधे की स्थिति में आवेष्टनी के रूप में शारीरिक और मानसिक क्लेश से साधकों को बचाया जाता है। मैं दिन और रात के अधिकांश समय में योग-साधना में ही व्यस्त रहता था।

एक दिन की घटना—चाणोद में रहने के समय मैं दिन में केवल जल-मिश्रित दूध पी लेता था और रात को थोड़े फल खा लेता था। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं लेता था। हम सब आश्रमवासियों के लिए अगल-बगल गाँवों के रहने वाले लोग दूध भेज देते थे। दोनों गुरुओं के चले जाने के बाद ग्रामवासियों ने समझा कि आश्रम में कोई आदमी नहीं है, इसलिए दूध लाना बन्द कर दिया था। पहिले दिन को केवल जल पीकर और फल खाकर ही मैंने दिन काट दिया था। दूसरे दिन एक दुग्धवती गाय कहीं से भागकर मेरी कुटिया के सन्मुख खड़ी होकर रम्भाने लगी। साथ-साथ पीछे गाय के मालिक दो भाई भी पहुँच गये। गाय के मालिकों ने कहा कि इस गाय का दूध हर रोज आश्रमवासियों की सेवा में भेजा जाता था। हम लोगों ने सुना था कि आप लोग सब के सब कहीं चले गए हैं। कल इसलिए दूध नहीं भेजा गया था। आज सवेरे ही गाय भाग गई। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते यहाँ आकर गाय को देखते हैं। हम घर जाकर आपकी सेवा में दूध भिजवा देंगे। लेकिन गाय आश्रम को छोड़कर घर जाना नहीं चाहती थी। हम सबने समझ लिया कि कल हमने दूध नहीं दिया था, इसलिये आज हम को दूध पिला कर गाय घर को जायेगी। बछड़ा वहाँ लाया गया, दूध दुहा गया और मुझको दूध पिलाने के बाद गाय बछड़े को लेकर मालिकों के साथ अपने घर चली गई। तब से आश्रम में जब तक रहा तब तक प्रतिदिन मेरे लिये दूध का प्रबन्ध हो गया था। मुझको याद आया—"प्रभो जिसका कोई नहीं है उसके तुम तो हो।"

दूसरी घटना—चाणोद के आश्रम से थोड़ी दूर नर्मदा के किनारे एक दिन मैं बैठा हुआ था, प्रकृति माता की शोभा देख रहा था। नदी के उस पार से एक नाव आई, वह यात्रियों से भरी हुई इस पार आ रही थी। इस पार आने में थोड़ी ही दूर बाकी था कि अचानक तूफान आ गया। यात्री लोग चिल्लाने लगे। यात्रियों के डर के मारे हिलने-डुलने के

कारण घाट से थोड़ी दूर पर नदी के अन्दर पानी नाव से ऊपर उठने लगा और देखते-देखते नाव पानी से भर गई। नाव नीचे मिट्टी में अटक गई, नाव के ऊपर से पानी जोर से बहने लगा। तूफान व तरंगों के कारण कोई यात्री नीचे उतर नहीं सका। सब के सब चिल्लाने लगे और माताएँ छोटे-छोटे शिशु-सन्तानों को अपनी-अपनी छाती से जोर से चिपटाती हुई रोने लगीं। नाव के मांझी लोग पानी में कूद पड़े और नाव को खींचने लगे। लेकिन नाव मिट्टी में धँस गई थी। मैं प्रकृति माता की इस भयंकर शोभा को और अधिक देर नहीं देख सका। यह तो भयंकर करुण दृश्य है। माता सन्तान को छोड़ना नहीं चाहती है। मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैं पानी में कूद पड़ा और "ओं बलमसि बलं मयि धेहि" बोलकर नाव को खींचकर आधी नाव को मिट्टी से ऊपर उठा दिया। सब यात्री लोग व मांझी लोग चकित हो गए। मैंने याद किया—"प्रभो! तुमने मेरे अन्दर इतनी शक्ति रखी है मुझे मालूम नहीं था! इस शक्ति से तुम्हारी सेवा कैसे होगी बता दो"! यजुर्वेद के इस मन्त्र को तो मैंने लड़कपन में ही पढ़ा था और आज इसका माहात्म्य भी समझ लिया।

मैं नदी के किनारे से शीघ्र चल पड़ा और सबकी दृष्टि से ओझल हो गया।

तीसरी घटना—चाणोद से मैं कर्णाली के सोमनाथ के मन्दिर में किसी योगी साधु से मिलने के लिए आया था। वहाँ मेला लगा हुआ था। मेले के बाहर देखा कि एक कोढ़ी पड़ा हुआ है। कोई कह रहा है कि यह तो मर गया और कोई कहता है कि अब भी जिन्दा है। पता चला कि मन्दिर के अन्दर कोढ़ी का प्रवेश निषिद्ध है और यह अनजाने में वहाँ घुस गया था। मन्दिर में पुलिस वालों ने उसको मारते-मारते बाहिर निकाल दिया। यहाँ तक आकर बेचारा गिर पड़ा। कोई कहता था कि उसको पैरों में रस्सी बाँधकर नदी के किनारे छोड़ दो, कोई कहता था कि इस को पानी में बहा दो, मछलियाँ खालेंगी और कोई कहता था कि उसको खुले मैदान में फेंक दो। चिड़िया जानवर खालेंगे। मैंने समझ लिया कि यह आदमी अब तक जिन्दा है, क्योंकि वह पानी पीने के लिए ओठ से इशारा कर रहा था। उसके सारे शरीर से खून, पीप व कीड़े निकल रहे थे। इस अवस्था में किसी ने मुझे सहायता नहीं दी। नदी से कपड़ा

माता रुद्राणां पिता वसूनां॰ । वेद ।
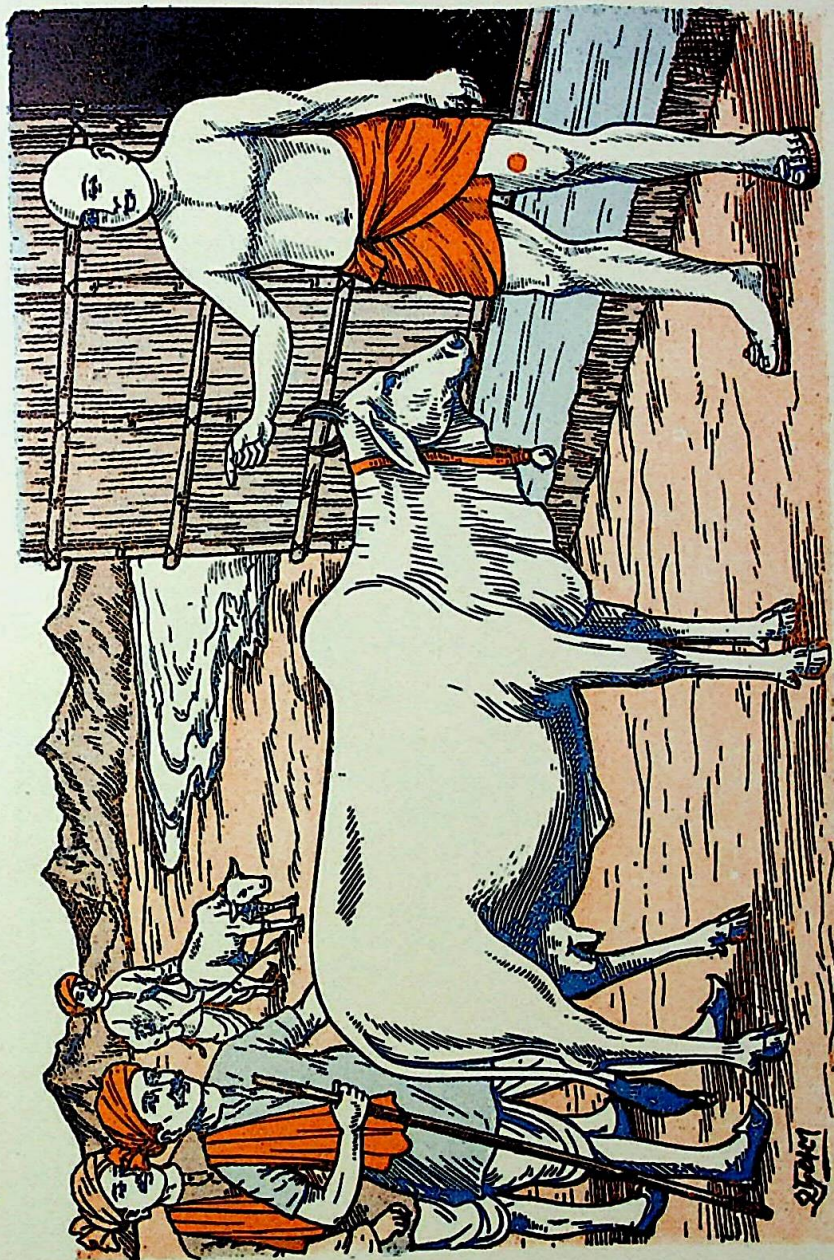
ईश प्रणिधानी, योगी दयानन्द को दूध पिला कर ही गोमाता घर लोटी । (पृष्ठ १०३)

सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ वेद

कोढ़ी के परित्राता योग साधक युवा दयानन्द

(पृष्ठ १०४)

भिगोकर मैं जब उसके मुँह में थोड़ा-थोड़ा पानी डालने लगा तब उसने आँखें खोलीं, लेकिन कुछ बोल नहीं सका। इसी समय सरकारी पुलिस वहाँ पहुँच गई। पुलिस ने कहा—मेले के बाहिर चिकित्सा का स्थान है। वहाँ ले जाने का प्रबन्ध हो तो अच्छा है। इस खतरनाक बीमार को ले जाने का कोई प्रबन्ध न था। इसको इस रूप में छोड़कर चला जाना भी मेरे लिये असम्भव हुआ। यजुर्वेद का मंत्र याद आया—"ओं सहोऽसि सहो मयि धेहि" प्रभो तुम सहन स्वरूप हो, मुझमें सहनशक्ति की स्थापना करो। इस मन्त्र से प्रभु को स्मरण करके मैंने कोढ़ी को पीठ पर उठाकर मेले के बाहिर चिकित्सा-केन्द्र में भरती करवा दिया। विदाई के समय कोढी ने अस्पष्ट आवाज में कहा—"बाबा! मुझे मरने का आशीर्वाद दो। इस बात के साथ ही उसने देह को छोड़ दिया। पुलिस और चिकित्सक ने कहा—"बाबा जी! अब जो करना होगा हम लोग कर लेंगे। आप कृपया चले जाइये। वहाँ से आकर नदी में स्नान करके सोमनाथ मन्दिर में योगी-साधुओं से बातचीत करके दूसरे दिन चाणोद पहुँच गया।

मैंने समझ लिया कि दुग्धेश्वर मन्दिर में दोनों गुरुओं के मिलने से पहिले आश्रम छोड़कर कहीं नहीं जाना। सर्व साधारण की समस्याओं के अन्दर अपने को डाल देना उचित नहीं है। तब से वहाँ रहने की अन्तिम तारीख तक चाणोद आश्रम में रहकर निष्ठा के साथ योग-साधना में ही मग्न रहा, क्योंकि बाहिर के साथ सम्बन्ध रहने से साधना में ढीलापन आ जाता है। क्रिया, योग, प्राणायाम, आसन, मुद्रा, धौती, नेति, बस्ति आदि क्रियाओं का अभ्यास करते हुए महीने के शेष दिन बिता दिये।

दुग्धेश्वर मन्दिर में—निर्धारित दिन में यथासमय श्मशान घाट में दुग्धेश्वर मन्दिर में पहुँचकर दोनों गुरुओं - स्वामी ज्वालानन्द पुरी और स्वामी शिवानन्द गिरि—के चरणों में उपस्थित हो गया। दोनों गुरुओं ने मुझे आशीर्वाद दिया। चाणोद आश्रम के सब ही समाचार मैंने उनको सुना दिये। स्वामी ज्वालानन्द पुरी ने कहा—"अब स्वामी शिवानन्द गिरि मुझे संयम की क्रियात्मक शिक्षा देंगे। संयम में तीन साधनाएँ हैं—धारणा, ध्यान, समाधि। योग-साधना के बहिरंग साधन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार हैं और संयम अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि योगसाधना के अन्तरंग साधन हैं।

स्वामी ज्वालानन्द पुरी के उपदेश और सारांश

प्रथम अंग धारणा*—धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों मिल कर संयम साधना है। ये तीनों मिलकर अन्तरंग साधना है। धारणा का तात्पर्य चित्त को एक स्थान में रखना है।*अर्थात् चित्त के अन्दर मात्र एक ही विषय की चिन्ता रखना। चित्त में बहुत देर तक एक ही विषय को रखने से और दूसरे विषय को नहीं आने देना धारणा है। किसी एक ही विषय की चिन्ता करते-करते चित्त में थोड़ी देर बाद दूसरे विषय के आ जाने से समझना चाहिये कि धारणा नहीं हुई, धारणा भंग हो गई। धारणा न होने से ध्यान नहीं होगा। ध्यान न होने से समाधि नहीं होगी। पहले धारणा है उसके बाद ध्यान है और ध्यान के बाद समाधि है। चित्त जब वहुत विषयों में न दौड़ता हुआ एक ही विषय में आबद्ध होता है, तब उसका नाम धारणा है। प्रत्याहार-साधना अच्छी प्रकार हो जाने से धारणा ठीक से अतिशीघ्र होती है। प्रत्याहार-साधना से चित्त केवल एक ही विषय में रह सकता है।

हम लोग चित को बाहिर या भीतर किसी स्थान पर आबद्ध रख सकते हैं। बाहिर का स्थान सूर्य, चन्द्र, समुद्र, वृक्ष लताएँ हैं और अन्तरंग विषय नाभि, हृदय, कण्ठ, वक्ष, जिह्वाग्र, नासिकाग्र भ्रूमध्य व शिरोदेश आदि हैं। ईश्वर निर्मित किसी दृश्य वस्तु या शब्द, ज्योतिः आदि धारणा का पलकहीन दृष्टि रखने का नाम त्राटक योग है। जब तक चक्षुओं में कष्ट अनुभव न हो तब तक स्थिर दृष्टि रखनी चाहिये। यथाशक्ति दीर्घ काल दृष्टि न रखकर जबरदस्ती दृष्टि रखने से आँखों की बीमारी हो जाती है। बहुत आदमी कहते हैं कि जब तक आँखों में आँसू नहीं निकलते तब तक दृष्टि स्थिर रखनी चाहिये लेकिन यह नियम खतरनाक है। चक्षु क्लान्त होने से ही आँखें बन्द करके उसी दृश्य की चिन्ता करनी चाहिये। प्रातः काल में या जाड़े के समय या ठण्डे समय में त्राटक योग का अभ्यास होना चाहिये। प्रतिदिन आँखों में शीतल पानी से छींटे देने चाहियें।

जो लोग शब्द योग से धारणा का अभ्यास करते हैं वे लोग कानों में अंगुलियों को डालकर चित्त को स्थिर करते हैं। कानों के अन्दर झीं-झीं की आवाज सुनी जाती है। वे लोग एकाग्र मन से उस आवाज को सुनते

* देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।। यो० ३-१।। (देखो—हुगली शास्त्रार्थ, ऋ० भा० भू० उपा०, स०प्र० ७ समु०)

हैं। दूसरे विषय में ध्यान नहीं देते। धीरे-धीरे सूक्ष्मतर शब्द सुना जाता है और आगे अभ्यास करने से अनाहत ध्वनि सुनी जाती है। इसी का दूसरा नाम 'बिन्दु' है।

इसी प्रकार किसी विषय में धारणा का अभ्यास करना चाहिए। इससे पहले चित्त को निर्मल करके, किसी एक योगासन को आयत्त करके, प्राण-गति अर्थात् श्वास-प्रश्वास को काबू में करके, शीत-ग्रीष्मादि-द्वन्द्व-सहिष्णु होकर किसी योगासन में सीधे होके बैठना चाहिए। इसके बाद इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से प्रत्याहार करके उनको चित्त में समर्पित कर देना, इसके बाद चित्त को किसी स्थूल या सूक्ष्म वस्तु में धारण करना। ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जिससे उसी वस्तु से चित्त हट न जाय। चित्त को बाँधनें में समर्थ होने से और इसके स्थायी रूप से रखनें में समर्थ होनें से ही आगे जाकर वह धारणा ध्यान बन जायगा।

(२) संयम का द्वितीय अंग ध्यान*

धारणा में एकतानता आने से ही उसका नाम ध्यान है। खंड-खंड प्रत्यय या ज्ञानवृत्ति का नाम ही धारणा है। धारणा जलविन्दुओं की तरह खंड-खंड ज्ञान है और ध्यान तैल धारा की तरह एक स्रोत से प्रस्रवित एकतान या अखंड ज्ञान है। चित्त में चंचलता आने से धारणा खंड-खंड हो जाती है। ध्यान में चित्त की चंचलता नहीं रहती है और चित्त स्थिर हो जाता है। ध्यान होने से ही समझा जाएगा कि चित्त स्थिर हो गया। चित्त में आवरण और विक्षेप संस्कार जितने कम रहेंगे उतना ही ध्यान ठीक रूप से होगा। आवरण और विक्षेप आकर ही ध्यान को और समाधि को तोड़ देते हैं। एक तरफ से चिन्ता के संस्कारों को क्षीण करना और दूसरी तरफ ध्यान का अभ्यास करना आवश्यक है। धारणा के समय धारणीय विषय में यदि प्रत्यय की या चित्तवृत्ति की एकतानता आ जाय तब ही उसका नाम ध्यान है। जिस वस्तु में तुमने बहिरिन्द्रियों को निरोध करके अन्तरिन्द्रियों को धारण किया है,उस वस्तु का ज्ञान अगर व्यवधान-हीन, अनवच्छिन्न और प्रवाहाकार होके प्रवाहित होता है तब उस रूप का मनोवृत्तिप्रवाह ध्यान नाम से अभिहित होता है।

* तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥यो. ३।२॥ (देखो—हुगली शास्त्रार्थ, ऋ. भा. भू. उपासना, स. प्र. ९ समु०-७)

(३) संयम का तृतीय अंग समाधि[1]

ध्येय विषय का अर्थ-मात्र निर्भास, स्वरूप शून्य-तुल्य ध्यान ही समाधि है। जप, धारणा, ध्यान, समाधि एक ही हैं। अवतरित जप करते-करते जप के गाढ़ और गंभीर होने से धारणा होती है। अविरत धारणा का अभ्यास करते-करते और धारणा के गाढ़ और गम्भीर होने से ध्यान होता है। अविरत ध्यान का अभ्यास करते-करते ध्यान के गाढ़ और गंभीर होने से समाधि होती है। धारणा में 'मैं ध्याता' 'मेरा ध्यान' और 'मेरे ध्येय इष्ट-देव' ये तीनों रहते हैं। ध्यान में 'मैं ध्याता' और 'मेरे ध्येय' ये दो रहते हैं। समाधि में मैं ध्याता यह भी नहीं रहता केवल ध्येय[2] ही रहता है। समाधि में अस्मित्व लीन हो जाता है, ध्येय में अस्मित्व लय को प्राप्त होता है। तब ध्येय विषय मात्र ही निर्भास होता है। ध्यान ध्येय अलग नहीं रहता एक हो जाता है। यह चित्त की सर्वोत्कृष्ट स्थिर अवस्था है। समाधि के विना आत्मसाक्षात्कार भी नहीं होता है।

(४) संयम का स्वरूप[3]

एक ही विषय पर धारणा, ध्यान और समाधि एक के बाद दूसरा अव्याहत गति से लगातार सम्पन्न होने से उसको राजयोग की भाषा में संयम कहा जाता है। संयम बोलने से धारणा, ध्यान और समाधि एक के बाद दूसरा निरन्तर सम्पन्न होता है, यह समझना चाहिये।

(५) संयम-साधन से प्रज्ञालोक लाभ[4]

संयम परिपक्व होने से प्रज्ञालोक अर्थात् प्रज्ञा के आलोक का लाभ होता है। प्रज्ञालोक अर्थात् प्रज्ञा का आलोक अर्थात् समाधि जात-प्रज्ञा का आलोक है। यह आलोक प्रकाशित होने से लौकिक ज्ञान और शक्ति लाभ होते हैं। चिन्तनीय विषय सब कुछ जाना जाता है। स्थूल दृष्टि से हम एक ही स्थान की एक ही वस्तु के स्वरूप को जान सकते हैं किन्तु समाधि ज्ञान से हम उस वस्तु के समग्र स्वरूप को जान सकते हैं।

---

१. तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ (यो. ३-३॥ देखो—ऋ. भा भू. उपासना, स. प्र. ७ समु॰, हुगली शास्त्रार्थ,)

२. मैं ध्याता का भाव। अर्थात् 'मैं का भान'।

३. त्रयमेकत्र संयमः ॥यो. ३-४॥ देखो—ऋ. भा. भू. पृ. २२८।

४. तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ यो. ३-५॥

हम किसी व्यक्ति की वर्तमान कार्य-प्रणाली और आचार-व्यवहार को देख कर उसके विषय में अति अल्प ही जान सकते हैं। प्रज्ञालोक के द्वारा हम उसी व्यक्ति के समग्र स्वरूप को पूर्वापर स्थिति को बहुत कुछ जान सकते हैं। इच्छा करने से ही जब संयम आ जायगा तब ही संयम-जय हो गया, यह कहा जा सकता है।

उस संयम को जय करने से अर्थात् श्वास-प्रश्वासादि को ऐसे स्वाभाविक या सम्पूर्णरूपेण आयत्त करने से सर्वभासक आलोक या बुद्धि का प्रकाश आ जाता है। यानी ज्ञान की शक्ति-विशेष का प्रादुर्भाव होता है।

संयम, उसका जय और उससे प्रज्ञा नामक ज्ञानालोक की प्राप्ति— इन तीनों बातों के अन्दर बहुत कुछ गुप्त तथ्य विद्यमान हैं। इनके प्रकृत तथ्य और शिक्षा-कौशल को केवल योगी लोग ही जानते हैं। प्राचीन योग भाषा के "संयम" शब्द को आजकल की भाषा में "इच्छा शक्ति" बोल सकते हैं। पतंजलि के राजयोग में पहले धारणा, इसके बाद ध्यान और इसके पश्चात् समाधि है। इस प्रक्रियात्रय के साथ तेजस्विनी निर्मला बुद्धि की सार इच्छाशक्ति अवश्य ही चाहिए। योगी शिक्षा द्वारा और अभ्यास से उन तीनों प्रक्रियाओं को जय कर लेते हैं। इसी का नाम है स्वात्मीकरण।

संयम से स्वात्मीकरण क्या है—स्वाभाविक रूप से कार्य करने का नाम आयत्तीकरण या स्वात्मीकरण है। श्वास-प्रश्वास जैसे स्वाभाविक और स्वात्मीकृत्य करने में क्लेश नहीं होता है ऐसे ही यदि संयम कार्य विना क्लेश के सम्पन्न होता है तब जानना चाहिए कि 'संयम-सिद्धि हो गयी है। एवंविध संयम-सिद्ध योगी का संकल्प या इच्छा-प्रयोग अमोघ है। "संयमात् प्रज्ञालोकः" इस सूत्रभाव को देख कर यह नहीं समझना चाहिए कि संयम से केवल ज्ञान-विकास ही होता है, दूसरा कुछ नहीं होता है। उनके संकल्प से सब कुछ सिद्ध होता है जो कुछ जीवों के लिए सम्भव है। ज्ञान-शक्ति की वृद्धि होने से क्रियाशक्ति भी बढ़ जाती है यह तो अव्यभिचारी नियम है। भूतजय, प्रकृति वशित्व, अणिमादि ऐश्वर्य संयम प्रभाव की अज्ञात शक्ति से साबित होते हैं। संयम के द्वारा इच्छाधिकार पूर्ण होता है। संयम के अन्दर महाशक्ति छिपी हुई है।

संयम-साधन के समय योगी प्रथम स्थूल विषयों पर संयम प्रयोग

करें।* पीछे धीरे-धीरे सूक्ष्म से सूक्ष्मतर विषयों पर संयम-प्रयोग करें। स्थूल अवलम्बन छोड़कर पहले ही सूक्ष्म अवलम्बन नहीं लेना चाहिए। योग शास्त्रों में क्रमिक भूमियों के नाम सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार हैं। योगी संयम के द्वारा विविध ऐश्वर्य और अलौकिक क्षमता प्राप्त करते हैं। लेकिन किस विषय के लिये कैसे संयम का प्रयोग होना चाहिए, कहाँ किस प्रकार का संयम हो, कौन से संयम के कौन से फल हैं, उनको और विविध चित्त परिणामों के विभिन्न विकार-भावों को भी प्रत्यक्षवत् अधिगत कर लेना चाहिए। चित्त व्युत्थान में, निरोध में और एकाग्रता में किस रूप से रहता है, इसके परिणाम और परिवर्तन किस प्रकार के होते हैं यह सब कुछ निपुणता के साथ लक्ष्य करना चाहिए। निरोध-काल की चित्तावस्था या चित्त परिणाम जानना बहुत ही जरूरी हैं। इन सूक्ष्म तत्त्वों की शिक्षा बहुत ही ध्यान से ग्रहण करनी चाहिये।

श्रीमत् स्वामी शिवानन्द गिरि का उपदेश—योग विद्या की शिक्षा के लिये एकाग्रता का प्रयोजन है। एकाग्रता सीखने से पहले चित्त को निर्मल बनाना चाहिये। मलिन चित्त योगविद्या-शिक्षा के लायक नहीं है। सूक्ष्म वस्तु ग्रहण करने में मलिन चित्त असमर्थ होता है, स्थिर और समाहित नहीं होता है और विलिप्त हो जाता है। स्वच्छ शीशा अगर मलिन हो जाय तो उस में दूसरी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ेगा। आकर्षण में सूक्ष्म चुम्बक में भी मलिनता रहने से आकर्षण करने की क्षमता से वह वंचित हो जाता है। ठीक उसी तरह चित्त मलिन रहने से सूक्ष्म तत्त्व के ग्रहण करने में असमर्थ हो जाता है। रजः तमः गुणों से उत्पन्न ईर्ष्या और द्वेषादि ही चित्त की मलिनता है। मलिनता उन्मार्जित न होने से चित्त प्रकाशमय और उज्ज्वल नहीं होता है। इस लिये ही पहले चित्त को मलिनता से मुक्त करके तब समाधि के अभ्यास में प्रवृत्त होना चाहिये।

चित्त को निर्मल करो★

चित निर्मल होने से एकाग्र-शक्ति की वृद्धि होगी। दूसरे के सुख

---

* तस्य भूमिषु विनियोगः ।।यो. ३-६।।
—सूक्ष्म विषयत्वञ्चालिङ्गपर्यवसानम् ।१-४५।। देखो स. प्र. ७. समु० पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को गुण कर्म स्वभाव से जाने ।।

★ मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।।(यो. १-३३ ।। देखो ऋ. भ. भू. उपा.)

देख कर सुखी हो जाओ, ईर्ष्या मत करो; अर्थात् मुदित साधन का अभ्यास करने से तुम्हारे चित्त से ईर्ष्या-मल दूर होगा। जैसे तुम सर्वदा अपने दुःखों का निवारण करना चाहते हो ऐसे ही तुम दूसरे के दुःखों को दूर करने की इच्छा करते रहो। दूसरे के दुःख में दुःखी होने की शिक्षा लेने से तुम्हारे अन्दर विद्वेष-मल नहीं रहेगा। दूसरे के प्रति अपकार करने की इच्छा भी तुम्हारे अन्दर नहीं रहेगी। अपने पुण्य में या अपने शुभानुष्ठान में जैसे हर्षयुक्त होते हो वैसे ही दूसरे के शुभ अनुष्ठान में हर्षयुक्त हो जाओ। दूसरे के पुण्य में और शुभानुष्ठान में हर्षयुक्त होने से तुम्हारे मन से असूया-मल नष्ट हो जायेगा। दूसरे के पाप देख कर उसके प्रति द्वेष मत करो। पाप के प्रति द्वेष करो। घृणा को पाप के प्रति रखो। पापी के प्रति नहीं। सर्वतोरूप से उदासीन रहो, तब तुम्हारे चित्त से अमर्ष-मल दूर हो जायगा। सुखी के प्रति मैत्री, दुःखी के प्रति करुणा, पुण्यवान् के प्रति मुदिता या प्रेम और पापी के प्रति उपेक्षा या औदासीन्य रखो। हर एक राजस और तामस वृति के विरुद्ध सात्त्विक-वृत्तियों का उदय होगा। इस रूप से तुम्हारा चित्त धीरे-धीरे निर्मल हो जायगा और अच्छी तरह एकाग्र-शक्ति-सम्पन्न हो जाओगे।

चित्त को एकतान करो—प्राण वायु को आकर्षण करके धारण करना और वर्ज्जन करना इस प्रक्रिया के द्वारा भी चित्त को एकतान किया जा सकता है। पहले गुरु के उपदेश और शास्त्र विधि के अनुसार नासिका से बाहर के वायु को आकर्षण करके, परिमित रूप से उसको भीतर ही धारण करो और नियमित रूप से उसको छोड़ दो। इसी का नाम प्राणायाम है*। प्राण+आ+ यम्=प्राण को सम्यक् संयत अर्थात् इच्छानुरूप निरोध करना। प्राण यदि इच्छाधीन हो जाए तब तो चित्त को आसानी से अनाकुल और स्थिर किया जा सकता है। क्योंकि सब ही इन्द्रिय-कार्य प्राण के आधीन हैं। प्राण ही श्वास-प्रश्वासरूप गति को अवलम्बन करके सब देह-यन्त्रों को परिचालित कर रहा है। विभिन्न इन्द्रियों को भिन्न २ कार्यों में प्रेरणा दे रहा है। खाद्य वस्तुओं को रक्ताकार में परिवर्तित करके हर एक देह-यन्त्र के स्वास्थ्य, बल और स्वभाव की रक्षा कर रहा है। प्राण ही इन्द्रिय चक्र, नाड़ी चक्र और मन का परिचालक है

* तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ (यो० २-४६॥ देखो—ऋ. भा. भू. उपासना)

और प्राण ही मन की चंचलता का प्रधान कारण है। प्राण की गति से मन की गति, प्राण के निरोध से मन का निरोध और प्राण की स्थिरता से मन की स्थिरता होती है। प्राण-गति के दोष से मनकी गति दोष-युक्त होती है। प्राणगति अगर अवरुद्ध हो जाय तो मन के दोष भी निवारित हो जाते हैं। काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य आदि जो कुछ मनो-दोष जो कुछ विक्षेप—सब प्राणदोष के दोष से उत्पन्न होते हैं। इस गूढ़ रहस्य को भारतीय योगी लोगों नें आविष्कृत किया था। इस लिए ही उन्होंनें प्राणायाम का उपदेश दिया है। यह प्राणायाम अगर सुसिद्ध हो जाय, आयत्त हो जाय तो मनके सब विक्षेप दूर हो जाते हैं। निर्दोष और निर्विक्षेप चित्त अपने आप ही सुप्रसन्न, सुप्रकाशित और एकाग्र हो जाता है।

निर्दोष चित्त से दिव्यज्ञान-लाभ—चित्त निर्मल हो जाने से उसको हर एक विषय में नियुक्त किया जा सकता है और उसको यथेच्छ तन्मय किया जा सकता है। उससे सब ही वस्तुओं का साक्षात्कार हो सकता है। अगर चन्द्र या सूर्य में निर्मल चित्त को स्थापन करोगे तो चन्द्र में या सूर्य में ही वह तन्मय हो जायगा और चन्द्र तत्त्व या सूर्य तत्त्व का साक्षात्कार कर सकोगे। इसी का नाम दिव्यज्ञान और इसी का नाम योगजप्रज्ञा है। शिक्षार्थी योगी लोग पहले देह के प्रति मनोनिवेश करते हैं और वे लोग दैहिक तत्त्वों की मानस चक्षु से बहुत सी उपलब्धि करते हैं। इसी प्रकार नासाग्र में चित्त संयम करके दिव्यगंध, जिह्वाग्र में चित्त संयम करके दिव्य रस ज्ञान, ताल्वग्र में दिव्य रूप, जिह्वा के मध्य में दिव्य स्पर्श और जिह्वा-मूल में दिव्य शब्द के अनुभव होते हैं।[1] इसी रूप से जिस किसी वस्तु में या स्थूल विषय में चित्त संयम करके योगी लोग उस उस विषय का दिव्यज्ञान प्राप्त करते हैं। इसको स्वयं अनुभव करके ये लोग धीरे-धीरे सूक्ष्मादपि सूक्ष्म विषय में[2] भी चित्त संयम करके उस विषय के सूक्ष्म तत्त्वज्ञान को प्राप्त करते हैं।

विशोका ज्योति का अनुभव[3]

उदर-कन्दर के ऊपर की तरफ हृदय-पिंजर के भीतर एक मांस-

१. विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना स्थिति निबन्धनी ॥ यो. १-३५॥ देखो—हुगली शास्त्रार्थं, व्यासभाष्य में विस्तृत व्याख्या है।

२. सूक्ष्ममच्चालिंग पर्यंवसानम् ॥यो०समाधिपाद।

३. विशोका वा ज्योतिष्मती ॥१-३६॥

पिण्ड है, उसका आकार लगभग कमल के सदृश है इस लिये उसका नाम हृत्पद्म है। इस हृत् कमल को रेचक प्राणायाम के द्वारा ऊर्ध्वमुख भावना करके उसके पीछे चित्त को धारण करने से एक प्रकार की ज्योति या आलोक का अनुभव होता है। उस ज्योति की तुलना नहीं है वह उस तरंगहीन और नि:शब्द समुद्र के समान प्रशान्त और मनोरम है, निर्मल और सुशुभ्र है। उसमें सूक्ष्म रूप से क्षण-क्षण में सूर्य-प्रभा, चन्द्र-प्रभा, मणि-प्रभा और अन्यान्य अनेक प्रभा स्फुरित होने में देखी जाती हैं। इस आलोक या ज्योति के मनोगोचर होने से किसी प्रकार का शोक नहीं रहता है। इसलिये इस आलोक को 'विशोका" बोला जाता है। इस विशोका ज्योति का दूसरा नाम बुद्धि सत्त्व और चैतन्य प्रदीप्त अस्मिता (सात्त्विक अहंकार) है। चित्त हृत्कमल के अन्दर बुद्धि-सत्त्व के ध्यान में निमग्न होने से अति शीघ्र सम्प्रज्ञात समाधि या अति उत्कृष्ट योग उत्पन्न होता है।

एकाग्रता-शिक्षा—जिह्वामूल, जिह्वाग्र, ताल्वग्र, हृत्पद्म, तत्कर्णिकागत नाड़ी चक्र और उसके पीछे के बुद्धिसत्त्व में चित्त संयम करने से जैसी एकाग्रता सिद्ध होती है ऐसे वीतराग महापुरुषों के चित्तों में संयोग[1] करने से भी एकाग्रता आ जाती है।

एकाग्रता सीखने के लिए किसी मनपसन्द वस्तु[2] या विषय पर ध्यान करना चाहिये। इससे तुम्हारे चित्त में एकाग्रता शक्ति की वृद्धि होगी और इसके अनन्तर ध्येय पदार्थ में चित्त की स्थिरता का अभ्यास करना चाहिए और उसमें अभ्यस्त होने पर तुम जहाँ इच्छा हो एकाग्र हो सकोगे। अन्तर्जगत् के नाड़ी चक्र हों या बहिर्जगत् के चन्द्र-सूर्य हों स्थूल हों या सूक्ष्म हों सर्वदा और सर्वत्र ही चित्त को तन्मय कर सकोगे। लेकिन ऐसी वस्तु या ऐसे विषय पर चित्त-संयम मत करो जिसको देखने से या चिन्तन करने से मन चंचल होता है। इस रूप से किसी वस्तु या विषय पर चित्त स्थिर होने से सूक्ष्म परमाणु[3] से लेकर बृहत्तम परमात्मा तक सब विषय ही योगी के लिए ग्रहणीय, प्रकाशित और वशीभूत होते हैं।

---

१. वीतराग विषयं वा चित्तम् ॥ १ ३७ ॥
२. यथाभिमतध्यानाद्वा । १-३९
३. परमाणु परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ १-४० ॥

निर्मल चित्त—वृत्तिहीन चित्त स्फटिक मणि के समान तन्मय भाव को धारण करता है। जिस रंग की वस्तु में स्फटिक रखा जाता है उसी रंग से वह रंजित हो जाती है। ठीक उसी तरह निर्मल चित्त जिस वस्तु में या विषय में अर्पित होता है, उसी वस्तु में चित्त समासक्त, स्थिर और तन्मय हो जाता है।❀

एकाग्रता-शिक्षा के नियम—एकाग्रता-शिक्षा का नियम यह है कि पहले इन्द्रिय-ग्राह्य पदार्थ के अवलम्बन से एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिये। ज्ञेय वस्तु दो प्रकार के हैं? स्थूल और सूक्ष्म। पहले स्थूल में और पीछे सूक्ष्म में अभ्यास होना चाहिये। पहले स्थूल वस्तु में चित्त को स्थिर करना चाहिए। उसमें अभ्यस्त होने के बाद क्रमानुसार मन बुद्धि, अहंकार आदि आभ्यन्तरीण वस्तु का अवलम्बन करना चाहिये। इन्द्रियों में चित्त स्थिर हो जाने के बाद अस्मिता में या जीवात्मा में एकतान होना चाहिये। अन्त में परमात्मा में मनोलय करना चाहिए। इस प्रकार परम्परा-क्रम से अग्रसर होना चाहिये। **झट परमेश्वर में समाहित होना असम्भव है** जब देखोगे कि तुम्हारा चित्त कहीं भी प्रतिहत नहीं होता है सर्वत्र ही स्थिर हो जाता है, तब तुम जानोगे कि तुम्हारा चित्त वशीभूत हो गया है। तब तुम्हारे चित्त को वशीभूत करने के लिये विशेष उपाय का अवलम्बन नहीं करना पड़ेगा। किसी प्रकार का अनुष्ठान भी नहीं करना होगा।

सवितर्का समापत्ति★

एकाग्र चित से बिषय-चिन्ता करने से जो तन्मय-भाव आ जाता है उसी का नाम समापति है। स्थूल वस्तु का अवलम्बन कर ध्यान करने से दो प्रकार की समापत्ति होती है-'१. संवित्तर्का २. निर्वितर्का। जहाँ शब्द अर्थ और ज्ञान ये तीन एक साथ मिले हुए रहते हैं वहाँ सवितर्का **समापत्ति** है। यह **मिश्रित ज्ञान है यह** विशुद्ध निर्मल ज्ञान नहीं है। "तर्क" का मतलब शब्दमय चिन्ता है। 'गौ" यह शब्द केवल शब्दमात्र ही है। इसका अर्थ या ज्ञान सम्पूर्ण पृथक् है "गो" शब्द का आश्रय वाग् यन्त्र है क्योंकि यह

❀ क्षीण वृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु तत्स्थ तदञ्जनता-समापत्तिः ॥यो. १-४१ ॥

★ तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः (१-४२॥ देखो स प्र ६ स)

शब्द वाग्यन्त्र के द्वारा उच्चारित होता है। "गौ" शब्द का अर्थ (पदार्थ) चतुष्पद पशु है और यह गोशाला में रहता है। इसका आश्रय स्थल गोशाला है। "गौ" शब्द से जाना जाता है कि यह दूध देती है या भार-वहन करती है। यह ज्ञान हमारे चित्त में रहता है। "गौ" शब्द का आश्रय-स्थल वाग्यन्त्र है, अर्थ का आश्रय-स्थल गोशाला है और ज्ञान का आश्रय-स्थल चित्त है। शब्द-अर्थ और ज्ञान सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। लेकिन यह सब स्वतन्त्र होने पर भी हम लोग तीनों को मिश्रित रूप से व्यवहार करते हैं इन तीनों को एक ही विषय समझ लेते हैं। इस रूप से तीनों विषयों को अर्थात् शब्द, अर्थ, ज्ञान को एक समझकर जो ध्यान या चिन्ता की जाती है उसी का नाम सवितर्का समापत्ति है।

निर्वितर्का समापत्ति*

हमारी स्मृति में शब्द और अर्थ के एक साथ मिले रहने से उस स्मृति से हमारा वस्तु विषयक यथार्थ ज्ञान नहीं होता। लेकिन अगर हम शब्द को स्मृति से हटा सकते हैं तो हमारी स्मृति के शुद्ध होने से हमारे अन्दर अर्थ विषय का शुद्ध ज्ञान उत्पन्न हो सकता है। शब्द अर्थ एक साथ मिलाके जो ध्यान होता है वह सवितर्का और केवल अर्थ का जो ध्यान उसका नाम निर्वितर्का समापत्ति है। निर्वितर्का समापत्ति में स्थूलभूत का सूक्ष्म ज्ञान होता है। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध (सूक्ष्म) भूत हैं। हम लोग साधारणतः स्थूल भूतों को ही ग्रहण करते हैं। इनके सूक्ष्मांश गृहीत नहीं होते हैं। निर्वितर्का समापत्ति में स्थूल भूतों के सूक्ष्मतम अंश का प्रत्यक्ष होता है। स्थूल भूतों का यह ही सबसे ज्यादा सूक्ष्मांश है। इसी का नाम तन्मात्रा है। यथा शब्दतन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रूप तन्मात्रा, रस तन्मात्रा और गन्ध तन्मात्रा इन सब तन्मात्राओं से स्थूलभूतों की सृष्टि हुई है। तन्मात्र ज्ञान ही सत्य ज्ञान है और स्थूल भूतों का ज्ञान भ्रान्तिज्ञान है। हम लोग स्थूल भूतों को जिस रूप से देखते हैं वास्तव रूप से वे ऐसे नहीं हैं। ये तो सब तन्मात्राओं का समष्टि-ज्ञान है।

इस प्रकार के भ्रान्ति-दर्शन के कारण ही हम लोग विषयों में आसक्त होते हैं। जब यह भ्रान्ति-दर्शन हट जाते हैं और सत्य ज्ञान होते हैं तब विषयों में आसक्ति भी कम हो जाती है सूक्ष्म भूतों के दर्शन से

* स्मृति परिशुद्धौ स्वरूप शून्येवार्थमात्र निर्भासा निर्वितर्का ॥ यो. १-४३॥

जो सुख और आनन्द होते हैं वे स्थूल भूतों के दर्शन के सुख और आनन्द से कोटि गुणा अधिक हैं। इस लिये ठीक-ठीक विषयासक्ति छोड़ने के लिये ध्यान और समाधि के द्वारा सूक्ष्मभूत दर्शन जरूरी है। इस रूप से तन्मात्र दर्शन को निर्वितर्क समापत्ति बोला जाता है। हमारी स्मृति परिशुद्ध न होने से यह सूक्ष्म-दर्शन नहीं होता है। स्मृति के अन्दर शब्द और अर्थ ये उभय ज्ञान रहने से स्मृति मलिन रहती है। इस लिये अभ्यास के द्वारा केवल अर्थ मात्र की ही चिन्ता की जा सकती है और वह अर्थ-चिन्ता गम्भीर होते-होते अर्थ की तन्मात्रा का दर्शन होता है। केवल शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध से जो ज्ञान होता है वह यथार्थ ज्ञान है। केवल अर्थ से जो ज्ञान होता है वह यथार्थ ज्ञान नहीं है। इन्द्रियज प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमान से जो ज्ञान होता है वह भी यथार्थ ज्ञान नहीं है, ध्यान और समाधि से जो ज्ञान होता है वह ही यथार्थ ज्ञान है।

धर्म के बारे में भी एक ही बात है। धर्म के बारे में केवल श्रवण और मनन करने से यथार्थ धर्म का ज्ञान नहीं होता है। ध्यान और समाधि से परोक्ष दर्शन होने से यथार्थ धर्म का ज्ञान होता है। धर्मज्ञान निदिध्यासन से ही ठीक-ठीक होता है।

सविचार और निर्विचार समापत्ति❀

स्थूल अवलम्बन से सवितर्का समापत्ति और निर्वितर्का समापत्ति होती है लेकिन सूक्ष्म अवलम्बन से सविचार और निर्विचार समापत्ति होती है। इन चारों समापत्तियों -सवितर्का, निर्वितर्का,- सविचारा और निर्विचारा समापत्तियों का एक नाम है सबीज समाधि।

सबीज समाधि★

इनमें सवितर्क समाधि निकृष्ट है, उससे निर्वितर्क समाधि श्रेष्ठ है। उससे सविचारा समाधि और उससे निर्विचारा समाधि श्रेष्ठ है। इस उत्कृष्ट निर्विचारा की योग-साधना में अभ्यस्त और सिद्ध होने से ही चित्त का स्वच्छ स्थिति प्रवाह दृढ़ होता है। इससे किसी प्रकार का दोष, क्लेश या मालिन्य नहीं रहता है। सर्वप्रकाशक चित्त-सत्व तब नितान्त निर्मल होता है। आत्मा तब जानी जाती है। इसी का नाम अध्यात्म विज्ञान है❀❀

❀ एतयैव सविचारा-निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥यो. १-४४॥ देखो—स. प्र. ६ समु०

★ ता एव सबीजः समाधिः ॥१-४६॥

❀❀ निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ यो. १-४७॥

ऋतम्भरा प्रज्ञा❀

समाधिज ज्ञान आने से उत्कृष्ट और निर्मल प्रज्ञा या ज्ञानालोक आविर्भूत होता है उसी का नाम "समाधि प्रज्ञा" है। यह प्रज्ञा केवल ऋत अर्थात् सत्य को ही प्रकाशित करती है। उस समय विन्दु मात्र भ्रम भी नहीं रहता है। योगी लोग इस ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा सब वस्तुओं का यथावत् साक्षात्कार करते हैं और चरम स्थिति निर्विकल्प समाधि को प्राप्त होते हैं और निर्विकल्प समाधि प्राप्त होकर मुक्त होते हैं।

निर्बीज समाधि★

यह सम्प्रज्ञात वृत्ति भी जब अवरुद्ध हो जाती है तब सर्व-निरोधात्मक निर्बीज समाधि उत्पन्न होती है। दीर्घ समय तक योगी निरोध अभ्यास करते हैं। इस अभ्यास के बल से योगी का वह शेष अवलम्बन मात्र भी अवरुद्ध या विलीन हो जाता है। चित्त जिस बीज का अवलम्बन करके रहा था अब वह भी नष्ट हो जाता है। इस लिए अब निर्बीज समाधि हो गयी। निर्बीज समाधि जब परिपक्व स्थिति को प्राप्त होती है तब ही चित्त अपने उत्पत्ति-स्थान प्रकृति का आश्रय करता है। प्रकृति स्वतन्त्र होगी और सच्चित् प्रकाश पुरुष भी प्रकृति के वन्धन से मुक्त होगा। जन्म-मरण और सुख-दुःख भोग नहीं होगा। भोगायतन शरीर भी तब नहीं रहेगा।

समाधि-सिद्धि के लिये क्रिया योग का अनुष्ठान आवश्यक है। अध्यवसाय के साधन करने से सिद्धिलाभ अनिवार्य है।

चित्त-भूमियाँ—चित्त के स्वाभावानुसार हम सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। हम सत्त्व गुण से सुख का, रजोगुण से दुःख का और तमः गुण से मोह का अनुभव करते हैं। चित्तभूमियाँ पाँच प्रकार की हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध।❀❀

❀ ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥१-४८॥

★ तस्यापि निरो सर्वधे निरोधान्निर्वीजः समाधिः ॥१-५१॥

❀❀ क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः। तत्र विक्षिप्ते चेतसि विक्षेपोपसर्जनीभूतः समाधिर्न योगपक्षे वर्तते"—व्यास भाष्य—१-१०

(१) **क्षिप्तभूमिक चित्त**—यह सदा चंचल है। जिसका चित्त जितना अधिक चंचल होता है वह उतना ही अधिक पाप करता है और दुःख का अनुभव करता है। चित्त में रजः और तमः गुण अधिक होने से चित्त क्षिप्त होता है। क्षिप्त चित्त या मन किसी एक विषय पर स्थिर नहीं रह सकता। एक ही विषय पर मन रखने से चित्त को सुख नहीं मिलता। सुख के लिये वह पहले एक विषय ले लेता है और फिर थोड़ी देर बाद ही दूसरे विषय को ले लेता है, फिर वहाँ भी सुख न पाकर दूसरे विषय को ले लेता है। क्षिप्त-चित्त मनुष्य कभी उन्नति नहीं कर सकता।

(२) **मूढ़भूमिक चित्त**—ये लोग निर्बोध होते हैं। ये लोग किसी कार्य में भी उन्नति नहीं कर सकते हैं। इनकी बुद्धि मलिन होती है। देह के सुख को ही ये लोग सुख समझते हैं, पारमार्थिक ज्ञान ये लोग नहीं रखते हैं। पशु-जीवन को ही ये लोग अच्छा समझते हैं। पशुवृत्ति, आहार, निद्रा, काम-क्रोधादि लेकर ही ये लोग जीवन चलाते हैं। जगत् में मूढ़-भूमिक चित्त वाले मनुष्य अधिक हैं।

(३) **विक्षिप्तभूमिक चित्त**—ये लोग क्षिप्त और मूढ़ से श्रेष्ठ हैं। ये अपने चित्त को अधिक समय तक किसी विषय पर संयुक्त रख सकते हैं। ये लोग साधारण श्रेणी के साधक होते हैं। ये लोग साधना करके एकाग्र-चित्त हो सकते हैं और क्रमशः चित्त को निरुद्ध करके कभी जीवन को सफल भी कर लेते हैं। ये लोग ही मानव श्रेणी के हैं। इनकी संख्या बहुत ही अल्प है।

(४) **एकाग्रभूमिक चित्त** जो चित्त एक को अवलम्बन करके रहता है, उसी को एकाग्र बोला जाता है। साधन, भजन, गृहकर्म, ग्रन्थ-पाठ, समाज सेवा, राजनीति, साहित्य सेवा आदि सब कार्यों में ये लोग एकाग्र-चित्त हैं। ऐसे लोगों की संख्या कम है।

(५) **निरुद्धभूमिक चित्त**—एकाग्रचित्त में जो एक मात्र अवलम्बन था, निरोधभूमिक चित्त में वह भी नहीं रहता है। जब चित्त के अन्दर चिन्ता भी नहीं उठती है तब उसको निरोध चित्त बोला जाता है। निरोध चित्त ही मुक्त की ओर धावित होता है।

चित्त की इन पाँच प्रकार की अवस्थाओं के अन्दर पूर्व तीन प्रकार के चित्तों के साथ योग का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। परवर्ती दो चित्त एकाग्र और निरुद्धभूमिक चित्त ही योगानुकूल हैं।

प्रणव जपोपासना—प्रणव मन्त्र अर्थात् ओंकार का जप और साथ-साथ उसके अर्थ का ध्यान करना ही उपासना है।* **योगी लोग साधारणतः ईश्वर की दूसरी तरह उपासना नहीं करते हैं। केवल प्रणव मन्त्र का वाचिक और मानसिक जप और उसका अर्थ ध्यान करते हैं।** जब ये लोग वैषयिक कार्य करते हैं तब भी उनका जप और ईश्वरोपासना बन्द नहीं होती है। प्रणव मन्त्र के जप और प्रणव मन्त्रार्थ का ध्यान करते-करते उनका चित्त उसी में निविष्ट और एकाग्र हो जाता है और क्रमशः समाधि भी आ जाती है। सर्वदा प्रणव जप और प्रणवार्थ करते-करते जब चित्त निर्मल हो जाता है तब उनको प्रत्यक्-चैतन्य अर्थात् शरीरान्तर्गत आत्मा के विषय में यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। तब किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता और निर्विघ्न रूप से समाधि-लाभ होता है।

प्रणव अर्थात् **ओंकार का जप ही सर्वश्रेष्ठ जप है।** प्रणव का वाच्य ईश्वर है और ईश्वर का वाचक अर्थात् नाम प्रणव ओम् है। हम लोग स्थूल शब्द के प्रति प्रीति रखते हैं। इसलिये स्थूल शब्द के द्वारा उनको पुकारते हैं। स्थूल मन्त्रशब्द के उच्चारण और मन्त्रार्थ की चिन्ता करते-करते हमारा स्थूल के प्रति आकर्षण कम हो जाता है और क्रमशः सूक्ष्म की धारणा-शक्ति वर्धित होती है। सूक्ष्म के लिए धारणा शक्ति नहीं रहने से सूक्ष्म भगवद्भाव का ग्रहण असम्भव है। सूक्ष्म भगवान् के ध्यान के लिये अति सूक्ष्म रूप से प्रणव ओंकार का जप और मन्त्रार्थ ध्यान का विधान रखा गया है। जप और अर्थ-चिन्तन से चित्त निर्मल और शुद्ध होता है, हम सूक्ष्म ध्यान के अधिकारी होते हैं।

केवल भगवद्भाव जानने से ही जीवन चरितार्थ नहीं होता है। भगवद्भाव में तन्मय होने से ही जीवन कृतार्थ होगा। मन्त्र-जप करने से इष्ट देवता तुष्ट होती है यह तो साधारण मनोभाव है। इष्टदेव हमारे प्रति चिर प्रसन्न हैं। मलिन चित्त में भगवान् के प्रसन्न भाव की धारणा

---

* तज्जपस्तदर्थभावनम् ।।यो. १ २८ ।। देखो—ऋ. भा. भू. उपा.। ओंजप के एक हजार प्रमाणों के लिए हमारी लिखी ओंकार जपोपासना योग देखें। स्तुता मया वरदा वेदमाता भी ओं जप का विधान करता है—देखो—'सत्यार्थ प्रकाश के संशोधनों की समीक्षा तथा हमारी लिखी पातञ्जल योग साधना ऋषि ने अपने ग्रन्थों में सर्वत्र ओंजप ही लिखा है।

नहीं होती है चित्त जितना ही शुद्ध होता जायेगा उतना ही उसको प्रसन्नता का अनुभव होता रहेगा। जप करके जिसको आनन्द का अनुभव नहीं होता, जान लो उनका मन मलिन और चंचल है। विषयासक्ति ही मलिनता है। विषयाशक्ति जितनी कम होती जायेगी, ईश्वरभक्ति उतनी ही बढ़ती जायेगी। जब विषयासक्ति नहीं रहेगी तब ईश्वरभक्ति पूर्ण हो जायेगी। तब ईश्वर में मन निमग्न हो जायेगा और समाधि-लाभ होगा।

पहले-पहले जप और ध्यान टूट जाता है। इसमें निराशा का कोई कारण नहीं है। धैर्य के साथ जप और उसके अर्थ-भावना या ध्यान करने से आत्म-चेतना का उदय होगा। इसी का नाम है—'प्रत्यक् चेतनाधिगम"।❀ तब विषय-भोग में अरुचि आजायेगी। पीछे विषय-भोग में कष्ट होगा। मन्त्र का जप, ईश्वर का ध्यान और समाधि-साधना ही तब अच्छी लगेगी। विषय के प्रतिकूल और चैतन्य के अनुकूल रूप में जब चित्त धावित होता है तब ही उसका नाम "प्रत्यक्-चेतना" है।

ओंकार जप ही श्रेष्ठ जप है। ओंकार के जप में शारीरिक चांचल्य बिल्कुल नहीं होता है। **शरीर निश्चल और स्थिर नहीं होने से ध्यान या समाधि की स्थिति नहीं आती है।**

व्यंजन वर्ण के उच्चारण में हमें दन्त ओष्ठ आदि की सहायता लेनी पड़ती है अर्थात् उन सब स्थानों में क्रियायें होती हैं। क्रिया होने से ही वह सब स्थान चंचल होते हैं।

मानसिक जप से उन सब स्थानों में क्रिया नहीं होतीं। यह बात ठीक है लेकिन भीतर में मानसिक स्रोत की क्रिया और चंचलता जरूर रहती है।

१. ओंकार के जप में वह चंचलता भी नहीं रहती है।
२. ओंकार-जप एकतान के रूप में आसानी से होता है। दूसरा जप एकतान से नहीं होता।
३. स्वर वर्ण का जैसे एकतान से उच्चारण होता है व्यंजन वर्ण का वैसा उच्चारण असम्भव है। व्यंजन वर्ण के उच्चारण में अत्यधिक वाक् शक्तियों का व्यय होता है।

❀ ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। यो. स. पा.

४. ओंकार के अन्त में "म्" है। वह 'म्" कार का शब्द है। वह भी विना प्रयत्न के एकतान से उच्चारित होता है।

इसलिए चित्त का एकतान करने के लिए "ओम्" शब्द सबसे श्रेष्ठ है। इसके उच्चारण में दन्त या ओष्ठादि की सहायता की अपेक्षा नहीं है।

इन सब कारणों से **ओंकार का जप सर्वश्रेष्ठ** समझा जाता है।

यह जप श्वास-प्रश्वास के साथ भी किया जा सकता है। प्रति-श्वास और प्रश्वास के साथ जप करने में भी अर्थ-भावना की जरूरत है।

जिसके साथ हम दीर्घ काल तक रहते हैं वह अपना हो जाता है। ओंकार-जप और अर्थ-भावना से ईश्वर का संग होता है और दीर्घकाल तक जपोपासना करने से ईश्वर अपना बन जाता है, अर्थात् ईश्वर के साथ प्रेम और प्रीति का सम्पर्क स्थापित हो जाता है। जिसके संग में हम लोग रहते हैं उसके गुण भी हमें प्राप्त होते हैं। हमारा चित्त यदि भगवत्-चिन्तन में निमग्न रहे और भगवान् के नाम और उसके मर्मार्थ का स्मरण करे अर्थात् निरन्तर जप करे तो हमारी चेतना विषयों को छोड़कर ईश्वराभिमुखीन हो जायेगी। यह ही "प्रत्यक् चेतना" है।

पंचक्लेश❋

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश—ये पंच क्लेश ही मनो-धर्म हैं। ये मनोधर्म मिथ्या-ज्ञान ही हैं। यह पाँच प्रकार का क्लेश नामक मिथ्याज्ञान जिससे संचित नहीं हो सके और संचित मिथ्या-ज्ञान जिससे दग्ध हो सके इसके लिए यत्न करना ही योग-साधकों के लिए सर्वप्रधान कर्त्तव्य है।

पंच क्लेशों में अविद्या नामक प्रथम क्लेश परवर्ती चार क्लेशों की उत्पत्ति का मूल है।★ ये सब क्लेश सदा एक रूप से नहीं रहते हैं। कोई प्रसुप्त रूप में, कोई सूक्ष्म रूप में, कोई विच्छिन्न रूप में और कोई उदार या स्पष्ट रूप में चित्त-क्षेत्र में रहता है।

❋ अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः। (यो० २-३। देखो—ऋ० भा० भू० पृ० २३३। स०प्र० ९, ११ समु०)

★अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम् प्रसुप्त तनू-विच्छिन्नोदाराणाम्।।यो० २-४।

क्लेश की प्रसुप्त अवस्था—

लीन भाव में, शक्ति रूप में या प्रसुप्त रूप में रहना—ये सब एक ही बात हैं। बीज के अन्दर वृक्ष-शक्ति जिस प्रकार प्रसुप्त-लीन होकर या छिपके रहती है उसी प्रकार रहने का नाम ही प्रसुप्त अवस्था है। प्रकृति-लय और विदेह-लय योगियों के चित्त में क्लेश रहता है, लेकिन वह बीज में वृक्ष-शक्ति जिस प्रकार रहती है उसी प्रकार रहता है। बीज में जैसे अंकुरोद्गम होता है योगियों के प्रसुप्त क्लेश से ऐसे ही पुनः संसार का अंकुरोद्गम होता है।

क्लेश की तनू अवस्था

सूक्ष्म और तनू एक ही बात है। सूक्ष्म शब्द का मतलब यहाँ संस्कार का अभाव है। यह तनू क्लेश दग्ध बीज की तरह शक्तिहीन है।

क्लेश की विच्छिन्न अवस्था—

विच्छिन्न और विच्छेद-प्राप्त एक ही बात है। किसी एक वस्तु के प्रबल होने से दूसरी वस्तु का ह्रास हो तो उसका नाम विच्छिन्न अवस्था है। लोभ के समय क्रोध अभिभूत रहता है। क्रोध की वह विच्छिन्न अवस्था है।

क्लेश की उदार अवस्था—

उदार और परिपूर्ण एक ही बात है। विस्पष्ट या उज्ज्वल स्थिति में जब क्लेश रहता है तब उसकी उदार अवस्था है। उदार अवस्था में क्लेश ठीक रूप से अपने कार्य को करता है।

योगी क्रिया-योग के द्वारा उन पाँच प्रकार के क्लेशों को दग्ध बीज की तरह शक्ति-हीन कर देते हैं।* तब तो वे अनर्थ नहीं करते हैं। योगी इनको शक्ति-हीन करके तब योग या समाधि-साधन में लग जाते हैं। **चित्त के पंच क्लेशों को शक्ति-हीन करने से ही योगी होना सम्भव है।**

---

* ते प्रति प्रसवहेयाः सूक्ष्माः। यो० २-१०। देखो—'ओं तपसे स्वाहा'—यजुः ।३९-१२।—प्राणायाम आदि साधनों के द्वारा सब किल्विष का निराकरण करके ततः क्लेश कर्म निवृत्तिः। यो० ४-३० धर्ममेघ समाधि से अविद्यादि क्लेश नष्ट हो जाते हैं।

अविद्या क्लेश[1]

अनित्य को नित्य, अशुचि को शुचि, दुःख को सुख और अनात्म-वस्तु को आत्मा समझना अविद्या है। किसी वस्तु के प्रकृत स्वरूप को न जानना और उल्टा-पलटा दूसरा कुछ अन्य ही समझना अविद्या है। जैसे शरीर अनित्य है लेकिन इसको नित्य समझना, शरीर विविध रूप से अशुचि है, लेकिन उसको शुचि समझना, विषय-भोग दुःखदायक है लेकिन इसको सुखदायक समझना और शरीर आत्मा नहीं है लेकिन उसको आत्मा समझना—ये सबके सब अविद्या क्लेश हैं। जीवों को यह अविद्या क्लेश विविध प्रकार के क्लेश दान करते हैं। अविद्या जीवों के लिए अनर्थ का बीज है।

अस्मिता क्लेश[2]

आत्मा का नाम दृक्-शक्ति और बुद्धि-तत्व का नाम दर्शन-शक्ति है। यह चित् स्वरूप (आत्मा) बुद्धि-तत्व से प्रतिबिम्बित होता है। आत्मा ही यहाँ दृक्-शक्ति या द्रष्टा है और बुद्धि-वृत्तियाँ उनके प्रकाश या प्रतिबिम्बपात का आधार हैं। इस लिए इसका नाम दर्शन-शक्ति है। इसका दूसरा नाम बुद्धि-तत्व है। आत्मा और बुद्धि को (यानी दृक्शक्ति और दर्शन-शक्ति को) एक ही समझना अस्मिता है। चैतन्य और बुद्धि को एक समझना, लौह को और अग्नि के सहवास के कारण उसकी उष्णता को एक समझना ही (ऐक्य बोध या तादात्म्य-अध्यास रस) अस्मिता क्लेश है। साधारण अहं (मैं) बोध का नाम 'अस्मिता' है। आत्मा और बुद्धि को रंजित स्फटिकवत् अर्थात् रंग और स्फटिक की तरह एक रूप से समझ लेना अस्मिता है। बुद्धि में या चित्त में 'आत्मा' का बोध आरोपित करना और 'मैं और मेरा' इत्याकार प्रतीति करने का नाम अस्मिता है। इस अस्मिता से राग नामक क्लेश की उत्पत्ति होती है।

राग क्लेश[3]

सुख के अनुशय या अनुवृत्तिका नाम राग है। साक्षात्कार यानी

---

१. अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्यशुचि सुखात्मख्यातिरविद्या (यो०२-५। देखो—ऋ० भा० भू० पृ० २३४। स० प्र० ६ समु०)

२. दृग्दर्शन शक्त्योरेकात्मतेवास्मिता। यो० २-६। ऋ० भा० भू० पृ० २३४

३. सुखानुशयी रागः। यो० २-७।—देखो ऋ०भा० भू० पृ० २-३५ उपा०, स० प्र० ९ समु०

प्रत्यक्ष रूप से हो या परम्परा अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से हो एक वार सुख का अनुभव होने से वार-वार उस की याद आती है। उसके पुनः भोग के लिए इच्छा उत्पन्न होती है और उस इच्छा की पूर्ति के लिए अनेकविध चेष्टा करनी होती है। इस प्रकार की कामना या आसक्ति का नाम ही 'राग' है। इस प्रकार के राग के प्रबल रहने तक योगी होना कठिन है। इस राग से आगे द्वेष उत्पन्न होता है।

द्वेष क्लेश❋

दुःख के अनुशय या अनुवृत्ति का नाम द्वेष है। सुख के समान दुःख का भी अनुशय या अनुवृत्ति होती है। पूर्वानुभूत दुःख की याद होने के साथ-साथ दुःखदायक वस्तु के प्रति वितृष्णा-अनिच्छा या अनभिलाषा उत्पन्न होती है। इसका नाम ही द्वेष है। जिस वस्तु से एक वार दुःख हुआ है उस वस्तु के प्रति द्वेष आयेगा ही। उसके प्रति निवारण और प्रतिघात को चेष्टा भी होगी ही। क्रोध, हिंसा और प्रतारणा (विप्रलिप्सा) का भाव भी उत्पन्न होगा। ये सब के सब द्वेषभाव के रूपान्तर मात्र ही हैं। द्वेष भाव से जो हो नहीं, ऐसा कोई अकार्य नहीं है। इसलिए जब तक द्वेष भाव रहेगा तब तक योगी होने की सम्भावना नहीं है। द्वेष से ही अभिनिवेश की उत्पत्ति होती है।

मृत्युभय (अभिनिवेश) क्लेश★

वार-बार मरण-दुःखों के अनुभव के कारण चित्त में उन सब दुःखों का संस्कार बद्धमूल होता जा रहा है। इस अनुभव का नाम ही 'स्वरस' है। इस स्वरस के रहने के कारण ज्ञानी-अज्ञानी निर्विशेष से सब ही के अन्दर मरण-दुःख की छायास्वरूप या अनुवृत्ति-स्वरूप भाव विशेष निहित है। इस दुर्लक्षणवृत्ति-विशेष का नाम ही अभिनिवेश है।

किसी प्रकार के दुःख के अनुभव होने से उस दुःखप्रद वस्तु के प्रति विद्वेष और वह दुःख फिर अनुभव में नहीं आ जाय, इस प्रकार की इच्छा और उसके प्रतिरोध के लिए प्रचेष्टा उत्पन्न होती है। उस प्रकार की इच्छा का नाम हम अभिनिवेश कह सकते हैं। लेकिन योगी लोग इसको

❋ दुःखानुशयी द्वेषः (यो० २-८। देखो—ऋ०भा० भू० उ०)

★स्वरसवाही विदुषोपि तथारूढोऽभिनिवेशः। यो० २-९। देखो—ऋ० भा० भू० पृ० २३५, २६३, २६२

अभिनिवेश न कह-कर मरण-विषयक अनिच्छा को ही अभिनिवेश कहते हैं। क्योंकि दुःखों की चरम सीमा ही मृत्यु है। इसलिए जीवों में मरण-भीति अत्यधिक है। हम सबों के चित्तों में "मैं न मरूँ" ऐसी सूक्ष्म-वृत्ति निरन्तर छिपी हुई है।

प्राणी लोग शरीर, इन्द्रिय और चित्त पर "अहं" 'मैं" सम्पर्क कायम करके रहते हैं। वे धन सम्पद् पर भी "ममत्व" "मेरे" का सम्पर्क कायम करके रह रहे हैं। इन सबों से ये विच्छिन्न होना नहीं चाहते हैं। सदा ही इस भाव के साथ रहते हैं कि "मैं न मरूँ" या "मेरे धन सम्पद् का विनाश न हो"। विशेष करके मरण-दुःख की अनुवृत्ति प्राणी मात्र के अन्दर है, इसी का नाम अभिनिवेश है। यह अभिनिवेश पंचम क्लेश है। क्योंकि इसके रहने से जीव तरह-तरह के क्लेशों को प्राप्त होते हैं। इस अभिनिवेश के कारण ही जीव दुष्कर कार्य नहीं कर सकते हैं और दुःसाहसिक कार्य करने में साहस नहीं करते हैं। क्योंकि "मैं कैसे मरूँ" इस प्रकार की चिन्ता में वे सदा ही व्यस्त रहते हैं।

ऋषि पतंजलि और दूसरे ऋषि लोग स्वतः-सिद्ध मरण-त्रास को देखकर भी उससे पूर्व जन्म-सम्बन्ध का अनुमान करते हैं। प्रश्न होता है कि "कैसे मालूम हुआ कि पूर्व जन्म है ?" उत्तर दिया जाता है "अनुमान प्रमाण से मालूम हुआ।"

मरण त्रास या मरण के प्रति विद्वेष केवल मनुष्यों को है। ऐसा नहीं, कृमि-कीटादि प्राणियों को भी है। नवजात शिशु को भी है। निगूढ़तम वासनाओं के स्रोत से वहमान जीव इसको स्पष्ट रूप से नहीं समझते हैं। यदि यह ज्ञान इन्द्रियों से उत्पन्न होता तो अवश्य ही समझ लेते। लेकिन यह अनुभव इन्द्रियों से हुआ नहीं। यह केवल अन्तर्निहित गूढ़तम संस्कार-बल से ही उत्पन्न होता है। इसके कारण के अज्ञात रहने के कारण जीव स्पष्ट रूप से समझ नहीं सकते हैं कि मैं पहले भी मरा था और इसकी कठोर यंत्रणा भी मैंने भोगी थी।

सुख-दुःख विवेक*

योगी लोग कैवल्य या मोक्ष-लाभ से ही, परम सुख या कैवल्य लाभ

---

* परिणाम ताप संस्कार दुःखै गुंणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वंविवेकिनः। यो० २-१५।

से ही दुःख ताप से मुक्त हो के परम शान्ति का लाभ करते हैं, ऐसा मानते हैं। योगी लोग सब अस्थायी वस्तुओं में ही दुःख-दर्शन करते हैं। ये लोग सब वस्तुओं के अन्दर सत्व गुण के सुख, रजोगुण के दुःख और तमोगुण के मोह और इन तीनों गुणों में परस्पर विरोध दर्शन करते हुए सब वस्तुओं में दुःख-दर्शन करते हैं। हर एक सुखकर वस्तु के लाभ की प्रचेष्टा में भोग काल में समाप्त होने की चिन्ता में और समाप्त होने के बाद लोग दुःख ही का दर्शन करते हैं। इसके मतानुसार केवल अयोगी, अविवेकी और अज्ञानी ही मोह में मूढ़ और भ्रमान्ध होकर ही किसी वस्तु में सुख और किसी वस्तु में दुःख का दर्शन करते हैं। योगी लोग बोलते हैं कि जो लोग नहीं जानते हैं कि इसमें जहर है वे लोग तो इसको खा लेते हैं; लेकिन जिनको मालूम है वह कभी उस को नहीं खायेंगे। योगी लोग और ज्ञानी विवेकी लोग हर एक वस्तु को दुःख-मिश्रित समझ कर इसको दुःसह ही समझते हैं। अविवेकी जिसको सुख समझते हैं विवेकी उसको दुःख ही समझते हैं।

परिणाम-दुःख, ताप-दुःख और संस्कार-दुःख से जो ओत-प्रोत मिश्रित सुख है उसको योगी लोग मन के विकार या सुख नाम को दुःख ही समझते हैं।

इस सुख नामक मनोविकार को या सुख नामक दुःख को पाकर भोगी स्थायी रूप से इसको नहीं रख सकते हैं। सुख का अवसान हुआ, इसको सोचने से भी दुःख आ गया। भोग के कारण दुःख आयेगा ही। "भोगे रोग-भयम्" अत्यन्त भोग से रोग आक्रमण करेगा। इससे भी दुःख है। इसी का नाम "परिणाम दुःख" है।

'यह सुख अगर नष्ट हो जाय" इस तरह की दुश्चिन्ता उद्वेगादि के ताप से भी दुःख आ जाता है। इसी के आनुषंगिक रूप से और विविध पाप मनोवृत्ति, राग-द्वेष, क्रोधादि भी मन में भविष्यत् घोर दुःख के बीज वपन कर देते हैं। इसी का नाम योगशास्त्र के अनुसार "ताप-दुःख" है।

सुख-भोग करने के साथ-साथ उसका संस्कार चित्त में आबद्ध हो जाता है। यह संस्कार फिर भोगों की तरफ चित्त को खींच लेता है। इसलिये ही वारबार पूर्वानुभूत सुख के तुल्य सुखभोग के लिये चित्त में इच्छा पैदा होती है। जब तक वह नहीं मिलता है तब तक चित्त व्याकुल रहता है और दुःख बढ़ ही जाता है इसी का नाम "संस्कार-दुःख" है।

इस रूप से दु:ख तीन रूप के गिने जाते हैं, और सुख-भोग ही इन दु:खों के कारण है। योगी लोग इन सब सुखों को छद्मवेशी दु:ख ही समझ लेते हैं।

योग वृक्ष❋—योगाचार्यों ने अष्टांग योग साधना की वृक्ष के साथ तुलना की है। यम और नियम के अनुष्ठान से इसका बीज उत्पन्न होता है, आसन और प्राणायाम से यह (ह०ले०पृ०१५१) अंकुरित होता है, प्रत्याहार से यह पुष्पित होता है और इसके बाद धारणा, ध्यान और समाधि की साधना से यह योग-वृक्ष फलवान् होता है। योग के आठ अंगों के परस्पर के सम्बन्ध इसी तरह घनिष्ट हैं।

प्रत्याहार की उपयोगिता★

यम, नियम, आसन और प्राणायाम के द्वारा शरीर और मन के शुद्ध और सुसंस्कृत हो जाने से प्रत्याहार नामक योगांग की साधना सरल और सहज हो जाती है। इन्द्रिय-संयम के लिये प्रत्याहार की साधना आवश्यक है। चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक् ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां क्रमानुसार रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श इन पांच विषयों के प्रति धावित होती हैं, और आसक्त होती हैं। इनकी आसक्ति को नष्ट कर देना या विमुख कर देना ही प्रत्याहार का कार्य है। प्रत्याहार-साधना में सिद्धि आने के बाद धारणा, ध्यान और समाधि निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होती हैं।

संयम साधना❋❋

धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों मानस-प्रक्रियाओं को किसी एक अवलम्बन में से प्रयोग करने का नाम संयम है। संयम-सिद्ध योगी

❋तदयं योगो यमनियमादिभिः प्राप्तबीजभावः, आसन प्राणायामै-रंकुरितः, प्रत्याहारेण पुष्पितो, ध्यान धारणा समाधिभिः फलिष्यतीति। इति भोजवृत्तिः॥

★ स्वविषयासम्प्रयोगे चित्त-स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥ यो.२.५४॥ जब पुरुष अपने मन को जीत लेता है, तब इन्द्रियों का जीतना अपने-आप हो जाता है। क्योंकि मन इन्द्रियों को चलाने वाला है। (ऋ० भा० भू० उपा०)

❋❋ त्रयमेकत्र संयमः॥ यो. ३।४॥ संयम उपासना का नवम अंग है। (देखो ऋ. भा. भू. उपासना)।

साधकों का संकल्प या इच्छाप्रयोग अमोघ और अव्यर्थ है। संयम-शक्ति से ये लोग दुःसाध्य साधन करते हैं। मन के अन्दर कितनी महती शक्ति छिपी हुई है—इनको ज्ञात है।

धारणा की साधना*

चित्त को किसी स्थान में आबद्ध रखने का नाम ही धारणा है। किसी पवित्र और अनुद्वेग-कर स्थान में किसी योगासन से बैठ कर धारणा का अभ्यास करो। अन्तःकरण-रागद्वेष शून्य बन जाए। इन्द्रियों को विषयों से आकर्षित करके चित्त के पास समर्पण कर दो। चित्त को अब नासाग्र में, सूर्य में, हृदय में या नाड़ी-चक्रों में से किसी एक में या किसी मनोगत स्थान में, वस्तु में या विषय में धारण करो। चित्त को इस रूप से धारण करो जिससे चित्त उससे स्खलित नहीं होने पावे। प्रति दिन बार-बार चित्त को धारण करो। इससे धारणा नामक योगांग आयत्त में आ जायगा। इसी का नाम धारणा है।

ध्यान साधना★

उस धारणीय वस्तु में यदि तुम्हारी एकतानता आ जाय तो उसी का नाम ध्यान है। जिस वस्तु में तुमने अपनी बहिरिन्द्रियों (चक्षु कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्) को निरोध करके अन्तरिन्द्रिय-चित्त को धारण किया है, उस वस्तु का ज्ञान यदि अविच्छिन्न गति से और प्रवाहाकार से प्रवाहित होता हो तब उस मनोवृत्तिप्रवाह का नाम ही ध्यान है।

समाधि-साधना

वह ध्यान जब केवल ध्येय वस्तु को ही प्रकाशित करता है "मैं ध्याता हूं" 'मेरा कार्य ध्यान है" आदि सब कुछ लुप्त हो जाता है, तब उसका नाम समाधि है।

धारणा—ध्यान—समाधि का भेद—धारणा में धारणा रूप क्रिया', 'धारणा रूप क्रिया का कर्त्ता मैं हूं' और 'धारणा की वस्तु'—इन तीनों का ही बोध रहता है। ध्यान में 'मैं ध्यान करता हूं' और 'ध्येय वस्तु दूसरा है' यह भाव रहता है। समाधि में सब कुछ लुप्त होकर केवल 'ध्येय वस्तु' ही रहती है। 'मैं ध्याता हूं'—यह भी लुप्त हो जाता है। धारणा से ध्यान

* देश बन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ यो. ३. १ ॥ देखो-हुगली शास्त्रार्थ, ऋ. भा. भू. उपासना। स. प्र. ७ समु. ॥

★ तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ यो ३.२. ॥ देखो—हुगली शास्त्रार्थ। ऋ. भा. भू. उपा०। स. प्र. ९ समु०—७ समु०।

और ध्यान से समाधि के क्रमानुसार अभ्यास करना चाहिये। संयम साधना में किसी एक ही विषय पर धीरे से क्रमानुशार धारणा, ध्यान और समाधि का प्रयोग किया जाता है।

संयम साधना का क्रम—योग-साधक प्रथमतः स्थूल-स्थूल विषयों पर संयम प्रयोग का अभ्यास करते रहें। उसके आयत्त हो जाने के बाद क्रमानुसार सूक्ष्म-सूक्ष्म विषयों पर संयम-अभ्यास करना चाहिये। चित्त जब स्थूल में तन्मय होता है और उस समय साथ में विकल्प ज्ञान भी रहे तब उस तन्मयता का नाम "सवितर्क"[१] है और यदि विकल्प ज्ञान नहीं रहता है तब उस तन्मयता का नाम "निर्वितर्क है[२] अर्थात् स्थूल अवलम्बन में तन्मय होने से ही उसका नाम "सवितर्क" और विकल्प ज्ञान न रहने से ही उसका नाम "निर्वितर्क" है। सवितर्क समाधि का अवलम्वन स्थूल महाभूत और इन्द्रिय गण हैं। सविचार समाधि का अवलम्बन मन, बुद्धि, अहंकार और पंच तन्मात्रायें हैं[३] सानन्द समाधि[४] का अवलम्बन शुद्ध सत्त्वगुण है जो कि अन्तःकरण का प्रकाश है। जिससे बुद्धि निर्मल होती है और जिसके साथ नाममात्र रजोगुण का विक्षेप और तमोगुण का आवरण मिला हुआ है। सास्मिता[५] समाधि में अवलम्बन विशुद्ध सत्त्वगुण है।

अन्तरंग और बहिरंग योग[६]

योग के अन्दर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार बहिरंग साधना के रूप में और आगे संयम (धारणा, ध्यान, समाधि) अन्तरंग साधना के रूप में हैं। बहिरंग साधना से शरीर की जड़ता की निवृत्ति,

---

१. तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ यो. ॥१-४२॥ देखो व्यासभाष्य।

२. स्मृति परिशुद्धौ स्वरूप शून्येवार्थमात्र निर्भासानि र्वितर्का ॥ यो० १।४३ ॥ देखों व्यास भाष्य

३. सूक्ष्म विषयत्वञ्चालिंग पर्यवसानम् ॥ यो. १. ४५ ॥ सूक्ष्मो-विचारः-व्यासभाष्य.

४. आनन्दो ह्लादः। व्यास भाष्य-१.१७ ॥

५. एकात्मिका संविदस्मिता ॥-१. १७ ॥

६. त्रयमन्तरंगं पूर्वेभ्यः ॥ यो. ३.७॥

इन्द्रियों की तीक्ष्णता और चित्त की निर्मलता प्राप्त होती है, इसके आगे संयम के द्वारा चित्त को सूक्ष्मादपि सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम पदार्थ में प्रयोग किया जाता है।

एकाग्रता परिणाम❀

किसी ध्येय वस्तु का अवलम्बन करने से पहले जो तदाकार वृत्ति का जन्म होता है उसका विलोप होते-होते यदि फिर तदाकार दूसरी वृत्ति का जन्म होता हो तो उस संलग्न रूप से उत्पन्न अतीत और वर्तमान, लुप्त और उज्ज्वल दोनों वृत्तियों को "एकाग्रता-परिणाम" समझना चाहिये। यहाँ वृत्ति का अभिप्राय ज्ञानांश है। एक वृत्ति के बाद दूसरी वृत्ति उदित होने से दोनों के स्थिति काल का संकलन ६ क्षण है।★ एक निमेष चतुर्गुण काल क्षण है। एकाग्रता-काल अविच्छिन्न रूप से १२-गुणित होने से धारणा काल (६×१२=७२ क्षण) होता है। अविच्छिन्न धारणा काल को १२ गुणित करने से ध्यान काल (७२×१२=८६४ क्षण) है। अविच्छिन्न ध्यान काल को १२ गुणित करने से (८६४×१२ =१०३६८ क्षण) समाधि काल है और समाधि काल को १२ गुणित करने से (१०३६८×१२=१२४४१६ क्षण) ही सम्प्रज्ञात योग काल है। अब अनुमान किया जा सकता है कि वृत्ति प्रवाह को स्थिर रखने में या समाधि लाने में कितने समय की आवश्यकता है।

समाधि परिणाम❀❀

विविध और बहुत प्रकार की वृत्तियों के लोप होने के बाद चित्त में केवल मात्र एक वृत्ति के प्रवाह आने से उसका नाम हुआ समाधि परिणाम। बहुत विषयों के प्रति धावित होना और मात्र एक ही विषय में धावित होना दोनों ही चित्त के स्वधर्म हैं। एक ही विषय में चित्त को आबद्ध रखना ही समाधि-अभ्यास है।

❀ ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ ३. १२.

★ ऐकनिमेषेर चतुगुणित काल क्षण ॥ हस्तलेख-१५७ ॥

❀❀ सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः॥ यो. ३-११॥

(१) संयम-साधना में परिणामत्रय का ज्ञान[1]

जरूरी है। पंचभूतों में और इन्द्रियादि भौतिक वस्तुओं में तीन परिणाम हैं—१. धर्म परिणाम, २. लक्षण-परिणाम ३. अवस्था-परिणाम।

मान लो पाँच भूतों में मिट्टी एक भूत है। पिंडाकार में कुछ मिट्टी पड़ी हुई है इसमें तीन परिणाम हैं। यहाँ पिंडत्व इसका धर्म परिणाम है। जब यह घटाकार बन जायगा तब इसमें घटाकारत्व-धर्म आ जायगा। यह इसका धर्म-परिणाम है।

अतीत, वर्तमान और भविष्यत् कालत्रय में इस घट का अति सूक्ष्म जो परिवर्तन मालूम पड़ता है—उसका नाम लक्षण-परिणाम है।

जब इसका अवस्था-भेद देखा जाता है—जैसे नूतनत्व, पुरातनत्व, उज्ज्वलत्व, मलिनत्व, क्षय-प्राप्ति तब इसका नाम अवस्था परिणाम है। पाँच भौतिक शरीरों में जन्म, शैशव, बाल्य, कैशोर यौवन, जरा मृत्यु भी अवस्था-परिणाम हैं।

(२) संयम-साधना में आभ्यन्तर परिणाम-सप्तक का ज्ञान[2]

जरूरी है। पांच भौतिक जगत् के पंच भूतों में और इन्द्रियादि भौतिक वस्तुओं में जैसे तीन परिणाम हैं ऐसे ही आभ्यन्तर वस्तु चित्त में परिणाम बहुत प्रकार के हैं। सुख, दुःख, लाभ, हानि, सौभाग्य, दौर्भाग्य, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि के परिणाम चित्त में प्रत्यक्ष रूप में अनुभव योग्य हैं। लेकिन १. निरोध परिणाम, २. कम (पाप-पुण्य) परिणाम ३. कर्म-जन्य संस्कार परिणाम, ४. जीवन परिणाम, ५. क्रिया परिणाम, ६ शक्ति परिणाम और ७ काल परिणाम—ये सात परिणाम साक्षात् अनुभव के बाहर होने पर भी चित्त, मन, बुद्धि पर प्रभाव डालते हैं।

(३) संयम-साधना में धर्मत्रय का ज्ञान[3]

जरूरी है। जो कुछ धर्म या शक्तिविशेष का आश्रय है वह धर्मी है। हर एक प्राकृतिक द्रव्य ही १ शान्त २ उदित और ३ अव्यपदेश्य—

---

१. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ।। यो० २-१३ ।।

२. क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ।।३-१५।।

३. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।।३-१६।।

इन तीन धर्मों के साथ युक्त है। जैसे बीज और अंकुर है। १. अंकुर में बीजत्व 'शान्त' धर्म है। २.बीज अपने अंकुर रूप कार्यको सृजन करके अस्त-मित या 'शान्त-धर्म' में आ गया है अंकुर का अब 'उदित धर्म' है। ३. अंकुर में वृक्षत्व छिपा हुआ है वह वृक्षत्व अंकुर में 'अव्यपदेश्य धर्म' में है। पीछे 'उदित' धर्म में आ जायगा।

(४) **संयम-साधना में पंच मनोवृत्तियों का ज्ञान***

जरूरी है। मनुष्यों की मनोवृत्तियाँ पाँच भागों में विभक्त हैं—
१ क्षिप्त, २ मूढ़ ३ विक्षिप्त, ४ एकाग्र ५ निरुद्ध।

(क) क्षिप्त – बाह्य-वस्तुओं की कामना में जब मन अस्थिर और चंचल रहता है। मन किसी एक विषय में निविष्ट नहीं रहता। विषय से विषयान्तर में दौड़ता है। सन्तुष्ट नहीं रहता है। सदा ही अति व्यस्त रहता है। यह ही मन की क्षिप्त मनोवृत्तियाँ है।

(ख) मूढ़—मन जब धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य को नहीं सोचता, काम, क्रोध, लोभादि का वशीभूत होता है। निद्रा, तन्द्रालस्यादि के अधीन रहता है तब उसकी वह मूढ़ मनोवृत्ति है।

(ग) विक्षिप्त—मन की चंचलता के अन्दर जब कभी कभी-दुःख-जनक विषयों को छोड़ कर सुखजनक विषयों को पकड़ लेता है और उसी में स्थिर हो जाता है उसी का नाम मन की विक्षिप्त मनोवृत्ति है।

(घ) एकाग्र—चित्त जब किसी बाह्य वस्तु या आभ्यन्तर वस्तु में स्थिर और अचंचल रहता है तब चित्त की रजोवृत्ति और तमोवृत्ति अभि-भूत हो जाती है। केवल शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल प्रकाशमय सुखकर और उज्ज्वल ज्ञान-दीप्तिमयी सात्त्विक वृत्ति का ही उदय होता है। यह ही मन की एकाग्र वृत्ति है।

(ङ) निरुद्ध—एकाग्र वृत्ति में चित्त का कोई न कोई अवलम्बन रहता ही है। लेकिन निरुद्ध वृत्ति में किसी प्रकार का भी अवलम्बन नहीं रहता है। तब चित्त अपनी कारणीभूत प्रकृति में प्रलीन रहता है। और मानो कृतकार्य हो गया, इस रूप से निश्चेष्ट रहता है। (ह०ले० १६२ पृ०)

*व्युत्थान निरोध संस्कारयोरभिभव प्रादुर्भावौ निरोधक्षण चित्ता-न्वयो निरोधपरिणामः ।।यो ३-९।।

वह केवल मात्र संस्कार भावापन्न ही रहता है। उसमें तब किसी प्रकार का विसदृश परिणाम भी नहीं देखा जाता है। चित्त की इन पाँच स्थितियों के अन्दर क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त चित्तवृत्तियों का योग के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। केवल एकाग्र और निरोध चित्तवृत्तियों को योग साधन में व्यवहार किया जा सकता है। निरुद्ध वृत्ति ही योग साधन के लिए सर्वोत्तम वृत्ति है। क्षिप्त, मूढ़, और विक्षिप्त वृत्तियों को दूरीभूत करने के बाद ही निरुद्ध वृत्ति का उदय हो सकता है।

(५) संयम-साधना में व्युत्थान और निरोध परिणामों का ज्ञान जरूरी है। (क) चित्त के क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त—इन राजसिक परिणामों का ही नाम "व्युत्थान परिणाम" है। चित्त की प्रज्ञात स्थिति भी व्युत्थान परिणामों में सम्मिलित है और विशुद्ध सत्त्व परिणाम एकाग्र और निरोध ही "निरोध-परिणाम" है। चित्त की स्थिरता या निर्वृत्तिक अवस्था ही "निरोध परिणाम" है।

अवस्था भेद से योग चतुर्विध है*

(१) प्राथम-कल्पिक (२) मधुमती भूमिक (३) प्रज्ञा-ज्योति और (४) अतिक्रान्त मानवीय। योग शिक्षा में जो लोग नये हैं योग जिनका दृढ़ नहीं हुआ है, जो लोग थोड़े दिनों से ही संयम-साधना में (धारणा-ध्यान-समाधि की साधना में) प्रवृत्त हुए हैं, वे लोग किसी प्रकार के ऐश्वर्य, सिद्धि, विभूति, सिद्ध पुरुषों के भाव या ज्ञानी पुरुषों के दिव्य भाव—कुछ भी अनुभव नहीं करते हैं। ये लोग 'प्राथम कल्पित" स्थिति में हैं।

(२) इस प्राथम स्थिति का अतिक्रमण करके योग साधक द्वितीय 'मधुमती भूमि' में आ जाते हैं। तब वे लोग 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' लाभ करते हैं।

(३) पाँच भौतिक वस्तु और इन्द्रियों को जय करके जब वे लोग परवर्ती सिद्धि सर्वज्ञातृत्वादि लाभ के लिये प्रयत्न करते हैं तब इनको "मधुभूमिक" योगी बोला जाता है। ठीक इसी समय अपने अन्दर कुछ न कुछ अतीन्द्रिय शक्ति का अनुभव होता है। "देवताओं के प्रलोभन" नाम से यह शक्ति अभिहित होती है। इस प्रलोभन को अतिक्रमण करके साधना में ही तत्पर रहने से योगी तृतीय स्थिति "प्रज्ञा ज्योति" में पहुंच जाते हैं।

---

* देखो—स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसंगात् ।। यो० ३-५१ का व्यास भाष्य।

(४) वे लोग अत्यधिक विवेक ज्ञान सम्पन्न होते हैं अर्थात् पुरुष प्रकृति के भेदनिर्णय में तत्पर हो जाते हैं। विवेक ज्ञान के अवान्तर फलों के प्रति वे लोग अनासक्त रहते हैं। समाधिकाल में भी किसी प्रकार का विघ्न नहीं उठता है और वे जीवन्मुक्तों की स्थिति में आ जाते हैं। वे लोग ही चौथी स्थिति "अतिक्रान्त भावनीय" में पहुँच जाते हैं।

योग-लभ्य विभूतियाँ❀

इन चार स्थितियों के "प्राथम कल्पिक" योगी लोग किसी प्रकार की अतीन्द्रिय शक्ति का अनुभव नहीं करते हैं अर्थात् कोई सिद्ध पुरुष या देवता के या दिव्य गुण का दर्शन नहीं पाते हैं। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्थितितों के योगी लोग ही भिन्न २ अतीन्द्रिय शक्तियों के अनुभव और उनको लाभ करते हैं। योगी लोग इसको ही "देवदर्शन और सिद्धपुरुष दर्शन" बोलते हैं। इन्हीं शक्तियों से त्रिविध योगियों के अन्दर बहुत योगी क्षुब्ध और विस्मित हो जाते हैं।

इस प्रकार की विभूतियों को या ऐश्वर्यों को देख कर जो योगी प्रलुब्ध और विस्मित होते हैं उनका योगिक उत्कर्ष से पतन हो जाता है। योग विद्या के और साधना के एकमात्र उद्देश्य का नाम ही कैवल्य-लाभ या मोक्ष-लाभ है। यौगिक विभूतियाँ विघ्नों के रूप में या परीक्षा के रूप में आ जाती हैं। यहाँ ही बहुत योगियों का योग भंग और पतन होता है। विस्मय आ जाने से मोक्ष या कैवल्य-लाभ से पहले ही कृत-कृत्यता बोध आ जाता है, किसी को संग और भोगेच्छा भी आ जाती है। रामायण, महाभारत या पुराणों में इस प्रकार के दृष्टान्त बहुत हैं। विस्मय भी विघ्न है। इसको भी वर्जन करना चाहिये। किसी तरह से लुब्ध या मुग्ध नहीं होना चाहिये। तब मोक्ष का कैवल्यभाव होगा। अन्यथा संसार, सुख दुःख, बन्धन, जन्म-मृत्यु सब-कुछ ऐसे ही बने रहेंगे।

स्मरणातीत काल से योगी लोगों ने भिन्न-भिन्न स्थान और विषयों पर संयम (धारणा-ध्यान-समाधि) के प्रयोग से असंख्यप्रकार की विभूतियों★ के अनुभव किये थे। ऋषि पंतनजलि ने अपने राजयोग सूत्रों के विभूति-

---

❀स्थान्युपनिमन्त्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसंगात् ॥३-५१॥

❀जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥यो. ४-१॥ समाधिजन्त्रय सिद्धयाँ ही विभूतियां हैं ॥—स० "स्वयं योगाभ्यास कर सिद्धियों के देख लेवें। इससे उत्तम बात दूसरी कोई भी नहीं है। ऋषि का अल्काट को पत्र—पत्र सं०-६३।

पाद में बहुत विभूतियों को, उनके प्राप्ति के उपायों को, संयम-प्रयोगों को लपिवद्ध किया था। उन्हीं का प्रचार साधारण में होता है। इन सब के अतिरिक्त बहुत प्रकार की सिद्धि, विभूति या ऐश्वर्यों का अनुभव योगी साधकों के समाज के अन्दर प्रचलित है।

कलकत्ते के कई एक विज्ञ और प्रभावशाली पुरुषों ने मुझसे पातंजल योग दर्शन की (युक्तियुक्त व्याख्या के साथ) विभूतियों की वर्णना सुनने की प्रार्थना की है। मैं अवश्य इन सब विभूतियों पर प्रकाश डालूंगा। आप लोग बहुत आदमी इन सबको जादू-विद्या, भोज विद्या, डाकिनी विद्या या कुहुक विद्या भी समझ लेंगे, इसमें मुझे आपत्ति कुछ भी नहीं है।

योग की शिक्षा और साधना में छः वर्ष

मेरे परम मित्र पण्डित प्रवर ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर से अनुरोध-पत्र आया है। योग-साधना के बारे में आपके अनुभव में जो कुछ है, आप करीव-करीब सब कुछ ही बोलने की कृपा करें। क्योंकि कितावों में ज्ञान का रहस्य मिलता है। साधना का रहस्य नहीं मिलता है।" विद्यासागर जी का अनुरोध मुझे सहर्ष स्वीकार है मैं यथाशक्ति इसका वर्णन करूँगा।

मैंने चाणोद, कर्णाली, व्यासाश्रम और अहमदाबाद के निकट श्मशान के दुग्धेश्वर मन्दिर में भिन्न-भिन्न योगी गुरुओं से २४, २५ वर्ष की उम्र से २७-२८ वर्ष की उम्र तक तीन वर्ष काल योग-विद्या की शिक्षा और अभ्यास में बिताया था। पीछे ३० वर्ष की उम्र तक तीन वर्ष काल आबू-शैल में योग-व्रत धारण करके योग की साधना और तपस्या में बिताया था। मेरे प्रति गुरुओं की बहुत ही कृपा थी। मैं योग के बारे में जो कुछ कहूंगा उनकी दी हुई शिक्षा और साधना से जो कुछ **अनुभव मैंने पाया है उसी को मैं कहूंगा।**

जप-धारणा-ध्यान-समाधि के वैशिष्ट्य—ये चारों एक ही वस्तु हैं। प्रणव-मन्त्र का जप अविराम गति से करने के बाद जप गाढ़ होकर धारणा रूप में आ जाता है। उसी प्रकार धारणा करने से धारणा गाढ़ हो कर ध्यान-रूप में आ जाती है। उसी प्रकार ध्यान करने से ध्यान गाढ़ होकर समाधि रूप में आ जाता है। जप में सब कुछ रहते हैं। जप क्रिया के बाद धारणा में धारणा क्रिया, धारणा-कर्ता और धारणा का विषय इन तीनों विषयों का ज्ञान रहता है। ध्यान में ध्यान-कर्त्ता मैं और मेरा ध्येय दोनों रहते हैं। समाधि में केवल ध्येय विषय ही रहता है और ध्याता का अस्मित्व ध्येय में विलीन हो जाता है यह चित्त का सर्वोत्कृष्ट स्थैर्य है।

प्रत्याहार और धारणा का भेद:—धारणा का अर्थ है चित्त को एक ही विषय में धारणा करना अर्थात् चित्त के अन्दर केवल एक ही विषय का चिन्तन करना। प्रत्याहार की साधना में इन्द्रियों को विषयों के सम्बन्ध से पृथक् कर देने से ही धारणा सम्भव होती है। खंड-खंड ज्ञान-वृत्ति का नाम धारणा है और अखंड एकतान ज्ञान-वृत्ति का नाम ध्यान है। समाधि सम्पूर्ण तन्मय भाव है। समाधि से ही आत्म-दर्शन होता है।

धारणा, ध्यान और समाधि से सम्प्रज्ञात समाधि होती है। **सम्प्रज्ञात** समाधि में कोई न कोई विषय अवलम्बन के रूप में रहता है। सम्प्रज्ञात समाधि में ध्यान का विषय या बीज रहता है अतः उसका नाम सबीज समाधि है।

जिस समाधि में वह नहीं रहता है उस का नाम **निर्बीज** समाधि है। धारणा, ध्यान और समाधि निर्बीज समाधि का बहिरंग है और केवल पर **वैराग्य ही निर्बीज समाधि का अन्तरंग है**।

सबीज साधना नहीं करने से निर्जीव साधना सम्भव नहीं है यदा-कदा किसी विषय पर स्वल्प मात्रा में भी आसक्तिरहेगी और जब तक विषय-चिन्तन रहेगा तब तक सबीज है। और जब साधक सम्पूर्ण रूप से विषयासक्ति हीन हो जायेगा, स्वल्प मात्रा में भी विषयासक्ति नहीं रहेगी यानो परवैराग्य होगा तब ही उनकी निर्बीज समाधि सम्भव है।

संस्कार और प्रत्यय—चित्त के अन्दर संस्कार रहते हैं। संस्कार से प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। संस्कार और प्रत्यय एक नहीं हैं। संस्कार भंडार के रूप में हैं और प्रत्यय उसमें सन्निहित रहता है। संस्कार रहने से ही प्रत्यय नहीं उठता है। प्रत्यय उठने के कारण और स्थितियाँ होनी चाहिये। सद्यो-जात शिशु के अन्दर काम क्रोधादि के संस्कार हैं लेकिन उनसे काम-क्रोधादि के प्रत्यय नहीं उठते हैं। (१७० ह.ले.) अवस्था-वृद्धि के साथ-साथ वे प्रत्यय आ जाते हैं मन या चित्त से ही भिन्न-भिन्न समय में या भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रत्ययों का उदय होता है। चित्त में पापों के संस्कार रहने से पापों का प्रत्यय उठता है और पुण्यों का संस्कार रहने से पुण्यों का प्रत्यय उठता है। जिसके अन्दर क्रोध का संस्कार है और सदा ही क्रोध के संस्कार उठते हैं। क्षमा-गुण का अव-लम्बन करने से उसके अन्दर क्षमा के संस्कार संचित होते रहेंगे और क्षमा

के संस्कार चित्त के अन्दर रहते हुए क्रोध के संस्कारों को विनष्ट करेंगे। इसी का नाम देवासुर संग्राम है। हमारे अन्दर सदा देवासुर संग्राम चल रहा है। कभी देवों का जय होता है और कभी असुरों का जय होता है। जागरण में और स्वप्न में यह युद्ध चालू है।

निरोध और व्युत्थान का युद्ध*

प्रत्ययों के उठने का नाम ही व्युत्थान है और उनके दबे हुए रहने का नाम ही निरोध है। निरोध और व्युत्थान संस्कार दोनों ही चित्त में रहते हैं। समाधि-अभ्यास के द्वारा निरोध संस्कारों को वर्धित करना और व्युत्थान-संस्कारों को विनष्ट करना चाहिये। निरोध और व्युत्थान परस्पर विरोधी हैं। निरोध का परिमाण ज्यादा होने से व्युत्थान कम होता है और व्युत्थान का परिमाण ज्यादा होने से निरोध कम हो जाता है। व्युत्थान-संस्कार से समाधि भंग होती है और निरोध-संस्कार से समाधि गाढ़ होती है। निरोध परिमाण पूर्ण होनें से व्युत्थान परिणाम निःशेष रूप से विनष्ट हो जाता है और व्युत्थान संस्कार क्षय प्राप्त होनें से चित्त संस्कार-शून्य होता है। इस रूप से चित्त संस्कार शून्य होने से ही चित्त लय प्राप्त होगा जिसे योगी लोग चाहते हैं। ये सब संयम साधना की प्रस्तुत मात्र ही है।

---

* निरोध व्युत्थान संस्कारयोर्भिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षण चिन्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥ यो० ३-९ ॥

चतुर्थ अध्याय

योग की विभूतियाँ

संयम का बल★

किसी विषय पर से धारणा, ध्यान और समाधि के प्रयोग करने से संयम बनता है। संयम ही प्रकृत योग बल है। इसी संयम से ही अतोन्द्रिय शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। दुःसाध्य कर्म साधित होता है और कैवल्य या मुक्ति तक मिलती है। योग की विभूतियाँ या ऐश्वर्य संयम से ही आ जाते हैं। महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन के विभूति पाद में संयम लभ्य विभिन्न विभूतियों के वर्णन किये हैं। जिसकी साधना अभ्यास के लिए बहुत ही कठोरता के साथ आवू शैल में मेरा तीन वर्ष का काल बीत गया था। अपनी व्यक्तिगत अभिज्ञता और अनुभूति से ही मैं उनमें से कई एक विभूतियों और ऐश्वर्यों का वर्णन करूँगा। मैंने पहले ही आपसे अनुरोध किया था कि **मेरी मृत्यु तक इसका प्रकाशन नहीं होना चाहिये।**

प्रज्ञालोक की प्राप्ति❋

महर्षि पतंजलि ने कहा है कि संयम को जय करने से प्रज्ञालोक (प्रज्ञा+आलोक) मिलता है। यह परीक्षित सत्य है। संयम जब परिपक्व और स्वाभाविक होजाता है तब समाधि-प्रज्ञा का आलोक मिलता है। इस आलोक के प्रकाशित होने से अलौकिक ज्ञान और शक्ति-लाभ होता है। चिन्तनीय विषयों का पूर्णज्ञान आ जाता है। स्थूल दृष्टि से या स्थूल ज्ञान से हम लोग वस्तुओं के आंशिक स्थूल तत्त्वों को जान सकते हैं, किन्तु

★ त्रयमेकत्र संयमः ।यो० ३-४।

❋ तज्जयात् प्रज्ञालोकः ।यो० ३-५।

समाधि ज्ञान के सूक्ष्म ज्ञान से हम लोग वस्तुओं के बारे में स्थूल-सूक्ष्म सब कुछ जान सकते हैं। उपस्थित आचार-व्यवहार कार्य प्रणाली देखकर हम लोग किसी मनुष्य के बारे में स्वल्प ही जान सकते हैं लेकिन समाधि जात सूक्ष्म दृष्टि से हम लोग उसके जीवन के भीतर-बाहर प्रकाशित-अप्रकाशित सब कुछ जान सकते हैं। चिकित्सक बीमारों को, शिक्षक छात्रों को, विचारक अभियुक्त व्यक्तियों को या विक्रेता-क्रेताओं को कुछ न कुछ मनः-संयम के प्रयोग से दूसरे व्यक्तियों से अधिक समझ लेते हैं। यह संयम जब इच्छाधीन किया जा सकता हैं तब ही समझा जायेगा कि संयम-जय हो गया है। इसी का नाम प्रज्ञालोक है। संयम-साधन से यहाँ ज्ञानालोक परिपूर्ण रूप से आ जाता है।

भूत-भविष्यत् का ज्ञान-लाभ*

हम लोग वर्तमान को देखकर कुछ-न-कुछ अतीत और भविष्यत् की अवस्था जान लेते हैं। जिनकी बुद्धि जितनी सूक्ष्म और स्थिर होगी, वे उतने ही सूक्ष्म विचार से अधिकतर निश्चित सिद्धान्त में पहुँच जायेंगे। संयम साधक योगी का चित्त अत्यधिक स्थिर और सूक्ष्म होने के कारण वे अतीत और भविष्यत् को अत्यधिक अनुभव कर सकते हैं। पतंजलि के मतानुसार वस्तुओं के त्रिविध परिणाम—(धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम) को और व्यक्तियों के चित्त के सप्त परिणाम, (निरोध परिणाम, कर्म परिणाम, संस्कार परिणाम, क्षण परिणाम, जीवन परिणाम, क्रिया परिणाम और शक्ति परिणाम) को समझकर उन पर संयम प्रयोग करने से अर्थात् चित्त में धारणा, ध्यान, प्रवाह और समाधि की स्थिरता की उत्कट शक्ति को एक साथ प्रयोग करने से उस वस्तु या व्यक्ति के पूर्व वृत्तान्त और भविष्यत् की सम्भाव्य घटनायें प्रत्यक्षवत् प्रतिभासित होंगी।

सर्व जीवों के शब्द और भाषाओं का ज्ञान-लाभ**

ऋषि पतंजलि ने कहा है कि शब्द, अर्थ और प्रत्यय के परस्पर

---

* परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।३-१६

** शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरः तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुत ज्ञानम् ।३-१७।

अध्यास के कारण स्मृति में संकर होती है, परन्तु इन तीनों के प्रविभागों में संयम करने से सर्व जीवों के शब्दों शब्दों का ज्ञान हो जाता है।

ऋषि का कहना यह है कि हम लोग सब मनुष्यों की, पशु, पक्षी, सर्प-कीट-पतंगादि सर्वजीवों की भाषाओं को समझ सकते हैं। यदि हम लोग उन भाषाओं के शब्द अर्थ प्रत्ययों को अलग-अलग करके उन सब में संयम का प्रयोग करें, तब जैसे मनुष्य मनुष्यों की भाषाओं को वैसे ही सर्प आदि प्राणियों की भाषा को पृथक्-पृथक् समझ सकते हैं। अलग-अलग भाषाओं को समझ लेते हैं। व्यक्ति सामान्य दूसरे को भाषा को नहीं समझते हैं, केवल मनोभावों और गतिविधियों से थोड़ा बहुत समझ लेते हैं। अब प्रश्न आता है मामूली आदमी दूसरे प्राणियों की भाषा क्यों नहीं समझते हैं? संयम प्रयोग करने से योगी लोग कैसे समझते हैं?

पतंजलि ने इसमें हेतु दिखाया है कि मामूली आदमी शब्दों के साथ अर्थ और प्रत्ययों में अलग-अलग संयम प्रयोग करके उच्चारित शब्दों के अभिप्रायों को नहीं समझते हैं।

अब शब्द, अर्थ और प्रत्यय का अभिप्राय समझना चाहिये।

शब्द—एक प्रकार की ध्वनि जो कि श्रोत्र रूप इन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य पदार्थ है।

अर्थ—उस श्रोत्र रूप इन्द्रिय से ग्राह्य पदार्थ की जाति, गुण और क्रियादि का आश्रय।

प्रत्यय—उस पद-अर्थ के आकार से पदार्थ प्राप्त ज्ञान।

शब्द, अर्थ और प्रत्यय (=ज्ञान) भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन ये एक ही विषय-जैसे हमारे मन में उदित होते हैं। (ह०ले० पृ० १७६)

(१) **शब्द**—मान लो 'गौ' एक शब्द है। यह वाग् यंत्र से उच्चारित हुआ और कर्ण ने उसको ग्रहण किया। इस शब्द का आश्रय स्थल हमारा वाग् यंत्र ही है।

(२) **अर्थ**—इसका अर्थ एक चतुष्पद् प्राणी है, चार पैर, दो शृंग और एक पुच्छ वाला है। गौशाला इसका आश्रय स्थल है।

(३) **ज्ञान**—प्रत्यय (ज्ञान) भी एक भिन्न तत्त्व है और इसका आश्रयस्थल चित्त है।

इन तीनों विषयों को हम लोग पृथक्-पृथक् नहीं लेते हैं। एक साथ एक ही विषय के समान ले लेते हैं। यह तीनों विषयों का मिश्रित ज्ञान है। इस रूप से लेने से किसी एक विषय का सुस्पष्ट ज्ञान हमको नहीं मिलता है। हमारा यह ज्ञान शब्द, अर्थ और प्रत्यय के बारे में सुस्पष्ट या स्फुट ज्ञान नहीं है। इसमें से किसी एक का स्फुट ज्ञान पाने के लिए केवल उस पर ही संयम का प्रयोग करना पड़ेगा। एक के स्फुट ज्ञान से अपर दोनों को छोड़ देना होगा। तब ही उस विषय में पूर्ण और स्फुट ज्ञान होगा।

भाषा से भाव का प्रकाश होता है। प्रत्येक जीव भाषा या शब्द के द्वारा मनोभाव का प्रकाश करता है और समजातीय जीव उसको समझ लेता है। भाषा या शब्द की भिन्नता होने पर भी भाव की भिन्नता नहीं है। संयम सिद्ध योगी संयम के द्वारा सब प्राणियों के ही मनोभाव समझ लेते हैं। मनोभाव ही भाषा का रूप ग्रहण करके निकलता है। मनोभाव अव्यक्त है, मामूली आदमी उसको नहीं जानता है। भाषा व्यक्त और मनोभाव अव्यक्त, अप्रकाशित है। अव्यक्त में स्थिति तमोभाव है। रजोगुण के द्वारा यह उत्तेजित होता है और सत्त्वगुण के द्वारा प्रकाशित होता है।

भाव की भिन्नता नहीं है, भाषा की भिन्नता है। सबके वाग् यंत्र भी समान नहीं हैं। इसलिए भिन्न-भिन्न प्राणी वाग् यंत्रो के अनुसार अपनी अपनी भाषा का उच्चारण करते हैं। इन शब्दों को छोड़कर केवल अर्थ-मात्र में संयम प्रयोग के द्वारा हम लोग सब प्राणियों के मनोभावों को जान सकते हैं। शब्द और अर्थ या प्रत्यय को मिश्रित रूप से ग्रहण करने से हम लोग मनोभाव को नहीं जान सकते हैं। चित्त शब्द-पथ से शब्दों के उत्पत्ति स्थान वाग् यंत्र में जाता है और आगे वाग्यंत्र की क्रिया के उत्पत्ति स्थान मन में प्रवेश करता है। इस रूप से मनोभाव जाना जाता है। श्रोता इस रूप से वक्ता के मनोभाव को पूर्णतया जान सकते हैं। साधारण मनुष्य की सूक्ष्म दर्शन शक्ति नहीं है, लेकिन योगी की सूक्ष्म दर्शन शक्ति है। योगी शब्द मात्र में संयम प्रयोग करके और वर्णादि की सहायता के विना ही अपर के मन में जो पद विद्यमान है उसको जान सकते हैं। अपर अपने मनोभाव को वर्णों के द्वारा प्रकाश नहीं भी करे, योगी उसकी मनोगत चिन्ता को भी समझ लेते हैं। इस प्रकार योगी शब्द, अर्थ और प्रत्यय को प्रविभाग से संयम में लाकर सभी प्राणियों के उच्चारित शब्दों के अर्थ-

ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। योगी धारणा, ध्यान और समाधि को क्रमानुसार तीक्ष्ण और तीव्र रूप से प्रयोग करके अर्थात् संयम के द्वारा सभी प्राणियों के शब्द या भाषाओं को समझ लेते हैं।

पूर्व जन्मों का ज्ञान-लाभ*

महर्षि पतंजलि ने कहा है कि संस्कारों के साक्षात्कार होने से पूर्व जन्मों का ज्ञान होता है। संस्कार ज्ञान और कर्म्मों की छाप है। हमने पूर्व जीवनों में जो कुछ किया है और जो कुछ जाना है उन सब कर्मों के और ज्ञानों के संस्कार हमारे चित्त में संस्कार के रूप में या अति सूक्ष्म बीजाकार में मौजूद हैं। उन संस्कारों के कारण (ह.ले. पृ.१८०) वासनाओं का उदय होता है और वासनाओं से कर्म और ज्ञान होते हैं। पुण्य कार्य करने से पुण्य संस्कार, निर्मल ज्ञान से निर्मल ज्ञानों का संस्कार, पापमय कर्म करने से पापों का संस्कार और मिथ्या ज्ञान लेने से मिथ्या ज्ञानों का संस्कार हमारे अन्दर जमा होने लगता है। जन्म-जन्मान्तरों में ये संस्कार हमारे सूक्ष्म शरीर के साथ चलते हैं।

इन संस्कारों को हम आंखों से नहीं देख सकते हैं। तब किस प्रकार महर्षि पतंजलि के कथनानुसार संस्कारों का साक्षात्कार होगा? ये बहिरिन्द्रियों से नहीं देखे जाते हैं लेकिन अन्तःइन्द्रिय यानी अन्तःकरण के द्वारा इन संस्कारों का साक्षात्कार हो सकता है। प्रयत्न करने से हम सब कोई पूर्व जन्मों के संस्कारों को समझ सकते हैं। संस्कारों से हमारे अन्दर वासनाओं का उदय होता है। काम, क्रोध या लोभ की वासनाओं के प्रभाव से आदमी काम, क्रोध या लोभ के कार्य करते हैं। इन सब कार्य-प्रणालियोंको देखकर हम लोग समझ सकते हैं कि मेरे अन्दर या दूसरे के अन्दर कौन सी वासनायें प्रबल हैं। ये सब वासनायें हम सब के चित्तों से ही निकलती हैं, शरीर चित्त की वासनाओं के अनुसार कर्म करता है शरीर चित्त के अधीन है। चित्त ही हमारे शरीर कर्मों का कर्ता है। कोई चोरी करते हैं,कोई दान करते हैं, कोई कलह करते हैं, कोई विनयी हैं, कोई क्रोधी हैं—इससे पता चलता है कि पूर्व जीवन में कौन कैसा था या किसके अन्दर कौन-सा संस्कार प्रबल था। पूर्व जीवनों के संस्कारों के अनुसार हमारे यहाँ के जीवन चलते हैं। यहाँ की कार्य प्रणाली हमारे संस्कारों से है।

* संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्व जाति ज्ञानम्। यो. वि.

जिनके अन्दर जो-जो संस्कार प्रबल हैं, उनके ऊपर प्रबल रूप से संयम के प्रयोग करने से योगी उन संस्कारों के बारे में पूर्ण ज्ञान पायेंगे और संस्कार के बारे में पूर्ण ज्ञान मिलने से ही योगी पूर्व जन्मों के बारे में ज्ञान पायेंगे। उनको पूर्वजन्मों के कार्य, स्थान, वर्ण, आश्रमादि सब विषयों के दर्शन होने से पूर्व-पूर्व जन्मों के पाप-पुण्य, सुख-दुःखों के बारे में भी जानकारी हो जायगी। ये लोग ही जाति-स्मर बोले जाते हैं। कोई-कोई जाति स्मर रूप से ही जन्म लेते हैं।

पर-चित्त का ज्ञान❀

पतंजलि ने कहा कि प्रत्यय पर संयम के प्रयोग करने से दूसरे के चित्त के बारे में ज्ञान होगा। खंड-खंड ज्ञानों के नाम प्रत्यय हैं। चित्त से प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। अपने चित्त से और दूसरे के चित्त से भी प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। पहले अपने चित्त के प्रत्यय पर संयम के प्रयोग का अभ्यास अच्छी तरह करने से दूसरे के चित्त पर संयम का प्रयोग किया जा सकता है। दूसरे के चित्त पर संयम का प्रयोग करने से उसके मनोभाव समझ में आ जाते हैं। साधारण मनुष्य दूसरे के आकार इंगित गतिविधि चाल-चलन कथा-वार्ता काम-काजों को देख कर उसके मनोभावों को जान लेते हैं। इस तरह से जाने हुए मनोभाव अस्पष्ट हैं। लेकिन योगी लोग दूसरे के चित्त से उत्पन्न प्रत्ययों पर संयम के प्रयोग से उसके मनोभावों को सुस्पष्ट रूप से जान सकते हैं।

★साधारण मनोभावों को जान लेने पर भी उसकी भाव्य और चिन्तनीय वस्तु अज्ञात ही रह जाती है। इसलिये उसके मनोभावों पर भी संयम का प्रयोग करने से उसकी मनोभावनाओं की केन्द्रीय भाव्य और चिन्तनीय वस्तु अर्थात् अवलम्बन का ज्ञान भी आ जायगा।

अन्तर्धान की शक्ति❀❀

पतंजलि ने कहा है कि कायिक रूप के प्रति संयम के प्रयोग करने से काया की ग्राह्य शक्ति स्तम्भित होती है, दूसरे की चक्षु इन्द्रिय की दृष्टिशक्ति, कर्ण की श्रवण शक्ति, नासिका की गन्धन शक्ति, जिह्वा की

❀ प्रत्ययस्य पर चित्त ज्ञानम्॥ यो० ३-१९॥

★ नच तत्सालम्बनम् तस्याविषयी भूतत्वात्॥ यो० ३-२०॥

❀❀ काय रूप संयमात्तद् ग्राह्य शक्ति स्तम्भे चाक्षुषप्रकाशासंयोगेऽन्तर्धानम्॥३-२१॥

रसन शक्ति और त्वक् की स्पर्शन-शक्ति की ग्रहण शक्ति भी बेकार बन जाती है। योगी की काया दूसरे के लिए इन्द्रियातीत बन जाती है। यह ही योगियों का सम्पूर्ण संयम बल से अदृश्य, अश्रोतव्य, अगन्धनीय, अनास्वादनीय या अस्पर्शनीय होना है या अपने को अन्तर्धान करना है। जब शरीर और इन्द्रियों के साथ दूसरे का सम्पूर्ण सम्बन्ध छिन्न हो जाता है तब ही योगी का पूर्ण अन्तर्धान है। संयम सिद्ध योगी की अपने शरीर के रूप, रस,शब्द, स्पर्श, गन्ध पर संयम के प्रयोग करनें से उन सब रूप रसादि से इन्द्रिय ग्राह्य शक्तियां स्तम्भित हो जाती हैं। बाहर के मनुष्यादि प्राणी उन सब के चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, रूप ज्ञानेन्द्रियों की रूप रसादि को ग्रहण करने की शक्तियाँ बेकार बन जाती हैं। वे योगी कोई किसी इन्द्रिय के द्वारा भी अनुभव नहीं कर सकते हैं। इसी का नाम योगी का अन्तर्धान होना है। यह "इन्द्रजाल" नहीं है। यह वास्तव सत्य है। योगी लोग स्वकीय कायागत रूप रसादि के प्रति चक्षु-जिह्वादि से ग्रहणीय गुणों के प्रति निषेधात्मक संयम का प्रयोग करते हैं अर्थात् हमारे शरीर में रूप स्पर्शादि कुछ नहीं है—एतत् प्रकार ध्यान प्रवाह को उत्थापित करते हैं। उनकी उस प्रकार की अनिर्वचनीय शक्ति सम्पन्न भावना के प्रभाव से दूसरे की इन्द्रिय-शक्ति स्तब्ध होकर क्रियाहीन हो जाती है अर्थात् वे रूपादि विषयों को ग्रहण नहीं कर सकती है।

मृत्यु और मृत्यु के दिन को जानना*

पंतजलि ने कहा कि सोपक्रम या निरुपक्रम कर्मों में जो कि पूर्व जन्मार्जित धर्माधर्म हैं उन पर संयम प्रयोग करने से या अरिष्ट दर्शन से अपरान्त का अर्थात् मृत्यु का ज्ञान होता है। कर्म दो प्रकार के हैं—

(१) सोपक्रम और निरुपक्रम। जो कर्म फलदान के लिए प्रवृत्त हुए—वे सोपक्रम कर्म हैं। जो कर्म अब भी फल देनें में प्रवृत्त नहीं हुए—वे निरुपक्रम हैं।

इन सोपक्रम और निरुपक्रम कर्मों के संस्कार लेकर ही मनुष्यों ने जन्म लिया है और उन उन संस्कारों के अनुसार जन्म, आयु और भोगों को प्राप्त किया है। जिस प्रकार के संस्कार हैं, उसी प्रकार के भोग और

*स्पेयक्रम निरुपक्रमंच कर्म तत्संयनाद परान्त ज्ञानम् अरिष्टभ्योव। ।यो० ३-२२।

वायु भी होंगे। इन सब सोपक्रम और निरुपक्रम कर्मों के ऊपर संयम के प्रयोग करने से हमारे जीवन काल के अपरांत का अर्थात् मृत्यु का ज्ञान मिलेगा। आयु के दो अन्त हैं—एक जन्म और दूसरा मृत्यु। जन्म के दिन से आयु आरम्भ होता है और मृत्यु दिवस में शेष हो जाता है। चित्त में रहने वाले दो प्रकारों के कर्मों पर संयम के प्रयोग करने से योगी को मृत्यु का ज्ञान हो जाता है अर्थात् किस स्थान में किस काल में और किस स्थिति में मृत्यु होगी, यह योगी जान सकता है।

अरिष्टों को देखने से भी मृत्यु का ज्ञान होता है।* जो लोग योगी नहीं हैं वे लोग सोपक्रम निरुपक्रम कर्मों पर संयम के प्रयोग करने की प्रणाली को नहीं जानते हैं। साधारण लोग भी अरिष्टों को जान सकते हैं और उनसे मृत्यु को जान सकते हैं। अरिष्ट तीन प्रकार के होते हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। अरि अर्थात् शत्रुओं से हमारे भय के कारण हैं वे ही हमारे अरिष्ट हैं। अरिष्ट मृत्यु के पूर्व-लक्षण हैं। अपने शरीर मन और आत्मा के बारे में अरिष्ट आध्यात्मिक हैं। दूसरे प्राणियों के बारे में अरिष्ट आधिभौतिक हैं। आकाश, ग्रह, नक्षत्रादि के बारे में अरिष्ट आधिदैविक हैं। गुरु जी ने मुझको लगभग एक सौ प्रकार के अरिष्टों के बारे में परिचय दिया था।

विशेष-विशेष अरिष्टों के नमूने

(१) दृष्टि ऊपर हो गई, सुस्थिर नहीं है, रक्त वर्ण हो गई, परिवर्तित हो गई है, मुख के अन्दर उष्मा नष्ट हो गई है या नाड़ी ठंडी हो गई है इन सब लक्षणों से मालूम होता है कि मृत्यु अतिनिकट है। साधारणतः कठिन रोगियों में ये लक्षण आ जाते हैं।

(२) जिसका देहस्थ वायु स्तम्भित हो गया है। मर्म-स्थान छिन्न-भिन्न हो गये हैं। जल-स्पर्श असहनीय मालूम होता है तब उसकी मृत्यु आगत है, यह समझना चाहिये।

(३) आसन्न मृत्यु व्यक्ति अरुन्धती (जिह्वा), ध्रुव (नासाग्र), विष्णुपद (भ्रू मध्य); और मातृ-मण्डल (आँखों का मोती) को नहीं देख सकते हैं और उत्तराकाश की अरुन्धती और ध्रुव नक्षत्र को भी नहीं देख पाते हैं।

(४) श्वास वायु यदि नासापथ छोड़ कर मुख से निकलता हो—यह भी रोगी की निकट मृत्यु का लक्षण है।

* सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्त ज्ञानम्—अरिष्टेभ्यः यो. ३-२२॥

(५) नासिका बैठ गई है, बायें आँख से आँसू निकल रहे हैं, यह भी आसन्न मृत्यु का लक्षण है।

(६) दस रोज नासा के दोनों रन्ध्रों से या रवि नाड़ी से श्वास समान रूप से प्रवाहित हो तो डेढ़ महीने में ही मृत्यु होने वाली है और जब रवि या सूर्य नाड़ी दक्षिण में और चन्द्र नाड़ी वाम में हो तो भी।

(७) दो रोज रवि नाड़ी से श्वास प्रवाहित होना भी एक वर्ष के अन्दर मृत्यु की सूचना देती है।

(८) एक अहोरात्र वाम नासिका से श्वास प्रवाहित होने से आयु तीन वर्षों के अन्दर समाप्त होती है।

(९) स्वभाव के वैपरीत्य और शरीर के विपर्यय (ह.ले. १९०) आने से मृत्यु निकट है—समझना चाहिए।

(१०) जो दीप-निर्वाण का गन्ध नहीं पाता है। रात को आग देखने से डर जाता है, दूसरे की आँखों में अपना प्रतिबिम्ब नहीं पाता है—उसकी मृत्यु भी सन्निकट है।

(११) जो कर्ण-द्वय में चाप देने (दोनों हाथ रखने) से भीतर के शब्द नहीं सुन पाता है और आँखों पर चाप देने से भी चाक्षुष ज्योति को नहीं देख सकता है उसकी मृत्यु भी निकट है।

(१२) स्नान करने के साथ-साथ जिसकी छाती में पानी तुरन्त सूख जाता है वह केवल दस दिन और जीवित रहेगा - समझना चाहिए।

(१३) कपोत, रक्तपाद पक्षी, गृध्र, काक, उलूक या कोई दूसरा माँसाहारी पक्षी शिर पर गिरता हो तो यह भी आसन्न मृत्यु की सूचना है।

(१४) कोई कारण मालूम नहीं है लेकिन कृश व्यक्ति स्थूल हो रहा है और स्थूल व्यक्ति कृश हो रहा है—यह भी आसन्न मृत्यु का ही लक्षण है।*

(१५) जो व्यक्ति मूत्र या मल रक्त वर्ण या शुभ्र वर्ण पानी वमन करता हो या उस प्रकार वमन के स्वप्न भी देखता हो तो यह भी आसन्न-मृत्यु का सूचक है।

(१६) जो आकाश में छाया-पथ, ध्रुव नक्षत्र, शुक्र ग्रह या अरुन्धती को नहीं देख पाता है वह एक वर्ष से अधिक काल जीवित नहीं रहता है।

---

*यह रूढ़िमात्र ही है। काक के सिर पर झपटते रहने पर भी हमारी मृत्यु नहीं हुई—स०

(१७) जो सूर्य मण्डल को किरण माला से परिव्याप्त नहीं देखता है या अग्नि को सूयवत् देखता है उसकी मृत्यु एकादश मास के अन्दर होती है।

गुरुओं से वर्णित इन सब अरिष्ट-लक्षणों में कुछ कुसंस्कार और रूढ़ियाँ भी सम्मिलित हैं—ऐसा मालूम होता है।

योगबल से देहत्याग—योगी लोग अरिष्ट लक्षणों को देखकर ही समाधि-वल से देह-त्याग के लिए तैयार हो जाते हैं। इसीका नाम इच्छा-मृत्यु है। धार्मिक ब्राह्मण लोग योगासन में बैठे हुए देह को छोड़ना चाहते हैं। वीर, धार्मिक क्षत्रिय योद्धा लोग युद्ध-भूमि में आसन्न और अनिवार्य मृत्यु को समझ कर ही समाधि-योग से देह को छोड़ देते हैं। क्षत्रिय राजा लोग राज्यभार से मुक्त होकर महाप्रस्थान में चले जाते हैं और निर्जन वनप्रदेशों में तपस्या के बाद योगबल से देहों को छोड़ देते हैं। साधारण गृहस्थ लोग व्याधियों से प्रपीड़ित होकर या दुर्घटनाओं से आसन्न मृत्यु समझ कर उसी प्रणाली से देह को छोड़ना चाहते हैं। जो लोग इस प्रणाली को नहीं जानते वे भगवान् के स्वरूप-चिन्तन, भगवान् के नाम या मन्त्र का जप करते हुए देहों को छोड़ देते हैं। बाकी दूसरे लोग मुह्यमान या अचेतन होकर देहों को छोड़ते हैं।

रामायण, महाभारत और पुराणों में इस प्रकार देह छोड़ने का बहुत उल्लेख है। युद्ध भूमि में भीष्म, द्रोण और भूरिश्रवा का योग-बल से देह छोड़ने को तैयार होना आदि इसके बारे में उज्ज्वल दृष्टान्त हैं। प्राचीन काल में 'किस रूप से मृत्यु होना चाहिये' इसके बारे में शिक्षा-प्रचलित थी। आज कल इच्छा-मृत्यु की शिक्षा अप्रचलित और बन्द हो गयी है। आज भी कोई-कोई योगी मृत्यु से बहुत पहले ही मृत्यु के लिये तैयार हो जाते हैं। आबू-शैल में मैंने पांच योगियों को मृत्यु के लिए प्रस्तुत देखा था और दो योगियों के योगासन पर ही देहत्याग को देखा था।

इस उद्देश्य से योगी लोगों की निर्जन पर्वत गुहा, वन-प्रदेश, भू-विवर या उपद्रव शून्य स्थान देहत्याग की स्थिति के अनुकूल हैं। पर्वत गह्वर या भू-विवरों में उष्णता और शैत्य की दृष्टि से वायु सवदा परिवर्तनशील नहीं है। शरीर और मन की स्थिति वायु-प्रवाह के परिवर्तन के साथ परि-वर्तित होती है। भू-विवर आत्मरक्षा और योग-साधना के लिये सर्वोत्तम हैं। इच्छा-मृत्यु भी वहाँ सुगम है।

कुम्भक के बल से या वायु की (वेग-वृद्धि) से योगी समाहित या बाह्यज्ञान-शून्य हो जाते हैं। उस समय लगातार कुम्भक करने से समाधि आ जाती है। बाहर की संज्ञा उनकी लुप्त हो जाती है। निःश्वसित वायु को पुनः-पुनः ग्रहण करने से भी अचैतन्य-अवस्था आ सकती है। क्षुत्-पिपासा सुख-दुःख वर्जित रहते हुये इसी स्थिति में योगी देह को छोड़ सकते हैं। योगी यह ध्यान रखते हैं कि बद्धवायु देह को प्रभावित नहीं कर सके। शरीर से परित्यक्त विषवायु को अतिद्रुत बार-बार ग्रहण करने से भी योगी को अतिशीघ्र अचैतन्य अवस्था आ सकती है। ठीक मृत्यु के समय देखा जाता है कि योगी को चेतना आ गयी है। अपनी इच्छा से वे प्राणों को देह से निकाल देते हैं। मृत्यु से योगी को शारीरिक या मानसिक कष्ट नहीं होता है। मृत्यु योगी के वश में आ जाती है। देह छोड़ते समय योगी को अपार आनन्द मिलता है।

योगी योग-बल से इस प्रणाली के द्वारा प्राणायाम के कला-कौशल के साथ देह-त्याग करते हैं। आबूशैल में मेरी समाधि-योग-शिक्षा के गुरु स्वामी **मोक्षानन्द** महाराज ने मेरे सम्मुख इस प्रकार से ही देह को छोड़ दिया था।

योगबल से देह-त्याग आत्म-हत्या नहीं है

योग-बल से देह-त्याग से योगी को आत्महत्या का पाप लगता है कि नहीं यह प्रश्न भी मेरे पास आया है। पहली बात तो यह है कि आत्मा की हत्या होती ही नहीं। आत्मा अमर है। मनो-विकार के कारण अपने जीवन के गुरुतर कर्तव्य-भार से बचने के लिये या किसी मानसिक विकार या दुर्बलता के कारण देह छोड़ने की चेष्टा या देह को छोड़ना— यह तो पाप अवश्य है। लेकिन देह से जो कुछ पूरा करना था सबका सब पूरा करके या महत्तर उद्देश्य-सिद्धि के लिये पूर्ण वैराग्य के साथ परमगति लाभार्थ देह को समाधि योग से छोड़ने की आप्तपुरुषों ने निंदा नहीं की है बल्कि प्रशंसा ही की है। आप्त-पुरुषों के आचार या वाक्य ही हमारे लिये प्रमाण हैं। श्रुति या स्मृति भी इसकी विरोधी नहीं हैं।

मनोबल लाभ❀

पतंजलि ने कहा है कि सुखी व्यक्तियों के प्रति मैत्री-भावना, दुःखी

❀ मैत्र्यादिषु बलानि। यो० ३-२३।

व्यक्तियों के प्रति करुणा भावना, पुण्यवान् व्यक्तियों के प्रति आनन्द-भावना और पापी-व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा-भावना रखने से अत्यधिक बल-लाभ होता है। इन चारों भावनाओं के प्रति संयम का प्रयोग करने से मैत्री बल, करुणा-बल, आनन्द-बल और उपेक्षा-बल के लाभ होते हैं। इन चारों बलों से योगी जगद्वासी सर्व प्राणियों के हृदयों का जय कर सकते हैं। योगी प्राणियों के सुख-दाता सहृदय मित्र वनते हैं और इच्छा-मात्र से ही प्राणियों के खास-खास दुःखों को दूर कर सकते हैं। इन भावनाओं की संयम-सिद्धि से मन में असीम बल का संचार होता है। पाप से मन दुर्बल होता है। जिसके मन में पाप है उसके देह में बल रहने पर भी मन दुर्बल रहता है। जिसके मन में पाप नहीं है वह कभी कहीं से और किसी से भी भीत नहीं होता है, सर्वदा वह निर्भर रहता है। मन में दुर्बलता रहने से मन में शान्ति भी नहीं रहती है। मन सदा ही अशान्ति से पूर्ण रहता है। मन में रोग, द्वेष, हिंसादि नीच भावनायें रहने से मन कभी सुख को प्राप्त नहीं होता है। मन की इन नीच भावनाओं को दूर करने के लिये योगी मैत्री, करुणा और मुदिता, भावनाओं पर संयम के प्रयोग करते हैं। कोई-कोई योगी उपेक्षा पर संयम नहीं करते हैं क्योंकि उपेक्षा भावना का विषय बन ही नहीं सकता। मनुष्य जिस विषय के सम्पर्क में रहेगा उसका चित्त उसी में ही अभ्यस्त हो जायेगा और उस विषय में रहना ही उसको अच्छा लगेगा। सर्वदा सत् चिन्ता, सदिच्छा को चित्त में रखने से चित्त सत् हो जाता है और असत् चिन्ता और असदिच्छा चित्त में उठती ही नहीं। इसलिये योगी मैत्री आदि सद्भावनाओं पर संयम-प्रयोग करके चित्त को सत्, शुभ और पवित्र बना लेते हैं और मन को असीम बल का अधिकारी कर लेते हैं।

शारीरिक बल-लाभ*

पतंजलि ने कहा है कि योगी हस्ती, व्याघ्र, सिंह, अश्व, वायु आदि बलशाली सत्त्वों के बलों पर संयम के प्रयोग करके, चित्त को तन्मय भावों से परिपूरित करके उन-उन बलिष्ठ तत्त्वों के बलों से शरीर को बलवान् करते हैं। शरीर में बल नहीं रहता है, चित्त का बल ही बल है। चित्त के बल से ही शरीर बलवान् होता है और बल-साध्य कर्म करता है। यदि योग-बल से चित्त में बलशाली सत्त्वों के बल को आहरण

* बलेषु हस्ति बलादीनि ।यो० ३-२४।।

किया जाय तो बलहीन भी बलशाली बन जाता है, इसमें सन्देह नहीं है।

दिव्य-चक्षु-लाभ❀

पतंजलि ने कहा है कि ज्योतिष्मती प्रवृत्ति रूप आलोक को [अन्तःकरण के सार-स्वरूप सात्त्विक प्रकाश को] यदि सूक्ष्म, व्यवहित [अन्तरालवर्ती व्यवधानयुक्त], और विप्रकृष्ट [दूरवर्ती] वस्तुओं में संयम प्रयोग किया जाय तो वे सूक्ष्म, व्यवहित या विप्रकृष्ट वस्तुएँ यथार्थरूप से प्रकाशित (ज्ञान) हो जायेंगी। चक्षुओं की दृष्टि से जैसे वस्तु प्रकाशित होती है वैसे ही ज्योतिष्मती प्रवृत्ति से या सात्त्विक आलोक से चक्षुओं की दृष्टि से अन्तर्हित वस्तुएँ भी प्रकाशित होती हैं। अति सूक्ष्म परमाणु आदि क्षुद्र वस्तु, भूमध्यस्थ या अन्तरालवर्ती गुप्त वस्तु या अति दूरवर्ती वस्तुओं में भी इस अन्तःकरणस्थ, अनन्यसाधारण ज्ञानशक्ति यानी ज्योतिष्मती आलोक के प्रयोग से प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। इसी का नाम कभी-कभी योगी लोग "दिव्य चक्षु" बताते हैं।

जगत् चक्र का ज्ञान लाभ★

पतंजलि ने कहा है कि सूर्य के संयम का प्रयोग करने से चतुर्दश भुवनों का ज्ञान होता है। चन्द्र में संयम प्रयोग करने से ताराओं में गुच्छाकार में अवस्थिति सम्बन्ध में ज्ञान होता है और ध्रुव नक्षत्र में संयम प्रयोग करने से ताराओं की गति का ज्ञान होता है। इन सब सिद्धियों को योगी लोग बाह्य-सिद्धि बोलते हैं। इसके पश्चात् अध्यात्म-सिद्धि के बारे में भी पतंजलि ने कहा है।

शरीर तत्त्व का ज्ञान-लाभ❀❀

पतंजलि ने कहा है कि नाभि-चक्र में संयम के प्रयोग करने से काया-व्यूह अर्थात् शारीरिक संस्थान का ज्ञान लाभ होता है। शरीर में जहाँ जो कुछ है सबका सब मालूम हो जाता है। त्रिगुण-सत्त्व, रजः और (ह०लें०२००) तमः, त्रिदोष-वायु, पित्त और श्लेष्मा, त्रिःदेह—स्थूल, सूक्ष्म और कारण, त्रिताप—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, त्रि-स्थिति—उत्तम, मध्यम और अधम, त्रि-गति—ऊर्ध्व, मध्य और अधः, चार स्थिति—जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति (और तुर्य), चार अवस्था—जन्म,

❀ प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट ज्ञानम्। यो० ३-२५।

★ भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।।यो०३-२६।। चन्द्रे ताराव्यूह ज्ञानम् ।। यो. ३-२७।। ध्रुवे तद्गति ज्ञानम् ।।यो० ३-२८।।

❀❀ नाभिचक्रे काय व्यूह ज्ञानम् ।। यो. ३-२९ ।।

वृद्धि, स्थिति और क्षय; चार काल—बाल्य, यौवन, जरा और वार्द्धक्य; चार अन्तःकरण—मनः, बुद्धि, चित्त और अहंकार; चतुर्वर्ग—धर्म अर्थ,काम और मोक्ष, पंचभूत—क्षिति, अप्,तेज, मरुत् और व्योम; पंच तन्मात्रायें—रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गन्ध; पंच ज्ञानेन्द्रिय—चक्षु, कर्ण, नासिका जिह्वा और त्वक्; पंच कर्मेन्द्रिय—वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ; पंच प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान; पंच कोश—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय, छः रिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य, षट्चक्र—स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार; सप्तधातु—त्वक्, रक्त, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा और शुक्र, या रजः; अष्ट योगांग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि; नव द्वार – दो चक्षु, दो नासा रन्ध्र, दो कर्ण रन्ध्र, मुख, मलद्वार और मूत्र द्वार, दशेन्द्रिय—पंच कर्मेन्द्रिय और पंच ज्ञानेन्द्रिय, दश प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। एकादशेन्द्रिय—पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और मानसेन्द्रिय।

इसके उपरान्त यह ज्ञान भी मिलता है कि मानव-शरीर में अस्थि संख्या ३६०, ग्रन्थि, २१०, स्नायु ६००, पेशी ५०० (लेकिन स्त्रियों की ५२०), शिरा असंख्य (लेकिन प्रधान शिरा ७००), रोम केशादि ३२ लाख से ऊपर, भुक्त अन्न के परिपाक से उत्पन्न रस ५ अंजलि, रक्त ८ अंजलि, जलीय भाग १० अंजलि, पुरीष ७ अंजलि, श्लेष्मा ६ अंजलि, पित्त ५ अंजलि, मूत्र ४ अंजलि, वसा (मांस का सार) ३ अंजलि, मेदः (सूक्ष्मास्थियों में रक्तवर्ण पदार्थ) ७ अंजलि, मज्जा (स्थूलास्थियों में तैलवत् पदार्थ) १ अंजलि मस्तिष्क अर्धांजलि, रेतः अर्धांजलि हैं। अंजलि शब्द का अर्थ यहाँ अर्ध सेर है। १२ अंजलि रक्त से अर्धांजलि मात्र शुक्र उत्पन्न होता है। ये सब का सब ज्ञान नाभि-चक्र में संयम के प्रयोग करने से अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में मिलता है।

क्षुधा और तृष्णा पर जयलाभ*

पतञ्जलि ने कहा है कि जिह्वा-तन्तु के मूल स्थान में यानी गले गह्वर में कण्ठ में जो कूपाकार स्थान है जहाँ प्राण-वायु के संघर्ष होने से क्षुधा और तृष्णा का अनुभव होता है वहाँ संयम के प्रयोग करने से क्षुधा या तृष्णा कुछ भी नहीं रहती है। योगी लोग समाहित होकर सुदीर्घ काल

*कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः । ३।३०।

तक रहते हैं। इस प्रक्रिया की सहायता से वे आहार और पानीय वर्जित होकर रह सकते हैं और शरीर भी नष्ट नहीं होता है। मेरे अनुभव में भी यह है।

शरीर और मन की स्थिरता❁

पतंजलि ने कहा कि कण्ठ-कूप के नीचे वक्ष-प्रदेश में अत्यन्त दृढ़ा कूर्म नाम की नाड़ी है। उसमें संयम के प्रयोग करने से शरीर और मन की स्थिरता आ जाती है। चित्त को कूर्म नाड़ी में प्रविष्ट रख कर योगी लोग सुदीर्घ काल तक शरीर और मन को स्थिर करते हैं और इसके अभ्यास हो जाने से शरीर और मन समाधि के अनुकूल वन जाते हैं।

सिद्ध पुरुषों के दर्शन लाभ★

पतंजलि ने कहा कि मूर्द्ध ज्योति में संयम का प्रयोग करने से सिद्ध पुरुषों का दर्शन मिलता है। मस्तक कपाल के ठीक मध्य स्थान में ब्रह्म-रन्ध्र नाम का अतिसूक्ष्म छिद्र है। उसका नाम सुषुम्ना पथ भी है। सुषुम्ना नाड़ी से हृदय की सात्विक ज्योति या स्वच्छ बुद्धि-तत्व का प्रकाश वहाँ जाकर जमा होता है। उसी जमी हुई तेजोमयी, प्रकाशमयी, निर्मला मूर्द्ध-ज्योति में संयम का प्रयोग करने से सिद्ध पुरुषों का दर्शन होता है। हमारे गुरु जी ने कहा था कि संयम-सिद्ध योगी लोग अदृश्यचर और अन्त-रिक्षवासी सिद्ध पुरुषों के दर्शन करते हैं और उनके साथ वार्तालाप भी करते हैं। हम इस तत्व को अनुभव में नहीं ला सके। दूसरी-दूसरी इन सब वर्णित विभूतियों के अन्दर बहुत विभूतियाँ हमारे अनुभव के अन्दर आई हैं। ज्ञान दृष्टि से, ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों के साधनों से हम सभी के दर्शन करते हैं, चर्म चक्षु से नहीं।

प्रातिभ-ज्ञान से वस्तु-ज्ञान लाभ❁❁

प्रतिभा-प्रसूत ज्ञान का नाम प्रातिभ ज्ञान है। योगी लोग संयम के विना ही प्रातिभ ज्ञान के द्वारा ही प्रकृति और प्राकृतिक वस्तुओं के ज्ञान का लाभ करते हैं। प्रातिभ ज्ञान पर संयम करके भी सब कुछ जान लेते हैं। किसी घटना की सूचना से ही उसके साथ सम्बन्धित घटनाओं के बारे में मन के अन्दर झट जिस ज्ञान का आविर्भाव होता है उसी का नाम प्रातिभ ज्ञान है। तथ्य-विषयक ज्ञान का नाम भी प्रातिभ है और पूर्व जन्मों से

❁कूर्म नाड्या स्थैर्यम् ।।३-३१।।

★मूर्द्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम् ।।३-३२।।

❁❁प्रातिभाद्वा सर्वम् ।।३-३३

संचित ज्ञान का नाम भी प्रातिभ है। शास्त्रों में प्रातिभ ज्ञान के "ऊह" और "तर्कणा" नाम भी हैं। प्रातिभ ज्ञान पर संयम करके योगी लोग दूसरे प्रकार के तारक ज्ञान* का लाभ करते हैं। जो ज्ञान संसार-तारक है उसी का नाम तारक ज्ञान है। जिस ज्ञान के द्वारा निस्तार मिलता है, जिससे संसार-समुद्र पार करना सम्भव होता है उसी का नाम तारक ज्ञान है। यह ज्ञान प्रसंख्यान नामक वैराग्य ज्ञान का अर्थात् प्रकृति-पुरुष के भेद-ज्ञान का पूर्व रूप है उसी का नाम तारक ज्ञान या प्रातिभ ज्ञान है। प्रातिभ ज्ञान दूसरे के उपदेश से नहीं होता है। उपदेश के विना ही जो ज्ञान है वह ही प्रातिभ ज्ञान है।

चित्तज्ञान लाभ★

पतंजलि नें कहा कि हृदय में संयम धारण करनें से चित्त के बारे में ज्ञान का उदय होता है अर्थात् अपने चित्त के संस्कार और दूसरे के चित्तस्थ अभिप्राय समझ में आते हैं। चित्त के ज्ञान से इस जीवन का और पूर्व जीवनों का सम्यक् परिचय मिल जाता है।

आत्म-साक्षात्कार लाभ

बुद्धि और आत्मा सर्वथा भिन्न हैं। आत्मा बुद्धि नहीं है और बुद्धि भी आत्मा नहीं है। इन दोनों की भिन्नता का ज्ञान न होने के कारण सुख-दुःखादि भोगों को पुरुष यानी आत्मा अपना समझ लेता है। भोग दूसरे के हैं। पुरुष एक पदार्थ है और पुरुष का भोग दूसरा पदार्थ है। पतंजलि ने कहा कि इस भेद-भाव या भिन्नता के प्रति संयम का प्रयोग करने से आत्म-साक्षात्कार यानी आत्म-ज्ञान-लाभ होता है।

प्रकाशरूप सुखादि-स्वभाव बुद्धि नामक अन्तःकरण द्रव्य का दूसरा नाम सत्व है और उसके चेतयिता चैतन्य पदार्थ का नाम पुरुष है सत्त्व और पुरुष एक नहीं हैं, भिन्न हैं। लेकिन इन दोनों पदार्थों की भिन्नता मामूली ज्ञान से या बोध से मालूम नहीं होती है। इसलिए ही सुख-दुःखादि का भोग होता है। बुद्धि सत्त्व ही भिन्न-भिन्न आकारों में परिणत होता है।

---

*तारकं सर्वविषयम। यो. ३ पा

★हृदये चित्त, संवित्।।यो. ३-३४।।

**सत्त्वपुरुषयोरत्यन्ता संकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात्, स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ।।यो. ३-३५।।

पुरुष उसी में प्रतिबिम्बित होता है। इसलिये बुद्धि के भिन्न-भिन्न परिणाम भी पुरुषवत् प्रतीयमान होते हैं अर्थात् चैतन्य तुल्य या चैतन्याकार प्राप्त होते हैं। ऐसे ही चैतन्य-प्रतिबिम्बित बुद्धि वृत्ति भी चैतन्य-तुल्य या चैतन्याकार जानी जाती है।

इस तरह के अभेद या तुल्याकार प्राप्त होने का नाम भोग है। यह भोग बुद्धि का ही परिणाम है, बुद्धि का ही धर्म है। लेकिन पर अर्थात् पुरुष उसका निमित्त कारण है। इसलिए यह भोग पुरुषार्थ नहीं है। यह है परार्थ। इस भोग नामक पदार्थ-प्रत्यय के अतिरिक्त दूसरा एक स्वार्थ-प्रत्यय है। सत्व या बुद्धि-तत्व जब कर्तृ भाव को छोड़ कर अर्थात् 'मैं, मेरा" आदि आकारों में परिणत न होकर केवल मात्र आत्म चैतन्य से व्याप्त रहता है, निर्मल निस्तरंग निर्विकार बुद्धि-सत्व में जब केवल मात्र चैतन्य का ही प्रतिबिम्ब विराजित रहता है तब उसको आत्मावलम्बन या स्वार्थ प्रत्यय कहा जा सकता है। योगी लोग उस आत्मावलम्बन में या तादृश स्वार्थ प्रत्यय में संयम का प्रयोग करके पुरुष-विषयक ज्ञान या आत्म-साक्षात्कार या आत्मदर्शन लाभ करते हैं।

भोग पुरुष का बन्धन है। भोग से पुरुष की आत्म-स्मृति नष्ट हो जाती है। पुरुष अपनी स्वतन्त्रता को भूल जाता है। पुरुष तब अपने को प्रकृति से अभिन्न समझ लेता है। पुरुष तब समझ लेता है "मैं शरीर हूं मैं इन्द्रिय हूं, मैं मन हूं, मैं बुद्धि हूं" आदि-आदि। पुरुष जब-जब भोग में आसक्त रहता है तब तब स्वात्म बोध नहीं रहता है। भोग की आसक्ति छोड़ने से,भोगों से विरत होने से पुरुष को प्रकृति से भिन्नता का प्रत्यय आ जाता है। पुरुष तब अपनी भूल को समझ सकते हैं और इस शुद्ध भाव पर संयम के प्रयोग करके आत्म-स्वरूप की उपलब्धि करते हैं! पुरुष तब दृष्ट स्वरूप होते हैं। प्रकृति तब दृश्य मात्र है और पुरुष साक्षि-मात्र है। द्रष्टा और दृश्य का अभिन्न प्रत्यय ही संसार, भोग या बन्धन है और भिन्न प्रत्यय ही मुक्ति, मोक्ष या कैवल्य है।

बुद्धि के अन्दर तीन गुण हैं—सत्व, रजः और तमः। जब रजः गुण की चंचलता को और तमः गुण के मोहावरण को अभिभूत करके सत्व गुण अत्यन्त प्रकाशशील होता है तब इसका नाम विवेक प्रत्यय है। यह बुद्धि का चरम सात्विक परिणाम है। विवेक प्रत्यय आत्मदर्शन का सहायक है। आत्मदर्शन से ही मुक्ति होती है। मुक्ति ही मानव-देहधारी आत्मा का चरम लक्ष्य है।

दिव्य ज्ञान लाभ❀

पतंजलि ने कहा कि उस आत्म-दर्शन से पहले विविध सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं। प्रथमतः प्रातिभ-ज्ञान का उदय होता है। प्रातिभ-ज्ञान के बारे में पहले भी कहा गया है। प्रातिभ-ज्ञान के द्वारा सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट (अतिदूरस्थ) और भूत भविष्यत् वर्तमान—सब कुछ जाना जाता है। इसके बाद अद्‌भुत श्रवण-शक्ति का जन्म होता है। इसके प्रभाव से योगी लोग दिव्य शब्द को सुन सकते हैं। स्पर्श-ज्ञान का नाम वेदना है। योगियों का यह वेदना-ज्ञान इतना अधिक और उत्कृष्ट होता है कि ये लोग दिव्य-स्पर्श भी ग्रहण कर सकते हैं। चाक्षुष-ज्ञान का नाम आदर्श या दर्शन है। यह दर्शन-शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि इच्छा करने से ही योगी लोग इससे दिव्य रूप दर्शन कर सकते हैं। रसनाज्ञान का नाम स्वाद या आस्वादन है। यह इतना प्रबल हो जाता है कि योगी लोग इसके द्वारा दिव्य रस-समूह का आस्वादन ले सकते हैं। गन्ध-ज्ञान का नाम वार्ता और संवित्ति है। यह इतनी बढ़ जाती है कि योगी लोग दिव्य गन्धों का अनुभव कर सकते हैं।

बुद्धि से आत्मा भिन्न है यह भिन्नता का ज्ञान आता है। पहले इन्द्रियों से केवल स्थूल विषयों का ज्ञान होता था। अब इन्द्रियगण के मलिनता-हीन होने से सूक्ष्म-ज्ञान का आविर्भाव होता है। जब तक मन के अन्दर हिंसा-द्वेषादि अपवित्र मलिन भाव रहेंगे तब तक बुद्धि की विचार-शक्ति और मन की चिन्तन-शक्ति विशुद्ध नहीं होगी। बुद्धि मलिन होने से (ह.ले.२२०) उसके अधीन मन और दूसरे इन्द्रियादि भी (मलिन) रहते हैं। यमनियमादि योगांगों के पालन से बुद्धि, मन और इन्द्रियादि निर्मल और शुद्ध होते हैं। तब इनके अन्दर प्रकृष्ट सूक्ष्म ज्ञान और सूक्ष्म-दर्शनादि शक्तियों का जन्म होता है।

समाधि के विघ्न और उपसर्ग★

इन सब सूक्ष्म दर्शनों का नाम सिद्धि है। व्युत्थान के समय अर्थात् भोगकाल में यह सब सिद्धियाँ हैं लेकिन ये सब समाधि के परमशत्रु हैं❀❀

❀ ततः प्रातिभ श्रावण वेदना दर्शास्वादवार्ता जायन्ते ।।यो. ३-३६।।

★ ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ।। यो. ३-३७।।

❀❀प्रातिभ आदि सिद्धियों को व्यास भाष्य में विघ्न और उपसर्ग माना है। धर्म मेघ वाले योगी के लिए सब ही सिद्धियाँ उपसर्ग हैं ।।३-५२

नियमानुसार साधना करने से हर एक साधक कुछ न कुछ सिद्धिलाभ करते हैं। अधम साधक इस प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करके अपने को कृतार्थ समझ लेते हैं और केवल सिद्धि-भोग में ही उन्मत्त हो जाते हैं। वे लोग कैवल्य को प्राप्त नहीं होते हैं। लेकिन इन सब सिद्धियों को अति तुच्छ समझ कर जो साधक इनके प्रति ध्यान न देकर साधना और समाधि के प्रति ही अग्रसर होते हैं वे साधक ही कैवल्य, मुक्ति या मोक्ष को प्राप्त होते हैं। क्योंकि स्थूल विषय जैसे बन्धन हैं। सूक्ष्म विषय भी वैसे ही बन्धन हैं। जब समाधि का उत्कर्ष प्राप्त होता है। तब ये सब सिद्धियाँ परम विघ्न और उपसर्ग भासती हैं। ये सब उपस्थित होने से मोक्ष-दायक समाधि दृढ़ नहीं रहती है। ये सब सिद्धियाँ समाधि के परमशत्रु हैं। असमाधि के समय ये सब सिद्धियाँ हैं लेकिन समाधि के समय ये सब उपद्रव उपसर्ग और विघ्न हैं। कैवल्य-लाभेच्छु योगियों को सब सिद्धियों से सावधान रहना चाहिये।

पर-शरीर में प्रवेश❀

पतंजलि का कहना है कि जिस कारण से चित्त एकमात्र इस शरीर में ही आवद्ध है इस कारण को हटा देने से अर्थात् चित्त के बन्धन को ढीला कर देने से और चित्त के प्रचार-स्थान (शरीरस्थ नाड़ी समूह) जानने से चित्त को योगी दूसरे के शरीर में प्रविष्ट कर सकता है। सर्वत्र गमन करना उसका स्वभाव है। कर्म अर्थात् धर्माधर्म के कारण से ही ऐसा सर्वगामी चित्त केवलमात्र एक हो निर्दिष्ट शरीर में बंधा हुआ है। सर्वगामी चित्त केवल मात्र अपने उपार्जित कर्मों में फँस कर ही असर्वगामी बन गया है। संयम या समाधि के द्वारा चित्त-बंधन धर्माधर्मों को अगर शिथिल कर दिया जाय तो चित्त अपने स्वभाव सर्वगामित्व की स्वाधीन शक्ति को प्राप्त होता है।

इसके साथ चित्त के संचरणमार्ग अर्थात् गतिविधि के पथ को अच्छी तरह जानना चाहिए। चित्त और प्राण कब कौन से रास्ते अर्थात् कौन-कौन सी नाड़ियों से किस प्रकार संचरण करता है किसी योगवित् से अच्छी तरह जाननी चाहिए। यदि संचरणमार्ग जाना हुआ रहे तो इसकी निश्चित रूप से इच्छानुसार स्थानों में प्रेरित किया जा सकता है।

❀ बन्ध-करण शैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ यो. ३-३८ ॥

योगी लोग सब से पहले संयम के प्रयोग से चित्त के बंधन को शिथिल कर देते हैं। चित्त, मन और प्राणों के संचरण के पथ नाड़ी समूह को संयम के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से जान कर योगी लोग उस नाड़ी-पथ से बाहर निकाल कर इच्छानुसार दूसरे शरीर में प्रवेश कर के उसमें अपने शरीर के ऐसे सुख दुःखादि को अनुभव करते हैं। शरीर के सब ही इन्द्रिय चित्त के अनुगामी हैं। चित्त दूसरे शरीर में प्रवेश करने से उसके साथ चित्त के अनुगामी सब इन्द्रिय भी उस शरीर में प्रविष्ट होते हैं। योगी अपने शरीर को छोड़ कर दूसरे के शरीर में अपने मन, प्राण और इन्द्रियों को संस्थापित करके इच्छानुसार आहार-विहारादि कर सकते है।

इच्छा-मृत्यु और शरीर की लघुता*

पतंजलि का कहना है कि प्राणों के उदान कार्य को अपने अधीन करने से जल, कर्दम, कण्टकादि के ऊपर से यातायात भी सुगम होता है और मृत्यु भी इच्छानुसार होती हैं।

शरीर के इन्द्रिय गण दो प्रकारों के कार्य करते हैं—बाहर के कार्य और भीतर के कार्य। रूप-रसादि का ग्रहण बाहर के कार्य हैं और जीवन को अक्षत रखना भीतर के कार्य हैं। हरएक इन्द्रिय अपने विशेष कार्य करती है और सब इन्द्रियाँ मिलकर एक साधारण कार्य भी करती हैं। सब इन्द्रियाँ सम्मिलित रूप से आभ्यन्तरीण कार्य-विशेष जीवन धारण नामक विशिष्ट कार्य का निर्वाह कर रही हैं। जीवनकार्य इन्द्रिय-समष्टि की क्रियासमष्टि मात्र ही है। पृथक्-पृथक् इन्द्रिय के द्वारा जो पृथक्-पृथक कार्य होते हैं उन सब के पृथक्-पृथक् नाम भी हैं।

इसमें जिस क्रिया के द्वारा हृदय से मुख-नासिका तक श्वास-प्रश्वास वायु की क्रिया साधित होती है, उसी क्रिया का नाम "प्राण" है। जिस क्रिया के द्वारा परिचालक वायु नाभि से पादांगुलितक रस रक्तादि को वहन करके परिव्याप्त करता है उसी क्रिया का नाम "अपान" है। जो क्रिया नाभि-देश को वेष्टन करके भुक्त वस्तुओं के परिपाक मलमूत्रादि के पृथक्करण और रक्तादि का उत्पादन करके यथास्थान ले जाती है उसी क्रिया का नाम "समान" है। जो क्रिया ग्रीवा से मस्तक-चूड़ा तक सब दैहिक उपादानों को ऊपर की ओर धारण करके स्थिर है उसी क्रिया

* उदानजयात् जलपंककण्टकादिष्वसंगः उत्क्रान्तिश्च ॥ यो, ३, ३९॥

का नाम "उदान" है। जो क्रिया सर्व शरीर की शिराओं में संचरण करके बल-रक्षा करती है उसी क्रिया का नाम "व्यान" है।

इन सब इन्द्रिय-क्रियाओं के अन्दर यानी प्राण-पंचक के अन्दर जिस क्रिया का नाम "उदान" है उस पर संयम का प्रयोग करके उसको अपने अधीन करने से दूसरी क्रियाओं के अवरोध हेतु उद्गत-स्वभाव "उदान" अत्यन्त प्रबल होता है। और सम्पूर्ण शरीर अत्यन्त हलका हो जाता है। इसलिये योगी "उदान" पर संयम-धारण करके जल, पंक, कंटक किसी में भी नहीं धसते। इस "उदान" जय नामक क्रिया को योगी आसन पर बैठे हुये अभ्यास करते हैं और शरीर हलका होने के कारण आसन से ऊपर शून्य में सूर्यवत् उठ जाते हैं और कभी-कभी बैठे हुए शून्य में घूमते हैं।

पृथिवी हमारे शरीर को सर्वदा नीचे की ओर आकर्षण करती है। जिस क्रिया की सहायता से चलने के समय हम लोग शरीर को उठा सकते हैं वह ही "उदान" है। "उदान" से ही हम लोग पृथिवी से पैर को ऊपर उठा सकते हैं। "उदान" से शरीर अत्यन्त लघु होता है। योगी जल के ऊपर चल सकते हैं और कंटकों के ऊपर बैठ और शयन भी कर सकते हैं।

"उदान" की सहायता से मृत्यु के समय अपनी इच्छा से प्राण को शरीर से निकाल सकते हैं। मृत्यु के कारण योगी को शारीरिक या मानसिक किसी तरह का कष्ट नहीं होता। आनन्द के साथ देह को विसर्जन कर सकते हैं। ये सबके सब "उदान" पर संयम के प्रयोग करने से सम्भव होता है।

तेजोमय शरीर-लाभ❀

पतंजलि ने कहा है कि "समान" वायु पर संयम के प्रयोग करने से तेजोमय शरीरलाभ होता है। हम लोग जो कुछ भोजन करते हैं जठराग्नि उसको जीर्ण या परिपक्व कर देता है और समान-वायु उस परिपक्व या जीर्ण अन्नरस में समानता भी लाता है। शरीर में जहाँ जैसा आवश्यक है वह वहाँ ऐसे ही शरीर यन्त्र का परिपोषण करता है। प्रयोजन के अनुसार यह समान-वायु जठराग्नि को सर्व शरीर में भेज कर शरीर में उष्णता की सृष्टि करता है। इसलिये ही इसका नाम "समान" वायु है।

❀ समान जयाज्ज्वलनम् ।। यो० ३।४० ।।

इस समान वायु पर संयम का प्रयोग करने से अग्नि योगी के अपने वशमें आ सकता है। योगी लोग तब इच्छानुसार शरीर को उज्ज्वल या तेजोमय कर सकता है और प्रयोजन आने पर अपने देहों को उस योगाग्नि से भस्मीभूत भी कर सकता है।

कभी-कभी देखा जाता है कि मृत्तिका से एक तरह की उष्मा निकलती है। ठीक उसी तरह शरीर में भी ऐसी उष्मा विद्यमान है। वह मन और इन्द्रियों का क्रिया-प्रवाह या बहिःस्फुरण है। समान वायु पर जयलाभ होने से अर्थात् समान वायु पर संयम के प्रयोग करने से उस उष्मा का स्फुरण वृद्धि को प्राप्त होता है और परिशुद्धि होती है। साधारण मनुष्य उस योगी को तेजस्वी या अग्निमय रूप में अनुभव करते हैं।

दिव्य श्रोत्र लाभ❀

पतंजलि ने कहा कि श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध पर संयम धारण करने से दिव्य श्रोत्र का लाभ होता है। यह उपलक्षण से बोला गया है। इसी रूप से दूसरे-दूसरे इन्द्रियों में भी दिव्य गुण आ सकते हैं। शब्द-तन्मात्र से आकाश उत्पन्न हुआ है। शब्द-तन्मात्र के सात्त्विक अंश★ से ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय वाक् और तामसिक अंश से प्राण उत्पन्न हुए हैं।

इसी प्रकार स्पर्श-तन्मात्र से उत्पन्न हुआ वायु और उस स्पर्श तन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय त्वक्, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय पाणि और तामसिक अंश से "उदान" उत्पन्न हुये हैं।

इसी प्रकार रूप-तन्मात्र से तेज वा अग्नि उत्पन्न हुआ है। उस रूप तन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय चक्षु, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय पाद और तामसिक अंश से व्यान उत्पन्न हुए हैं।

इसी प्रकार रसतन्मात्र से अप् उत्पन्न हुआ है। उस रस तन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय रसना (जिह्वा) राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय पायु और तामसिक अंश से अपान उत्पन्न हुए हैं।

इसी प्रकार गन्ध-तन्मात्र से पृथिवी उत्पन्न हुई है। उस गन्ध तन्मत्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय नासिका, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय उपस्थ और तामसिक अंश से समान उत्पन्न हुए हैं।

❀ श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध-संयमात् दिव्यं श्रोत्रम्।।यो. ३-४१.

★ अभिनव योगज साक्षात्कारः

इससे हम लोग समझ सकते हैं कि पंच तन्मात्र से ही पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच प्राणों की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार पाँच तन्मात्र से पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच प्राणों के अन्दर परस्पर अति निकट सम्बन्ध है।

जितने विभिन्न जीव हैं सभी के श्रोत्रेन्द्रियों के साथ आकाश का संयोग है, स्पर्शेन्द्रियों के साथ वायु का, चक्षुरिन्द्रियों के साथ अग्नि का, रसनेन्द्रियों के साथ जल का और नासिकेन्द्रियों के साथ क्षिति का संयोग है। श्रोत्रेन्द्रिय बहुत हैं। लेकिन आकाश एक है। इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय बहुत हैं लेकिन वायु एक है, चक्षुरिन्द्रिय बहुत हैं लेकिन अग्नि एक है, रसनेन्द्रिय बहुत हैं लेकिन जल एक है और नासिकेन्द्रिय बहुत हैं लेकिन क्षिति एक है।

पाँच भूतों के साथ इन्द्रियों का आधार आधेय सम्बन्ध हैं। योगी लोग इस तत्त्व को जान कर इन सब इन्द्रियों पर संयम का प्रयोग करके दिव्य अर्थात् अलौकिक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ग्रहण करते हैं। इन सब इन्द्रियों के स्थूल और सूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने की उन में शक्ति हैं। राग-द्वेषादि के द्वारा इन्द्रियगण मलिन और असंयत रहता है। इस स्थिति में सूक्ष्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ज्ञान आता नहीं। इन्द्रिय और पंचभूतों के सम्बन्ध पर संयम धारण करके योगी दिव्य-शक्ति लाभ करते हैं। जैसे चुम्बक लौहका संबंध है। चुम्बक लोहे का आकर्षण करता हैं ऐसे ही (२२१ ह.ले.)विषय इन्द्रियों का आकर्षण करता है। स्थूल और सूक्ष्म दोनों विषयों को ग्रहण करने की शक्ति इन्द्रियों की है। साधारण मनुष्य स्थूल विषयों का ग्रहण कर सकते हैं। योगीसूक्ष्म विषयों का भी ग्रहण कर सकते हैं।

दिव्य या अलौकिक शक्ति❀

योगी शब्द-आकाश, श्रोत्र, स्पर्श-वायु-त्वक् रूप-अग्नि-चक्षु रस-जल-जिह्वा और गन्ध-क्षिति-नासिका—इनके परस्पर सम्बन्धों पर स्थिर चित्त से धारणा, ध्यान, समाधि अर्थात् संयम का प्रयोग करके दूरवर्ती और सूक्ष्म विषयों का ग्रहण कर सकते हैं।★ये लोग दूरवर्ती, अन्तराल के और गुप्त स्थानों के दृश्य देख सकते हैं, बातचीत सुन सकते हैं, स्पर्श का अनुभव कर सकते हैं, गन्ध ग्रहण कर सकते हैं और खाद्य वस्तु का आस्वादन कर

❀ ततः प्रातिभश्रावण वेदना स्वादवार्त्ता जायन्ते ।। यो. ३-३७

★ प्रकृत्यालोकन्यासात् सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्टज्ञानम् यो.३-२५

सकते हैं। इसी शक्ति का नाम अतीन्द्रियं शक्ति, और दिव्य शक्ति या अलौकिक शक्ति भी है।

आकाश भ्रमण❀

पतंजलि ने लिखा है कि काया और आकाश में जो सम्बन्ध है उस के प्रति संयम का प्रयोग करनें से योगी रुई जैसा हलका बन सकता है और ऐसा अल्प भार होने के कारण वह आकाश में यातायात कर सकता हैं। जहाँ शरीर है वहाँ ही आकाश है। आकाश इस भौतिक देह को रहनें का अवकाश या स्थान दे रहा है। शरीर व्याप्य और आकाश व्यापक है। आकाश इस देह को अपनें सब स्थानों में ही आश्रय दे सकता है, आकाश से वायु, अग्नि, जल और क्षिति की उत्पत्ति हुई है। काया के साथ इन सब ही का क्रमानुसार सम्बन्ध है। योगी लोग इस प्रकार के सम्बन्ध के प्रति संयम का प्रयोग करते हैं, क्रमशः वह सम्बन्ध उनका इच्छाधीन हो जाता है अर्थात् उस सम्बन्ध पर योगी का जय हो जाता है। काया को तब ये लोग रुई जैसी लघु भावना से अनुध्यान करते हैं और रुई से भी लघु वस्तु का ध्यान करनें लगते हैं। तब संयम-बल से योगी का देह अत्यन्त लघु बन जाता है। तब ये लोग क्लेश के विना ही आकाश में गमनागमन भ्रमणादि कर सकते हैं। यह आकाश-गति अति अल्पकाल के अन्दर ही सिद्ध नहीं होती। योगी धीरे-धीरे क्रमशः सीखते हैं। पहले ये लोग जल के ऊपर भ्रमण करना सीखते हैं, फिर मकड़ी के धागे के अवलम्बन से, फिर सूर्य रश्मि के अवलम्बन से अति ऊपर आकाश में संचरण और विचरण करना सीख लेते हैं।

बहुज्ञता सिद्धि×

पतंजलि मुनि ने कहा है कि बाह्य वस्तु में अकल्पिता मनोवृत्ति रूप महाविदेहा में संयम के प्रयोग करने से प्रकाश का आवरण क्षय को प्राप्त होता है।

वृत्ति दो प्रकार की हैं—कल्पिता और अकल्पिता। योगी देह के अन्दर रहता हुआ बाहर के किसी विषय में जब संयम करता है तब उस

❀ कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमात् लघु तूल-समापत्तेश्च आकाश-गमनम्। यो. ३-४२॥

× बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥यो. ३-४३॥

का नाम कल्पिता वृत्ति है "मैं देह नहीं हूं, मैं आकाश हूं।" इस प्रकार आकाश-भावना सर्वोत्तम कल्पिता वृत्ति का क्रमश: अभ्यास करने से चित्त देह में नहीं रहता है। चित्त तब आकाश में ही रहता है और आकाशमय हो जाता है। यह ही अकल्पिता वृति है। योगी लोग कल्पिता वृत्ति को 'विदेहा धारणा" बोलते हैं और अकल्पिता वृत्ति को "महाविदेहा धारणा" बोलते हैं। यह महाविदेहा धारणा सिद्ध हो जाने से चित्त के प्रकाश के आवरण का क्षय होता है। रज: और तमो गुण और उन दोनों गुणों के कार्यों के सब आवरणों से चित्त की प्रकाशशक्ति को आवृत कर रखा था, वह आवरण नष्ट हो जाता है। सत्र विषयों को प्रकाशित करना चित्त का स्वभाव है। "महाविदेहा धारणा" से चित्त का आवरण नष्ट हो जाता है। चित्त तब विश्व संसार को प्रकाशित कर सकता है। योगी तब बहुज्ञ बन जाते हैं।

शरीर में योगी का 'अहं—मैं' ज्ञान नहीं है। लेकिन चित्त बाहर के विषयों में निमग्न है। चित्त की इस अवस्था का नाम ही "महाविदेहा" है। चित्त की इस स्थिति पर संयम का प्रयोग करने से क्रमश: प्रकाश का आवरण अर्थात् स्वच्छ और व्यापक ज्ञान-शक्ति का प्रतिबन्धक आवरण क्षय को प्राप्त होता है।

साधक जब ध्यान-धारणा का अभ्यास करते हैं तब वे दृढ़तर संकल्प को धारण करके इस धारणा या कल्पना को ले लेते हैं "देह के प्रति जो मेरा यह अहं—ज्ञान है, वह नष्ट हो जाय और मेरा चित्त बाहर की वस्तु में ही विराजित रहे।" बार-बार वे इस कल्पना या चिन्ता को करते हैं। वह चिन्ता या कल्पना प्रबल होने से चित्त बाहर की वस्तु में ही प्रतिष्ठित हो जाता है। इसी का नाम "कल्पित विदेहा" है। क्रमश: जब देह के प्रति अहं वृत्ति का अभाव होता है तब चित्त स्वत: ध्येय वस्तु में ही प्रतिष्ठित होता है। इसी प्रकार के चित्त का नाम 'अकल्पिता महा-विदेह" है। इस अकल्पिता महाविदेह नाम के मनोभाव या धारणा प संयम के प्रयोग करने से सर्व प्रकाशक चित्त का आवरण या आच्छादन जिस के रहने से चित्त अल्पज्ञ होके रहा यानी सब कुछ प्रकाशित नहीं कर सका, वह आवरण दूर हो जाता है। योगी तब सब या बहुत कुछ जान सकते हैं।

भूत-जय❀

पतंजलि ने कहा कि क्षिति, अप्, तेज, मरुत् और व्योम—इन पाँच भूतों की स्थूल, सूक्ष्म, स्वरूप, अन्वय और अर्थवत्त्व—ये पंचविध रूप या अवस्था विशेष हैं। इनके प्रति संयम के प्रयोग से भूतजय होता है अर्थात् पंच महाभूत वशीभूत होते हैं।

प्रथम स्थूलावस्था—पंच भूतों की वर्तमान या परिदृश्यमान अवस्था का नाम स्थूलावस्था है। आकाश का शब्द, वायु के शब्द और स्पर्श, अग्नि के शब्द, स्पर्श और रूप, जल के शब्द, स्पर्श, रूप और रस; और क्षिति के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये सब आकार और गुणयुक्त अवस्थाएँ पंचभूतों के स्थूल रूप हैं।

द्वितीय स्वरूपावस्था—क्षिति कठिन और कर्कश है, जल स्निग्ध, तरल और शीतल है, तेज दहनशील है, वायु प्रवहमान और शोषणकारी है और आकाश स्थान-दायक है। ये सब पंचभूतों की स्वरूपावस्थायें हैं।

तृतीय सूक्ष्मावस्था—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये तन्मात्रायें या परमाणु ही पंचभूतों की सूक्ष्मावस्थायें हैं।

चतुर्थ अन्वयित्वावस्था—पंचभूत ही सत्त्व, रजः और तमोगुणों से परिव्याप्त हैं अर्थात् प्रकाश, प्रवृति, स्थिति इन तीनों धर्मों से युक्त हैं। यह पंचभूतों की अन्वय अवस्था है।

पंचम अर्थवत्त्वावस्था—भोग या अपवर्ग प्रदान के सामर्थ्य से युक्त पंचभूतों ही हैं। यह इनकी अर्थवत्त्वावस्था है।

भूतों की इन पंच अवस्थाओं के क्रमानुसार स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वयित्व और अर्थतत्त्वों के प्रति संयमके प्रयोग करने से पंचभूतों पर जय-लाभ होता है। पंचभूत योगी के अपने इच्छानुगामी अर्थात् आज्ञाकारी बन जाते हैं और वशीभूत होते हैं। और पंचभूतों के सत्व, रजः और तमोगुण क्रमानुसार सुख, दुःख, मोह के कारण नहीं बनते हैं।

अष्ट ऐश्वर्य, काय-सम्पत् काय-धर्मों की अनभिघात-सिद्धियाँ★

पतंजलि ने कहा कि भूत जय होने से अणिमादि अष्ट महासिद्धि, कायसम्पत् और कायिक धर्मों का अनभिघात अर्थात् अविनाश होता है।

❀ स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद् भूतजयः ।।यो. ३-४४।।

★ ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः कायसंपत् तद्धर्मानभिघातश्च ।।यो. ३-४५।।

अष्ट-ऐश्वर्य—१. अणिमा, २. लघिमा, ३. महिमा (गरिमा), ४. प्राप्ति, ५. प्राकाम्य, ६. वशित्व,७. ईशित्व और ८. यत कायावसायित्व ईश्वर में स्वतः सिद्ध अष्ट महाशक्तियाँ हैं। ये गुण या महाशक्ति साधना-बल से योगी में भी प्रविष्ट होती हैं। इसलिये इन शक्तियों का नाम ऐश्वर्य है। भूत-जयी होने से उन ऐश्वर्यों की उत्पत्ति होती है। इनका दूसरा नाम है अष्ट महासिद्धियाँ। भूत-जय से ये सब महागुण योगियों के अन्दर आ जाते हैं।

पहले प्रकृति के पंचविध रूप या आवस्थाओं के सम्बन्ध में ये सिद्धियाँ वर्णन की गई है। यदि प्रकृति के स्थूल रूप में संयम का प्रयोग किया जाय तो प्रथम चार सिद्धियाँ—अर्थात् अणिमासिद्धि, लघिमासिद्धि, महिमा (गरिमा) सिद्धि और प्राप्ति सिद्धि आयत्व में लायी जा सकती है।

यदि प्रकृति की स्वरूप अवस्था में संयम का प्रयोग किया जाय तो प्राकाम्य नाम की महासिद्धि आयत्व में आ जाती है। यदि प्रकृति की सूक्ष्मावस्था में संयम का प्रयोग किया जाय तो वशित्व नाम की महासिद्धि आयत्व में आ जाती है। यदि प्रकृति की अन्वयावस्था में संयम का प्रयोग किया जाय तो ईशित्व नाम की महासिद्धि आयत्व में आ जाती है। यदि प्रकृति की "अर्थवत्वावस्था" में संयम का प्रयोग किया जाये तो "यत-कामावसायित्व"नाम की चरम सिद्धि आयत्व में आ जाती है। (२३० ह.ले.)

अष्ट महासिद्धियों के परिचय

(१) अणिमा—शरीर आयतन में बृहद् होने पर संयम के प्रयोग से परमाणु तुल्य बन जायगा। (२) लघिमा–शरीर अत्यन्त भारी होने पर भी रूई तुल्य लघु हो जाता है। (३)महिमा या गरिमा—शरीर लघु होने पर भी पर्वताकार हो जाता है। (४) प्राप्ति-दूरस्थ वस्तु का निकट प्राप्त होना। (५) प्राकाम्य—इच्छा का अनभिघात होना अर्थात् संकल्प इच्छा—कठिन से कठिन सोने पर भी कार्य रूप में कर देना। (३) वशित्व-भूत और भौतिक वस्तुओं को भी अपने वश में लाना। (७) ईशित्व—भूत और भौतिक वस्तु या प्राणियों पर प्रभुत्व करने की शक्ति। (८) यत-कामावसायित्व—सत्य संकल्प-लाभ, भूत और भौतिक वस्तुओं में या किसी प्राणी में इच्छानुसार शक्ति-संचार कर देना। यह चरमशक्ति, ऐश्वर्य या विभूति है। इससे दुःसाध्य साधन होता है।

नवम महाशक्ति❀

पंच महाभूत का जय करने से कार्य-सम्पद नाम की नवम महा-सिद्धि की प्राप्ति होती है। रूप, लावण्य, बल दृढ़ता और वेग शक्ति आदि गुणों का शरीर में आ जाना—इसी का नाम काय-सम्पद् है।

दशम महासिद्धि

भूत-जय होने से कार्य-सम्पद् का अनभिघात नाम की महासिद्धि की प्राप्ति होती है। इससे शरीर की पूर्ति, रूप और शक्ति का परिवर्तन नींह होता है। शरीर अविनश्वर मालूम होता है। इसी का नाम काया अनभि-घात धर्म नाम की महासिद्धि है।

इन्द्रियों को वशीभूत करना★

पतञ्जलि ने कहा है कि पंच महाभूतों की तरह इन्द्रियों की भी पांच अवस्थायें हैं—[ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्त्व❀❀] (१) चक्षु, कर्ण, नासा, जिह्वा और त्वक् जब अपने-अपने विषय वस्तु को ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं तब यह इन्द्रियगण की "ग्रहण" नाम की प्रथम अवस्था है। (२) इन्द्रियगण जब विषयों को प्रकाशित कर देते हैं तब इसका नाम द्वितीय "स्वरूप अवस्था" है। (३) जब इन्द्रियगण के साथ सात्विक अहंकार अन्तर्निहित रहता है तब इसका नाम तृतीय "अस्मिता अवस्था" है। (४) इन्द्रियों का मूलकारण गुणत्रय सत्व, रजः, तम है। जब गुणत्रय के साथ यह इन्द्रियगण युक्त रहता है तब इसका नाम चतुर्थ "अन्वय अवस्था" है। (५) इन्द्रियों के कार्यों में इन्द्रियों का कोई स्वार्थ नहीं है। इन्द्रियगण पदार्थ हैं। इन्द्रियगण पुरुष के भोग या अपवर्ग के लिए है। यह भोग या अपवर्ग ही इनकी पंचम अवस्था "अर्थवत्त्व" है।

पुण्यार्थी योगी इन्द्रियों की इन पंच विध रूप या अवस्थाओं पर संयम प्रयोग करके इन्द्रियों को वशीभूत या जय कर सकते हैं। इन्द्रियों के ऊपर योगी का सम्पूर्ण आधिपत्य होने के कारण इच्छामात्र सेही वे उत्कृष्टया अप-इन्द्रियों की सृष्टि कर सकते हैं। ये लोग इस शक्ति से अन्धे को चक्षुदान,

---

❀रूप-लावण्य-बल वज्र-संहनत्वानि काय संपत्॥ यो. ३-४६॥

★ग्रहण-स्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्व संयमाद् इन्द्रिय जयः ॥ यो. ३-४७॥

❀❀हस्त लेख में नहीं है।

बधिर को कर्णदान, खंज को पददान, गूंगे को वाक्शक्ति दान कर सकते हैं।

मनोजय से त्रिशक्ति-लाभ*

पतंजलि ने कहा है कि इन्द्रिय जय होने से योगी इन त्रिशक्तियों को लाभ करते हैं—मनोजवित्व विकरण-भाव और प्रधानजय (प्रकृति-जय)

(१) मनोजवित्व—मन की तरह द्रुतगति, (२) विकरण-भाव—देह की अपेक्षा न रखकर इन्द्रिय गण को बाहर विषयों के साथ संयुक्त कर देना और (३) प्रधान जय—समग्र प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त होना।

प्रथमा शक्ति 'मनोजवित्व'—

लाभ होने से योगी मन की नाईं बाधाहीन होकर सर्वत्र जा सकता है, इन्द्रिय-जय होने पर शरीर में भी बाधाहीन अव्याहत गति शक्ति आ जाती है। साधारण व्यक्ति जहाँ नहीं जा सकते योगी वहाँ जा सकते हैं। मन की जैसी द्रुतगति शक्ति है योगी के अन्दर ऐसी द्रुतगति शक्ति आ जाती है।

द्वितीया-शक्ति 'विकरण-भाव'

लाभ होने से योगी को विगत देह होने पर भी देह-शून्य होने पर भी देहाभिमान न रहने पर भीचक्षुरादि इन्द्रियों का करणत्व अर्थात् ज्ञानोत्पादन-सामर्थ्य प्रबल रहता है। विकरण-सिद्धयोगी लोग दूरस्थ वस्तुओं को जाननेके लिए शरीर के साथ वहाँ नहीं जाते हैं।एक ही स्थान में रहते हुए वे दसों दिशाओं की दूर स्थित और अतीत-वर्तमान और अनागत वस्तुओं को जान सकते हैं।

तृतीया-शक्ति

"प्रधान जय" लाभ होने से इन्द्रियों की 'अन्वय' नामक चतुर्थ रूप या अवस्था पर संयम धारण करके योगी व इन्द्रियों के मूल कारण प्रकृति को वशीभूत या आज्ञाकारिणी कर सकते हैं अर्थात् उस पर योगी का सम्पूर्ण आधिपत्य हो जाता है। इन्द्रियों के पाँच रूपों को या अवस्थाओं को जय करने से इन तीन शक्तियों—मनोजवित्व विकरणभाव और प्रधानजय की प्राप्ति होती है। इस त्रिविध शक्तियों का नाम 'मधुप्रतीका' है। मधु के सर्व अंगों में जैसे अमृतरस रहता है इस सिद्धि के भी सर्वांगों में अमृतरस रहता है।

*ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ यो. ३-४८ ॥

सर्व वस्तुओं पर आधिपत्य लाभ और सर्व वस्तु जानने का परिणाम*

पतंजलि ने कहा है कि सत्त्व अर्थात् महत्तत्व नामक बुद्धि (मन) और पुरुष अर्थात् शुद्ध चिदात्मा—इन उभयों के पाथक्य अर्थात् भेद ज्ञान के प्रति संयम प्रयोग करनेसे सर्व भावों पर अर्थात् वस्तुओं पर योगी आधिपत्य और सर्व वस्तुओं के विषय में ज्ञान—इन दो क्षमताओं का लाभ करते हैं।

पुरुष (जीवात्मा) बुद्धि नहीं हैं और बुद्धि भी पुरुष नहीं है ये दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। साधारणतः लोग इन दोनों को एक ही जानते हैं। चित्त में जब तक रजस्तमोमल रहेगा तब तक यह भेद दर्शन नहीं होगा।

चित्त के मल साफ हो जाने से और चित्त में विषय-कामनाओं के नहीं उठने से समझ लेना चाहिए कि चित्त शुद्ध हो गया। तब विवेक ज्ञान उत्पन्न होता है। इस विवेक ज्ञान के द्वारा हम बुद्धि और पुरुष (आत्मा) का भेद समझ सकते हैं। इस भिन्नता के ज्ञान पर सयम के प्रयोग करने से सर्व वस्तुओं पर आधिपत्य लाभ और सर्व वस्तुओं के विषय में ज्ञान-लाभ सिद्ध होता है।

सब विषयों का अतीत, वर्तमान और भविष्यत् ज्ञान एक साथ एक क्षण के अन्दर उत्पन्न होने से यहां उस ज्ञान का नाम 'सर्वज्ञातृत्व' है। उसमें एक (अतीत) के वाद दूसरे (वर्तमान) और उसके बाद तीसरे (भविष्यत्) के ज्ञान का उदय नहीं होता। सर्व ज्ञातृत्व में भूत, वर्तमान, भविष्यत् का ज्ञान एक ही साथ उदित होता है।

जैसे अचंचल और निस्तरंग स्थिर जल में चन्द्र का प्रतिबिम्ब स्पष्ट देखा जाता है इसी प्रकार स्थिर चित्त में बुद्धि और पुरुष (आत्मा) का भेद-ज्ञान सुस्पष्ट होता है। चित्त में कामना रहने से चित्त चंचल होता है। कामना-शून्य चित्त स्थिर है। रजः और तमोमत से कामना की उत्पत्ति होती है। इसलिये चित्तस्थ रजस्तमोमल साफ होने से चित्त निर्मल और स्थिर होता है। स्थिर चित्त में ही विवेक ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के निर्मल चित्त में बुद्धि और पुरुष का भेद ज्ञान उत्पन्न होता है और उस भेद-ज्ञान पर संयम धारण करने से "ज्ञान-रूपा-सिद्धि सर्वज्ञातृत्व" और "क्रिया रूपा सिद्धि सब वस्तुओं पर आधिपत्य सिद्धि" मिल जाती है।

---

*सत्त्व पुरुषान्यता ख्याति मात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं च। ॥ यो. ३-४९ ॥

इसी सिद्धि का नाम योगशास्त्र में "विशोका-सिद्धि" है। इस सिद्धि की प्राप्ति से किसी वस्तु का शोक नहीं रहता है। इस सिद्धि में किसी वस्तु के खो जाने का मिथ्या ज्ञान नहीं रहता है और इसलिये ही इसका नाम विशोका सिद्धि है।(ह. ले. २४॥)

कैवल्य-लाभ या मुक्ति-लाभ (मोक्ष-लाभ)[1]

विशोका सिद्धि का लाभ होने पर यदि उसके प्रति योगी का वैराग्य उत्पन्न होता है तो उसी योगी के बुद्धिमालिन्य की मूल कारण अविद्या नष्ट हो जाती है। तब ही कैवल्य अर्थात् स्वरूप-प्रतिष्ठारूप स्थिति प्रवाह का लाभ होता है। उस समय उस प्रकार के योगी पर प्रकृति का अधिकार नहीं रहता है।

विवेक-ज्ञान या विवेक-ख्याति अति उच्च स्थिति है। उस उच्च स्थिति के साथ भी कैवल्य की तुलना करने से विवेक ख्याति तुच्छ समझी जायगी विवेक-ख्याति बुद्धि-सत्त्व का धर्म है बुद्धि-सत्त्व विकारशील है और इसलिये तुच्छ और हेय है। बुद्धि-सत्त्व विकारशील है, लेकिन पुरुष अधिकारी है। पुरुष उस बुद्धि-सत्त्व से सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार की प्रज्ञा के उदय होने से पुरुष का अनादि अनन्त काल से संचित संस्कार बीज दग्ध हो जाता है। बीज दग्ध हो जाने से वह प्रसव-क्षमताहीन होता है। उससे नये संस्कार की उत्पत्ति नहीं होती है। योगी चिरकाल के लिये संसार-ताप से मुक्त हो जाते हैं। तब बुद्धि लय-प्राप्त होता है और पुरुष से गुणों का अत्यन्त विच्छेद हो जाता है। इसी का नाम कैवल्य है।

विशोका-सिद्धि के सर्वज्ञातृत्व और सर्वभावाधिष्ठातृत्व-लाभ अति उच्च स्थितियाँ हैं। उस से भी वैराग्य होने से अर्थात् उस विवेक-ख्याति के प्रति भी आसक्ति-हीन[2] होने से दोष-बीज, अविद्या आदि का बन्धन और धर्माधर्म रूप कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं।[3] तब ही पुरुष को स्व-रूप में स्थिति का लाभ होता है। यह ही सर्वोच्च गति और स्थिति है। इससे ऊपर और कुछ है। इसी का नाम मुक्ति या मोक्ष है। इसी का नाम अमृतत्त्व-लाभ है।

---

१. तद्वैराग्यादपि दोष बीजक्षये कैवल्यम् ।।यो. ३-५०।।
२. प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेक ख्यातेःधर्ममेघःसमाधिः ।। ४-२९।।
३. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ।।यो. ४-३०।।

चार प्रकार के योग और योगी*

स्थिति से योग और योगी चार प्रकार के हैं। योग के प्रारंभ से पूर्णता-प्राप्ति तक आलोचना करने से योग के और योगीके चार विभाग देखे जाते हैं। इसके अनुसार भिन्न-भिन्न नामों का प्रचलन है—प्राथम—काल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति, और अतिक्रान्त-भावनीय। इन सबों के आभास पहले भी दिये गये हैं।

प्रथम—योग-शिक्षा के विषय में जो लोग विल्कुल नये हैं और जो लोग योग में अविचलित और दृढ़ नहीं हुए हैं, जिनके संयम में या समाधि में किसी प्रकार की सिद्धि भी नजर नहीं आती है। केवल मात्र अति अल्प मात्र ज्ञान का विकास अनुभव में आया हो—इस प्रकार के योगी का शास्त्रीय नाम "प्राथम कल्पिक" है।

जो लोग प्राथम-कल्पिक अवस्था का अतिक्रम करके मधुमती नाम की द्वितीय स्थिति को प्राप्त हुए हैं। ऋतम्भरा नाम की प्रज्ञा लाभ करके भूत और इन्द्रियों को वशीभूत किये हैं और सर्वभावों के अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञातृत्व लाभ के लिये यत्नशील हैं—इस प्रकार के योगी का नाम "मधुभूमिक" है।

जो लोग मधुभूमिक अवस्था का अतिक्रमण करके विभूति या ऐश्वर्य लाभ के लिये प्रलुब्ध नहीं हैं और स्वार्थ संयम में यत्नवान् है—इस प्रकार के योगी का नाम "प्रज्ञाज्योति" है।

जो लोग इस प्रज्ञाज्योति स्थिति को अतिक्रमण करके अत्यधिक विवेक ज्ञान के अधिकारी हुए हैं, जो लोग विवेक ज्ञान के स्थूल फल के लिये लोभी नहीं हैं और समाधि काल में जिनको किसी प्रकार की विघ्न-बाधा बिलकुल नहीं पड़ती है और जो जीवन्मुक्त हैं इस प्रकार के योगी का नाम "अतिक्रान्तभावनीय" है।

दिव्य भोगों में प्रलुब्ध होने से और योगप्रभावों के प्रति विस्मित होने से कैवल्य या मोक्ष-लाभ में विघ्न होता है। विभूतियों में प्रलुब्ध होने से योग भंग होता है और पतन होता है। विस्मय आ जाने से योगी को कृतकृत्यता का बोध आता है। विषयभोगेच्छा और विषय भोग, विस्मय या आश्चर्य—ये सब योग के लिए विघातक हैं। सच्चे योगी विभूतियों से डरते हैं।

योगबल से बुद्धि निर्मल होने से, बुद्धि के रजोगुण और तमोगुण

* स्थान्युपनिमन्त्रण संगस्मयाकरण पुनरनिष्ट प्रसंगतः ।।यो. ३-५१ ।। देखो व्यासभाष्य

निर्जित होने से या बुद्धि-मालिन्य रहित होने से बुद्धि में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता है। तब बुद्धि स्थिर, धीर और निश्चल हो जाती है। बुद्धि की इस स्थिति का नाम "सत्त्व-शुद्धि" है। सत्त्व-शुद्धि हो जाने से नित्य आत्मा का कल्पित भोग तिरोहित हो जाता है। इस प्रकार की भोग-निवृत्ति का नाम "आत्म-शुद्धि" है। यहाँ तक पहुँचने से कैवल्य, मुक्ति या मोक्ष का लाभ होता है।

इस श्रेयोलाभ के लिए ही मैंने काशी से आकर चाणोद, व्यासाश्रम और अहमदाबाद (दुग्धेश्वर मन्दिर) में श्रीमत् स्वामी योगानन्द, ज्वालानन्दपुरी, शिवानन्द गिरि आदि योगाचार्य गुरुओं से योग-शिक्षा के विषय में क्रियात्मक रूप से परिचय लाभ किया था। मैंने योग-शिक्षा के बाद इन लोगों से योगसाधना के लिए उपदेश की प्रार्थना की थी। इन्होंने मुझे योग-साधना के लिए आबू पर्वत में जाने के लिए परामर्श दिया और वहाँ इसके बारे में सब प्रबन्ध भी करवा दिया।

योग-शिक्षाओं का विषय—जो-जो प्रधान शिक्षायें योग के विषय में विभिन्न स्थानों में विभिन्न समयों पर गुरुओं से मिली थीं और तीन वर्षों के श्रम के बाद जिन पर आज साधना का प्रयोजन है वे शिक्षा-विषय निम्न प्रकार के हैं:—

साधना के विषय—क्रिया योग, अविद्यादि पंचक्लेश, अस्मितादि के भेद अविद्यादि क्लेशों का विवरण, स्थूल और सूक्ष्म रूप से क्लेशों का नाश, दृष्ट और अदृष्ट-जन्म-वेदनीय क्लेश, जाति और भोगों की उत्पत्ति, अवश्यम्भावी परिणाम (परिताप,) योगी की दृष्टि से सबके सब दुःख ही भविष्यत् दुःख ही परित्याज्य है, देह दुःख का कारण, दृश्य का स्वरूप, गुणों का विभाग और विशेषता पुरुष का स्वरूप, दृश्य के द्वारा पुरुषार्थ-सिद्धि, दृश्य का सम्पूर्ण उच्छेद नहीं होता है, प्रकृति और पुरुष के संयोग का फल संयोग का हेतु अविद्या है और उसके विनाश से ही कैवल्य लाभ, विवेक ज्ञान से दुःख का विनाश, विवेक ज्ञान की भूमि, ज्ञान-दीप्तिका उपाय, यम निमादि अष्टांग योग, यमों के भेद, नियमों के भेद, अहिंसादि यमों के भेद, शौचादि नियमों के भेद, हिंसादि वितर्कविनाश के उपाय और विवरण, अहिंसादि सिद्धि का फल, आसन प्रकरण, प्राणायाम प्रकरण और प्रत्याहार-प्रकरण।

उत्साह और अग्रगति

गुरुओं की कृपा से मेरा धारणा, ध्यान और समाधि की शिक्षा का पाठ समाप्त हुआ। इसके बाद ही साधना का प्रश्न आया। धारणा ध्यान समाधि की शिक्षा में मुझे आशातीत रूप से फल मिला था। गुरुओं ने

मुझे उत्साह दिया और मेरे अग्रगति के पथ को खोल दिया। उन्होंने कहा कि शिक्षा और साधना एक वस्तु नहीं हैं। अनुकूल स्थिति में साधना होनी चाहिये। आश्रमों में एकाधिक व्यक्ति संग में रहते हैं। यहाँ तो देखादेखी एकाधिक शिक्षार्थी मिल जुल करके शिक्षा के पाठ समाप्त कर सकते हैं लेकिन साधना के पाठ के लिये निर्जन एकान्त और निःसंग वातावरण चाहिये। भीड़-भाड़ से सर्वथा अलग होके रहना चाहिये। इसलिये साधनेच्छु योगी पर्वतों के कन्दरों में, भू-विवरों में या निर्जन वनों के वृक्षों की छायाओं में आश्रय लेते हैं। गुरु लोगों ने कहा—कि तुम योग-शिक्षा में बहुत ही तेज निकले। साधना में भी तुम आशातीत सिद्धि लाभ करोगे इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह तो हमारा आशीर्वाद है। तुम्हारे लिए साधना का अनुकूल स्थान *आबू पर्वत है। आबू अरावली पर्वत का शृंग है। वहां साधना का अनुकूल स्थान है। वहाँ वसिष्ठाश्रम, गौतमाश्रम और भृगु आश्रम है। स्थान-स्थान पर कुंड हैं उनके अतिरिक्त गोपीचन्द की गुफा, रामगुफा आदि बहुत गुफायें हैं। वहां साधना के लिए गुफायें मिल जाती हैं। जनता की भीड़-भाड़ से दूरवर्ती गुफा ही साधना के लिए सर्वथा अनुकूल रहती है। भक्त तीर्थयात्री लोग गुफाओं के सभी साधकों के लिए खाद्य और आहार्य वस्तु पहुँचा देते हैं। वहाँ जाकर योग की साधना और तपस्या आरम्भ कर दो। बीच-बीच में हम लोग वहां तुम्हारी साधना देखने के लिये जायेंगे।

आबू पर्वत में—स्वामी ज्वालानन्द पुरी के साथ मैं सबसे विदाई लेकर अहमदाबाद होता हुआ आबू पर्वत के लिये रवाना हो गया था। मानपुर से आगे हृषिकेष का मन्दिर मिला। दो कुण्ड और चन्द्रावती नगर के ध्वंसावशेष देखने को मिले थे। अम्बरीष के आश्रम से स्वामी तर्पणानन्द हमारे साथ सम्मिलित हो गये थे। तीनों ने एक साथ पर्वतारोहण प्रारम्भ कर दिया। आबू पर्वत में कर्णिका तीर्थ, पंगुतीर्थ, अग्नितीर्थ, पिंडारकतीर्थ, नागतीर्थ और कपिलातीर्थों का दर्शन किया। गुरुजी ने मेरी साधना के लिए कई एक गुफाओं को दिखाया उनमें गोपीचन्द्र गुफा, भर्तृहरि गुफा, चम्पा गुफा, रामगुफा और अर्ब्बदा गुफा उल्लेख योग्य हैं। हमारी

---

*योगाभ्यास की रीति सीख के आबूराज पर्वत में योगियों को सुन, वहाँ जाके अर्वदा, भवानी आदि स्थानों में भवानी गिरि आदि योगियों से मिलके और योगाभ्यास किया।—जन्म चरित्र पं० भगवद्दत्त पृ-२५

योग-साधना के लिये गुरुजी ने योग-शिक्षा का प्रदत्त पाठ फिर स्मरण करवा दिया। जो शिक्षा योग के विषय में मिली है उसके लिए कई वर्ष लग गये, लेकिन वह पाठ पाठ ही है, अगर इस पाठ को क्रियात्मक साधनाओं के द्वारा व्यवहार में नहीं लाया जाय। जो पाठ मिले हैं उन पर साधनाओं के स्थान के लिए पर्वत शृंग आबू ठीक हैं और साधनाओं के समय के लिए और तीन वर्ष ठीक हैं। मैंने सहर्ष स्वीकार किया।

आबू शिखर लगभग चार योजन लम्बा और आधा योजन चौड़ा है। वहाँ सब आश्रम मन्दिर और गुफाओं में अपनी साधना के अनुकूल स्थान खोज करके मैंने रामकुण्ड (१५० पृ. ह. ले.) सरोवर के समीप राम-गुफा को उपयुक्त और अनुकूल साधन-क्षेत्र चुन लिया था और वहां ही अपनी योग-साधना आरम्भ कर दी थी।* दिनचर्या गुरुजनों के निर्देशानुसार ही रखी गई थी। दिनचर्या में मेरी प्रवर्तक विधि और निवर्तक विधि निम्न प्रकार की थी :---

निवर्तक और प्रवर्तक विधि—

एक प्रहर रात बीतने पर ही दो पहर काल में सो जाना, चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ में ही नींद से उठना, प्रातःकालीन शौचादि कर्म से निवृत हो जाना और लवणाक्त (नमकीन) पानी भरपेट पीकर दिन के प्रथम प्रहर में साधना में बैठ जाना। उदीयमान सूर्य सम्मुख रखना अच्छा है। पूरे दो प्रहर काल तक क्रमानुसार धारणा ध्यान समाधि नामक संयम साधना में निमग्न हो जाना समाधि साधना है।

समाधि जब तक रहे यदि दो प्रहर काल से अधिक भी रहे तो उस को रहने देना, समाधि से पहले या धारणा ध्यान से पहले समाधि काल की अवधि के सम्बन्ध में सोचना बन्द रखना, समाधि की सीमा जितनी बढ़ जाय, उतनी ही अच्छी है।

समाधि टूटने के बाद

प्राकृतिक दृश्य देखनेके लिए निकल जाना, मनुष्य निर्मित शिल्प-सम्भार जितने कम देखोगे उतना ही अच्छा है। (आकाश, ग्रह नक्षत्र,★) पहाड़-पर्वत, नद-नदी वृक्ष-तरु, गुम्फ-लता, फल-फूल और पशु-पक्षी, कीट पतंगादि के सौन्दर्य देखना।

परिधान के लिये दो लंगोटियाँ, दो अन्तर्वास और दो बहिर्वास बहुत हैं, इससे कम हो तो और भी अच्छा है।

---

*हस्त लेख पानी से नष्ट हो गया।

★हस्त लेख अस्पष्ट कठिनता से अनुमान किया गया पाठ। सं०

स्नान इच्छानुसार एक बार या एकाधिक वार हों, वर्तमान या पूर्वजीवन के संस्कारों के अनुसार अशुभ या कुत्सित स्वप्न देखने से नींद टूटने के साथ-साथ ही स्नान करना।

दिनभर उपवास करना और रात को नमकीन पानी पी लेना, दूध तक नहीं पीना और फल-फूल खाना नहीं।

सम्बल—दो तृणासन, दो कम्बल, एक लोटा, एक दण्ड यह सम्बल रहें।

खाना—खाने के लिये सोचना नहीं, तीर्थ यात्रियों से या भक्त लोगों से भेंट आ जाने पर अपनी एक दिन की आवश्यकतानुसार उनमें से खाने की वस्तु रख लेना और शेष वापस दे देना। यदि वे वापिस न हों तो वह वस्तु पशु-पक्षी कीट पतंग या दूसरे प्रार्थी मनुष्यों को दे देना। दूसरे दिन के लिये कुछ भी संचय न करना किसी दिन आहार्य वस्तुओं की भेंट नहीं आनेसे किसी से भी नहीं माँगना, नमकीन पानी पी ले·ा या फल खा लेना, फल नहीं मिलने से फल की पत्तियों को ही पीस कर खा लेना।

वाचंयम—किसी तीर्थ यात्री से प्रयोजन के अतिरिक्त बातचीत नहीं करना।

दृष्टि—पुरुष हो या स्त्री हो किसी के प्रति एक निमेष के लिये भी तीव्र या तीक्ष्ण दृष्टि से नहीं ताकना, व्याकुल न हो जाना।

चरण वन्दना -- किसी को भी पाद-स्पर्श करने नहीं देना।

आशीर्वाद—किसी का भी मस्तक स्पर्श करके आशीर्वाद नहीं देना।

एकान्त—किसी को साधना के स्थान में आश्रय नहीं देना।

असंग—दूसरे की किसी व्यवहृत वस्तु को भेंट के रूप में नहीं लेना।

निमन्त्रण—किसी के स्थान में जाने के लिये अनुरोध या निमन्त्रण स्वीकार नहीं करना।

मौन—जहाँ तक हो सके आकार-इंगित से ही बातचीत करनी और वृथावाक्य प्रयोग नहीं करना, नहीं पढ़ना, पत्र या साधना से सम्बन्धरहित पुस्तकादि नहीं रखना।

पत्र व्यवहार - किसी को पत्र लिखने का सुयोग या पता नहीं देना और लिखित कागज या हस्ताक्षर नहीं देना या नहीं लेना किसी से पत्र या रुपये डाक से आने से स्वीकार नहीं करना।

रोग में—बीमार पड़ने पर केवल उपवास करना, किसी से भी सेवा, यत्न या शुश्रूषा नहीं लेनी। सम्पूर्ण रूप से उपास्य परम प्रभु के शरण में रहना।

यहाँ मेरे दो उपदेष्टा मिल गये—स्वामी कैवल्यानन्द और स्वामी धर्मानन्द।

गुरुओं का निरीक्षण

हमारे गुरु लोगों में से कोई न कोई मेरी स्थिति को देखने के लिए और अपने-अपने साधन सम्बन्धी कार्यों के लिए आ जाते थे। दूसरे वर्ष में गुरु लोगों ने आकर हर्ष प्रकट करके कहा—

"दयानन्द! अब तुम परीक्षा-सागर के सम्मुखीन हुए हो। तुम्हारे अन्दर धीरे-धीरे विभूतियों का प्रकाश आ रहा है। अतीन्द्रिय शक्तियों का आवर्भिाव ही विभूतियों का प्रकाश है। धारणा ध्यान समाधि का अभ्यास पूर्ववत् ही चालू रखना। अगली बार जब हम तुमसे मिलेंगे तब तुम्हारी उपलब्ध विभूतियों का हिसाब लेंगे। याद रखो, विभूति के आने के साथ-साथ ही बहुत साधकों का पतन हो जाया करता है। विभूतियों के मोह में किसी प्रकार से अपने को धन्य समझ कर वे लोग साधारण व्यक्तियों को इन्द्रजाल या भोज विद्या दिखा कर अर्थोपार्जन में या इन्द्रियों के भोगों में आबद्ध हो जाते हैं। योगी साधना के जिस स्तर में पहुँच विभूतियों को प्राप्त होते हैं उस स्तर से कोई कोई गिर जाते हैं। उनकी साधना व्यर्थ बन जाती है। तुम अति सावधान रहना। कुछ विभूति या अलौकिक शक्ति की उपलब्धि हो जाने पर उसको परीक्षा के रूप में समझ लेना। याद रखो **गुरुओं को छोड़ कर दूसरे किसी से भी इसके बारे में कुछ नहीं प्रकाश करना।**

"दयानन्द! तुमने माता-पिता, घर-बार छोड़ दिया था, केवल योग विद्या सीखने के लिये ही न! योग विद्या अनन्त अपार है। हमसे भी बहुत बड़े-बड़े योगी बहुत संख्या में भारत वर्ष के वन-जंगल, पहाड़-पर्वत, आश्रम-तपोवन, पर्वत- कन्दर और भूविवरों में हैं। ये लोक चक्षुओं के अन्तराल में रह कर योग साधना और कठोर तपस्या कर रहे हैं। लेकिन वे सब कुछ साधन मात्र ही है विभूतियाँ तुम्हारी दासी बन कर तुम्हारे अधीन हो के रहें। ये शक्तियाँ परार्थ के लिये या जीव सेवा में प्रयुक्त करो। अविद्या से मुक्त होना ही तुम्हारी मुक्ति है और इस मुक्ति से ही मृत्युंजय बनो। इस मृत्युंजय के लिये ही तुमने घरबार छोड़ा था। कैवल्य-प्राप्ति के लिये आगे हिमालय की तरफ गुरुजनों को ढूँढना।

गुरुओं का आदेश और उपदेश हमने शिरोधार्य किया और निश्चय किया कि और एक वर्ष यहाँ रह कर मैं सारे भारतवर्ष और हिमालय में भी घूम-घूम कर योगियों का सन्धान करूँगा। एक वर्ष और मैंने फिर ध्यान धारणा-समाधि में यानी संयम में ही व्यतीत किया था। आगे और ठीक एक वर्ष का काल मैंने अति सावधान रहकर गुरुओं की प्रतीक्षा में समाधि-साधना की थी।

एक वर्ष बाद हमारे दोनों गुरु ही आबू पर्वत-शिखर पर आये थे और आकर मेरे पास पहुँच गये थे। पूछे जाने पर मैंने अनुभव में और उपलब्धि में आयी हुई विभूतियों का हिसाब दिया था। महर्षि पतंजलि के राजयोग के अनुसार भिन्न-भिन्न विषयों पर संयम-धारण करने से यानी धारणा-ध्यान समाधि के प्रयोग करने से विभिन्न अतीन्द्रिय शक्तियों का प्रकाश आ जाता है—सब कुछ उनको उन्होंने सुनाया। मेरे अनुभव में जो-जो शक्तियाँ आयी थीं उनका भी मैंने वर्णन किया था जैसे—

भूत और भविष्यत् का ज्ञान।
सब प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान।
पूर्व जन्मों का स्मरण।
दूसरों के चित्तों का ज्ञान।
अन्तर्धान होना।
अपने रूप, शब्द, स्पर्शादि को भी अन्तर्हित करना।
मृत्युकाल को जान लेना।
वलवान् पशुओं के अनुरूप बल प्राप्त होना।
सूक्ष्म अन्तराल में आवृत और अति दूरवर्ती वस्तुओं को देखना।
लोक-लोकान्तर भुवनों का जानना।
नक्षत्रों वो जानना।
नक्षत्रों की गतियों को जानना।
शरीर और मन को स्थिर करना।
सिद्ध पुरुषों को देखना और उनसे बातचीत करना।
वैराग्य लाभ का सहायक (२६० ह.ले.सं०) (ज्ञान प्राप्त होना)
स्वचित्त और पर चित्त का ज्ञान।
आत्म-ज्ञान।

* अस्पष्ट हस्तलेख है।

दिव्य ज्ञान या सूक्ष्म-ज्ञान लाभ करना ।
चित्त का दूसरे शरीर में प्रवेश करना ।
शरीर को अत्यन्त हलका करना ।
इच्छा-मृत्यु ।
शरीर की ब्रह्म तेज से उज्ज्वल करना ।
सूक्ष्म इन्द्रियशक्ति लाभ ।
आकाश-गमन की शक्ति ।
चित्त के आवरण का नाश ।
महाभूतों को वशीभूत करना ।
महाभूत वशीभूत होने से अष्ट महासिद्धि (अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, महिमा, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व और सत्य संकल्पता),
काय-सम्पत् (रूप, लावण्य, बल और दृढ़ता)
शरीर का अटूट भाव ।
इन्द्रिय-संयम ।
अव्याहत गति शक्ति लाभ ।
पुरुष और प्रकृति का भेद-ज्ञान ।
बन्धन से मुक्ति ।
अलौकिक द्रव्य-विवेक-ज्ञान ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु-ज्ञान ।
सव वस्तुओं के भेद ज्ञान ।
विवेक ज्ञान (पुरुष-प्रकृति का भेद ज्ञान और कैवल्य लाभ ।)

गुरुओं से जब मैंने कहा था कि इन सव विभूतियों में से अधिकांश विभूतियाँ मेरे अनुभव के अन्दर आ गई हैं । किसी गुरु ने क्षुधा-पिपासा के वारे में मुझ से पूछा था । मैंने कहा था कि आबू शिखर में क्षुधा-पिपासा मेरे लिये समस्या के रूप में नहीं रही थी । मैं अब अन्न जल के विना दो महीनों तक रह सकता हूं । पतंजलि ने कहा है कि कण्ठ-कूप के नीचे उर-प्रदेश में कूर्म नामक नाड़ी है । वह नाड़ी अत्यन्त दृढ़ है । वहाँ चित्त संयम करने से शरीर और मन की स्थिरता आ जाती है । वहुत वार मैंने अनुभव किया था । गले में गढ़े के रूप में जो कुआ-सा स्थान है उसमें संयम (धारणा-ध्यान-समाधि) करने से मेरी भूख और प्यास दोनों की निवृत्ति हुयी थी । इसी प्रकार और भी बहुत विभूतियों के बारे में मेरे अनुभव हैं ।

आबू शिखर में आये हुए गुरु और वहाँ के रहने वाले गुरु लोगों ने हर्ष प्रकट करके सब ही तरह-तरह के उपदेश दिये थे—"तुम द्वितीय श्रेणी के योगी बन गये हो। दयानन्द ! तुम इन योग की शक्तियों को अपने शारीरिक या मानसिक स्वार्थ-साधन में प्रयोग नहीं करना। पदार्थ में और जगत् के हित के लिये ही इन विभूतियों का व्यवहार करो। कैवल्य लाभ के लिये जो विभूति है केवल वही विभूति तुम्हारे लिये है। बाकी विभूतियाँ जगत् की सेवा के लिये हैं। इसके अपव्यवहार करने से इनका लोप हो जायगा। अब आबू-पर्वत के सीमाबद्ध स्थान को छोड़ कर बाहर जगत् में प्रवेश करो। धर्म की सेवा का एकमात्र साधन है। इस धर्म-बल के साथ धर्म जगत् को देखो। हरिद्वार का कुम्भ मेला अति निकट है। वहाँ आर्यावर्त के मुख्य-मुख्य साधु संन्यासी एकत्र हो जाते हैं। वहाँ के दृश्य देख लो। धर्म जगत् का हाल और सेवा धर्म अनुभव में आ जायगा।

दूसरे दिन वे लोग वहां से चले गये। मैं आबू छोड़कर हरिद्वार के कुम्भ मेले में जाने के लिये तैयार होने लगा। वहां के बहुत साधक और संन्यासी एक साथ वहां जाने के लिये तैयार हो गये थे। मैं भी उनके अन्दर सम्मिलित हो गया था।

पंचम अध्याय

हरिद्वार-कुम्भमेला

आबू से पुष्कर व अजमेर

योग-शिक्षा और योग-साधनों में मैंने छः वर्ष बिताया था लेकिन आगे दूसरे और योग-सिद्ध महापुरुषों और तपस्वियों के सत्संग लाभ के लिए मेरे अन्दर प्रबल आग्रह हुआ। आबू पर्वत के साधुओं ने मुझे हरिद्वार में होने वाले कुम्भ मेले में सम्मिलित होने के लिए परामर्श दिया था। वह मेला वैशाख सम्वत् १९१२ को होने वाला था। मैं हरिद्वार जाने के लिये तैयार होने लगा। मुझे विदाई देने के दिन आबू-पर्वत के परिचित (ह० ले० पृ० २६५) साधु-सज्जन-पुजारी लोग लगभग सभी हमसे मिले। उनमें विमलशाह जैन मन्दिर के दो साधु, पंगुतीर्थ, अग्नितीर्थ, पिंडारक तीर्थ, भृगु आश्रम, रामकुण्ड, नागतीर्थ, अचलगढ़,यज्ञेश्वर आदि स्थानों के साधु-पुजारी तपस्वी लोग सम्मिलित थे।

मैंने सभी से कृतज्ञतापूर्ण भाव से विदाई लेकर मारवाड़, अजमेर, जयपुर, अलवर, दिल्ली और मेरठ आदि होते हुए पैदल हरिद्वार की तरफ़ यात्रा शुरू की थी। रास्ता लगभग सत्तर योजन का था। मैं कम से कम पाँच योजन रास्ता अतिक्रम करता था। अति सबेरे उठकर यात्रा शुरू करता था। तालाब मिलने से स्नानादि और संध्या, उपासना, प्राणायामादि कर लेता था। हाट-बाजारों में या गाँव में या रास्ते में किसी न किसी व्यक्ति से खाने की चीजें अचानक आती थीं। मैं खाने के लायक चीजें ले (ह० ले० पृ० २६६) लेता था और बाकी चीजें गरीब दुखियों को दे देता था। सन्न्यासी का वेष देखकर गाँवों के और हाट-बाजारों के रहने वाले लोग कठिन रोगों की दवाई के लिए या सुख-दुःख जानने के लिए मुझे घेर लेते थे। बाध्य होकर मैं आत्मरक्षा के लिए मौन धारण कर

लेता था। दिन हो या रात हो, निर्ज्जन स्थानों में ही मैं विश्राम करता था।

इसी रूप से मैं पुष्कर पहुँच गया था। वहाँ योग सिद्ध पुरुषों के बारे में सन्धान लेने लगा। पुष्कर तीर्थ पंचतीर्थों में एक है और पंच सरोवरों में एक है। पंचतीर्थ ये हैं—पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गया, गंगा और प्रभास। पंच सरोवर ये हैं—मानसरोवर, पुष्कर सरोवर, बिन्दु सरोवर, नारायण सरोवर और पम्पा सरोवर। पुष्कर तीर्थ में पुष्कर सरोवर तीन हैं—ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये क्रमानुसार तीनों देवतायें कही जाती हैं। पुष्कर को छोड़कर (ह० ले० पृ० २६७) और ब्रह्मा का मन्दिर मिलना कठिन है। ज्येष्ठ पुष्कर सरोवर से थोड़ी दूर पर प्रधान मन्दिर ब्रह्मा का ही है। वहाँ सरोवर से सरस्वती नदी निकली है और यह सावरमती नदी से मिल जाती है।

पुष्कर में मैं सिद्ध-योगियों के विषय में अनुसन्धान करने लगा था। किसी जटिआ बाबा के परामर्शानुसार नागपर्वत की गुफाओं में ढूँढ़ते हुए मैंने भर्तृहरि गुफा में एक मौनी बाबा को देखा। बातचीत हो नहीं सकी। उन्होंने अति द्रुत वहाँ से मुझको हटने के लिये निषेधात्मक इशारा किया। मैं गुफा से बाहर आने के साथ साथ ही देखा कि दो बृहदाकार अजगर सर्प मौनी बाबा की संकीर्ण गुफा के अन्दर धीरे-धीरे प्रवेश कर रहे हैं। गुफा से बाहर एक पहाड़ी भील ने कहा कि वह दोनों अजगर मौनी बाबा के साथ ही उस गुफा में रहा करते हैं। (ह० ले० पृ० २६८) वहाँ किसी दूसरे पर्वत की चोटी पर सावित्री मन्दिर में एक साधु ने मुझे कहा "तुम्हारा मनोरथ पुष्कर में पूर्ण नहीं होगा। हरिद्वार के कुम्भ-मेले में शत-सहस्र साधु-योगी-तपस्वी हिमाचल से नीचे उतर आयेंगे। उन्हीं में से किसी के संग में रहते हुए हिमाचल-भ्रमण करना ही अच्छा है। हिमाचल के कन्दरों में साठ हजार से भी ऊपर साधु-योगी-तपस्वी रहते हैं। तिब्बत तक में भी ये लोग रहते हैं। मानसरोवर और ल्हासा तक भी भ्रमण करना चाहिये। वहाँ हजारों साधु योगी तपस्वी लोगों के दर्शन मिलते हैं।" साधुजी की इसी बात को शिरोधार्य करके पुष्कर छोड़कर हरिद्वार की तरफ मैं आगे बढ़ने लगा। पुनः अजमेर आकर एक नंगा बाबा के साथ मैं तारागढ़ नाम के गिरि-दुर्ग पर पहुँचा। वहां से अजमेर नगर की शोभा बहुत ही सुन्दर मालूम होती है। वहाँ किसी साधु तपस्वी से मुलाकात

होने की आशा नहीं थी। आयना सागर के तटों में यज्ञ करते हुए ८-१० (हृ० ले० पृ० २६९) साधुओं को मैंने देखा था। ये लोग सबके सब गांजा पीते थे और अग्नि में घृत की आहुतियाँ देते थे। वहाँ नंगे बाबा मुझे "ढ़ाई दिन के झोंपड़े" से ले आये थे। मैंने उक्त स्थान को हिन्दू या बौद्ध भजनालय के रूप में देखा था, लेकिन अब वहाँ मुसलमानों का भजन स्थान बन गया—ऐसा देखा। भारत के शेष सम्राट्, पृथ्वीराज, जयचन्द्र, संयुक्त, स्वयंवर और शाहबुद्दीन के बारे में नंगा बाबा ने बहुत कुछ कहानियाँ सुनाते-सुनाते मुझे जयपुर होकर दिल्ली जाने की सड़क दिखा दी।

स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए व्यापक आन्दोलन

अजमेर के अनुभव—पुष्कर-अजमेर आने-जाने के समय मुझे कुछ नये अनुभव प्राप्त हुए थे। रास्ते में, मन्दिरों में, बाजारों में, दुकानों में, नहाने के घाटों में, अतिथिशालाओं में—सर्वत्र स्वदेश की और स्वधर्म की रक्षा के लिए आन्दोलन और आलोचना (हृ.ले.पृ. २७०) व्यापक रूप से चल रही थी। धनी-गरीब, ज्ञानी-मूर्ख, वृद्ध-नव-जवान, पुरुष-स्त्री सभी के मुखों से यही सुनाई देता था कि विदेशी पादरियों द्वारा ईसाई धर्म के व्यापक प्रचार और प्रलोभन से स्वधर्म की रक्षा करनी चाहिये। विदेशी राहु के ग्रास से स्वदेश की रक्षा करनी चाहिये। इन सब चर्चा और आंदोलन से मालूम होने लगा था कि विदेशी और विधर्मियों की सर्वग्रासी कूटनीतियों से बचाने के लिये जनसाधारण कोई रास्ता ढूँढ़ रहे थे। विदेशी और विधर्म के प्रति भय और घृणा के भाव का धीरे-धीरे विस्तार हो रहा था।

मारवाड़ के अनुभव—अजमेर आने से पहले मारवाड़ से भी अनुभव मिला था कि जनता स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा और पुनरुद्धार के लिये किसी शक्तिशाली और धार्मिक राजा को ढूँढ़ रही थी। (हृ० ले० पृ० २७१) उपयुक्त नेता और संचालक मिलने से युद्ध करने के लिए भी तैयार थी। ईसाई-राज और ईसाई-धर्म से बचने के लिये हिन्दू और मुसलमान एक साथ मिलकर युद्ध करने के लिये तैयार हो जायेंगे और प्रयोजन आने पर प्राण भी दे देंगे।

जयपुर का अनुभव—पुष्कर से जयपुर आकर वहाँ मैंने गलतातीर्थ, गालव ऋषि की तपोभूमि, सूर्य-मन्दिर और मुसलमान बादशाह के आक्रमण से बचाने के लिये वृन्दावन से लाई गई गोविन्दजी की मूर्ति के मन्दिर

में योगी, तपस्वी और साधकों का अनुसन्धान किया था। गालव ऋषि के आश्रम में एक तांत्रिक साधु मिले थे। उन्होंने मुझे शिष्य बनाना चाहा। उनकी साधन-प्रणाली बहुत भयंकर और घृणाकर मालूम हुई थी। मैं वहाँ से चल दिया। यहां का गोविन्दजी का मन्दिर प्रसिद्ध है। श्री वल्लभाचार्य को यमुना किनारे यह मूर्ति मिली थी। वृन्दावन में इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। मुसलमान बादशाह औरंगजेब के आक्रमण से बचाने के लिये यह मूर्ति और गोविन्ददेव की मूर्ति वृन्दावन से जयपुर लाई गई थी। प्राचीन राजधानी और राजस्थान की अम्बर नगरी में गलता टीला है। उसमें गालव ऋषि की तपोभूमि में एक साधु रहते थे। योग-साधना के बारे में मैंने उनसे उपदेश (ह० ले० पृ० २७२) करने की प्रार्थना की थी। उन्होंने इन्कार कर दिया क्योंकि मैं उनकी तन्त्र साधन-प्रणाली स्वीकार करने में असमर्थ था। अब मैं जयपुर से दिल्ली रवाना हो गया।

जयपुर से दिल्ली—दिल्ली के दूसरे ही वातावरण में मैं पहुँच गया था। मालूम हुआ कि दिल्ली नगरी महासमाधि में निमग्न है। एक ब्रह्मचारी ने मुझे पृथ्वीराज का लालकोट* दिखाया। वह अब धूल में रंजित है। योगमाया मन्दिर देखा। पृथ्वीराज इसी साधन भूमि में बैठे हुये योग-साधन की शक्ति सीखते थे। उसी के एकांश में आज बुतखाना है। मुसलमानों ने इसका नाम बुत-खाना या पौत्तलिक भजनालय रखा है। इसके समीप लगभग डेढ़ हजार वर्षों का पुराना धातु-स्तम्भ है। सुना जाता है कि राजा धव ने इसको बनवाया था। पृथ्वीराज के द्वारा निर्मित कुतुब स्तम्भ देखा। असम्पूर्ण स्तम्भ के निर्माण कार्य को कुतबुद्दीन ने पूरा किया था। इसलिए इसका नाम कुतुबमीनार पड़ा। वहाँ से दिल्ली के पुराने किले को देखा। यह ही प्राचीन इन्द्रप्रस्थ है। यहाँ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का प्राचीन गौरव चिन्ह है। किसी साधु का दर्शन नहीं मिला था। लेकिन यमुना के किनारे भी कई एक साधुओं से भेंट हुई थी। ये लोग भी हरिद्वार के मेले में जाने वाले थे। मैं भी सम्मिलित हो गया था।

दिल्ली में नया अनुभव—अजमेर, मारवाड़, जयपुर किंवा अलवर सभी स्थानों में जनसाधारणों के अन्दर प्रबल रूप से चांचल्य का अनुभव

---

* पत्थरों की बनी चहार दीवारी

हुआ। दिल्ली में इस चांचल्य का अनुभव अत्यन्त अधिक हुआ था। रास्ते में, बाजारों में, दूकानों में, पथचारी यात्रियों में, साधु-संन्यासियों में, धनी गरीबों में या राज-कर्मचारियों में मुख्य रूप से केवल एक ही चर्चा होने लगी कि अब सहन करना कठिन है। अब तो जीवनों को बाजी में रखकर भी स्वदेश और स्वधर्म का उद्धार करना ही चाहिये। हम दस साधु यमुना के किनारे सारे दिन के बाद भोजन कर रहे थे। एक छोटे लड़के ने हम सब को दिखा के अपनी माताजी से कहा "माता जी, हमारा देश और धर्म विदेशी ईसाई अंगरेज और ईसाई पादरियों के अत्याचार और शैतानी के कारण डूब रहा है और हमारे देश के ऐसे लाखों साधु बाबा केवल पेट पूजा में ही व्यस्त हैं। देश और धर्म की रक्षा के बारे में ये लोग कुछ परवाह नहीं करते हैं। इनके लिये पेट ही भगवान् है और भगवान् ही पेट है।" लड़के के इन वाक्यों को सुनकर साधु एक साथ मिल कर लड़के को अभिशाप देने लगे और गाली-गलौच करने लगे। लड़के की माता साधुओं के अभिशाप के कारण भयभीत होकर रोने लगी। मैंने लड़के की माता से विनम्र भाव से कहा—"माताजी! लड़के की बातें सम्पूर्ण सच्ची हैं। आपका लड़का देवदूत-सा मालूम पड़ता है। किन्तु कम से कम इस लड़के की बातों से मेरी आंखें तो बिल्कुल खुल गयीं हैं। लड़के का पैत्रिक परिचय लेने से मालूम हुआ कि उस समय से लगभग ३८ वर्ष पहले इस लड़के के पितामह अलीगढ़ के जमीदार साहसी वीर योद्धा दयाराम हाथरस किले की रक्षा करने के लिये लार्ड हैस्टिंग्स के अविराम बम्बवर्षण के सम्मुख युद्ध करके वीरगति को प्राप्त हुये थे। मैंने लड़के के सिर पर हाथ रख के आशीर्वाद दिया। लड़का भी खुशी के मारे रोने लगा था।

देश पर राहुग्रास—मैं अपने साथी साधुओं के साथ लाल किले के सम्मुख बैठा हुआ हरिद्वार जाने के लिये सोच रहा था। अचानक एक साधु आकर कहने लगे—"आप लोग जाइये, हरिद्वार जाकर स्नान कर शुद्ध बन जाइये। हमारी पवित्र मातृभूमि पर विदेशी राहु ने ग्रास कर लिया, धीरे-धीरे हमारे देश के सुख-शान्ति, शिक्षा-सभ्यता, धर्म-संस्कृति सम्पद्-ऐश्वर्य को भी यह हजम करने लगा है हमारे धर्म को ग्रास करके विधर्मी पादरी हमारे सहज सरल देशवासियों पर ईसामसीह के धर्म को लाद रहे हैं। हमारे स्वधर्मी भाई-बहनों को विधर्मी बना के देश-द्रोही के रूप में बदल देते हैं। स्वदेश को विदेशियों के पंजे से मुक्त करना जितना

कठिन है उससे हजारों गुणा कठिन है विधर्म के पंजे से स्वधर्मियों को मुक्त करना। जब तक स्वदेश और स्वधर्म पर राहु और केतु का ग्रास रहेगा, तब तक हम गंगा-स्नान से शुद्ध होने में विश्वास नहीं करते हैं।

इस साधु से मेरी एकान्त में बहुत समय तक बातचीत हुई थी। मेरे मुख से अनुकूल बातचीत सुनकर वह साधु बहुत ही खुश हुआ। आगे जाके मालूम पड़ा कि आप एक मराठी पण्डित साधु के वेश में घूम रहे हैं और इस रूप के करीब एक सौ पण्डित साधुओं के वेश में घूम घूमकर साधुओं में नई प्रेरणा लाने की कोशिश कर रहे हैं। मैं पूर्व निश्चयानुसार अपने साथी साधुओं के साथ हरिद्वार की तरफ रवाना हो गया। निश्चय हुआ था कि हम लोग मेरठ होते हुए हरिद्वार जायेंगे। हम लोग जितने ही आगे बढ़े उतने ही हरिद्वार के यात्री हमारे साथ अधिक संख्या में जुट गये थे। स्वदेश और स्वधर्म के उद्धार के लिये सभी लोग व्यग्र और उत्सुक मालूम पड़े।

दिल्ली से मेरठ—हरिद्वार कुम्भ मेले के यात्री हम सब साधु लोग यथा समय दिल्ली से मेरठ पहुँच गये थे। (ह० ले० पृ० २७७) तीर्थयात्रियों के अन्दर सैंकड़ों गृहस्थ स्त्री-पुरुष भी थे। मेरठ से लगभग चार योजन दूरी पर पांडवों की प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर है। गंगा नदी वहाँ से धीरे-धीरे हटती जा रही है। वहाँ से हम गढ़ मुक्तेश्वर गये थे। वहाँ मन्दिरों की संख्या बहुत है। करीब सौ-शती स्तम्भों के ध्वंसावशेष वहां मौजूद हैं। मेरठ के पास ही परशुराम की जन्मभूमि और जमदग्नि का आश्रम है। ऋषि वाल्मीकि का आश्रम भी वहां ही था। वहां के पुराने आश्रमों में योग-सिद्ध पुरुषों का संधान नहीं मिला।

करुण-दृश्य—हम में से बहुतों को पता लगा कि इन तीर्थयात्रियों के अन्दर बहुत सरकारी कर्मचारी और बनावटी वेशवाले राजकर्मचारी गुप्त रूप से रहते हैं। सीधे-साधे यात्रियों को इस बात का पता नहीं था। सरल यात्रियों के अन्दर (ह० ले० पृ० २७८) गुप्तचर राजकर्मचारी अंग्रेज वणिक्-शासन के बारे में प्रसंग शुरू कर देते थे। तीर्थ यात्रियों के पीछे-पीछे कभी-कभी घुड़-सवार श्वेतांग सैनिक भी तीर्थ-यात्रियों की रक्षा के बहाने से आते थे। तीर्थ-यात्रियों के अन्दर कभी-कभी अंग्रेज वणिक्-शासकों के अनाचार, अत्याचार और स्वैराचारों के बारे में तरह-तरह की चर्चायें चलती थीं। जासूस गुप्तचर लोग ही इन चर्चाओं के प्रवर्तक हुआ

करते थे। एक दिन देखा गया—एक व्यक्ति को सरकारी कर्मचारियों ने पकड़ लिया। उसकी पत्नी एक छोटे शिशु बच्चे को गोदी में लिये हुए किसी गोरे सरकारी कर्मचारी के पैरों पर गिर पड़ी। लेकिन श्वेतांग कर्मचारी ने शिशु बच्चे को माता की गोदी से छीन कर ले लिया और गंगा के तीव्र स्रोत में फेंक दिया। पुत्र-शोक से करुण-चिल्लाहट के साथ माता गंगा में कूद पड़ी। पिता भी गंगा में कूदने के लिए तुरन्त तैयार हो गया। लेकिन दो सिपाहियों ने बन्दूकों के हत्थों से उसको मारते-मारते अचेत कर दिया। गोद का शिशु पुत्र और शिशु की माता गंगा में बहती हुई कहां चली गयी—भगवान् ही जानते हैं। सरकारी कर्मचारी के पीछे बन्दूक-धारी पलटन बहुत संख्या में थी। गृहस्थ तीर्थयात्री चारों तरफ भाग गये थे। अंगरेजी शासन और प्रजा-शासन के बारे में मेरे जीवन में यह पहला प्रत्यक्ष अनुभव था। हम सब साधु लोग दलबद्ध न रहकर चार-चार पांच-पाच करके एक साथ रहकर हरिद्वार की तरफ चलने लगे। हम सब साधुओं के दिमाग में यह चिन्ता बहुत प्रबल और क्रियाशील हो रही थी :—

"दु:खिनी, पराधीन भारतमाता की सेवा में हमको आयुष्काल और शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ अंश समर्पित कर देना चाहिए।"

(ह० ले० पृ० २८०) किन्तु गुप्तचर कर्मचारियों के सन्देह करने के डर के मारे कोई साधु किसी साधु से बातचीत करना निरापद नहीं समझता था। इस प्रकार की घटनाओं को और इन सबका प्रतिविधान सोचते हुये हम सब तीर्थयात्री विभिन्न दलों में विभक्त होकर हरिद्वार की तरफ यात्रा करने में व्यस्त थे। कभी-कभी हम सब पुराने जान-पहचान के साधु लोग किसी-किसी निरापद स्थान पर एकत्र हो जाते थे और देश की शोचनीय दुर्दशा पर विचार करते थे।

देश की इन स्थितियों को देखते हुए, गेरुवे कपड़े पहनकर, अपनी-अपनी मुक्ति और पारमार्थिक कल्याण के लिए देश भर घूमना, बहुत ही लज्जाकर और ग्लानिकर मालूम होने लगी। लेकिन देशवासी जन-समुदाय को कैसे सचेत और दलबद्ध किया जाये—(ह. ले. पृ. २८१) यह विचार दिमाग में आनेल गा।

भेलोर में देशी फौजों पर अत्याचार—

दक्षिण भारत के किसी वृद्ध साधु ने कहा कि गवर्नर जनरल कार्नवालिस के बाद अस्थायी रूप से दो-एक वर्ष के लिये उसी पद पर

अस्थिर रूप से जार्ज वार्लें आये थे। करीब पचास वर्ष पूर्व की बातें हैं। देशी सैन्य पर कैसे-कैसे अत्याचार होते थे और आज भी होते हैं, वे वर्णनातीत हैं। मद्रास के गवर्नर उस समय लार्ड वेंटिक थे। उन्हीं की अनुमति लेकर सेनापति जन्‌क्रैडक ने फौजी पौशाक के बारे में अचानक आदेश जारी कर दिया था—

"सब फौजों को कम्पनी की दी हुयी नयी टोपी पहननी पड़ेगी। उस टोपी का ऊपर का भाग गाय के चमड़े से और नीचे का भाग सूअर के चमड़े से बना हुआ था। सभी को दाढ़ी और मूंछ सफा कर देने पड़ेंगे; कोई कपाल में तिलक, चन्दन, भस्मादि के छाप नहीं लगवा सकेगा, सिर पर कोई चोटी नहीं रख सकेगा, कोई हिन्दू या मुसलमान निर्दिष्ट विश्राम के समय से अतिरिक्त समय में सन्ध्या उपासना या नमाज के लिये समय नहीं दे सकेगा, गले में कोई जनेऊ या माला नहीं पहन सकेगा और विश्राम के समय से अतिरिक्त किसी समय में भी भगवान् या खुदा ताला का नाम उच्चारण नहीं कर सकेगा।"

भेलोर-विद्रोह—इस आदेश पर करीव सब ही हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों के अन्दर जाति और धर्म के ऊपर आघात होने के कारण विक्षोभ पैदा हो गया था।

सर्वप्रथम इस अन्याय और धर्म-विघातक आदेश के विरोध में भेलोर के सिपाहियों ने विद्रोह की घोषणा की थी। उन लोगों ने उस आदेश को पालन करने से इन्कार कर दिया था। इन सिपाहियों को सामरिक कानून के अनुसार फौजी नियम-शृंखला तोड़ने के अपराध के कारण गोलियों से मृत्यु-दण्ड दिया जाये—ऐसी राय दी गयी थी। (ह.ले. पृ. २८३) साथ-साथ ही देशी सिपाहियों ने ११३ अंगरेज फौजियों को और दो सामरिक कर्मचारियों को थोड़े समय के अन्दर ही गोलियों से (ह. ले. पृ. २८४) मार दिया था। उन विद्रोहियों को दमन करना कठिन था। आर्कंट से विशाल सैन्य वाहिनी बुलवा कर अमानुषिक रूप से विद्रोह का दमन किया गया।

विद्रोह-दमन का नमूना—विद्रोहियों को हथकड़ी और बेड़ी लगवाके दो दिन भूखे और नंगे रखा गया था। तीसरे दिन विद्रोही सैन्यों के नेताओं के जीवित शरीर से चमड़े निकालकर उन चर्म-हीन मृत देहों को ठेला-गाड़ी पर रखकर सैन्यावास में जलूस निकाला गया था। मृत अप-

राधियों के अन्दर हिन्दु और मुसलमान दोनों ही थे। इस रूप से भेलोर का विद्रोह दमन किया गया था। इसके बाद ही वेटिंक और फ्रेड्रिक को स्वदेश जाने का आदेश मिल गया था। हमारे तीर्थ यात्रियों के अन्दर भेलोर-विद्रोह के बारे में सुनाने वाले व्यक्ति के मामा दंड-प्राप्त फौजी नेताओं के अन्दर शामिल थे।

बारीकपुर-विद्रोह—बंगाल-नदीया के एक वृद्ध साध ने कहा कि भेलोर की-सी अनुरूप घटना आज से करीब बीस वर्ष पहले बंगाल के बारीकपुर में भी घटी थी। वहाँ के सैन्यावास में सैन्यों को झट ब्रह्मदेश में युद्ध करने के लिए आदेश मिला था। इससे उनके अन्दर विक्षोभ पैदा हुआ। उनको मासिक वेतन भी बहुत ही कम दिया जाता था। इसके उपरान्त समुद्र पार होके विदेश जाने से उनके खाद्याखाद्य का विभेद नहीं रहेगा और वे लोग धर्म-भ्रष्ट और जाति-भ्रष्ट हो जायेंगे। घर से भी ये लोग निकाले जायेंगे। सिपाही लोगों में सम्मिलित रूप से करीब दो सौ फौजियों ने सरकार से प्रार्थना की थी—हम सब लोग जाति रक्षा, धर्म-रक्षा, आचार-रक्षा के लिए ही समुद्र के उस पार ब्रह्म देश में युद्ध के लिये नहीं जाना चाहते हैं। हमारे प्रति वहां जाने के लिये जो आदेश दिया गया है उसको खारिज कर दिया जाये।

बारीकपुर से कलकत्ता केवल दो योजन की दूरी पर है। वहां सामरिक ढंग से उत्तर आ गया था। तदनुसार सैन्यावास के अन्दर कुचकावाच के मैदान में सब ही प्रार्थनाकारियों को बेड़ी और हथकड़ी लगवा के खड़े करके सब ही को एक साथ गोरे सैन्यों से गोलियों से मरवा दिया। इनके शव देहों को सप्ताह भर गंगा नदी के तीर पर प्रदर्शनी के रूप में रखा। मांसाशी पशु-पक्षियों ने शवों के मांस को खा लिया। पड़े रहे केवल सैंकड़ों कंकाल। उस कंकाल-राशि को गंगा नदी में फेंक दिया। शाम को हर रोज ज़नता हटायी जाती थी। मृत-व्यक्तियों के बन्धु-बान्धव लोग दूर-दूर से शवों को देखने के लिए आते थे। मृत, गलित, खंड-खंड मांस राशियों के अन्दर से अपने आदमियों को पहचानना असम्भव था। सन्ध्या से पहले ही जनता को गंगा के किनारे से हटाने के लिए गोरे सैन्य लोग घोड़े पर सवार होके आते थे। जनदा हटने में देर करती तो बन्धु-बान्धवों के शोक के कारण रोती हुई जनता पर बन्दूकों से गोलियाँ छोड़ते थे। इन गोलियों से बहुत संख्या में पुरुष, स्त्री, शिशु और पथिक भी घायल होकर मर जाते थे।

सौ वर्षों का शासन—सारे देश भर में विदेशी शासन का हाल सुनते हुए हम सब कुम्भ मेला के यात्री लोग धीरे-धीरे हरिद्वार की तरफ पैदल जाने लगे। पूरे देश का हाल सभी की ज्ञान दृष्टि के सम्मुख आने लगा। कोई सुखी नहीं है। सब कोई अंगरेज-शासन से दुःखी हैं, यह मालूम होने लगा। जनसाधारण के (ह० ले० पृ० २८७) इन दुःखों के कारण एक नहीं बहुत हैं। सौ वर्षों के अन्दर देश की धर्म-नीति, सामरिक नीति, अर्थ नीति, शासन नीति, और राजनीति उलट गयी है। विभिन्न प्रकार की दुर्नीति ने समाज के शरीर को पंगु और असार कर दिया है।

प्रजा-विद्रोह का आभास (ह. ले. पृ. २८७)

आबू शैल-शिखर से हरिद्वार तक पैदल आते समय विभिन्न स्थानों के सैकड़ों आबाल-वृद्ध, नर-नारियों से वार्तालाप करने का मुझे मौका मिला था। मालूम पड़ता था कि प्रजा-जनसाधारण के अन्दर अपने स्वदेश और स्वधर्म को रक्षा करने के लिये प्रबल प्रचेष्टा हो रही है। लगभग सौ वर्ष पहले के "पलासी के युद्ध" का बदला लेने के लिये करीब-करीब सब कोई तैयार हो रहे हैं। इनमें धनी, गरीब, राजा-प्रजा, सरकारी-बेसरकारी साधु-संन्यासी, भिखमंगे-कंगाल तक सब कोई शामिल थे। जान देने के लिये भी सैकड़ों पुरुष तैयार हो गये थे।

गुप्त समितियों की स्थापना—करीब सब ही शहरों में गुप्त समितियां कायम हो गयी थीं। गुप्त प्रचार-कार्य और संगठन भी चालू हो गये थे। मन्दिर और मसजिदों में गुप्त परामर्शों के कार्य सुचारु-रूप से चलते थे। खास खास आदमियों के घरों में बाकायदा कार्य-केन्द्र स्थापित हो गये थे। क्रान्तिकारी नेता लोग गम्भीर रात्रियों में आलोचनार्थ समवेत होते थे। खास-खास समाचारों को खास-खास स्थानों में भेजने के गुप्त पत्रवाहक दौड़ा करते थे। क्रान्तिकारी लोगों में आपस में वार्तालाप के लिये सांकेतिक और गुप्त भाषाओं का प्रयोग होता था। गुप्त समितियों के कवियों के रचित स्वदेश और स्वधर्म-भक्ति मूलक संगीतों के द्वारा भिख-मंगे लोग भीख माँगते थे। वीर पुरुषों की जीवनियों की कहानियाँ कविताकार से प्रचारित होती थीं। (ह. ले. पृ. २८६) हाट-बाजारों में प्रचार-पत्र और प्राचीर-पत्रों का वितरण होता था।

क्रान्ति की अग्नि शिखा—देश भर में इस प्रकार की गम्भीर स्थिति और वातावरण देखने से मालूम होता था कि अति निकट भविष्य में ही

किसी न किसी समय क्रान्ति की अग्निशिखा प्रबल और व्यापक रूप से प्रज्वलित हो जायेगी और फैल जायेगी। प्रजा-विद्रोह के होमानल से सर्व प्रकार के अन्याय, अधर्म, अत्याचारों के पूंजी-भूत सब जंजाल एक साथ जल कर अति अल्प समय के अन्दर ही स्वाहा हो जायेंगे। अंग्रेज सरकार को यह सब मालूम होने पर भी केवल बन्दूकों के बल पर यह स्थिति निश्चिन्तरूप से उपेक्षित की गयी थी।

हरिद्वार में*

आबू पर्वत से आये हुये हम सब साधु-संन्यासी यथासमय हरिद्वार में पहुंच गये थे। हमारे साथ रास्ते में जितने गृहस्थ यात्री आये थे, हम ने सब ही को अलग कर दिया था। मैंने स्वयं को भी सब संन्यासियों से अलग कर लिया था। कुम्भस्नान की तारीख से बहुत दिन पहले ही तीर्थ यात्री लोग सैकड़ों हजारों और लाखों आने लगे। हरिद्वार विराट नर-समुद्र में परिणत हो गया था। यह मेरा पहली वार हरिद्वार आना था। हम कुम्भ-स्नान से बहुत पहले ही हरिद्वार पहुंच गये थे। निश्चित रूप से सब ही जगह घूम २ के सब कुछ अनुभव कर लिया था। सिद्ध योगी साधकों का अनुसन्धान करना ही मेरा मुख्य कार्य था।

आशय:—हिमालय के चारों धाम—केदार, बदरी, गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी जाने के रास्ते हरिद्वार से ही शुरू होते हैं। हरिद्वार में पांच महातीर्थ है—गंगाद्वार, कुशावर्त, विल्वकेश्वर, नील पर्वत और कनखल। योगसाधना और योगियों के संगत में रहना—इन दोनों कार्यों के लिये मैंने नील पर्वत को चुन लिया था। तीर्थयात्रियों की भीड़-भाड़ वहां बहुत कम है। वह स्थान करीब एक कोश चढ़ाई पर है। इसलिये वह स्थान एक-सा दुर्गम ही है। हम वहां अधिकांश समय साधना में ही बिताते थे। अवशिष्ट समय योगियों की संगत में, साधना के अनुशीलन करने में लग जाता था। बाहर के दर्शनार्थी हमारे खाने के लिये जो कुछ भेज देते थे उससे मेरा गुजारा हो जाता था। किसी रोज अगर कुछ भी नहीं मिला

* संवत् १९११ के साल के अन्त में हरिद्वार के कुम्भ के मेले में आके बहुत साधु-सन्न्यासियों से मिला और जब तक मेला रहा तब तक चण्डी के पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा। —पं० भगवद्दत्त जी लिखित जन्म चरित्र पृ० २४।

हो तो उस रोज केवल पानी पीकर ही रह जाता था। यह आदत मुझे बहुत पहले से ही आ गई थी।

क्रान्तिकारी नेताओं का शुभागमन

नील पर्वत में मैंने वहां चण्डीस्थान के सन्न्यासी रुद्रानन्द से सुना था कि भारत-व्यापी प्रजा-जागरण और विप्लव-प्रचेष्टा के और भविष्यत् क्रान्ति-युद्ध के नायक, नेता और कर्णधार लोग अति शीघ्र साधु-संन्यासियों के दर्शन और देश की परिस्थिति समझाने के लिये हरिद्वार मेला में आ रहे हैं। ये लोग नील पर्वत में भी आयेंगे। मेरे अन्दर भी उनके दर्शन के लिये और फिर उनसे वार्तालाप करने के लिये प्रबल इच्छा पैदा हो गई थी।

अब तीन रोज बाद हो पांच अज्ञात नामा और अपरिचित सज्जन हमारे अति संकीर्ण कुटीर के सम्मुख आ कर पूछने लगे—"आबु-शैल से आये हुये महात्मा जी कहाँ हैं? हम लोग उनसे मिलना चाहते हैं।" मैंने परिचय दे दिया था। उन लोगों ने भी अपने २ परिचय दिये थे।

उनमें **प्रथम** थे (ह. ले. पृ. २९१) द्वितीय बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र धुन्धु पन्थ (नाना साहब), **द्वितीय** थे उनके बन्धु अजीमुल्ला खां, **तृतीय** थे उनके भाई बाला साहब, चतुर्थ थे तात्या टोपे और पंचम थे जगदीशपुर के जमीदार बा० कुंवर सिंह।

नानासाहब के प्रश्न का उत्तर—ये पाँच सज्जन प्रणिपात करके मेरे सम्मुख बैठ गये थे।

नाना साहब ने कहा—"महात्मा जी! विदेशी और विधर्मी अंग्रेज आकर स्वदेश और स्वधर्म को धीरे-धीरे ग्रास कर रहे हैं। इस को किसी तरह से निवारण करना चाहिये, और किस तरह से रोकना चाहिए—इसके बारे में आपकी राय क्या है? हम लोग हरिद्वार में आयें हुए खास-खास साधु-सन्न्यासियों से इस बात पर अभिमत लेते हैं।"

मेरा अभिमत (ह. ले. पृ. २९२)

किसी विदेशी राज को किसी विदेश पर हकूमत चलाने का हक नहीं है। अंग्रेज विदेशी हैं। इसलिये विदेशी भारत पर उसका शासन चलाने का अधिकार नहीं है। विदेशी शासक विदेशी शासितों को शोषण करके

ही अपनी समृद्धि करते हैं, अंग्रेजों की समृद्धि भारत के शोषण पर ही है। किसी वन्य बर्बर असभ्य देश पर किसी सुसभ्य जाति का शासन उस देश के कल्याण के लिये हो सकता है। भारत असभ्य देश नहीं है और अंग्रेज भारतीय से ज्यादा सुसभ्य भी नहीं हैं। केवल वे हिंस्र पशु की तरह जबरदस्ती से शासन चला रहे हैं जिस को भारत वर्ष नहीं चाहता है। भारत जैसे न्यायप्रिय सुसभ्य और पुराने देश को पद दलित करना महापाप है और इसको सहन करना और अधिक महा पाप है, भारत जब मन-प्राण से बोलेगा हम अंग्रेज को नहीं चाहते हैं तब ही अंग्रेज भारत-शासन छोड़ने के लिये बाध्य होगा।

बाला साहब के प्रश्न का उत्तर

द्वितीय सज्जन बाला-साहब ने जिज्ञासा की —"हमारे अपने दोष या त्रुटि क्या हैं जिससे हमारी ऐसी दुर्दशा है ? इस पर आपका क्या अभिमत है ?

मेरा अभिमत

युधिष्ठिर-दुर्योधन, जयचन्द-पृथ्वीराज, मानसिंह-प्रतापसिंह में जो भ्रातृकलह —अल्प विरोध था वह ही भारत के सर्वनाश का मुख्य कारण है। आगे चलकर हम देखते हैं—जब मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तब मराठा (ह. ले. पृ. २९६)और सिख—दोनों की शक्ति पृथक्रूप से या समवेत रूप से भारतवर्ष पर शासन चलाने के लिये यथेष्ट ही थीं। लेकिन दोनों के अन्दर आत्मविरोध के कारण से भारत अंग्रेजों के हाथों में चला गया। यह अनैक्यता और आत्म-विरोध ही हमारी दुर्दशा का कारण है।

अजीमुल्ला खां के प्रश्न का उत्तर

तृतीय सज्जन अजीमुल्ला खां ने कहा— महात्मा जी ! भारत के व्यापक प्रजा-विद्रोह के बारे में आपका क्या अभिमत है ?

मेरा अभिमत

मैंने जहाँ तक देखा है यह भविष्यत् के गणविद्रोह का आभास मात्र ही है। यह विद्रोह साम्प्रदायिक या संकीर्ण नहीं है। इसमें धनी-गरीब,कृषक-प्रजा, शिक्षित-अशिक्षित सब कोई सम्मिलित हैं। यह गण-जागरण भारत को नयी जीवनी शक्ति से संजीवित करेगा। धर्म की

भित्ति पर यह आन्दोलन जब तक रहेगा इसका भविष्यत् तब तक उज्ज्वल है। शिशु और नारियोंपर जब तक आघात नहीं पहुंचेगा तब तक इसका स्वरूप धार्मिक ही रहेगा इस गण-जागरण में हिन्दु-मुसलमान सम्मिलित हो रहे हैं। दिल्ली के बादशाह और (विठूर) के पेशवा—दोनों ही इसमें शामिल हो गये हैं। अगर हिन्दू-जनता अंग्रेज को हटकर पेशवा को राजा बनाना चाहे या मुसलमान जनताअंग्रेज को हटाकर दिल्ली के बादशाह को ही भारत का बादशाह बनना चाहे तब तो गण-जागरण व्यर्थ बन जायेगा। पेशवा और बादशाह में प्रतिद्वन्द्विता ही है।

(ह. ले पृ. २६६) **पंजाब**—का प्रबल पराक्रांत सामरिक [illegible]य शायद पेशवा-परिचालित इस आन्दोलन में भाग नहीं लेगा, बल्कि इसमें बाधा ही डालेगा। क्योंकि अंग्रेज और अफगान युद्ध में पेशवा ने दूसरे के राज्य हड़पने के लिए अंग्रेज को पांच लाख रुपये ऋण-स्वरूप दिया था। इसके बाद ही अंग्रेज और सिख-युद्ध में पेशवा ने अंग्रेज पक्ष को एकहजार पदातिक सेना और एक हजार अश्वारोही सैन्य सहायता के लिये भेज दिये थे। (२६७ ह.ले) पेशवा के इस गर्हित आचरण को शायद सिख लोग इतनी जल्दी भूलेंगे नहीं।

नेपाल के सम्बन्ध में भी बात एक सी ही है। नेपाल की राजधानी के रक्षार्थ नेपाली लोगों ने अंग्रेजों के साथ प्राणपण से युद्ध किया था। भारतीय साधारण प्रजा से उस समय कुछ भी मदद नहीं मिली थी। नेपाली लोगों ने इस बात को भुलाया नहीं है।

फिर भी इस भविष्य गणयुद्ध होने का परिणाम शुभ है। पलासी-युद्ध से एक शत वर्ष बाद यह गण-युद्ध होने वाला है। फिर आगे एक शत वर्ष भर युद्ध चलता ही रहेगा। तब युद्ध-जय अवश्यम्भावी होगा। बहुत कुछ आहुतियाँ अब भी बाकी हैं।

तात्या टोपे के प्रश्न का उत्तर

चतुर्थ सज्जन तात्या टोपे ने (ह. ले. पृ. २६८) पूछा—"महात्मा जी! भारतवर्षव्यापी जिस प्रजा-विद्रोह का आभास आपकी नजर में आ गया है। उसके कारणों के बारे में आपका क्या अभिमत है?

मेरा अभिमत—इस सम्भाव्य प्रजा-विद्रोह के मूल कारणों को हम भिन्न-भिन्न श्रेणियों से विभक्त कर सकते हैं—धर्म-नीतिक, समाज-नीतिक राज-नीतिक, अर्थनीतिक, युद्ध-नीतिक और प्रत्यक्ष।

(१) धर्म-नीतिक कारण—भारत के करोड़ों हिन्दू-मुसलमानों को नरक से बचाने के लिये और सीधे स्वर्ग को भेजने के लिये हजारों श्वेतांग पादरी विदेशों से भारत-भूमि में—ऋषि-मुनियों के देश में आये हैं। इनका पालन-पोषण और अमीरी, भारत के गरीब प्रजाओं के कष्ट-प्रदत्त राजस्व से होती है। इनकी राजकीय स्थिति और प्रभाव जज-मजिस्ट्रेटों से कम नहीं है। गरीब-दुःखी, असहाय-अनपढ़ और भोले-भाले लोगों को आर्थिक प्रलोभन से ईसाई बनाना ही इनका प्रधान कार्य है। अस्पताल, जेलखाने, सरकारी दफ्तर, विचारालय, पद पर नियुक्ति आदि विभागों में इनका असीम प्रभाव है। हिन्दू धर्म और मुसलमान धर्म के बारे में कटूक्ति और निन्दावाद (ह० ले० पृ० ३००) का प्रचार करना ही इनका धर्म-प्रचार है। अकाल-पीड़ित स्थानों में और गरीब गांवों में आर्थिक सहायता के बल पर हिन्दू-मुसलमान नवजवानों को ईसाई बनाना ही इनका उद्देश्य है। बड़े-बड़े मेधावी कवि साहित्यिक, वैज्ञानिक नवजवानों को पादरियों ने भारतद्रोही बना दिया है। यह असहनीय है।

(२) समाज-नीतिक कारण—करीब एक सौ वर्ष पहले से ही सैंकड़ों, हजारों अंगरेज व्यवसायी, राजकर्मचारी, धर्म-प्रचारक भारतीयों के संस्पर्श में आये हैं लेकिन इन्होंने अपने को भारतीयों से सर्वथा अलग करके रखा है। (ह० ले० पृ० ३०१) सब कोई अपने को प्रभु शासक समझ करके सभी को शासित रूप में देखते हैं। नेटी, नीगार, काले (कृष्णांग), ईडियट, शूअर, ब्लाडी, व्याष्टार्ड, फूल, डौग, बिच आदि शब्द इन्होंने यहाँ के रहने वालों के लिये आविष्कृत किये हैं और यत्र-तत्र प्रयोग करते हैं।

इनके लिये बड़ौदा के गायकवाड़ और हैदराबाद के निजाम देशी राजे, राजा राजेन्द्र लाल मित्र और सत्यव्रत सामश्रमी देशी पण्डित, डा० महेन्द्र लाल सरकार, गंगाधर कविराज ये सब देशी चिकित्सक हैं; राजा राममोहन और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी देशी संस्कारक हैं और वेद-उपनिषद् भी देशी धर्म-ग्रन्थ हैं।* उनके लिए भारत के सब (ह. ले. पृ. ३०२) कोई और सब कुछ घृणा के पात्र और घृणा की वस्तु हैं। इससे

* मूल में देशी शब्द हैं। लेखकों ने भाव समझकर बंगला में उसके पर्याय वाची अंग्रेजी शब्द लिखे हैं।—स०

अंगरेज और भारतीयों के अन्दर महान् व्यवधान कायम हो गया है, जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में भारतीय जन-साधारण के अन्दर प्रबल विद्रोह का भाव उत्पन्न हुआ है।

(३) **राजनीतिक कारण**—अंगरेजों ने राज्य-विस्तार के लिये युद्ध-नीति ग्रहण की है और जिससे पंजाब और पेगु (ब्रह्म देश) पर दखल कर लिया है। सिक्किम को एकांश युद्ध-नीति से ही लिया गया है। स्वत्व-विलोप नीति से सतारा, सम्बलपुर, झांसी, भागल, उदयपुर, नागपुर, जैतपुर, करांउलि, वगैरह राज्यों पर भी दखल कर लिया है। कई एक राज्यों के राजपरिवारों को भत्ता देने का वचन दिया गया, फिर उसको वन्द भी कर दिया गया। राजप्रासाद लुंठन किया गया, स्त्रियों को अपमानित किया गया। अराजकता के बहाने बनाकर भी कई-एक राज्यों का ग्रास किया गया। इन सब जबरदस्ती और दस्युवृत्तियों के कारण अत्याचार और अविचार के कारण जन-साधारण का मन विषाक्त, घृणा, विद्वेष और प्रतिहिंसा-परायण बन गया है। इसको सहन करना असम्भव हो गया है। प्रजा-विद्रोह का यह मुख्य कारण है।

(४) **अर्थनीतिक कारण**—अंगरेज-शासन के एक सौ वर्षों के अन्दर देश से अपरिमित सोना, चांदी, मणि-माणिक्य-रत्नादि, सुप्रसिद्ध कोहिनूर स्यमन्तक आदि अमूल्य मणि आंग्ल-देश में भेज दिये गये। यन्त्र शिल्प के प्रवर्तन से कुटीर-शिल्प, स्वदेशी शिल्पों की जगह विदेशी शिल्पों की आमद अधिक रूप से हुई है। जिस के कारण देश की समृद्धि विनष्ट हो गयी और अन्नाभाव दुर्भिक्षादि बार-बार आने लगे। प्रजाओं के लुण्ठन के लिये घर-घर चौकीदारी-टैक्स, शिक्षा-कर, पथ-कर, जल-कर, आय-कर, शिल्प-कर और गवादि पशुओं के भूमि-चारणकर आदिकों की क्रमवृद्धि प्रचलित हुई है। जन-साधारण अन्न-वस्त्रादि के अभाव से अर्ध-मृत हो रहा है। प्रजा-विद्रोह अन्न-वस्त्राभाव के कारण स्वाभाविक गति से ही आ रहा है।

(५) **युद्ध-नीतिक कारण**—अनपढ़ मूर्ख जन-साधारण को शिक्षा-दीक्षा से वंचित करके बाल्य-किशोर यौवन अवस्था में अधिक वेतन के प्रलोभन से युद्ध-शिक्षा के लिये भेज दिया जाता है। राज्य-विस्तार के ये लोग ही परम सहायक हैं। इनके प्रति विदेशी सामरिक कर्मचारियों का व्यवहार अमानवोचित है। इनके वेतन से पच्चीस गुणा अधिक वेतन अंगरेज मामूली सैनिकों को मिलता है। जब इच्छा हो, जहाँ इच्छा हो युद्ध के लिये ये लोग भेजे जाते हैं। गन्तव्य स्थान का नाम तक भी नहीं

बताया जाता है। युद्ध-भूमि में मृत्यु होने पर घर में समाचार भी नहीं पहुँचता है। "सामरिक जाति" यह नाम रखकर स्वास्थ्यवान् (ह. ले. पृ. ३०५) तरुण एकमात्र पुत्र को भी परवाने के बल पर पकड़ के सामरिक कर्मचारी ले जाते हैं। छावनी में धर्म कृत्य करना, धार्मिक चिन्हादि को धारण करना अवैध और निषिद्ध है। इस पर बिन्दुमात्र आपत्ति करने से भी सामरिक विचार के अनुसार गोलियों से मृत्यु-दण्ड दिया जाता है। आज से पचास वर्ष पहले भेलोर में और तीस वर्ष पहले बारीकपुर में इस प्रकार के अत्याचार और सामरिक दंडों का विधान हुआ था। दण्ड-प्राप्त सैन्यों का प्राप्य बाकी वेतन घर में नहीं भेजा जाता है। प्राणदंड का सम्वाद तक भी नहीं भेजा जाता है। बहुत रोज तक घर में पत्र आदि नहीं आने से अन्दाजा किया जाता है कि सामरिक कानून से प्राण-दण्ड मिला होगा। इस हालत को सहन करना कठिन हो गया है। प्रजा-विद्रोह का यह भी कारण है।

(६) **प्रत्यक्ष कारण** (ह.ले.पृ.३०६)—कृष्णांग जातियों के प्रति प्रतिदिन और हमेशा जो व्यवहार सब ही जगह देखे जाते है पशुओं के प्रति भी ऐसा निर्दय और निर्लज्ज व्यवहार नहीं देखा जाता है। जोकि ज्यादा रोज सहन करना कठिन है। इन सब कारणों से प्रजा-विद्रोह अवश्यम्भावी मालूम हुआ है।

श्री कुंवर सिंह के प्रश्न का उत्तर :—

पंचम सज्जन श्री कुंवर सिंह ने पूछा —"स्वामी जी महाराज! युद्धों में जय अथवा पराजय अनिश्चित होती है। आपसे पूछता हूं, "हमारा यह प्रजा-जागरण या गण-युद्ध सफल होगा या विफल होगा ?"

मेरा अभिमत—स्वतन्त्रता-युद्ध कभी विफल नहीं होता है। भारत धीरे-धीरे सौ वर्ष के अन्दर परतन्त्र बन गया है। इसको स्वतन्त्र बनाने में और सौ वर्ष बीत जायेंगे। भारत पूर्ण स्वतन्त्र बनकर फिर जगत् पर (ह. ले. पृ. ३०७) अपने गौरव को प्रकाशित करेगा। इस स्वतन्त्रता-प्राप्ति में बहुत से अमूल्य जीवनों की आहुतियाँ डाली जायेंगी। मैं हरिद्वार के कुम्भ मेले में दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आया हूँ।

प्रधान उद्देश्य—योग-सिद्ध साधकों का संधान करना। इससे मेरे पारमार्थिक कल्याण की प्राप्ति होगी।

गौण उद्देश्य—कुम्भ मेले में भारत के और तिव्बत के सब ही साधु और महन्त लोग अपने-अपने शिष्य सम्प्रदायों के साथ समवेत होते हैं।

भारत में लाखों-लाखों साधु हैं। इनके अन्दर संगठन नहीं है। सब को अपने-अपने गुरुओं के आधीन संगठित करना जरुरी है। मैं सब ही गुरुओं से मिलूँगा। देश की इस दयनीय स्थिति में सुधार के लिये मैं इनको प्रेरणा दूंगा। आप लोगों का प्रजा-विद्रोह प्रत्यक्ष रूप में रहेगा और (ह. ले. पृ. ३०८) इसका फल भी प्रत्यक्ष ही होगा। क्योंकि आप लोग मुख्य रूप से प्रत्यक्ष जीवन बिताते हैं। लेकिन साधु लोग अपार्थिव और पारमार्थिक जीवन बिताते हैं इसका स्वरूप और फल सम्पूर्ण अप्रत्यक्ष हैं। अप्रत्यक्ष फल के लिये साधु-सन्न्यासियों को संगठित करना बहुत ही कठिन है। इनकी संख्या कई एक लाख हैं। मैं इन त्यागी साधुओं को संगठित करने के लिये प्राण-पण से कोशिश करुँगा।

भारत की इस दुर्दशा को हटाने से भारत इतने विराट् और विशाल जनबल को प्राप्त हो जाये तो यह सौभाग्य की बात है। भारत के प्रजा-विद्रोह और साधु-संगठन के सफल होने से देश का सर्वाङ्गीण कल्याण होगा, इसमें सन्देह नहीं है। साधु-संगठन की परिकल्पना को छोड़ देने से आज ही मैं आपके साथ प्रजा-विद्रोह में शामिल हो सकता हूं। मैं हरिद्वार कुम्भ मेले से (ह० ले० पृ० ३०९) मानसरोवर, कैलाश और तिब्बत की तरफ योगी-साधुओं के सन्धान में जाना चाहता हूं। लाखों-लाखों साधु सन्न्यासी हिमालय के विभिन्न ऋषि-पल्लियों में और पर्वत-कन्दरों में रह कर योग-साधना करते हैं और कोई-कोई साधना के आसनों में बैठे हुए जीवनों को छोड़ देते हैं।

पांचों सज्जनों ने एक ही स्वर से मुझसे अनुरोध किया कि मैं योगियों के संधान में और साधुओं के संधान में तत्पर रहूं प्रजा-विद्रोह के कार्य में सैंकड़ों-सहस्रों आदमी पेशावर से कलकत्ते तक और मेरठ से कर्नाटक तक नियुक्त हुए हैं। लेकिन साधु-संगठन के कार्य में कोई भी नजर नहीं आता।

कमल पुष्प और चपाती—अजीमुल्लाखां ने प्रश्न किया था 'हमारी यह प्रजा-विद्रोह की वाणी किस रूप से और इन सामरिक और असामरिक जनता में बहुत ही चुपचाप प्रचारित हो सकती है। (ह. ले. पृ. ३१०) इसके बारे में आप से उपदेश चाहते हैं।

मैंने इस कार्य के बारे में बहुत ही प्राचीन सनातन पद्धति को बतला दिया। सामरिक जनता में प्रचार के लिये कमल पुष्प और असामरिक जनता में प्रचार के लिये चपातियों का व्यवहार होता है। किसी

सैन्यावास में किसी एक सैन्य के पास कमल पुष्प को हाथ में देकर व्यापक युद्ध-घोषणा की तारीख बोल दी जाये तो निःशब्द से एक हाथ से दूसरे हाथों तक कमल पुष्प भी चलता रहेगा और क्रान्ति की वाणी का भी प्रचार होता रहेगा। इस से किसी को सन्देह भी पैदा नहीं होगा। इस रूप से एक सैन्यावास से दूसरे सैन्यावास तक संवाद निःसन्दिग्ध रूप और आराम से सम्वाद पहुँच जायेगा।

असामरिक जनता में प्रजा-विद्रोह की वाणी उसी रूप से प्रचार के लिये किसी गांव में प्रवेश कर किसी व्यक्ति को (ह. ले. पृ. ३११) व्यापक विद्रोह की ठीक तारीख बोल देने के बाद एक व्यक्ति के हाथ में चपाती दे देनी चाहिये। उससे एक टुकड़ा लेने के बाद दूसरे व्यक्ति के हाथ तक पहुंचा देना। इस रूप में टुकड़े होकर चपाती समाप्त हो जाने से अगले व्यक्ति नई चपाती बनवाके उसी रूप से दूसरे हाथों में दे देगें। इस प्रणाली से गांव से गांवों तक, शहर से शहरों तक व्यापक विद्रोह का समाचार प्रचारित हो जायेगा।

किसी गुप्तवाणी या पवित्र समाचार के प्रचार के लिये यह अत्यन्त प्राचीन प्रणाली है।❀ अजीमुल्लाखां ने मेरी कही हुई इस प्रणाली के द्वारा सारे भारत में सर्वत्र क्रान्ति के समाचार को पहुँचाने का प्रबन्ध किया था। जिनके हाथों में चपाती या कमल पुष्प आ जायेगा वे अगर इसको दूसरे हाथों में नहीं देंगे तो भयंकर पाप के भागी बन जायेंगे। इस स्वाभाविक भय से प्रचार-कार्य चालू रहा था। इस सांकेतिक अन्यथा गुप्त प्रणाली के प्रवर्तक बहुत पुराने जमाने के व्यक्ति थे। आजकल भी यह प्रणाली चालू है।

इस सुदीर्घ आलोचना के बाद पांचों सज्जन प्रणिपात करके चले गये। श्रीमन्त नाना साहब ने मुझको हिमालय भ्रमण के बाद कानपुर (बिठूर) में आने के लिये आमन्त्रण दिया था और मैंने★ आमन्त्रण स्वीकार कर लिया था।

❀अजीमुल्लाखां ने चपाती का प्रचार किया पर इतिहासकारों को इस तथ्य का पता नहीं।

★हिमालय-यात्रा के पीछे ऋषि कानपुर पहुंचे। सन् ५७ के पांच मास कानपुर, अलाहाबाद में विद्रोह को साक्षात् करते बिताये। थियासोफिस्ट के आत्मचरित्र से भी यह स्पष्ट है। तिथियों की गणना करो—देखो १९५७ योगात्मचरण में।

नाना साहब और विठूर—कानपुर से डेढ़ योजन की दूरी पर पश्चिम की तरफ गंगा के पश्चिम उपकूल में विठूर है। ब्रह्मा ने यहाँ यज्ञ किया था इसलिये इसका दूसरा नाम ब्रह्मावर्त है। नाना साहब बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र थे। इनका प्रकृत नाम था धुन्धु पन्थ। द्वितीय बाजीराव ने अंग्रेज सरकार को आत्मसमर्पण किया था और वार्षिक आठ लाख रुपये से सन्तुष्ट होकर विठूर में अंग्रेज के नजरबन्दी के रूप में रहने लगे। द्वितीय बाजीराव की मृत्य के बाद अंग्रेज सरकार ने वह वार्षिक आठ लाख रुपया बन्द कर दिया था। यही नाना साहब प्रजा-विद्रोह के अन्यतम नेता थे। (ह.ले. ३१६ पृ०)।

महर्षि द्वारा विदेशी शासन के विरुद्ध साधुओं को संगठित करने का प्रयास

हरिद्वार कुम्भ मेला (ह० ले० पृ० ३१३)

अब हमने हरिद्वार के कुम्भ मेले के उपलक्ष्य में योग सिद्ध साधकों के सन्धान में और साधुओं के संगठन के सम्बन्ध से ध्यान दिया। कुम्भ-मेले में भारत के और तिब्बत के लाखों साधुओं का समागम होता है।

ऐतिहासिक लोग बोलते हैं कि राजा हर्षवर्धन के राजस्व काल में (सप्तम शताब्दी में) कुम्भ मेला का प्रवर्तन प्रयाग-क्षेत्र में हुआ था। (ह० ले० पृ० ३१४) १२ वर्ष बाद उन्होंने प्रयाग में, हिन्दू और बौद्ध साधुओं के सम्मेलन का आवाहन किया था। तब से कुम्भ योग में हरिद्वार में, प्रयाग में, नासिक में और उज्जयिनी में सन्न्यासियों के महासम्मेलन होते हैं।

चैत्र संक्रान्ति (महाविषुव संक्रान्ति) में हरिद्वार में कुम्भ स्नान होता है। ब्रह्मकुण्ड में मुख्य स्नान होता है। शिवरात्रि में प्रथम स्नान, चैत्र अमावस्या में द्वितीय स्नान और महाविषुव संक्रान्ति में तृतीय स्नान या प्रधान स्नान होता है।

नासिक में कुम्भ मेला चातुर्मास्य के समय होता है। आषाढ़ की शुक्ला एकादशी से कार्तिक की शुक्ला एकादशी तक चातुर्मास्य है।

प्रयाग—मकर संक्रान्ति (पौष संक्रान्ति) से प्रयाग के त्रिवेणी संगम में।

उज्जयिनी—वैशाखी पूर्णिमा में उज्जयिनी में कुम्भ मेला होता है।

प्रति ६ वर्ष बाद हरिद्वार में और प्रयाग में अर्धकुम्भ मेला होता है।

चैत्र-संक्रान्ति में (महाविषुव-संक्रान्ति) हरिद्वार के ब्रह्म-कुण्ड में तृतीय या प्रधान स्नान होते हैं। वहाँ शिवरात्रि में और द्वितीय स्नान होते हैं, वहाँ चैत्र-अमावस्या में।

पौष संक्रान्ति (मकर-संक्रान्ति) में प्रयाग के त्रिवेणी संगम में (ह० ले पृ० ३१६) कुम्भ मेले के स्नान होते हैं। वह ही प्रथम या प्रधान स्नान है। द्वितीय स्नान होते हैं परवर्ती अमावस्या में और तृतीय स्नान होते हैं वसन्त-पंचमी में।

चातुर्मास्य में (आषाढ़ शुक्ला एकादशी से कार्तिक की शुक्ला एकादशी तक) नासिक में कुम्भ-मेला लगता है। इस मेले का प्रथम स्नान होता है श्रावण मास में बृहस्पति के साथ मंगल के और शुक्र के साथ सिंह राशि के मिलन से या कुम्भयोग में। यह ही प्रधान स्नान है। भाद्र की अमावस्या में यहाँ द्वितीय स्नान और कार्तिक की शुक्ला एकादशी में तृतीय स्नान होते हैं। सन्न्यासी लोग नासिक से ढाई योजन की दूरी पर गोदावरी के उत्पत्ति स्थान (लम्बकेश्वर) में रहकर कुशावर्त घाट में स्नान करते हैं।

उज्जयिनी का कुम्भमेला वैशाखी पूर्णिमा के कुम्भलग्न में होता है। यहाँ यह एक ही मात्र प्रथम और प्रधान स्नान होता है।

प्रयाग—इलाहाबाद में है। तीर्थराज-प्रयाग और दूसरे छः प्रयाग (ह. ले. पृ. ३१७) हैं हिमालय में :—

(१) देव प्रयाग—भागीरथी और अलकनन्दा के मिलन-स्थान में है।

(२) रुद्र-प्रयाग—अलकनन्दा के साथ मन्दाकिनी के मिलन-स्थान में है।

(३) शैव-प्रयाग—केदारनाथ जाने के रास्ते में त्रियुगी नारायण और गौरी कुण्ड के अन्दर मन्दाकिनी के साथ शैव-गंगा या काली गंगा के मिलन-स्थान में है।

(४) कर्ण-प्रयाग—बदरी के रास्ते में अलकनन्दा के साथ विष्णु-गंगा के मिलन-स्थल में है।

(५) नन्द-प्रयाग—अलकनन्दा के साथ मन्दाकिनी के मिलन-स्थल में है।

(६) विष्णु-प्रयाग—अलकनन्दा के साथ विष्णुगंगा के मिलनस्थल में है।

मैं इन छः प्रयागों में भी योग-सिद्ध साधकों के सन्धान में गया था, दूसरा मेरा उद्देश्य साधु-संगठन था।

समाट् हर्ष वर्द्धन (ह० ले०पृ० ३१८)

सुना जाता है कि हर्ष वर्द्धन कुम्भ-मेलों के स्थानों में विराट् महा-यज्ञों के अनुष्ठान करते थे। सर्वस्व दान दिया करते थे और उन्हीं स्थानों में ही साधु-सन्न्यासी और ज्ञानियों के सम्मेलनों के कारण कुम्भ-मेलों का प्रवर्तन हुआ था। इन सम्मेलनों में लक्ष २ साधु-सन्न्यासियों की शोभा-यात्रा एक अपूर्व दृश्य है। मैं तीन वार हरिद्वार के कुम्भ मेले में सम्मिलित हुआ था। यह थी हरिद्वार कुम्भ मेले में मेरी प्रथम उपस्थिति। अब मैंने विभिन्न नेताओं से, विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के नेताओं से अपने दो विषयों पर आलोचना के लिये भेंट की थी।

वेदान्तियों का मनोभाव : चारों दिशाओं में मठ

जगद्गुरु शंकराचार्य ने सन्न्यासियों को एकता-बद्ध करने के लिये और उनसे जगत् की उन्नति करने के लिए भारत की चारों सीमाओं में सन्न्यासियों के चार मठ स्थापित किये थे। उत्तर में बदरी नारायण-क्षेत्र में ज्योतिर्मठ, दक्षिण के (कन्याकुमारी) क्षेत्र में शृंगेरी मठ, पश्चिम के द्वारावती क्षेत्र में शारदा मठ और पूर्व के पुरुषोत्तम क्षेत्र मे गोवर्द्धन मठ स्थापित करके उन मठों के संचालनार्थ चार शिष्यों को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया था। सन्न्यासियों को उन्होंने दस सम्प्रदायों में विभक्त करके उन को चारमठों के अन्तर्गत कर दिया था। आज भी उन चार मठों के अन्तर्गत सन्न्यासी लोग दस नामों में से किसी न किसी नाम से अपना परिचय देते हैं।

दस नामी सन्न्यासी सम्प्रदाय

शृंगेरी मठ के सन्न्यासियों के नाम—सरस्वती, पुरी और भारती ये तीन। गोवर्द्धन मठ के—वन और आरण्य ये दो। शारदा मठ के—तीर्थ और आश्रम ये दो और ज्योतिर्मठ के गिरि (ह०ले० पृ०३१९) पर्वत और सागर ये तीन नाम हैं?

ब्रह्मचारियों के नाम

शृंगेरी मठ के ब्रह्मचारी—चैतन्य, गोवर्द्धन मठ के ब्रह्मचारी प्रकाश, शारदा मठ के ब्रह्मचारीस्वरूप और ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी आनन्द हैं।

श्रीशंकराचार्य के चारों मठों के अन्तर्भुक्त सन्न्यासी और ब्रह्मचारी

हजारों कुम्भ-मेलों में उपस्थित हु . थे। मैंने इनके चारों शंकराचार्यों से और प्रधान-प्रधान सन्न्यासियों से केवल सन्न्यासी-संगठन के लिये उपदेश, परामर्श और सहयोग मांगा था। मेरी प्रार्थना थी—"आप में से कई एक सन्न्यासी आ जाइए। हम लोग सारे भारतवर्ष में कम से कम एक हजार सन्न्यासी संगठित और मिलित हो जायें।

हमारे उद्देश्य रहेंगे—(१)वेद प्रणिहित धर्मका उद्धार और प्रचार करना। (२)सामाजिक आदर्श और मर्यादा को देशवासियों के सम्मुख स्थापित करना, (३) देश को विदेश और विदेशियों के प्रभाव से मुक्त करना, (४) देश के मंगल के लिये मन और जीवन समर्पित कर देना।

आप ही में से इस कार्य के कोई न कोई संचालक कर्णधार बन जाइये।

उनके मनोभाव—हमारी इस प्रार्थना पर चारों मठों के चारों शंकराचार्य और बड़े-बड़े सन्न्यासियों ने (ह०ले० ३२०) इस आशय पर अपने मनोभावों को इस रूप से प्रकट कर दिया—"हम ब्रह्मवादी सन्न्यासी हैं, अद्वैतवादी हैं। हमारे लिये ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। राष्ट्र, समाज, परिवार, जीवन, जगत् और ये सब स्वतन्त्रता-परतन्त्रता, वर्ण आश्रम, हमारा-तुम्हारा भाव सब कुछ मिथ्या है। मिथ्या के लिये हम कुछ करना व्यर्थ समझते हैं।"

हम उन्हें केवल यह कहकर चले आये थे—"दुःख की बात है कि आपके भोजन के लिये अन्न, पीने के लिये पानी, रहने के लिये स्थान, सरदी के लिये कम्बल, हवा के लिये पंखा और सेवा के लिये शिष्य ही एक मात्र सत्य स्पष्ट हो रहे हैं,बाद में बाकी सब कुछ मिथ्या मालूमपड़ते हैं।"

इसके बाद निराश होकर हम वैष्णव-सम्प्रदायों के प्रधान-प्रधान नेताओं के पास आ गये थे, ये लोग भी कुम्भ मेले में हजारों एकत्र हुए थे। ये लोग द्वैतवादी हैं और भक्त-वैष्णव हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय

वैष्णवों के अन्दर सम्प्रदाय बहुत हैं। शंकराचार्य के समय में भी बहुत तरह के वैष्णव मौजूद थे। अब मात्र रामानुजी,विष्णुस्वामी मध्वाचार्यी और निम्बार्की सम्प्रदाय ही प्रबल हैं। इन सम्प्रदायों का वैरागी या वैष्णव नाम से परिचय दिया जाता है। ये लोग द्वैतवादी हैं और अद्वैतवाद के विरोधी हैं। अवतारों की उपासना करना ही इनकी साधना है। सत्ययुग के नारायण, त्रेतायुग के श्रीरामचन्द्र, द्वापरयुग के श्रीकृष्ण और कलियुग

के श्री चैतन्य देव की उपासना करना ही इनकी मुख्य साधना है। श्री रामानुजाचार्य श्री वल्लभाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य और श्री चैतन्यदेव ही (हृ.ले. पृ.३२१) इनके स्व-स्व सम्प्रदायों के आलम्बन हैं। रामायेत, रामानुजी और गौड़ीय वैष्णव नामों से भी इनका परिचय होता है। दक्षिण देश में रामानुजी वैरागी या वैष्णव अधिक संख्या में हैं। इस प्रकार अयोध्या में और चित्रकूट में रामायेत वैष्णव, वृन्दावन अंचल में श्रीकृष्ण के उपासक, बंगाल और उड़ीसा में गौड़ीय वैष्णव, आसाम में शंकर देव के उपासक, शंकर वैष्णवों की संख्या अधिक है। वैष्णव या वैरागी सम्प्रदायों के अन्दर चार मठधारी सम्प्रदाय हैं—(१) श्री रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय, (२) श्री मध्वाचार्य का ब्रह्म-सम्प्रदाय, (३) श्री वल्लभाचार्य का वल्लभचारी या रुद्र सम्प्रदाय और (४) श्री सनक सनन्दन-सनातन सनत्कुमार का निम्वार्क सम्प्रदाय।

उत्तर भारत में रामानुजी से रामानन्दी वैष्णव अधिक प्रभावशाली हैं। रामानुज के शिष्य देवानन्द, देवानन्द के शिष्य हरिनन्द, हरिनन्द के शिष्य राघवानन्द और राघवानन्द के शिष्य रामानन्द थे। इसलिये परम्परागतरूप से रामानुज से रामानन्द चतुर्थ शिष्य थे। इन सभी के अन्दर २ श्रेणियाँ हैं, उदासीन और गृहस्थ। गृहस्थ वैष्णव लोग उदासीनों के या गृहस्थ वैष्णव गुरुओं के निदेशानुसार संसार धर्म का पालन करते हैं। उदासीन वैष्णव तीर्थ-पर्यटन, भिक्षा या देव-पूजा या मठों के महन्त बनकर आजीविका चलाते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों में इनके आश्रय-स्थल हैं और गृहस्थ वैष्णवों की सहायता से पुष्ट मठ, मन्दिर, देवोत्तरभूमि या अतिथिशालायें इनके आलम्बन हैं।

इन वैष्णव सम्प्रदायों के बड़े-बड़े गोस्वामी, महन्त, गुरु और साधु-सन्न्यासी हरिद्वार के कुम्भ मेले में सम्मिलित हुए थे। मैंने सब ही की सेवा में उपस्थित होकर देश राष्ट्र और समाज की शोचनीय दशा के प्रति दृष्टि आकर्षण करके अपनी दोनों प्रार्थनाओं को पूर्ववत् रखा था। इन्होंने भी दूसरे ढंग की भाषा का प्रयोग करके मुझको निराश कर दिया था।

उनके मनोभाव

उन सब के कहने का सारांश यह था "हमारे यह शरीर श्रीराम या श्रीकृष्ण के भजन के लिये हैं दूसरे कार्य के लिये नहीं हैं। दूसरे कार्य करना, श्री भगवान् के स्थान में देश-समाज राष्ट्र की सेवा करना महापाप है। मानव-शरीर फजूल कार्य के लिये नहीं है। महाप्रभु की सेवा और चिन्तन

से मुक्ति मिलेगी, देश-समाज-राष्ट्र की वैषयिक चिन्ता से भगवद्-भक्ति ढीली हो जायेगी, मुक्ति लाभ या गोलोकवैकुण्ठ में जाने के मार्ग में प्रवल बाधायें आ जायेंगी (ह. ले. ३२३) मानव-जीवन इतना सस्ता नहीं है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करके तब भक्ति-साधना के एक मात्र अवलम्बन भजन को शरीर मिल गया है। इन शरीरों को देश समाज राष्ट्र की भजन-विरोधी सेवा के लिये समर्पण करना बुद्धिमानों का कार्य नहीं है।"

वैष्णव-गुरुओं से निराश होकर लौटते समय मैंने केवल मात्र इन वाक्यों को बोला था—

"जिस देश में ऐसे भक्तों की संख्या अत्यधिक है उस देश का सर्व-नाश है"।

वैष्णव सम्प्रदाय की शाखा के अनुरूप बहुत सम्प्रदाय हैं। मैं इन सम्प्रदायों के नेताओं से मिला था और सभी की सेवा में साधु-संगठन के उद्देश्य का निवेदन किया था और प्रेरणा दी थी। सभी ने अनुरूप निराशाजनक बातें कहीं। उन सम्प्रदायों के नाम ये हैं—रामानुजी, रामाईत, कवीर-पन्थी, दादू पन्थी,(३२४ ह० ले०)रयदासी, सेन पन्थी, रुद्र संप्रदाय मीराबाई, तुलसीदास विट्ठलभक्त, चैतन्य सम्प्रदाय, स्पष्टदायक सम्प्रदाय, रामवल्लभी, साहब-धर्मी, बाउल, दरवेश, आउल, कर्ताभजा, न्याड़ा, सहजिया, खुशि-विश्वासी, गौरवादी, राधावल्लभी, सखी सम्प्रदाय, चरणदासी, हरिश्चन्द्री, सरपन्थी, माधवीपन्थी, वैरागी, नागा और ललिता। इनमें बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय अधिक हैं। इनके लिये साधु-संगठन का मतलब समझना ही कठिन हुआ था।

कुम्भ मेले की शोभा यात्रा

हिन्दू धर्म के विभिन्न सांप्रदायिक रूप देखने के लिए मैंने कुम्भ मेले के स्नान-यात्रियों की शोभा-यात्रा को देखा था। उसका स्वरूप निम्न प्रकार का था।

(१) दिग्विजय डंका

जगद् गुरु शंकराचार्य के लिये (ह. ले. ३२५) जय ध्वनि, एक नागा सन्न्यासी घोड़े पर सवार होकर दोद मामे पीटते हुए जाता है।

(२) दिग्विजय का झण्डा

शंकराचार्य की विजय-पताका लेकर एक नागा सन्न्यासी गेरु पताका लेकर घोड़े पर सवार होकर जाता है।

(३) कसरत

नागा सन्न्यासी लोग पदातिक और अश्वारोही सैन्यों के रूप में युद्ध भूमि में जाने के ढंग से अग्रसर होते हैं।

(४) निदर्शन

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के और अखाड़ों के पताका-प्रदर्शन।

(५) ऐक्यतान वादन

युद्ध कालीन समवेत वाद्यध्वनि।

(६) गैरिक पताका

हाथी के ऊपर बैठे हुए संन्यासी के हाथों से त्याग के प्रतीत अति बृहत् गैरिक पताका की धारणा।

(७) विजय पताका (ह. ले. पृ. ३२६)

युद्ध में जय लाभ का निदर्शन हाथी के ऊपर जरीदार मखमल की बड़ी नीले रंग की पताका।

(८) दण्डधारी

नागा सन्न्यासियों की सोने-चान्दी से मण्डित दण्डों को धारण करके विजय-गौरव के ढंग से अग्रगति।

(९) धूनाधारी

युद्ध कालीन उत्साह-व्यंजक धूप-धूना के साथ अग्रगाति।

(१०) बल्लम पूजा

बल्लमों से (मालों से) शत्रु-जय के बाद साधुओं की भारतवर्ष के हजारों लाखों नर-नारियों के सम्मुख त्यागी नागा साधु-सन्न्यासियों का विजय गर्व उन्मादन के साथ सामरिक ताल से पादक्षेप बहुत ही विस्मय के कारण हैं।

"पराधीन भारत में भी इतना हर्ष? क्या ये लोग भूल गये हैं कि हमारी मातृ-भूविदेशियों के हाथों में परतन्त्र है और पितृ-पुरुषों का धर्म विदेशियों से पद-दलित है? क्या इन लोगों को मालूम नहीं है कि विदेशी राहु ने हमारी देश-जननी को ग्रास कर लिया है और अब सर्वग्रास के लिये तैयार हो गया है? क्या इन लोगों को मालूम नहीं है कि देश में अदूर भविष्य में जो क्रान्ति आने वाली है उसमें मात्र एक हजार सन्न्यासी-साधु त्यागी-महात्मा भी भाग लें और अपने-अपने जीवनों की आहुतियों के रूप में अर्पण करदें तो देश सर्वनाश से बच जाये? हमने दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब तक कुम्भ-मेला चलता रहेगा, मैं देश-जाति धर्म रक्षा के लिये मुख्य-मुख्य सब ही को प्रेरणा दूंगा। इन को संगठित रूप से मातृ-भूमि की सेवा और रक्षा के लिये (३२८ ह.ले.) सदा तैयार रहने के लिये अनुरोध करूंगा। गृहस्थ नर-नारी और भिन्न-भिन्न राज-पुरुषों

का भी यहाँ आगमन हुआ है। इन्हें भी इस कार्य से मदद पहुँचाने के लिये अनुरोध करूँगा और इसके बाद योग-सिद्ध साधकों के सन्धान के लिए हिमालय और तिब्बत में भी भ्रमण करूँगा" ।

निराशा में आशा—बहुत सम्प्रदायों के नेता मेरे उद्देश्यों के विरोधी बन कर मेरे विरुद्ध घूम-घूम कर प्रचार करने लगे थे और मेरे रहने के स्थान पर जाकर मेरे ऊपर आक्रमण और जुल्म के लिये जनता को भडकाने लगे थे। इससे सुफल यह हुआ, कि साधु-सन्न्यासी, यति और गृहस्थ तीर्थ-यात्री मुझ जैसे पाखंडी को देखने के लिये कौतूहली होकर चंडी पहाड़ में आने लगे थे। धीरे-धीरे दिन प्रतिदिन मेरे दर्शनार्थी तीर्थ-यात्रियों की संख्या बढ़ने लगी। दर्शनार्थी तीर्थ-यात्रियों के सम्मुख खड़े होकर मैंने सवेरे और दोपहर प्रतिदिन स्वदेश और स्वधर्म रक्षा के बारे में उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया (३३० ह. ले)। मेरे जीवन में जनता के सम्मुख व्याख्यान देने का सूत्रपात यहां से ही हुआ था। जनता पुरुष-स्त्री खड़े होकर उपदेश सुनकर चले जाते थे। सरकारी कर्मचारी और शान्ति-रक्षक भी वहाँ आया-जाया करते थे। इस सुफल के अन्दर मेरे लिये दो समस्यायें भी उत्पन्न हो गयी थी। जनता मुझे प्रणाम करने लगी और पैसे भी देने लगी।

मैंने कई-एक दिन हाथ जोड़ कर प्रार्थना की "मुझको ये दोनों ही नहीं चाहियें। मेरे खाने के लिये हर रोज अति अल्प वस्तु की जरूरत होती है और पैसे की बिल्कुल जरूरत नहीं है। मुझे प्रणाम भी नहीं चाहिये। मैं मामूली सन्न्यासी हूं।"

मेरी प्रार्थना को जनता में से किसी ने भी सुना नहीं था।

एक सज्जन ने कहा—'हम लोग आपको कुछ नहीं देते और आपको प्रणाम भी नहीं करते। अपने प्राचीन ऋषि-मुनि और पूर्वजों के प्रति सम्मान प्रदर्शन करते हैं। इसके सिवाय और कुछ नहीं। जो कुछ पैसे आपकी भेंट के लिये दिये जाते हैं इसको भी रोकना नहीं चाहिये। यह भी हमारी जाति का अन्यतम सद्गुण है। यह भी प्राचीन धर्म गुरुओं के प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन मात्र ही है। (ह. ले. पृ. ३३१) आप इसको जहाँ चाहें खर्च कर देना।" इस बात पर मैं नीरव और शान्त हो गया था।

राजा गोविन्द नाथ राय

गोविन्दनाथ राय उत्तरी बंगाल में नाटोर की प्रसिद्ध रानी भवानी के वंशज हैं। यह रानी सिराजउद्दौला के शासन काल तक भी आधे बंगाल की

शासन-कर्त्री थी। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे सब ही राज्य ग्रास कर लिया था। ये लोग असहाय बन गये थे। अब ये लोग जमींदार मात्र हैं। राजा गोविन्दनाथ राय कुम्भ-स्नान के लिये हरिद्वार आये थे। आप अचानक रात्रि की शान्त, नीरव और निर्जन स्थिति में चार कर्मचारियों के साथ मशाल हाथ में लेकर मेरे पास आकर प्रणिपात करके बैठ गये और योग-विद्या के बारे में उपदेश माँगा। मैंने उनको उपदेश दे दिया और उन्होंने विदाई काल में मेरे सम्मुख ग्यारह सौ एक रुपये की थैली भेंट के रूप में रख दी थी मैंने समझाया कि मेरे लिये यह रुपया हानिकारक हो जायेगा। मेरे लिये यहां कुछ भी अभाव नहीं है। उन्होंने रुपया वापस नहीं लिया बल्कि प्रयोजनानुसार और कुछ गुरु-दक्षिणा के रूप में देने के लिये सूचना दी थी। उन्होंनें सुना था कि मैं तिब्बत जाने के लिये विचार रखता हूं। उन्होंने कहा "तिब्बत जाना अतीव कठिन है और खतरनाक भी है। (ह. ले. पृ. ३३२) आप कभी उत्तर बंगाल में मेरे स्थान नाटोर तक आने की कृपा करें। हम आपके साथ अपने विश्वस्त पहाड़ी किसी एक आदमी को संगी और साथी के रूप में दे देंगे।" मेरा संकल्प था—काश्मीर होके हिमालय में भ्रमण करने का, फिर दार्जिलिंग होके ल्हासा तक जाने का और सम्भव हो तो गंगासागर भी जाने का। इसलिये इस संकल्प को ही पक्का कर लिया।

रानी लक्ष्मी बाई और रानी गंगा बाई—दो-एक रोज के बाद ही झांसी की रानी लक्ष्मी बाई और उनकी सहचरी* रानी गंगाबाई नें तीन कर्मचारियों के साथ वहाँ आकर प्रणिपात किया। परिचय पूछने पर लक्ष्मी बाई आँखों में आँसू भरकर ओजस्विनी भाषा में बोलनें लगी—"मैं निःसन्ताना और विधवा हूं। मेरे पतिदेव की मृत्यु के बाद मेरे श्वसुर-कुल के वैध राज्य को अंग्रेजों ने मेरे निःसन्तान होने के बहाने से अपना राज्य घोषित कर दिया। मेरे पतिदेव के राज्य से मेरा हक चला गया और अंग्रेजों का हक बन गया। सुनते हैं। अंग्रेज सेनापति बहुत अधिक संख्या में फौज लेकर मेरी झांसी को छीनने के लिये आजायेंगे।"

आँखों से आँसू बहाती हुई झाँसी की महारानी नें कहा—"महात्मा जी! मैं जिन्दा रहती हुई अपने श्वसुर-कुल के इस राज्य को

*झांसीर रानी लक्ष्मी बाई आौ तहाँरसहचरी गंगाबाई तीन कर्म-[चारी संगे ओरवाने आशिया प्रणिपात करिया।-पाण्डुलिपि (सहचरी की हिन्दी सपत्नी अशुद्ध है।—सं०)

दुश्मनों को नहीं दूँगी। मैं लड़ाई करती हुई मर जाऊँगी, लेकिन फाँसी को चुपचाप लुटेरे डाकुओं को नहीं दूँगी। मेरे लिए इस प्रकार के मरण को वरण करना ही कल्याणकर है। आप हमको आशीर्वाद दीजिए कि हँसती हुई युद्ध में मर जाऊँ।"

लगभग बीस वर्ष की एक तरुणी के मुख से ऐसी बातें सुनकर समझ में आगया कि भारतवर्ष में अभी तक वीर रमणी मौजूद हैं, भारत वीर-शून्य नहीं है।

रानी को मैंने* बोल दिया कि "नश्वर शरीर को कोई भी स्थायी नहीं कर सकता है। स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिये जो अपने अस्थायी शरीर को दे देते हैं वे कभी मरते नहीं। चिरकाल के लिए वे पूजा पायेंगे। (ह.ले.३३४ पृ.)हम भगवान् से आपके लिए शुभ और कल्याण की प्रार्थना करते हैं।"

उन्होंने भी एक हजार एक रुपया मेरे सम्मुख रखकर सम्मान दिखाया। नाटोर के राजा से जैसा मैंने कहा था, उन्हें भी वैसा बोल कर रुपये लेने से असहमति प्रकट की। लेकिन इन्होंने भो नहीं सुना। इससमस्या से मुक्त होने के लिए मैंने भगवान् से प्रार्थना भी की थी। जनता ने सुनी नहीं। जिसका जैसा सामर्थ्य हो, रुपये-पैसे देने लगे थे। इसका सदुपयोग कैसे हो मैं यही सोचने लगा। वे चली गईं।

नाना साहब आदि का पुनः आगमन नाना साहब और नये अपरिचित तीन-चार सज्जन सात-आठ रोज के बाद फिर हम से मिलने के लिये आये थे। ये सब कर्म-चंचल और व्यस्त थे।

नाना साहब ने कहा—'हम लोग सारे भारतवर्ष में भ्रमण के लिए भिन्न-भिन्न दिशाओं में चले जायेंगे। अति शीघ्र निर्दिष्ट तारीख में हम लोग चुने हुए स्थानों में सुस्पष्ट विद्रोह का युद्ध शुरू कर देंगे। तारीख अब तक ठीक नहीं हुई है। संगठन में हम लगे हुए हैं। आप से आशीर्वाद लेने के लिए हम यहाँ आये हैं हम जहाँ रहें आपको यथासाध्य सूचित करते रहेंगे।"

हमने कहा—"जो आशीर्वाद मैं आप लोगों को दूँगा। आप लोग उसको जरूर लेंगे—इसकी ठीक-ठीक प्रतिश्रुति दीजिए। आशीर्वाद मैं जरूर दूँगा।"

---

* ३३६ पृष्ठ के हस्तलेख में ही उसी पृष्ठ पर बीच में ३३७ पृ. संख्या डाली गई है। उससे जान पड़ता है कि यह प्रतिलिपि किसी पहली पाण्डुलिपि की पुनःप्रतिलिपि है। यहां आगे पृष्ठों में भी बीच बीच में पृष्ठ संख्या है।—सं०

उन्होंने कहा—'आपका आशीर्वाद हमारे लिए शिरोधार्य हैं।"

मैंने राजा गोविन्द नाथ राय और रानी लक्ष्मी बाई से प्रदत्त रुपये और जनसाधारण से प्रदत्त खुदरा पांच सौ तैंतीस रुपये कुल छब्बीस सौ पैंतीस रुपए नाना साहब के हाथ में स्वदेश-रक्षा के लिए दे दिये। उन लोगों ने सहर्ष ग्रहण किये।

हमने कह दिया कि—"जनसाधरण का नेतृत्व करना और आग लेकर खेल करना—दोनों ही खतरनाक हैं। मामूली भूल से भी सत्यानाश हो जाता है। हमारे पास भेंट के रूप में जो कुछ एकत्र हो जाएगा सब कुछ आपके पास स्वदेश-रक्षा के लिए ही आशीर्वाद के रूप में भेजते रहेंगे।"

ये लोग प्रसन्न होकर चले गए। मैं भी हिमालय में योगी और साधकों को ढूँढ़ने के लिए तैयारी में लगा।

पांच योग-साधकों का संग

हरिद्वार में कुम्भ मेले के वाहर निर्जन जंगल और पहाड़ी अंचलों में मैं खास २ स्थानों में दिनों के अधिकांश समय को योगसाधना में बिताता था। इस उपलक्ष में मैंने पांच योग-साधकों के संग में आने का सुयोग-लाभ किया था। उनका क्रियात्मक योग देखा। इनके नाम थे—स्वामी मोक्षानन्द तीर्थ, चिदानन्द ब्रह्मप्रकाश आरण्य, स्वामी दिव्यानन्द तीर्थ, स्वामी भक्तिविलास पांचरात्र और स्वामी निर्वाणानन्द पुरी—इनके प्रति मैं कृतज्ञ हूं। इन्होंने मुझे क्रियात्मक रूप से योग-साधना के बारे में बहुत कुछ उपदेश भी दिया था।

साधुजनता में जागृति—नाना साहब और रानी लक्ष्मीबाई के प्रचार के कारण साधु लोग मेरे साथ वार्तालाप की इच्छा से एक-एक करके सैकड़ों मेरे पास दिन भर शंका-समाधान करने के लिये आने लगे स्वधर्म-रक्षा के लिए विहित कार्यक्रम ❀ (३३८ ह.लें.) जानने के लिए वे लोग आते थे। मैंने सबसे अनुरोध किया था :—

[आप लोग अपने-अपने सम्प्रदायों के अन्तर्भुक्त रहकर ही स्वधर्म रक्षा के लिये तैयार हो जाइए। जन साधारण के अन्दर धर्म-रक्षा के लिये नया जोश उत्पन्न कीजिए। धर्म हमारे पूर्वजों की और ऋषि-मुनियों की कीर्ति और दान हैं। अहिन्दू नर-नारियों के प्रभाव से जाति और धर्म को और कतिपय विदेशी पादरी या मौलवियों की धोखेबाजी से ऋषियों के वंशजों को वचाइये। धर्मों की प्राथमिक शिक्षा के प्रथम पाठ का जन-

साधरण में प्रचार कीजिये। प्रयोजनानुसार धर्म-रक्षा के लिये और जाति के कल्याणार्थ जीवन दे देना परम पुण्य कार्य है। जगह-जगह धर्म-प्रचार के लिए केन्द्रों की स्थापना कीजिए। साधुओं के जीवन में दोनों ही पुण्य कार्य हैं। (३३९ ह.ले.)

प्रथम एकान्त जीवन में आत्मिक उन्नति के लिये योग- साधना करना और

दूसरा सामूहिक जीवन के उत्कर्ष के लिए वेद-प्रणिहित धर्म का प्रचार करना।

इन दोनों में ही हमारा पारमार्थिक कल्याण स्थित है। आप लोग केन्द्रों के अधीन रह कर संगठित हो जाइये। स्वदेश हमारी माता है और स्वधर्म हमारा पिता है। दोनों की रक्षा के लिये तत्पर रहिये और स्वेच्छा से जो साधु लोग इस व्रत को धारण करें उनके नामों की तालिका बनाते रहिये।']

साधु लोगों ने कहा—हम लोगों ने आपसे प्रेरणा पाते ही अपनी इच्छा से, (ह. ले. पृ. ३३९) पहले ही करीब ढ़ाई सौ साधुओं के नामों की तालिका बनाई है। आप जब चाहें ये लोग एक साथ स्वदेशरक्षा के लिये तैयार हो जायेंगे।"

मैंने कहा (ह. ले. ३४०)—"उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम भारत में जितने सैन्यावास मौजूद हैं वहां सुविधा के अनुसार कमलपुष्प और चपाती की बहु प्राचीन तरकीब से सैन्य और नागरिकों के अन्दर स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए प्रेरणा और जागृति पैदा कर देना आवश्यक है।

वे लोग मेरी बातें शिरोधार्य करके चल दिये और बोले-सब कें साथ सम्बन्ध रखकर ही चलेंगे।

मैंने केवल इंगित से बोल दिया था कि "उत्तर भारत में मेरठ की तरफ, पूर्व भारत में बारीकपुर की तरफ और दक्षिण भारत में भेलोर की तरफ जरूर जाना चाहिए। केवल आप लोग दिल्ली के योगमाया के मन्दिर के पुरोहित त्रिशूल बाबा से सम्पर्क रखिएगा। वहाँ से नियमित समाचार मिलेगा और आप लोगों के समाचार भी अवश्य हमको वहाँ से मिलने चाहियें।"

—:०:—

षष्ठ अध्याय

हिमालय पर्यटन

हरिद्वार से ऋषिकेश—साधु लोग चले गये और मैं हरिद्वार से ऋषिकेश की तरफ रवाना हो गया।* हिमालय में भ्रमण करना और योगियों से योग-साधना के बारे में उपदेश ग्रहण करना और साधुओं का संगठन करना ही उद्देश्य था। कहीं-कही योगियों से मिलने का अवसर मिला था।

ऋषिकेश से श्रीनगर (ह०ले० पृ० ३४२) ★ऋषिकेश से परिव्राजक साधुओं से मिलित होकर लक्ष्मण झूला में आया। वहाँ से टिहरी आकर श्रीनगर तक पहुँच गया था। केदार घाट के योगी साधुओं के साथ मिलित होके तीन सप्ताह का समय श्रीनगर पहुँचने में व्यतीत किया।

---

*तत्पश्चात् कुछ दिनों तक ऋषिकेश में रहा।

★यह श्रीनगर अलखनन्दा के किनारे हैं। इसके पास ही बिल्वकेदार है। इसके हो केदार घाट में तीन सप्ताह योगाभ्यास कर काश्मीर के श्रीनगर को प्रस्थान कर गए। इस अलखनन्दा वाले श्रीनगर से काश्मीर के श्रीनगर को टाँस नदी के किनारे-किनारे वेनाँग पास का हर्सिल से जाता है। वास्पा घाटी से चित्रकूट,सतलुज कुल्लू, मनाली रोहताँग पास, लाहुल, त्रिलोकी नाथ चम्बा जाते हैं। हर्सिल में दो मास रहने का हस्तलेख ऋषि का विद्यमान है। हर्सिल में दो मास तक भोजन देने वाले ब्राह्मण के घर में, श्री आनन्द स्वामी जी ने देखा है। मैं भी पण्डित जी मिलकर जानकारी ले चुका हूँ।—सं०

श्रीनगर से अमरनाथ*

श्रीनगर से अमरनाथ जाना मैंने जरूरी समझा था। सुना था अमरनाथ में कोई न कोई योग-सिद्ध पुरुष सदा ही रहते हैं। उनमें योग-वल से देहत्याग करने की शक्ति है (ह. ले. पृ. ३४३) और कैवल्यलाभ की सहज शक्ति उनमें सदा ही है। अगल-बगल बहुयोग-सिद्ध पुरुषों के स्वेच्छा-मृत्यु के बाद जीर्ण कंकाल वहाँ ही पड़े रहते हैं। तिव्बती साधु लोग उन कंकालों के टुकड़ों को तिव्बत में ले जाते हैं। तिव्बत के साधु लोग उन टुकड़ों को बाजार में बेच देते हैं।

अमरनाथ जाने के लिए मैं तैयार हो गया था। साधु-दर्शन होगा, ऐसा सुना था। वेताल-सिद्ध नाम के किसी योग-सिद्ध पुरुष के बारे में भी सुना था। पहल गाँव, चन्दनवाड़ी, शेषनाग और पंचतरणी होता हुआ मैं अमरनाथ पहुँच गया था। वहाँ किसी गुफा में सरदी के कारण शुक्ला प्रतिपदा से वरफ जमते-जमते पूर्णिमा में कुछ हाथ चौड़ा और तीन हाथ ऊँचा बरफ का शिवलिंग वन जाता है। उसी का नाम अमरनाथ शिवलिंग है। कृष्णा प्रतिपदा से वह शिवलिंग क्षय को प्राप्त होते-होते अमावस्या में नाम मात्र ही रहता है। यह अमरनाथ शिवलिंग का माहात्म्य कहा जाता है।

---

*श्रीनगर से अमरनाथ आदि की यात्रा का वर्णन थ्यासोफिस्ट या पूना प्रवचन में नहीं है। यह सब प्रजा विद्रोह सन् ५७ का संगठन-कार्य था। विद्रोहरक्षार्थ नहीं बताया। प्रकाशित न करने का वचन ले बंगाल में भिन्न-भिन्न लेखकों को दिया। यह थी ऋषि की सावधानी एवं दूर-दर्शिता।—सं०

महादेव कैलास के रहने वाले थे, कुवेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदार खण्ड का वर्णन किया गया है। **हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।** काश्मीर से लेकर नैपाल तक हिमालय की जो ऊँची चोटियाँ हैं वहाँ देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष रहते हैं।" ऋषि की उपदेश मञ्जरी—पृ० ११७ व्याख्यान दस।

बद्रीनारायण को गया। 'रावल' जी महन्त थे···हम दोनों का वेदों और दर्शनों पर बहुत विवाद रहा।···उससमय मैंने दृढ़ संकल्प किया कि समस्त देश में विशेषतः पर्वतीय स्थलों में अवश्य ऐसे पुरुषों का अनु-संधान करूँगा। आत्म-चरित्र—पं० भ० पृ० ३४

वहाँ बेताल-सिद्ध बाबा का दर्शन मिला था। उन्होंने मुझको अति सहज उपाय से मोक्ष लाभ का उपाय बतला दिया था। इसमें अतिशीघ्र मोक्ष-लाभ होता है यह निश्चित है। उनका कथित उपाय(३४६ ह.ले.) हैं कि किसी नव-जात पुं-शिशु को चोरी करके लाना और अमावस्या के मध्य रात्रि में श्मशान भूमि में उस जीवित शिशु पर बैठे हुए चामुंडा देवी के बीजमन्त्र एक लाख, एक हजार एकसौ एक वार जप करने से अतिद्रुत मोक्ष मिल जाता है।" मैं साधन-प्रणाली को सुनकर ही नमस्कार करके भाग गया था।

अमरनाथ से श्रीनगर में—अमरनाथ से श्रीनगर आकर मैंने सुना था कि बौद्ध साधु लोग विभिन्न स्थानों पर परिभ्रमण करके तिब्बत जा रहे हैं। साधुओं के लिए राजनैतिक विधि-निषेध बहुत ही ढीला है। मैं बहुत ही प्रयत्न करके बौद्ध-साधुओं में—तीर्थयात्रियों में सम्मिलित होगया था। श्रीनगर से मैं क्षीर-भवानी के मन्दिर में योगी साधुओं के सन्धान में गया था। लेकिन निराश होकर चला आया था।

श्रीनगर से गान्धार बल—बौद्ध साधुओं के साथ स्थल-पथ से मैं डेढ़ योजन दूरी पर गान्धार बल नामक स्थान में आया था। क्षीर भवानी मन्दिर यहाँ से समीप ही है। गान्धार-बल से तुलमुल आया। इस गाँव के प्रान्त भाग में ही क्षीर भवानी का मन्दिर है। मैं तिब्बत जाऊँगा। बौद्ध साधुओं ने मेरे लिए "ले" शहर के वजीर और कार्गिल शहर के तहसील-दार के नाम पर परिचय पत्रों का प्रबन्ध कर दिया था। मैं साधुओं के साथ सिन्धु नद के तट को अवलम्बन करके पैदल तिब्बत रवाना हो गया।

गान्धार बल से कंगन—(ह०ले० ३४७) गान्धार बल से हम नुन्नुर, ओयाईल्लादि स्थान हो कर कंगन नामक स्थान को पहुँचे। सिन्धु नद के तट देश में असंख्य अखरोट, नासपाती, सेब, बादाम और अंगूर आदि के पेड़ और पौदे हैं। भगवान् की सुन्दर सृष्टि को देखते हुए तिब्बत के अन्त-र्वर्ती स्थानों की तरफ हम अग्रसर होने लगे। मार्ग में बौद्ध साधुओं से मेरी धर्म-विषयक बातचीत भी हुआ करती थी। हम हमेशा कहा करते थे कि गौतम-बौद्ध ने कभी अलग धर्म-सम्प्रदाय स्थापित करना नहीं चाहा था। कतिपय व्यक्तियों की प्रबल चेष्टा से यह बौद्ध सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी और इनकी(३४८ह.ले.)मृत्यु के बाद महायान और हीनयान आदि आदि उप-सम्प्रदायों का उद्भव हुआ था। मैं यह कहता था कि गौतम

बुद्ध शुद्ध हिन्दू सन्न्यासी थे। हमारी इस बात पर बौद्ध साधुओं के अन्दर कोई-कोई नाराज हो गये और कोई-कोई सन्देह भी करने लगे थे।

कंगन से माटायन—हम लोगों ने कंगन से "गुंड", "हायान", "गंजन" "सोना मार्ग" "द्रास", "सिरबल", "बालताल" आदि स्थान अतिक्रम किए थे। वालताल गाँव से योजिला नामक गिरिपथ पार होने से ही तिव्बत राज्य शुरू हो जाता है। यह गिरिपथ ही मध्य एशिया से भारत आने-जाने का प्राचीन पथ है। इस रास्ते से परिचय पत्र ले हम तिव्बत के पहले गाँव "माटायन" में पहुँच गए थे। अब हम लोग हिमालय पार तिव्बत में थे।

माटायन से कार्गिल (ह०ले०पृ०३४९) माटायन से "पानदास" "दुनुदुल-याँग", "तासगाम", "सिमरी खुबु", पड़ावों आदि ग्राम होकर हम सब कार्गिल नामक शहर में पहुँच गए थे। यहाँ से 'ले" शहर करीब १५ योजन है। "ले" लद्दाख राज्य का प्रधान शहर है। कार्गिल में करीव सभी धर्माव-लम्बी निवास करते हैं।

कार्गिल से "ले" शहर—कार्गिल, लद्दाख और काश्मीर का मध्य-वर्ती स्थान है। कार्गिल से हमको 'मौलवा चम्बा" नामक गाँव में जाना था। पर्वत पर आरोहण करके बहुत ही ऊँचे रास्ते से करीव तीन योजन रास्ता चलने में १२ घण्टे समय लगता है। प्राणवायु वहाँ बहुत ही हल्का है इसलिए जाना कठिन है। प्रातः काल रवाना होके हम लोग रात को पहुँच गये थे। कार्गिल से करीब ढाई योजन दूरी पर लामाओं के मठ और बौद्ध स्तूप नजर आए। दो योजन आने पर (३५० ह. ले. "बौद्ध खर्बु" आदि में हम आए थे। हरएक गाँव में मृत व्यक्तियों का श्मशान-भस्म कोटा में रखा जाता है और मृतव्यक्तियों का नाम प्रस्तर-खण्ड में लिखकर रख दिया जाता है। लद्दाख के राजा लोग प्राचीन काल में इन प्रस्तरों के लिए प्राचीर निर्माण कर देते थे और पुण्य संचय करते थे। हमने ऐसे बहुत प्रस्तरों को देखा था। इस रूप में "नुरला" नाम गाँव अतिक्रम करने के बाद 'लिकिर गुम्फ" नजर आया था। लिकिर पर्वत बहुत ऊँचा है। बौद्धों के लिए यह बहुत ही पवित्र स्थान है (३५१ ह.ले.) सोने के सिंहासन में सोने की बुद्ध मूर्ति है। वज्रपाणि, लोकेश्वरी, वज्रतारा, अवलोकितेश्वर शाकाथुवा, मंजुश्री आदि बौद्ध देव-देवियों की मूर्तियाँ शोभित हैं।

इसके बाद हम "नीमु" को तरफ अग्रसर हुए। वहाँ से लद्दाख राज्य के प्राचीन सर्वश्रेष्ठ शहर "वासगो" का ध्वंसावशेष देख लिया था। इसके

वाद हम नीमु में पहुँच गए थे। नीमु से बौद्ध लोग "ले" शहर में आते हैं और आगे सुप्रसिद्ध "हिमिस मठ" को जाते हैं। नीमु(३५२ ह. ले) ग्राम से आकर नदी पार होकर हम "पितुक" नामक स्थान में आए थे। वहाँ पहाड़ पर "फियाँ" नामक गुम्फा है। इस उपत्यका में "ले" शहर, "स्तोक" गाँव और सिन्धु नद सदृश मूल्यवान् सम्पद हैं। इसके वाद ही हम "ले" शहर में पहुँच गए थे। लद्दाख के अधिवासी करीव सव के सब कृषिजीवी हैं। धनियों को छोड़कर सब गरीब परिवारों में एक ही परिवार के सब भाई मिलकर एक स्त्री से विवाह करते हैं।

(३५३ह.ले.)लद्दाख प्रान्त के करीब सव ही गुम्फा, मठ, मन्दिरों में हमने किसी-किसी सिद्ध योगी पुरुष से मिलना चाहा था। त्यागी सन्न्यासियों का भी अनुसन्धान किया था। दुर्भाग्यवश हमको कोई भी नहीं मिला। योगी नाम सुनकर जिन-जिन से वार्तालाप किया था, वे सव कोई प्रेत पूजा के तन्त्र मन्त्रों को ही योग विद्या के उपाय समझते हैं। साधु (३५४ह.ले.)सन्न्यासी बोलने से बुद्ध-मन्दिर के पुरोहित ही समझे जाते हैं। बाहर से कोई भी वहाँ जाय तो वह सन्देह का पात्र वन जाता है। मुसलमानों को मठ-मन्दिर, मूर्ति और विहार ध्वंस करने के कारण शत्रु ही समझते हैं। विदेशी ईसाइयों को खृष्टान राज्य विस्तार करने के अग्रदूत समझते हैं। हमको भी इन्होंने पहले-पहले गुप्त ईसाई समझ लिया था। वहाँ से हमने हिमिस गुम्फा के वारे में सुना था। तिव्वत की(३५५ ह.ले.) सर्वश्रेष्ठ गुम्फा वोलने से "हिमिस" गुम्फा ही समझा जाता है। हम लद्दाख प्रान्त के "ले" शहर को छोड़कर हिमिस गुम्फा जाने के लिए तैयार हो गए। मेरे साथ जितने बौद्ध साधु आये थे यह लोग एक वर्ष के लिए लद्दाख में ही रह गए।

"ले" शहर से हिमिस गुम्फा—यह गुम्फा "ले" शहर से तीन योजन पूर्व दिशा में हैं। बगल में ही(३५६ ह.ले.)"स्तोक" नामक गाँव में लद्दाख के शेष राजवंशधर बहुत हो विलासिता और कर्ज से बंधे हुए रहते हैं। पहाड़ी मार्ग छोड़ कर हम मैदान के रास्ते से हिमिस की तरफ रवाना हो गए। मेरे साथ और दो बौद्ध साधु थे। हम लोग वहाँ पहुँच गए थे। वहाँ के भिक्षु लोग बहुत ही खुश हुए थे।

लद्दाख देश में—लामा मुझको देख कर ही वहुत आदर के साथ हिमिस मठ दिखाने को भीतर ले गये थे। करीब पाँच-छः बीघे भूमि पर (ह. ले. पृ. ३५७) वहुन कुछ देखा था। डेढ़ सौ भिक्षु अपने-अपने अलग-

अलग कक्षों में रहा करते हैं। ऊँचे घर में मठाधीश (खॉपों) रहते हैं। तिव्बती भाषा को छोड़कर थोड़ी-थोड़ी हिन्दी और अंगरेजी भाषा भी जानते हैं। उनसे तिव्बत और बौद्ध धर्म के बारे में वार्तालाप शुरु हुआ, उनके मुख से आश्चर्यकर समाचार मिला।

ईसामसीह भारत में आये थे—मठाधीश से समाचार मिला कि—"(ह. ले. पृ ३५८) ईसा धर्मज्ञान-लाभ के लिए भारत में आये थे। इसके बारे में इसके पाठागार में हस्तलिखित पोथी में विस्तृत विवरण है। यहाँ की पोथी तिव्बती भाषा में अनूदित है। मूल पोथी पाली भाषा में मासा के समीप "मारवुर" नामक मठ से सुरक्षित है। उस पोथी में १४ परिच्छेद और २४४ श्लोक हैं मैं उन श्लोकों को अनुवाद करके ले आया था। उसका साराँश यहाँ बोला जायेगा।" मठाधीश लामा ने आगे कहा था कि भिन्न-भिन्न समयों में असंख्य बुद्धों ने जन्म लिया था। करीब पौने तीन हजार वर्ष पहले राजपुत्र शाक्य मुनि बुद्ध रूप में आविर्भूत हुए थे। इनके हर एक के बारे में ही कुछ न कुछ (ह. ले. पृ. ३५९) वौद्ध मठों में कुंचित और वेष्टनी कागजात में लिखा हुआ है। कम से कम ४८००० लिखित कागज मिलते हैं। मौलिक कागज भारत से नेपाल में और नेपाल से तिव्बत में लाया गया था। इस रूप से धर्म-प्रचारक ईसा की जीवनी भी तिव्बत में लायी गई थी। इस मठ में यह जीवनी मौजूद है। इसका सारांश मेरे पास है :—

वेदपन्थी ईसा की जीवनी—करीव दो हजार वर्ष पहले इस्राइल देश में गरीव माता-पिता के घर में ईसा का जन्म हुआ था। तेरह वर्ष की अवस्था में प्रचलित प्रथा के अनुसार जव ईसा का विवाह होने वाला था तब ईसा घर से वणिक् दलों के साथ सिन्धु देश में पहुँच गया था। चौदह वर्ष की अवस्था में (ह. ले. पृ. ३६०) ईसा भारत के निवासियों के साथ सिन्धु देश में ही रहने लगा था। जब ईसा ने पंजाब और राजपूताना में प्रवेश किया था और वहाँ के भगवद्-भक्तों के साथ रहने लगा। तब जैन लोग उनको अपने अन्दर रख नहीं सके। ईसा अव. उड़ीसा के जगन्नाथ क्षेत्र में पहुँच गया था। वहाँ के पण्डित लोगों ने वैदिक ज्ञान प्रदान किया था और आत्मोन्नति का यौगिक कौशल भी सिखा दिया था। ईसा छः वर्ष तक जगन्नाथ में, काशी में और भिन्न २ तीर्थ स्थानों में भ्रमण करते हुए वैदिक-ज्ञान-संचय करने लगा। साधारण जनता ईसा को वहुत ही

प्रेम-प्रीति की दृष्टि से देखने लगी, क्योंकि वे विशेष रूप से वैश्य और शूद्र-लोगों के साथ ही रहा करता था और इन्हीं को ही वेद-विद्या सिखाता था। इस कारण से ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग ईसा के प्रति रुष्ट हो गये थे।
(पंचम अध्याय में वर्णन)

ईसा की शिक्षा—(ह. ले. पृ. ३६१) अब ईसा धर्म-प्रचार करने लग गये। साधारण जनता ईसा के ज्ञान, बुद्धि और धर्म-प्रवीणता के कारण उनके प्रभाव में आयी थी, क्योंकि वैश्य और शूद्रों के अन्दर उनका शान्ति-पूर्ण व्यवहार अति चित्ताकर्षक था। ये वैश्य और शूद्रों को वेद-विद्या की शिक्षा देते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय लोगों ने इसका निषेध किया था। क्योंकि वेद-ज्ञान के लिये ये लोग अनधिकारी हैं। ईसा ने इस निषेधाज्ञा को स्वीकार नहीं किया और ब्राह्मण क्षत्रियों के इस अन्याय आदेश के विरोध में प्रचार करने लगे थे। वेद में सभी मानव-सन्तानों का समान अधिकार है। ईश्वर में किसी सन्तान के प्रति भेदभाव नहीं है। गरीबों को मदद पहुंचाओ, दुर्बलों की रक्षा करो, किसी की भी हानि मत करो, जो वस्तु तुम्हारी नहीं है उसके प्रति लालच मत करो।
(चतुर्थ अध्याय में)

(ह. ले. पृ. ३६२) जब ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग निरुपाय होकर ईसा को जान से मारने के लिये तैयार हो गये तब शूद्र लोगों ने ईसा की रक्षा के लिए सहायता की थी। ईसा जगन्नाथ क्षेत्र को छोड़कर दूसरे स्थानों में जाकर प्रचार करने लगे। (सप्तम अध्याय में)

चारों तरफ ईसा के नाम और यश का प्रचार होने लगा। ईसा फारस देश में पहुँचे। वहाँ भी पुरोहित लोग ईसा के मतों के विरोधी बन गये थे। दूसरी तरफ धीरे-धीरे जनसाधारण ईसा के अनुरागी बनने लगे। प्रधान पुरोहित के पास ईसा के विरुद्ध अभियोग चलाया। ईसा को विचारालय में हाजिर किया गया। ईसा के वक्तव्य सुनकर प्रधान विचार-पति या प्रधान पुरोहित ने ईसा को छोड़ दिया। (अष्टम अध्याय में)

ईसा वहाँ से ईस्राइल में पहुँच गये। वहाँ धर्म और राष्ट्र के नाम पर अमानुषिक अत्याचार चल रहा था। जनसाधारण ईसा को वेष्टित करके खड़े हो जाते थे। मन्दिर के नाम पर वहाँ प्रबल अत्याचार चालू था। ईसा ने उपदेश दिया "ईश्वर मनुष्य-निर्मित मन्दिरों को मन्दिर ही नहीं समझते हैं। मानव-हृदय ही हम सबके सच्चे मन्दिर हैं। सद् भावना सुचिन्ता और सत् आदर्श के द्वारा उन मन्दिरों को अधिकत्तर उज्ज्वल करो।

भगवान् में विश्वास रखो। धैर्य रखो। ईश्वर तुम्हारे लिये कल्याण करेंगे। हृदय को पवित्र रखो। हृदय को जंजाल, कूड़े, झंझट, बखेड़ा और फ़साद से मुक्त रखो। ये तुम्हारी ही वस्तुयें हैं। तुम इनको शुद्ध नहीं रखोगे तो कौन रखेगा? इसलिए ही मन, प्राण, हृदय को सद्गुण और पवित्र ईश्वर-प्रेम और सद्भावनाओं से पूर्ण करके रखो। (ह. ले. पृ. ३६३) जिससे ईश्वर में अविश्वास और कुभावनाओं के वहाँ रहने के लिये जगह न रहे। (नवम अध्याय में)

ईसा के उद्देश्य :—अब तो ईसा इस्राइल के भिन्न-२ शहरों में धर्म प्रचार करते हुए घूमने लगे। रोम-शासन के पीडन से बचने के लिए सर्व-साधारण के अन्दर जागृति पैदा हुई थी। नगरों के प्रधान पुरुष सब कोई दूर हो गए थे। यरुशलम में जाकर प्रधान शासक पाईलेट के पास ईसा के बारे में उन्होंने सब कुछ निवेदन किया। पाईलेट ने ईसा को गिरफ्तार करने और मंदिर में यहूदी पुरोहितों से विचार करवाने का आदेश दिया। ईसा धर्म-प्रचार करते हुए यरुशलम में ही पहुँच गये। ईसा की कीर्ति और महिमा सुनकर सब वहाँ मुग्ध थे। मन्दिरों में ईसा के उपदेश होने लगे। ईसा के उपदेश में सुना गया था "तुम लोग जरूर अन्धकार से मुक्त हो जाओगे। तुम लोगों के सम्मिलित हो जाने से तुम्हारा दुश्मन डर के मारे कांपने लगेगा।"

पुरोहितों ने उपदेश सुना था और उन्होंने ईसा से पूछा भी था—कि "क्या आप शासन-कर्त्ताओं के विरुद्ध प्रचार करते हैं? शासन-कर्त्ता के पास ऐसा ही संवाद पहुँचा है।"

ईसा ने कहा—"आप लोगों ने क्या नहीं देखा कि विश्वप्रभु के विरोध में शक्तिमान् और धनाढ्य लोगों ने इस्राइल के अधिवासियों के अन्दर पापों की क्रान्ति फैलादी हैं? मैं इस्राइल का अधिवासी हूं। मेरे (ह. ले. पृ. ३६४) देशवासी पापों में डूबे हुए हैं। मैं मूसा व गमूर का विरोधी नहीं हूं। मूसा के प्रकृत धर्म का देशवासियों के अन्दर प्रचार करना चाहता हूं। मैं हृदय-मन्दिर से पापों के दाग को धोना चाहता हूं।"

(दशम अध्याय में)

शासक पाईलेट के पास पुरोहितों का निर्णय चला गया कि ईसा धर्म-प्रचार करते हैं, और कुछ नहीं। इस संवाद पर पाईलेट ने विश्वास नहीं किया। उन्होंने गुप्तचर नियुक्त किये। ईसा का धर्म-प्रचार भी चालू ही रहा।

(एकादश अध्याय में)

पाईलेट के एक गुप्तचर ने जाके ईसा से पूछा--क्या हम लोग सीजर के शासन को मानते रहेंगे या उससे भविष्य में मुक्ति की आशा करेंगे ?" ईसा ने जबाब दिया—"मैंने आप लोगों से कभी नहीं कहा कि आप लोग सीजर के शासन से मुक्त हो जायेंगे। पापों में डूबी हुई आत्मा ही पापों से मुक्त हो जायेंगी। कर्त्ता के विना परिवार नहीं चलता और शासनकर्त्ता के विना देश नहीं चलता।"

गुप्तचर ने ईसा से पूछा—क्या सीजर के अन्दर ऐसी शक्ति और भगवान् से प्रदत्त अधिकार है ? क्या सीजर सर्वोत्तम पुरुष है ?

ईसा ने जवाब दिया— मानवों के अन्दर कोई एक व्यक्ति सर्वोत्तम नहीं हो सकता। अधम व्यक्तियों की संख्या ही अधिक है। अधमों की चिकित्सा के लिए धर्म-प्रचारकों की जरूरत है। उसी के अधिकार में दया और सुविचार करने का सुयोग सबसे अधिक है। यदि सीजर इस सुयोग का सदुपयोग करें तो उनका नाम धन्य हो जायेगा। यदि इस सुयोग का दुरुपयोग किया जाये तो साधारण की दृष्टि में पतित हो जायेंगे। (ह. ले. पृ. ३६५) (द्वादश अध्याय में)

ईसा की गिरफ्तारी—साधु ईसा ने इस रूप से इस्राइल के अधिवासियों के अन्दर सर्वत्र तीन वर्ष तक धर्म-प्रचार किया था। शासक के गुप्तचर लोग ईसा के पीछे-पीछे ही घूमने लगे। शासक के मन में शान्ति नहीं रही क्योंकि ईसा की लोकप्रियता दिन पर दिन बढ़ने लगी। शासक भयभीत हो गये कि अतिशीघ्र ईसा प्रजा (ह० ले० पृ० ३६६)-विद्रोह के द्वारा रोम का शासन उलट देगा। उन्होंने अभियोग चलाने के लिए परामर्श दिया और ईसा की गिरफ्तारी के लिए सैन्य भेज दिया। प्राण-दण्ड देने के लायक स्वीकारोक्ति मुख से निकालने के लिए कठोर अत्याचार करने के लिये भी निर्देश दिया गया था। ईसा पर अमानुषिक अत्याचार किये जाने लगे। प्रधान पुरोहित और ज्ञानवान् पुरुषों ने दयार्द्र होकर शासक से ईसा की बन्धन-मुक्ति की प्रार्थना की थी, ताकि जातीय उत्सव के रोज ईसा सबके साथ सम्मिलित हो सकें। शासक ने प्रार्थना मंजूर नहीं की। प्रधान पुरोहित और सबने प्रार्थना की थी कि जातीय उत्सव से पहले ही मृत्यु दंड हो या मुक्ति हो, विचार समाप्त हो जाये।"

(त्रयोदश अध्याय में)

ईसा का विचार—शासक ने दूसरे रोज ही विचार सभा का आह्वान किया था। सभा में प्रधान पुरुष गण, पुरोहित गण, विचारक गण

और विशेषज्ञ गण सम्मिलित हुए थे। (ह. ले. पृ. ३६७) दस्युओं के बीच रख कर विचारक के सम्मुख बैठाया गया था ताकि केवल ईसा को ही प्राण दंड नहीं दिया जायेगा ऐसा ही लोग समझ पावें।

प्रश्नोत्तर—शासक पाइलेट ने ईसा से पूछा—"क्या यह बात सच्ची है कि तुम खुद ईस्राइल के राजा होने के लिये वर्तमान शासन के विरुद्ध जनसाधारण को उत्तेजित कर रहे हो।"

ईसा ने कहा—अपनी इच्छा से कोई भी राजा नहीं बन सका है। आपसे लोगों ने यह मिथ्या ही कहा है। मैंने केवल स्वर्गीय राजा के बारे में ही प्रचार किया है और केवल उन्हीं की पूजा के लिये ही कहा है।—क्योंकि इस्राइल के सन्तानपूर्व पुरुषों के धर्म को भूल गये हैं। यदि ये लोग सत्य ईश्वर की तरफ वापस नहीं आते तो ये ध्वंस हो जायेंगे और इनके मन्दिर भी विनष्ट हो जायेंगे। मैंने इनसे कहा कि तुम लोग अपनी स्थिति के अनुसार चलो, सर्वसाधारण की शान्ति को तोड़ो मत। मैंने उनको अपने-अपने हृदय और चित्तों के चांचल्य के बारे में स्मरण दिलाया था। इस कारण से ही परमप्रभु ने तुम्हारी (३६८ ह.ले.) जातीयता का विनाश करवा दिया और तुम्हारे देश के शासन को छीन लिया। यदि तुम लोग फिर परम प्रभु में आत्म-समर्पण करोगे तब तो स्वर्ग राज्य तुम्हारा ही हो जायेगा।"

ठीक इसी समय पूर्व प्ररोचना के अनुसार एक साक्षी ने कहा—"तुम तो जनता से इस बात को भी कहा करते थे कि तुम विधर्मियों के बन्धन से ईस्राईल के अधिवासियों को मुक्त कर दोगे।"

ईसा ने कहा—"हमने ठीक ही कहा था कि विश्व के परमप्रभु पृथिवी के राजाओं से ऊपर हैं। अदूर भविष्य में ही उस प्रभु की शरण में आकर ईस्राइल पाप के बन्धन से मुक्त हो जायेगा। एक अग्रदूत शीघ्र ही आकर सबकी ही मुक्ति घोषित कर देगा।"

अब शासक ने विचारकों से कहा—'आप लोगों ने तो सुन ही लिया कि ईस्राइल के अधिवासी (३६९ ह० ले०) ईसा ने स्वयं ही अपने ऊपर लगाये हुए अभियोग को स्वीकार कर लिया है। अब आप लोग कानून के अनुसार विचार करके इसको मृत्यु दण्ड का आदेश दीजिये।"

पुरोहित और विज्ञ लोगों ने कहा—"आपने भी सुना है कि इन्होंने परम प्रभु के बारे में ही कहा है और इन्होंने आईन के विरोध में कुछ भी प्रचार नहीं किया।"

अब शासक ने दूसरे एक साक्षी को बुलवाया जिसको उसके प्रभु पाईलेट ने खुदघूस देकर वशीभूत कर रखा था,जिससे यह ईसापर विश्वास-घात कर सके। उसने ईसा से कहा—"क्या यह बात सत्य है कि आपने अपने को ईस्राइल का राजा घोषित किया था और कहा था कि परमप्रभु ने ही आपको जनसाधारण की तैयारी के लिये भेजा है ?"

ईसा ने उस आदमी को आशीर्वाद दिया और कहा—'तुम इस वाक्य को अपने अन्तर से नहीं कह रहे हो। इसलिये तुम (ह. ले. ३७०) भगवान् की दया से वंचित नहीं रहोगे।"

शासक की तरफ दृष्टि देकर उन्होंने कहा—"आप अपनी मर्यादा को क्यों नष्ट करते हैं ? क्या इस उपाय को छोड़कर आपके हाथ में निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देने की शक्ति है ?

ईसा की इस उक्ति को सुनकर क्रुद्ध पाइलेट ने ईसा के लिये मृत्यु दण्ड दे दिया और दो दस्युओं को निर्दोष घोषित करके मुक्त कर दिया।

विचारकों ने आपस में बातचीत करके पाईलेट से कह दिया "आप के इस पाप के हम भागीदार बनना नहीं चाहते हैं। निर्दोष को दण्ड-दान और दोषी को मुक्तिदान यह हमारे कानून से बाहर है। आप जो चाहें करें।

यह कहकर विचारक विचारालय से बाहर चले गये।

(त्रयोदश अध्याय में)

शासक के आदेशानुसार फौजों ने ईसा को और दो डाकुओं को पकड़ लिया, इन्हें वध्य भूमि में ले जाया गया और काष्ठ-स्तम्भों पर लटका के लोहे की कीलों से घायल करके लटका दिया गया। दिन भर ईसा और दोनोंडाकुओं के शरीर लटके रहे थे। (३७१ह.ले.)शरीरों से रक्त-पात होने लगा था। जनता और दंडित व्यक्तियों के सम्बन्धी लोग वध स्तम्भों के चारों ओर खड़े हो देख रहे थे और प्रार्थना करने लगे थे। शाम को ईसा अचेतन हो गये और देह को छोड़ दिया।

पाईलेट अपने आप को याद करके भयभीत हो गये थे। ईसा के मृत देह को उनके सम्बन्धियों को देने के लिए आदेश दिया। सम्बन्धी लोगों ने उस मृत देह को बध-स्तम्भ के पास कबर में रख दिया था। बहुत आदमी उस कबर को देखने के लिये आने लगे थे। सब कोई चारों तरफ से रोने लगे थे। तीन रोज के बाद शासक ने उस मृत देह को वहां से उठवा के अन्यत्र कबर में रखने का आदेश दिया था। उन्होंने जन-साधारण के विद्रोह की आशंका की थी। जब दूसरे रोज आदमी लोग

कबर के पास आये थे तब देखा कि कबर खुली ही है और खाली है। ईसा का देह वहाँ से कहीं (३७२ ह०लें.)चला गया है। चारों तरफ़ उड़ती खबर चली कि जगत् के परम-विचारक ने वहाँ से उस मृत देह को हटवाने के लिये स्वर्गीय दूतों को भेजा था क्योंकि उस देह में ही वे आंशिक रूप में निवास करते थे।

जब पाईलेट ने इस जनश्रुति को सुना था तब रुष्ट होके आदेश प्रचारित कर दिया कि ईसा का नाम लेने से या उसके लिये प्रार्थना करने से मृत्यु-दंड दिया जायेगा, तो भी जनसाधारण ने ईसा की मृत्यु पर रोना और प्रार्थना करना बन्द नहीं किया। जिससे बहुतों को कारा-दंड या मृत्यु दंड मिला। चारों तरफ इसी रूप से ईसा की महिमा का प्रचार होने लगा था। (चतुर्दश अध्यय)

हिमिस-मठ के बड़े लामा ने यहां तक जीवन के बारे में उस ग्रन्थ से पढ़-पढ़ के टूटी फूटी हिन्दी में जैसा सुनाया था* उसका सारांश मैंने आपकी सेवा में रखा है। (३७३ह.ले)तिव्बत के लामाओं ने कहा था कि ईसा किसी प्रकार कबर से मुक्त होकर छिपे हुए कश्मीर में आये थे। वे तथा-गत बुद्ध या गौतम बुद्ध की तरह "ईसा-बुद्ध" नाम से प्रचरित थे। जीव बहुत जीवनों में साधना करते-करते "बोधि-सत्त्व" वन जाते हैं और वे साधना करते-करते आगे जाकर बुद्ध बन जाते हैं। ईसा इसी रूप से ही 'बुद्ध" बन गये थे। ईसा बहुत शिष्यों के साथ काश्मीर के मठ में रहते थे। उनके दर्शन के लिए देश-देशान्तर से भक्त लोग आया करते थे और उनके शिष्य बनकर जीवनों को धन्य मानते थे। उस समय तिव्बत के रहने वाले, जिन्होंने ईसा को अपनी आँखों से देखा था और जिन वणिक् लोगों ने दंड प्राप्त ईसा को वध-स्तम्भ में देखा था उन्हीं के(३७४ ह०ले०) मुख से सुन-सुन कर ईसा की मृत्यु से तीन चार वर्षों बाद सर्वप्रथम ईसा की जीवनी पाली भाषा में लिखी गयी थी। यहाँ की पुस्तक मूल पुस्तक

---

* **सम्पादक का मन्तव्य**—हिमिस मठ में ईसा के जीवन सम्बन्धी इस ग्रन्थ को भिन्न-भिन्न समयों में और भी दो व्यक्तियों ने देखा था। महर्षि दयानन्द के पश्चात् करीब दस वर्ष बाद रूस-देशीय परिव्राजक निकोलास नटवीच ने और करीब तिरेसठ वर्ष बाद रामकृष्ण वेदान्त मठ के अधि-ष्ठाता स्वामी अभेदानन्द ने भी देखा था। महर्षि दयानन्द ने ही इसको सबसे पहले देखा था।

की नकल है। न मालूम वह पुस्तक कहाँ हैं। कोई कहते हैं कि ईसा योगी सन्न्यासी के रूप में भारत के आबू पर्वत में भी आये थे।

हिम्मिस गुफा से श्रीनगर—वहाँ से "ले", लिकिर गुफा, कार्गिल और शालीमार बाग होके एक बौद्ध साधु के साथ हम श्रीनगर चले आये थे।

श्रीनगर से ऋषिकेश में—श्रीनगर में शैवतान्त्रिकों से परिचय हुआ। श्रीमत् स्वामी गंगागिरि से मेरी घनिष्ट मित्रता हो गई थी। हम दोनों ने एक साथ लगभग दो महीने❀ भिन्न-भिन्न तीर्थों में भ्रमण किया था।

धनुष तीर्थ होके हम द्वोनों आधा-योजन दूरी पर अगस्त्याश्रम गये थे। इससे पहले रुद्र प्रयाग भी होके आये थे। अलकनन्दा (३७५ ह०लें०) और मन्दाकिनी का संगम-स्थल है। ऋषीकेश से रुद्र प्रयाग ११ योजन है और केदार नाथ ८ योजन है। रुद्र-प्रयाग से अगस्त्याश्रम आधा-योजन और गुप्त-काशी भी आधा योजन दूरी पर है। मन्दाकिनी के उस पार सामने ही ऊषी मठ है। रामपुर भी नजदीक है। रुद्र-प्रयाग से त्रियुगी-नारायण आधा योजन से ऊपर है। यहाँ चार कुण्ड हैं—ब्रह्म-कुण्ड, रुद्र-कुण्ड विष्णु कुण्ड और सरस्वती कुण्ड। गौरी-कुण्ड भी रुद्रप्रयाग से आधा-योजन है। इन सब तीर्थ स्थानों में भ्रमण करके हम दोनों (गंगागिरि और मैं) ऋषीकेष में पहुँच गये थे।

ऋषिकेश से मानसरोवर—अनुकूल ऋतु में ऋषिकेश से रवाना होके हम देहरादून आये। वहां से यमुनोत्तरी, उत्तरकाशी और गंगोत्तरी आये थे। वहां से डेढ़ योजन दूरी पर गोमुखी है। शीतकाल में यह स्थान बरफ से आच्छन्न हो जाता है। वहाँ केदार गंगा में आकर गोमुखी (गंगोत्तरी में) से बहती हुई गंगा मिल गयी है। गौरी कुंड इसी का नाम है। गोमुखी से उतर कर तीन रोज★की यात्रा में गंगोत्तरी मिलती है। (गंगोत्तरी से त्रियुगी-नारायण आधा योजन और केदारनाथ तीन योजन की दूरी पर हैं। वहां से आगे अगस्त्य मुनि और गुप्तकाशी हैं। उससे आगे केदारनाथ और जोशी मठ है। यहाँ से बीती घाटी होकर तीर्थ यात्री लोग मानसरोवर और कैलास जाते हैं। इन सब स्थानों पर होकर हम बदरी-

---

❀ इन दो मासों का और अगला अलखनन्दानुसन्धान मात्र ही थ्यासोफिस्ट में दिया है। विदेशियों को अधिक दे ही नहीं सकते थे।—सं०

★ साधारणतया यात्रियों को तीन लगते हैं। ऐसा भाव प्रतीत होता है। सं०

नाथ आये और वहां से ब्रह्म कुंड, वसुधारा, सत्पथ, भागीरथी अलख-नन्दा का संगम स्वर्गारोहण शिवर, ❀अलकापुरी शिखर और मानसोदभेद तीर्थ आ गये थे। वहां से हम दोनों मानसरोवर जाने वाले तीर्थ यात्री लोगों से मिल गये थे। इस यात्रा में तीन सप्ताह से भी कुछ अधिक समय तिब्बत में ही भ्रमण करना पड़ा था। गुप्तचर लोग भी यात्री लोगों में सम्मिलित हो जाते थे। यह यात्रा बहुत ही कठिन और दुष्कर थी। सभी जगह मठ-मन्दिर हैं लेकिन योग-शिक्षक नहीं मिले थे।

मानसरोवर से कैलाश—तिब्बत के अन्दर करीब चार योजन पैदल आने पर मानसरोवर★और राक्षस ताल नाम के दो सरोवर मिले। पार्वत्य संकीर्ण भूमि से संयुक्त होकर भी दोनों सरोवर 'मानसरोवर' नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इसके किनारे योग-साधकों के स्थान हैं। वहाँ से करीब तीन योजन दूरी पर कैलास है। कैलास की आकृति बृहत् शिवलिंग जैसी है। कैलास की परिक्रमा चार योजन की है। कैलास में ऐसे स्थान हैं। साधक जिनमें योगस्थ बन कर बैठे हैं। उनमें कोई-कोई जीर्ण कंकाल के रूप में हैं और कई एक तो मृत देह के रूप में देखे गये थे। वहाँ साधना में निमग्न योगी लोग किसी को योग-विद्या की शिक्षा देने के लिये तैयार नहीं हैं।

कैलास से ल्हासा—कैलास से मानसरोवर के किनारे आकर हम ल्हासा जाने के लिये तैयार हो गये थे। वहाँ से व्यापारी कारबार की सामग्री पशु-वाहनों से ढोकर करीब अस्सी योजन दूरी पर ल्हासा में जाते

❀ जिस पहाड़ पर पुरानी अलकापुरी थी उस पर भी मैं इस विचार से गया था कि एक वार ही अपना शरीर बर्फ में गलाकर संसार से निवृत्त हो जाऊँ, परन्तु वहाँ पर पहुँचकर विचार में आया कि इस जगह पर मर जाना तो कोई पुरुषार्थ नहीं है।" इत्यादि - उपदेश मंजरी —११६ पृ० दसवाँ व्याख्यान।

★ इस अज्ञात जीवनी के छपने से दो वर्ष पूर्व स्वा० प्रेरणानन्दजी ने बताया कि मसूरी में एक बंगाली ने श्री प्रभु आश्रित जी को बताया था कि ऋषि मानसरोवर गये थे और उनमें आकाशगमन की सिद्धि भी थी शिवजी कैलास के रहने वाले थे। कुवेर अलकापुरी के रहने वाले थे।

काश्मीर से नेपाल तक हमारा सब देश घूमा हुआ है। देखो—उपदेश-मंजरी दशम व्याख्यान।

हैं। हम दोनों भी उन व्यापारियो में सम्मिलित होकर ल्हासा की तरफ जाने लगे थे। हम भगवान् के भजन गाते थे। विश्राम स्थलों में सत्संग लगाते जाते थे। बौद्ध भिक्षु लोगों से मेरी वहस होजाती थी। वे लोग केवल बुद्ध को ही सब कुछ मानते हैं और ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। कारबारी गृहस्थ बौद्ध लोग हमसे कभी-कभी सहमत हो जाते थे। इससे बौद्ध भिक्षु लोग मेरे प्रति और मेरे साथी स्वामी गंगागिरि के प्रति रुष्ट हो गये थे। क्रमशः हमारे प्रति उनकी शत्रुता बढ़ती ही गई।

प्राण-दंड से दंडित और निर्वासन—किसी बड़े शहर में वहां के धर्म गुरु लामा के पास हम दोनो के विरुद्ध धर्म-निन्दा और बुद्ध के प्रति तिरस्कार करने की नालिश कर दी गयी थी। हम दोनो गिरफ्तार होके अन्धेरे कारागार में कैद रहे। तीसरे रोज लामा के विचार से हम दोनों को प्राण-दंड सुनाया गया। विचार-समय हम से पूछा गया था—"क्या "बुद्ध" आदमी है या केवल "बुद्ध" ही हैं?" हमने जवाब दिया था—"बुद्ध महापुरुष हैं। बुद्ध हैं और आदमी हैं।" गंगागिरि का जवाब भी ऐसा ही था। दोनों के प्रति प्राण-दंड का आदेश दिया गया था। दोनों के शरीरों में सैंकड़ों जौंक लगाये गये थे। दोनों ही अलग-अलग वध-स्थानों में लाये गये थे और दोनों के उपाय भी अलग-अलग ही थे। गंगागिरि को "याक" नाम के किसी वन्य गाय के चमड़े से आच्छादित करके सिलायी की गयी थी और मृत्यु तक वह दिन भर धूप में और रात्रि भर ठण्ड में भूखे रखे गये थे और मैं मृत्युदण्ड प्राप्त शवदेहों से परिपूर्ण एक गम्भीर कुएँ में भूखा मारने के लिये फेंक दिया गया था। इस भयंकर दृश्य को देखती हुईं, वहाँ की देवियाँ रोने लगीं। दूसरे दिन देवियों ने दयार्द्र हो कर गंगागिरि को छुटकारा दे दिया था और मुझको कुएँ से निकालने के के लिये मोटी रस्सी ऊपर से गिरा दी थी। मैं उस रस्सी को पकड़ कर तीसरे रोज ऊपर आ गया था। दोनों ही देवियों की दया से उद्धार प्राप्त कर चौथे रोज दूसरे-दूसरे व्यवसायियों के साथ ल्हासा की तरफ रवाना हो गये थे। पुरुषों ने हमको कानून के बल पर मारना चाहा था और देवियों ने करुणा के बल पर जीवन-दान दिया था। इस बात को हमारे के लिए भूलना कठिन है। इस रूप से दो महीनों के अन्दर हम दोनों ल्हासा में पहुँच गये थे।

ल्हासा की बातें—ल्हासानगरी अति सुन्दर है। लेकिन नगरी में बाहर वालों के आने-जाने के लिये कठोर रूप से निषेध था। केवल साधुओं

के लिये कानून में कुछ ढीलापन था। ल्हासा शहर करीब एक यौजन लम्बा है चारों तरफ पर्वतों से घिरा है और किचु नदी के दक्षिण किनारे पर अवस्थित है। शहर के ठीक मध्य स्थान की उच्चभूमि पर "झियो" नाम का चतुष्कोण मन्दिर है। इसकी छत सोने से आच्छादित है। मन्दिर में वहुत तरह की मूर्तियाँ हैं। उनमें दो मूर्ति ही प्रधान हैं—एक शाक्य मुनि की और दूसरी "पल देन लामो" की, जो कि भारत की "काली माता" है। मूर्तियों के शरीर मूल्यवान् सोनें और मणि-मुक्ताओं से अलंकृत हैं। यहाँ के आदमी कहते हैं कि भारत के शाक्यमुनि यहां आये थे। पहाड़ के पाद देश में तिब्बत के राजगृह हैं। यहाँ के राजा का नाम "गिय लिवो" है। अलग दूसरे उच्च पर्वत-शिखर पर "पोटाला या चाई" नामक प्रासाद में तिब्बतियों के सर्वप्रधान धर्म गुरु लामा रहते हैं। इनका नाम "कियामकुर्रि वोचि" है। ये ही तिब्बत के सर्वेसर्वा हैं। ल्हासा शहर के उत्तर में "गियां बुमोचि" नामक महावीर का स्मृति-स्तम्भ है। यहां इन्होंने एक लाख चीनी शत्रुओं का वध करके देश की स्वतन्त्रता की रक्षा की थी। तिब्बत के शासनविधानानुसार बड़े लामा ही राजा है। "गियालवो" हैं इनके प्रधान मन्त्री। ये भी लामा हैं। तिब्बत में सब भाई मिलकर एक स्त्री से विवाह कर लेते हैं।

तिब्बत की भाषा, धर्म, सामाजिक आचार

तिब्बत में तीन तरह की भाषाओं का प्रचलन है—बोध-काई, खाम काई, और दोयाग-काई। ल्हासा में राजधानी की बोध-काई में ही धर्म ग्रन्थादि लिखित हैं। यहाँ बौद्ध-धर्म प्रचलित है। बौद्ध-धर्म भी यहाँ दो तरह के हैं एक "नांत्रा" और दूसरा "चिब्रा"। लामा को छोड़कर सब ही के शव "घो तो" नाम के पर्वत पर ले जाये जाते हैं और शवों को टुकड़े २ करके काटकर सम्बन्धा लोग मांस भक्. चील, गीध कौये आदि पक्षियों को देने के लिये फेंक देते हैं। ल्हासा शहर के सब मठ, मन्दिर और धर्म गुरु लामाओं के आवास स्थानो को मैंने देख लिया था। योगी साधवों की भी तलास की थी। "ओं मणि पद्मे हुँ" मन्त्र के जप करने वाले साधु ही तिब्बत में योगी साधु नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रकृत योगी साधकों का दर्शन मुझे नहीं मिला। मैं ल्हासा छोड़कर दार्जिलिंग जाने के लिये तैयार हो गया था।

ल्हासा से दार्जिलिंग

ल्हासा से बहुत तिब्बती वणिक्, कस्तूरी, चमरी-पुच्छ और मूल्यवान् प्रस्तर बेचने के लिये दलबद्ध रूप से दार्जिलिंग आते हैं और इनके साथ लामा लोग और भिक्षु लोग भी तीर्थ-भ्रमण के लिये दार्जिलिंग पहुँच जाते हैं। स्वामी रुद्रानन्द मेरे साथ आये थे। ल्हासा से "किचु" नदी पार होके हम लोग दक्षिण किनारे "नेता" नामक स्थान में आये थे। वहाँ से हम लोग स्याम्यो या ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तर तट में पहुँच गये। 'च्याकसाम' नामक गांव के बगल दुर्गम प्रस्तराकीर्ण पथ से आकर नदी पार होने के लिये पुल देखा। पुल और ज्यादा भयंकर था। दोनों तरफ दो मजबूत रस्सी के साथ तख्तेबन्धे हुए थे। सब ही तख्ते दैर्घ्य में और चौड़ाई में छोटे और संकीर्ण थे। तख्ते लम्बी रस्सी के साथ झूलते हुए बन्धे हुए थे। इस लिए एक से ज्यादा आदमी एक साथ उस पर से नदी को पार नहीं कर सकता। लोहे की की जंजीर दोनों तरफ स्तूपीकृत शिलाराशि के अन्दर प्रोथित काष्ठ दण्ड के साथ बन्धी हुई थी। पुल लम्बाई में एक सौ कदम था। उस के पार जाने के बाद हमने विश्राम करके 'कायरा" नामकी पहाड़ी घाटी को अतिक्रम किया। घाटी से उस पार जाकर हमने 'काम्पापरत्सि" नामक स्थान में आकर विश्राम किया। ल्हासा से यहां आने में चार रोज लग गये थे। ग्रामों में फल-मूल जो कुछ मिलता खा लेते थे। इस रूप से हम दार्जिलिंग रवाना हो गये।

काम् पापरत्सि से न्यांकरत्सि

काम्पापरत्सि से दूसरे रोज हम ने न्यांकरत्सि में पहुँचकर विश्राम किया। बगल में 'पाल्ति' नाम का सरोवर है। इसकी आकृति घोड़े के सुम जैसी है। एक छोटे पर्वत से यह सरोवर घिरा हुआ है। रास्ते में इतना बड़ा सरोवर नहीं देखा। पर्वत के ऊपर "दोरजिफ्यामो" नाम का मन्द्रिर है और वहां आदमियों का निवास स्थान भी है।

न्याकरत्सि से उपसि गांव

तीन रोज में न्याकरत्सि गांव से उपसि गांव में आकर मैंने चीनो लोगों का उपनिवेश देखा। वहां प्रवेश करने की अनुमति मुझको नहीं मिली थी। स्वामी रुद्रानन्द भी वहां नहीं जा सके। वहां हम लोग समभूमि के रास्ते से बहुत आराम के साथ आ गये।

उपसि से गियात्सि

उपसि गांव से नियं नदी के किनारे दो समान्तराल पहाड़ों के ऊपर

'गियात्सि' नामक अति मनोरम छोटे नगर को हमने देखा। इसके पूर्वी तरफ के पहाड़ पर एक बड़ा किला है और पश्चिमी तरफ के पहाड़ पर एक गुफा है जिसमें पांच सौ लामा अर्थात् धर्म गुरु निवास करते हैं। यहां चुरतान अर्थात् धर्म मन्दिर है जिसमें धर्म ग्रन्थ, मूर्तियां, और विभिन्न देव देवियों के पूजनार्थ उपकरण भी हैं।

गियात्सि से फारि

गियात्सि से तीन रोज में फारि नामक स्थान में हम रांगि को 'डयाग्कारपो, 'कालासर, 'काला शहर' 'छुटिम्रा' आदि स्थानों को अतिक्रम करके पहुँच गये थे। रास्ते में गर्म पानी का झरना देखा, काला शहर के बगल में 'कालासर' नामक सुन्दर सरोवर देखा। 'राम' नामक एक सरोवर भी देखा जिसका जल कई एक महीनों तक पक्की बरफ के रूप में रहता है। 'फारि' में किला है वहां से तिब्बतियों का पवित्र गिरि-शृंग "जेमोलारि" दिखाई देता है।

फारि से चुम्बी

फारि से दो रोज में हम चुम्बी नामक स्थान में आये, चुम्बी में सिक्किम के राजा गरमी के समय रहते हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर दो नदियां मिल गयी है। उस मिलित जलधारा का नाम ही "आमो" दरिया है। रास्ते में दो छोटे गाँवों में (रुपाखा नाम के गांव की गुफा में और दोंकारा गांव में) दो योगसाधक महापुरुषों का दर्शन किया।

इन दोनों साधकों के नाम हमको मालूम नहीं हुए। बौद्ध साधु नाम से ही इन दोनों का परिचय था। पातंजल योगदर्शन के अनुसार विभूतिपाद में जितनी विभूतियाँ हैं सब इन दोनों के आयत्त्व में आ गयी थी। हमारी प्रार्थना पर इन्होंने हमको क्रियात्मक रूप में कुछ प्रदर्शन किया था। कैवल्य लाभ के बारे में इन के उपदेश बहुत ही उपादेय थे। हमनें समझा था-तिब्बत भूमि में दुर्गम स्थानों में भ्रमण करना बेकार ही रहा है लेकिन इन दो साधकों की संगत में आकर सारा परिश्रम सार्थक हो गया।

चुम्बी से इउक

चुम्बी से इउक तक हम पार्वत्य दृश्य देखते हुए और स्थान-स्थान पर विश्राम करते हुए पहुँच गये। यहां तक ही तिब्वत की सीमा है। इससे आगे भारत की सीमा आरम्भ होती है। तिब्बतीय गुप्तचरों ने बहुत कुछ पूछ ताछ करके हम दोनों को छोड़ दिया था। स्वामी रुद्रानन्द

के पास दतौन-काष्ठ काटने के लिये एक छोटी सी कुल्हाड़ी थी, उसको भारत में गुप्तचरों ने लाने नहीं दिया। अब हम भारत में पहुँच गये थे!

इउक से दार्जिलिंग

इउक से रवाना होके बौद्ध साधुओं के साथ स्थान-स्थान पर विश्राम करते हुए हम करीब पन्द्रह रोज के अन्दर दार्जिलिंग पहुँच गये थे। रास्ते में 'नाथा' 'चुमाकेन, और 'पीडाँग' आदि गांवों में भ्रमण करके योग-साधकों का अनुसन्धान किया था। "जिलेप" नामक उच्च पर्वतशृंग को पार करके 'नाथा' गाँग में आये थे। 'चुमकान' गाँव में बौद्ध भिक्षु लोगों ने तिब्बत का भ्रमण वृत्तांत हम से उत्साह और कौतूहल के साथ सुना। वहाँ से "पीड़ां" होके 'कालिम्पांग पहुँचे। यहां हाट और बाजार दोनों हैं। रविवार को यहाँ पैंठ लगती है। इस पैठ में तिब्बत से व्यवसायी लोग मूल्यवान् पशमीना, कपड़े, कस्तूरी,कीमती पत्थर और हाथी के दांत बिक्री करके नमक खरीद कर ले जाते हैं। कालिम्पोंग में दो ईसाई पादरियों से वार्तालाप हुआ। ईसाई धर्म और हिन्दूधर्म के बारे में उनका विश्वास है कि करीब दो सौ वर्षों के अन्दर २ भारत के सब के सब शिक्षित पुरुष-नारियां ईसाई धर्म की शरण में आ जायेंगे। कालिम्पौंग और दार्जिलिंग दोनों स्थानों में ही इनका प्रबल प्रभाव देखा गया। दार्जिलिंग की भुटिआ' बस्ती में हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म के बारे में हमने शंका-समाधान किया, दार्जिलिंग को हमने तिब्बत और भारत के बीच में व्यवसाय केन्द्र और पहाड़ी जातियों के अन्दर ईसाई धर्म-प्रचार के केन्द्र के रूप में देखा था, वहाँ के शिक्षित बंगाली लोगों में, पहाड़ी जातियों में, ईसाई धर्म का अबाध और प्रबल प्रचार हमारे देश और जाति के लिये हानिकारक है— इस तत्त्व को हमने अच्छे रूप से समझ लिया था। सब ही सज्जनों ने हमारी इस बात को स्वीकार भी कर लिया था। लेकिन उसका क्रियात्मक रूप नहीं देखा गया।

दार्जिलिंग से नाटोर

दार्जिलिंग से नाटोर के राजा के उच्चतम कर्मचारी से परिचय हो गया। हरिद्वार में नाटोर के राजा से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ था। इन्होंने भी मुझको बाहर जाने के लिए आग्रह प्रकट किया था। इनका नाम था श्री रतन मणि लाहिड़ी। लाहिड़ी महोदय के साथ नाटोर आगया था। राजपरिवार के सब मनुष्य सन्तुष्ट थे। राजगृह में मैंने सात रोज राजधर्म और प्रजाधर्म के बारे में उपदेश दिया था। योगविद्या के बारे

में हम से क्रिया योग शिक्षा के लिए राजा बहादुर ने प्रार्थना की थी। हमने तपः स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान के सम्बन्ध में शिक्षा प्रदान की थी। ये सब अपने को धन्य समझने लगे।

नाटौर से बारीकपुर—हम वहाँ से गंगासागर जाने के लिये तैयार हो गये और स्वामी रुद्रानन्द जी के साथ प्रस्थान कर दिया। शिलिगुड़ी होकर हम दोनों बारीकपुर पहुँच गये थे। गंगा के किनारे हम दोनों वट वृक्ष के नीचे बैठ गये, लोग उपदेश लेने के लिये आने लगे। वहाँ के सैन्या-वास से फ़ौजी लोगों ने अतिगुप्तरूप से कुछ कहना चाहा था। इस रूप से बातचीत करना हमें पसन्द नहीं आया। सैन्यावास में प्रवेश करना बाहर के आदमियों के लिए निषिद्ध है। हम सैन्यावास के सम्मुख एक बड़े वट वृक्ष के नीचे धूनी लगा के बैठ गये थे। सब ही प्रकार के आदमी हमसे उपदेश और आर्शीवाद माँगने के लिए आने लगे थे। सब ही का हम संक्षिप्त परिचय लिया करते थे। एक मंगल पांडे ने और दो फौजी आद-मियों ने अपने को फौजी बोलकर परिचय दिया और रोते हुए कहा—"महाराज! सरकार ने एक विचित्र तरह की कारतूस व्यवहार करने के लिए भेजी है। सुना जाता है—इसमें गाय और सूअरों की चरबीमिली हुई है। उसको दांतों से काटकर लगाना पड़ता है। हम समझते हैं कि हिन्दु और मुसलमान दोनों का धर्म भ्रष्ट करने के लिए ऐसा प्रबन्ध किया गया है। जान देने के लिए हम बहुत से फौज के सिपाही तैयार हो गये हैं। हमारे पास कमल पुष्प और चपाती भी क्रान्ति के दूत के रूप में आकर धर्म युद्ध में तैयार रहने के लिए प्रेरणा दे गये हैं। जब युद्ध के लिये संकेत आ जायगा हम लोग हथियार के साथ उतर पड़ेंगे। हम लोग प्रकट विद्रोह की ठीक तारीख की प्रतीक्षा में हैं। मराठी नेता के या कुमारसिंह के आदेश पर ही युद्ध शुरु हो जायगा। आप हम सबको आशीर्वाद दीजिये। जिससे हमको धर्म युद्ध में दुश्मनों के प्राण लेने या अपने प्राण देने के लिए शक्ति मिल जाय।"

इन्होंने मुझे प्रणाम किया। मैंने आशीर्वाद दिया—"जीना और मरना दोनों ही धर्म के लिए ही हैं। साथ-साथ धर्म युद्ध में भी नियम और शृंखला की रक्षा करो। इससे विपरीत होने पर बड़े-बड़े जहाज भी डूब जाते हैं। भगवान् आपके हृदयों में शक्ति प्रदान करें।"

बारीकपुर से कलकत्ता

मैं बारीकपुर से कलकत्ता आकर शोभा बाजार के राजा के भवन

में तीन रोज रहा था। सायंकाल मेरा उपदेश गृहस्थाश्रम धर्म के बारे में होता था। उसमें केवल कर्मचारी लोग ही आया करते थे। राजा बहादुर के पास मैंने गंगा सागर जाने की इच्छा प्रकट की थी। उन्होंने तीन कर्मचारियों को मेरे लिए नियुक्त कर दिया। हम सब एक साथ मिलकर जलपथ से गंगा सागर रवाना हो गये।

कलकत्ते से गंगासागर

कलकत्ते से गंगासागर करीब आठ योजन दूरी पर है। अब वह स्थान द्वीप के रूप में हैं। वहाँ अति अल्प संख्यक साधु हमेशा रहते हैं। जहाँ अब मेला लगता है वहाँ ही समुद्र के साथ गंगा का पुराण मिलन-स्थान हैं। गंगा वहाँ से हट गयी और समुद्र से मिलने के लिये एक छोटी सी धारा ही देखी जाती है। मकर संक्रान्ति में और कार्तिक पूर्णिमा पर वहाँ हजारों नरनारी स्नान के लिए एकत्र हो जाते हैं। सारे भारत से भी साधु-सन्न्यासी और वैरागी लोग वहाँ एकत्र हो जाते हैं। आप लोग तो यहाँ के रहने वाले हैं। हम यहाँ आये थे केवल योगी साधक पुरुषों के सन्धान में। मेरी आशा पूरी नहीं हुई। वहाँ केवल स्नान के द्वारा पुण्य लेने के अपने गौरव के लिए,साथ ही अपनी-अपनी साधनाओं के प्रदर्शन के लिये और केवल मेला दर्शन के लिए ही लोग एकत्र होते हैं। हमने योगी साधक ढूँढ़ा था। एक ही योगी-साधक को मैंने पहचान लिया था। वे अल्प समय के लिए आये थे। किसी से भी उन्होंने बातचीत नहीं की।

गंगा सागर से नवद्वीप

मेरे साथ स्वामी रुद्रानन्द महाराज पूर्ववत् थे। दोनों कलकत्ते पहुँचकर नवद्वीप और शान्तिपुर गये थे। कार्तिकी पूर्णिमा में वहाँ मेला लगता है। नवद्वीप में तांत्रिक मूर्तियाँ सैकड़ों पूजी जाती हैं और भवतारिणी के मन्दिर के प्रांगण में सब मूर्तियाँ एकत्र की जाती हैं। मादक द्रव्यों का व्यवहार भी उसी रोज ज्यादा रूप से होता है। वैष्णव भक्त लोग भक्ति भाव से तीर्थ यात्रा के लिए वहाँ आते हैं। वैष्णव मत श्री चैतन्य महाप्रभु का और तान्त्रिक मत श्री कृष्णानन्द आगम-वागीश पण्डित का आज भी प्रतिद्वन्द्विता के रूप में वहाँ पर्वोत्सवों में देखा जाता है।

नवद्वीप से काम रूप

गंगा सागर और नवद्वीप होके कलकत्ता वापस आने के बाद कामरूप—कामाख्या जाने का विचार हुआ, सुना जाता है कि तान्त्रिकयोगियों के लिए वह स्थान सिद्ध-पीठ पवित्र तीर्थ है। शोभा बाजार के राजा ने

कामाख्या जाने के लिए भी जल-पथ-यात्रा का प्रबन्ध कर दिया था। स्वामी रुद्रानन्द महाराज कलकत्ते से पुष्कर तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य से चले गये थे। मैं नौका-पथ से चारों आदमियों के साथ कामरूप चल दिया। कई एक रोज के बाद हम लोग 'पांडु तीर्थ' में पहुँच गये। ब्रह्मपुत्र नदी के समीप ही कामाख्या पहाड़ है। पहाड़ के दूसरे पास ही गौहाटी (राजा भगदत्त की राजधानी) और ब्रह्मपुत्र नद के केन्द्रस्थ गर्भ में छोटे पहाड़ पर उमानन्द शिव का मन्दिर है। चार सौ वर्ष पहले कामाख्या के इस मन्दिर को काला पहाड़ नें तोड़ दिया था। पुराने टूटे हुये मन्दिर की निशानी आज भी मौजूद है।

वर्तमान मन्दिर का कूचविहार के राजाओं ने ही पूर्ववत् निर्माण किया था। नये मन्दिर के उद्घाटन के दिन मन्दिर के सम्मुख एक सौ इक्यावन (१५१) ब्राह्मण बालकों का बलिदान दिया गया था। कामरूप गोपालपाड़ा, नवगाँव और शिवसागर जिलों से इन सब बालकों का संग्रह हुआ था। अर्थ-लोभ से और पुण्य की आशा से माता-पिताओं ने इन सब बालकों को बलिदान के लिये बेच दिया था। तब से विभिन्न पर्वों पर उस मन्दिर के सम्मुख नरबलि देने की प्रथा चालू हो गई है। कामरूप के अन्तर्गत कूचविहार के कोच राजा नर नारायण ने कामाख्या देवी के लिये इष्टक-मन्दिर निर्माण करवा के एक सौ चालीस की नरबलि के साथ मन्दिर का उद्घाटन-उत्सव सम्पन्न किया था। छिन्न मुंडों को अलग-अलग ताम्र पात्रों में रखकर देवी के सम्मुख रखा गया था। उनके भतीजे रघुदेव ने भी सन् १५८३ में हयग्रीव-मन्दिर का पुनर्निर्माण करके ब्राह्मणों को भूसम्पत्ति दान देकर उसके बदले सात सौ (७००) ब्राह्मणों को संग्रह करके बलिदान दिया था। इन छिन्न मुंडों को भी अलग-अलग ताम्र पात्रों में देव मूर्ति के सामने रखा गया था। आसाम के जयन्तीया राज्य में भी नरबलि का प्रचलन था अंग्रेज-राजदूत को भी पकड़ के जयन्तीया राज नें जयन्तीदेवी की मूर्ति के सम्मुख बलिदान दिया था इसी के कारण जयन्तीया राज्य को अंग्रेजों ने छीन लिया था। इस रूप से सुविधा के अनुसार ब्रिटिश प्रजाओं को पकड़-पकड़ के बलिदान दिया जाता था। आसाम के खासी पहाड़ में नरबलि की प्रथा प्रचलित थी।

कामाख्या पहाड़ का पूर्वनाम मयूर पहाड़ था। महाभारत युग के राजा भगदत्त के पिता नरकासुर ने उस पहाड़ को तन्त्रधर्म का केन्द्र

बनाया था। तबसे मयूर-पहाड़ "पंच-मकार" के आधिक्य के कारण "कामाख्या-पहाड़" बन गया है।

वहाँ योग-साधन-प्रणाली सीखने के लिये हम उस पहाड़ के ऊपर कामाख्या-मन्दिर में जाने वाले थे। रास्ते में और दो साथी जुट गये, एक गौहाटी के कमलाकान्त फुकान और दूसरे लोहित कुमार बड़ुआ। पहाड़ पर चढ़ते समय वहाँ के सुप्रसिद्ध योगी महाकाल बाबा की चर्चा चल रही थी। कामाख्या मन्दिर में पहुँचने से पहले ही उनका आश्रम मिल गया। पहाड़ के एक संकीर्ण कक्ष में बाबा जी आसन लगाकर बैठे हुए थे। आँखें बन्द थीं। गले में मोटी रुद्राक्ष की माला थी। व्याघ्र-चर्म से घर के भीतर का भाग आच्छादित था। घर के भीतर नर-मुण्डों के कपाल झूल रहे थे। उनके दाहिनी तरफ थाली में छाग-मांस आहुति के लिये रखा हुआ था। बायें बगल में एक टोकरी में छिली हुई, लीचियों का समूह मालूम पड़ा। पीछे मालूम हुआ कि यह आगन्तुक भक्तों के लिये प्रसाद रूप में देने को बकरों की आँखें रखी गई हैं। बाबा के सम्मुख होमकुण्ड प्रज्वलित किया गया। भक्त लोग आश्रम कक्ष को भीतर-बाहर पूर्ण कर रहे थे। मांस का आहुतिदान शुरू हो गया। भृंगारपात्र से डाली हुई शराब को मिट्टी के शराबों में भर-भर के भक्तों में परोसना भी शुरू हुआ। मैं संकुचित हो गया। एक भक्त ने कहा—"आज तुम्हारा परम सौभाग्य है। जो आज शनिवार की पूर्णाहुति के रोज तुम अचानक पहुँच गये हो।"

मेरे साथियों ने कहा—"आज दिवारात्र यहाँ ही रहा जाये। पूर्ण पंच-मकार के अर्थात् मत्स्य, मांस, मुद्रा, मद्य और मैथुन का पूर्ण सौभाग्य लेकर तब यहाँ से चलना।"

इस बात को सुनकर मुझे भय, क्रोध और लज्जा आई। मैंने मिट्टी के पात्रों को छीन लिया, फेंक दिया और तोड़ दिया। परोसने वाले चिल्लाने लगे। मैं अति वेग से नीचे उतरने लगा। भक्त लोग मुझे पकड़ने के लिये "पगला-पगला" कहते हुए पीछे दौड़ने लगे। मैंने देखा कि आठ-दस आदमी आ ही रहे हैं। मैं अचानक नीचे पड़े हुए पेड़ की मोटी डाल लेकर खड़ा हो गया। तब वे लोग डरके मारे भाग गये थे। मैं ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे पांडुघाट में पहुँच गया।

कामरूप से परशुराम

पांडुघाट में शिवसागर के एक पण्डित ने मेरी सब बातें सुनकर दुःख प्रकट किया। उन्होंने मुझे योगी-साधकों के पते दे दिये। मालूम हुआ

कि शिव सागर के 'मुक्तिनाथ' मन्दिर में जोड़हाट के जटिया बाबा के आश्रम में और आसाम की पूर्वोत्तर सीमा पर परशुराम कुण्ड के पास झुण्ड के झुण्ड योग-विद्या शिक्षा देने वाले योगी-साधक लोग रहते हैं। मैं उन स्थानों पर भी गया।

परशुराम कुण्ड से नेपाल

पश्चिम आसाम से पूर्व-आसाम तक अतिक्रम करके मैंने अकेले ही उन सब स्थानों में योगी और साधकों के सन्धान में परिभ्रमण किया था। लेकिन सफलकाम नहीं हुआ। ये लोग सबके सब कामाख्या वाली योग-साधना में ही निपुण हैं। मैंने निराश होकर सदिया में आकर दो रोज भर विश्राम किया। वहां एक नेपाली ब्राह्मण सिपाही से परिचय हो गया। उन्होंने मुझको नेपाल जाने के लिये परामर्श दिया। नेपाल में योग-सिद्ध पुरुष बहुत मिल जायेंगे—इस आशा पर मैंने उत्तरी-आसाम का अति-क्रमण करके मिथिला में प्रवेश किया। मैं समस्तीपुर, द्वारबंगा, वेतिया आदि का अतिक्रमण करके नेपाल में पहुँच गया था। धीरे-धीरे काठमुण्डु होकर पशुपतिनाथ पहुँचा। दो स्थानों में मेरी तलाशी भी ली गई। काठ-मुण्डु से करीब बीस योजन दूरी पर मुक्तिनाथ और वहाँ से दो योजन की दूरी पर विभिन्न स्थानों में गया। उन सब स्थानों में करीब-करीब सबही साधु-सन्न्यासी गांजा, भाँग और शराब पीते हैं। इनके मतानुसार ये सब नशीले पदार्थ योग-विद्या-शिक्षा के लिये जरूरी हैं। मैं नेपाल में आकर भी निराश हो गया। मैं एक वैरागी साधु के परामर्शानुसार कलकत्ता और नवद्वीप के प्रसिद्ध पण्डित और साधुओं से मिलने के लिये फिर कलकत्ता आने के लिये तैयार हो गया था और परिव्राजक साधुओं के साथ नेपाल से बंगाल के लिये प्रस्थान कर दिया था।

नेपाल से कलकत्ते में फिर

मैंने कलकत्ता आते हुए मिथिला की हालत भी जान ली थी। मिथिला के रहने वाले अधिकांश बहुत ही गरीब दुःखी और सरल हैं। इन में भक्त साधक बहुत हैं और योगी बहुत ही कम हैं। मैंने कलकत्ता आकर यहाँ के आदिम मालिक सावर्ण चौधरी के वंशधरों के आग्रह से उनके गृह में आश्रय लिया। यह स्थान बेहाला की तरफ कलकत्ते के दक्षिण में है। उन्होंने बाहर कहीं भी जाने का निषेध कर दिया था। किसी पर्व के उप-लक्ष्य में उन्होंने नवद्वीप और कलकत्ता के चुने हुए साधक और पण्डित लोगों को मेरे साथ वार्तालाप के लिये आमन्त्रण भेजा था। निर्दिष्ट दिन

में लगभग पच्चीस साधु और पण्डित सम्मिलित हुए, मेरी भ्रमण की कहानियाँ और भ्रमण के उद्देश्य को सुनकर सबने हर्ष प्रकट किया। एक वृद्ध पण्डित ने कहा—"आपने भारत के पूर्व पश्चिम-उत्तर दिशाओं के प्रधान-प्रधान सब ही तीर्थ-स्थानों में भ्रमण किया है। देशवासियों को और देश को आपने अच्छी तरह जान भी लिया है। अब बाकी रहा दक्षिण देश। दक्षिण देश का भ्रमण करके आप किसी स्थान पर साधना के लिये बैठ जायें या जो कुछ कर्त्तव्य समझें उसका पालन करें। हमने यहाँ सुना था कि दक्षिण देश के तीर्थ यात्री लंका तक भी तीर्थ-दर्शन के लिये जा सकते हैं। कलकत्ता में रहते हुए और चारों तरफ देखकर मेरे अनुभव में आया था कि अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य शिक्षा के लिये बंगाल में साधारण रूप से और कलकत्ता में विशेष रूप से विद्यालयों की स्थापना हो रही है। बहुतों को शायद मालूम नहीं है कि अप्रत्यक्ष रूप से ये सब विद्यालय गिरजाघर का रूप धारण करेंगे और प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा केन्द्र के रूप में ही रहेंगे। इससे दास-मनोभाव की वृद्धि होगी।

—:०:—

सप्तम अध्याय

दक्षिण भारत की यात्रा

कलकत्ता से पुरी

कलकत्ता से तीर्थ-यात्रियों के साथ मैं पुरी की तरफ रवाना होगया था। कलकत्ता से पुरी करीब चालीस योजन दूरी पर है। धीरे-धीरे हम पुरी में पहुँच गये। पहले पुरी से जगन्नाथ मन्दिर का पूजा संभार महाराष्ट्र-भोंसले वंशीय नागपुर के राजाओं के हाथों में था। अंग्रेजों से सन्धि होने के बाद यह पूजा-संभार भोंसले से छूटकर अंग्रेजों पर आ गया था। अंग्रेजों ने परिस्थिति के अनुसार इस जगन्नाथ-मूर्ति की पूजा का भार खुरदा के राजा पर छोड़ दिया। जगन्नाथ की सेवा और पूजादि कार्यों में बत्तीस हजार रुपये वार्षिक खर्च होता है। वह खर्च चलाने की मन्दिर की भू-सम्पत्ति को महन्त लोग जमींदारी के रूप में भोग कर रहे हैं।

पुरी में भारत के धर्म-सम्प्रदायों के सब ही के अपने-अपने मठ-मन्दिर-सन्न्यासी मौजूद हैं। आचार्य शंकर द्वारा स्थापित गोवर्धन मठ आज भी पुरी में विद्यमान है। किसी समय बौद्ध लोगों ने पुरी में प्राधान्य से विस्तार किया था। जगन्नाथ के मन्दिर में बौद्ध की शरण वाणी मूर्ति के रूप में स्थापित हुई थी। वे तीन शरण वाणियाँ ये हैं—"बुद्धं शरणं गच्छामि" "धम्मं शरणं गच्छामि" और "संघं शरणं गच्छामि।" बुद्ध, धर्म और संघ ये तीन शरीर जगन्नाथ के मन्दिर में काष्ठ-निर्मित तीन देवता के रूप में देखे जाते हैं। "बुद्ध" जगन्नाथ के रूप में प्रथम "धर्म" सुभद्रा के रूप में द्वितीय और "संघ" बलराम के रूप में तृतीय शोभा और गौरव दे रहे हैं।

बौद्ध-तांत्रिकों के प्राधान्य से जगन्नाथ के मन्दिर गात्र में मिथुन शिल्प का भी प्राधान्य घोषित हो रहा है। विभिन्न [illegible] की प्रति

कुत्सित और अश्लील मूर्तियाँ आज भी मन्दिर-गात्र में स्थायी रूप से रखी हुई हैं।

पुरी में सर्वत्र खाद्याखाद्य व्यापार में कट्टरपन नहीं है। बाजार में रन्धित अन्न को सब कोई स्पर्श करते हैं और खरीद लेते हैं। किसी के रन्धित अन्न को जो चाहे खा सकते हैं। उदारता नें सीमा का भी अतिक्रम किया है। किसी के जूठें अन्न को जो चाहे खा सकते हैं और यह कार्य पुण्य समझा जाता है।

लेकिन आज भी बहुत हिन्दुओं के लिये मन्दिर में प्रवेशाधिकार नहीं हैं। उनके लिये मन्दिर के प्रवेश द्वार में 'पतित-पावन ठाकुर' नाम से एक चित्र रखा गया है। इस मूर्ति के दर्शन करके खास मन्दिर में प्रवेश के सम्पूर्ण पुण्य को ये लोग लूट लेते हैं। जगन्नाथ की रथ-यात्रा और स्नान-यात्रा के रहस्य तो बहुत ही विस्मयकर और हास्यकर हैं। रथ-यात्रा आदि उत्सवों में सब ही जातियाँ जगन्नाथ को स्पर्श करती हैं और पूजा देती हैं। इससे सर्वसाधारण के पाप जगन्नाथ में घुसकर जगन्नाथ को अशुचि बना देते हैं और जगन्नाथ खुद पतित और जाति-भ्रष्ट बन जाते हैं। इसलिये जगन्नाथ की स्नान-यात्रा से वे शुचि बन जाते हैं। सर्व-साधारण के पाप धौत होके जगन्नाथ के शरीर से निकल जाते हैं जगन्नाथ का पातित्य नष्ट हो जाता है। मूर्ति-पूजा के विविध विषयों में अर्थनीति का प्रभाव सर्वत्र ही दृष्ट होता है। व्यवसाय-नीति पर ही इसी ढंग से पंडा लोगों ने तीर्थ स्थानों में मूर्तिपूजा को कायम रखा है। पुरी में पंडा लोगों का राज्य है। स्नान-यात्रा और रथ-यात्रा के बाद पंडों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अत्याचार के कारण कोई योगी या साधक पुरी में ठहर नहीं सकते। मैं पुरी से नासिक की तरफ रवाना हो गया।

यहां से रवाना होने से पहले मैंने जगन्नाथ मन्दिर के मालिक या खुरदा के राजा से प्रार्थना की थी—"राजन्! आप हमारे धर्म-रक्षक क्षत्रिय राजा हैं। आप हमारे धर्म को बचाइये। विदेशी वणिक् और विधर्मी ईसाई पादरी एक साथ मिलकर हमारे देश का सर्वनाश कर रहे हैं। ये लोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से सत्यानाश कर रहे हैं। हम सन्न्यासी और साधु लोग देश में सर्वत्र देशवासियों को सचेत करने के लिये एकता-बद्ध हो रहे हैं। आप अपनी प्रजाओं को सचेत करने का भार लीजिए। आप केवल नियन्त्रण-भार लीजिए। सैकड़ों सन्न्यासी आपके नियन्त्रण में कार्य करेंगे। ये लोग केवल आपकी प्रजाओं के अन्दर

स्वधर्म की रक्षा और देश के प्रति भक्ति-भाव का प्रचार करेंगे। अगर इस कार्य के लिये आप असमर्थ हों तो जगन्नाथ मन्दिर की वार्षिक आय से कुछ अंश खर्च के लिये अपने किसी विश्वस्त व्यक्ति के हाथों में जमा कर दीजिये।"

राजा ने धीर स्थिर होके सब सुनी, लेकिन बोल दिया—"महाराज! इस विषय पर हमसे कभी अनुरोध दुबारा नहीं करना। इस प्रकार के दोनों कार्य ही विधि-विरोधी हैं। हम इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। एक पैसा भी इसमें से हम खर्च नहीं करेंगे। आप मुझको क्षमा करें।" मैं निराश होके चला आया।

पुरी से धनुष्कोटि :—मैं और साधु कृपाराम ब्रह्मचारी दोनों क्रमानुसार एक-एक करके नासिक, शृंगेरी, बंगलोर, महीशूर, कांची, त्रिचिनापल्ली, मदुरा, रामेश्वर, धनुष्कोटि और कन्याकुमारी तक और इन सब तीर्थों के अगल-बगल तीर्थों में भी गए। सब ही जगह विराट्-विराट् मन्दिरों में वार्षिक लाखों-लाखों रुपये जनसाधारण के भक्तिपूर्ण दानों से जमा हो जाते हैं। लेकिन इसका खर्च देश के अधिवासियों के हित या देश के हितकर कार्यों में नहीं होता है। केवल स्वार्थी पुजारियों के पालन-पोषण और भोग-विलास आडम्बरों में ही लग जाता है। सब मन्दिरों के कर्त्तृ-पक्ष से ही मैंने अनुरूप आवेदन किया था और मुझको अनुरूप जवाब भी मिल गया था कि उनसे यह सब कार्य असम्भव है।

धनुष्कोटि से लंका :—धनुष्कोटि में सारनाथ से आये हुए एक बौद्ध भिक्षु से वार्तालाप हुआ। उन्होंने मुझे सिहंल जाने के लिये प्रेरणा दी थी। मुझे और कृपाराम ब्रह्मचारी को भिक्षु के साथ काष्ठ निर्मित जलयान से उस पार जाने का सरकारी अनुमति-पत्र भी मिल गया। जहाज उस पार तलैमन्नार नामक बन्दरगाह में पहुंच गया। वहाँ से कोलम्बो और कांडी में जाकर बुद्ध मन्दिरों में ठहरा। वहाँ से एक पर्वत के 'आदम' नामक शृंग पर एक पुरातन मन्दिर में रहा। वहां अनुराधापुरादि स्थान भ्रमण करके बौद्ध-शिक्षालय, विहार और बौद्ध-मन्दिरों में बौद्ध लामा और भिक्षुओं के समक्ष भारत के विभिन्न धर्म मत और बौद्ध मत के बारे में आलोचना की। सिहल को प्राचीन लंका बोलकर स्वीकार करना कठिन है।

लंका से धनुष्कोटि—लंका (सिंहल) से हम लोग जलयान द्वारा फिर धनुष्कोटि पहुँच गए थे। मैं धनुष्कोटि में बौद्ध-सम्मेलन में निमन्त्रित होके पहुँचा। हमारे साथ कई एक बौद्ध भिक्षु लंका से आते समय परि-

चित हो गये थे। हम बुद्ध को एक योगी साधु बोलकर ही विश्वास करते हैं। वे नास्तिक भी नहीं थे और वेद-विरोधी भी नहीं थे। वेद के नाम पर जो यज्ञों में पशु-बध होते थे और वैदिक-धर्म के नाम पर जो अयौक्तिक कदाचार और कुप्रथा का प्रचलन था, बुद्ध उन्हीं के विरोधी थे। बौद्ध पंडितों ने मेरे मुख से "धम्मपद" ग्रन्थ से गौतम बुद्ध की वाणियाँ भी सुनी थी। वे लोग मेरे प्रति सन्तुष्ट हुए थे। बौद्धों के अन्दर हीनयान और महायान सम्प्रदायों के भेद-भाव, बौद्ध सम्प्रदाय के लिये हानिकारक हुए हैं। एक बौद्ध पंडित ने सम्मेलन में मुझसे प्रश्न किया था—भारत में बौद्ध धर्म की धीरे-धीरे विलुप्ति का क्या कारण है ?"

हमने जवाब में कहा :—"वेद-विरोधी मनोभाव और प्रचार, ईश्वर-विरोधी आन्दोलन, राजा-महाराजा-सम्राटों पर बौद्ध धम-प्रचार करने का भार अर्पण कर देना, भिक्षु और भिक्षुणी को एक साथ प्रचारक पदों पर नियुक्त कर देना, भिक्षु लोगों का गृहस्थ लोगों के साथ अत्यन्त घनिष्ठता स्थापन करना इत्यादि कारणों से भारत में बौद्ध-धर्म का प्रचार और प्रसार अबाध गति से नहीं हुआ।

धनुषकोटि से कन्याकुमारी

बहुत दिनों से निर्दिष्ट स्थानों में और निर्दिष्ट समय तक दिल्ली के योगमाया मन्दिर से प्रजा विद्रोह के बारे में कोई खबर नहीं मिली थी। मैं धनुष्कोटि से कन्याकुमारी में आया था। वहाँ रामेश्वर के भव्य मन्दिर में ठहरा। विभिन्न मन्दिरों से घूम-घूम कर साधु-संगठन कार्य में दीर्घ-काल व्यतीत किया गया। साधु आपस में संगठित होने लगे। स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा करना और वहाँ के जन साधारण के अन्दर जागृति पैदा कर देना हीं साधुओं का कर्तव्य था। भारत-व्यापी प्रजा विद्रोह का प्रत्यक्ष संग्राम अचानक शुरू हो गया था। अत्याचारित और उत्तेजित प्रजागण नेतृवृन्द के नियन्त्रण से बाहर चला गया था। बहरामपुर, बारीक-पुर, मेरठ आदि स्थानों से विद्रोह शुरू होकर भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में फैल गया था। दिल्ली, लखनऊ कानपुर, बरेली और झाँसी इस क्रांति युद्ध के केन्द्र रहे थे। संगठन पूरा नहीं होने कारण और अचानक विच्छिन्न और विशृंखल रूप से युद्ध शुरूहोने के कारण युद्ध में पराजय आ गया था। विद्रोही प्रजाजन संख्या में करीब ५०-६०हजार नेपाल की सीमा पर नेपाल राज्य के आश्रय-प्रार्थियों के रूप में हाजिर हो गये थे नेपाल-राज श्री जंग-बहादुर ने कड़ी भाषा में आश्रय देने से इन्कार कर दिया था। नाना साहब, तात्या टोपे आदि कई एक नेता विद्रोहियों के साथ थे। विद्रोही

प्रजाजनों ने आत्म-रक्षार्थ जंगलों में प्रवेश किया था और वहाँ ही फल-फूल खाकर किसी रूप से देह-रक्षा करने लगे थे। बहुत प्रजा भूखी मर गई या वन्य हिंस्र पशुओं के आहार के रूप में समाप्त हो गई थी। बहुत विद्रोही पकड़े जाने पर मृत्यु दण्ड को प्राप्त हुए और कोई-कोई भाग कर आत्म-रक्षार्थ इधर-उधर चले गये थे। इस प्रकार की चर्चा कन्या-कुमारी तक चल रही थी। हम इस पर अच्छी तरह सोचने लगे और दिल्ली के योग-माया मन्दिर से कन्या कुमारी में प्रजा-विद्रोह के बारे में आने वाले समाचार की प्रतीक्षा में निर्दिष्ट दिन तक विताने का संकल्प किया था।

नाना साहब कन्या कुमारी में

कन्या कुमारी भारत का अन्तिम दक्षिणी सोमा का अन्तरीप है। पूर्व दिशा का बंगोपसागर, पश्चिमी दिशा का अरब सागर और दक्षिणी दिशा का भारत महा सागर इस कन्याकुमारी अन्तरीप के सम्मुख सम्मि-लित हुए हैं। एक दिन भारत महासागर की तरफ मुख करके एकान्त में बैठे हुए हम भारत के धर्म और स्वतन्त्रता की विराट् समस्या के बारे में आँखें बन्द करके सोच विचार कर रहे थे। अचानक पीछे से शब्द आया—"हम योग-माया मन्दिर के समाचार लाये हैं।" मुख पीछे की तरफ घुमा कर देखा तीन मुण्डित मस्तक, गैरिक वस्त्रों से सज्जित और कमण्डलधारी सन्न्यासी आ रहे हैं। उनमें से एक को शिवाजी के सतारा सिंहासन के उत्तराधिकारी नाना साहब को पहचान लिया। शेष दोनों अपरिचित थे। तीनों प्रणिपात करके बैठ गये और तीनों ही सजल दृष्टि से अवाक् से रहे थे।

मैंने कहा—"युद्ध-पराजय और नेपाल के जंगल में प्रवेश तक मुझे सब मालूम हो गया। इसमें हताशा या निराशा होने का कोई कारण नहीं है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये युद्ध में जय या पराजय दोनों ही लाभदायक हैं। आप लोग भविष्यत् भारत के लिये त्याग, साहस, शूरता और निर्भी-कता और स्वतन्त्रता के लिये प्रेरणा देंगे।"

नाना साहब ने दोनों आगन्तुकों का परिचय दिया—"एक तात्या टोपे और दूसरे मेरे साथी दुर्जय राव हैं। हम लोग इसी गुप्त वेश में आप को योग-माया मन्दिर के निर्देशानुसार ढूँढ़ते हुए यहाँ पहुँच गये हैं ब्रिटिश गुप्तचर हमारे सन्धान के लिये हमें ढूँढ़ रहे हैं। न मालूम कब हम पकड़े जायेंगे और बध-स्तम्भों में प्राण-त्याग करेंगे। आप आशीर्वाद दीजिये। जिससे हम सहर्ष मृत्यु-वरण कर सकें और भारत के सुपुत्र पराधीन भारत को मुक्त कराने के लिये आयें।"

कानपुर की चर्चा

कानपुर के १ सहस्र अंग्रेज नर-नारियाँ विपत्ति में पड़ी हुई थी। मैंने आश्वासन दिया था कि ये लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार इलाहाबाद में जा सकते हैं। इन अंग्रेजों के अन्दर सैंकड़ों सिपाही ऐसे भी थे जिन्होंने विगत सप्ताह में काशी और प्रयाग में उन सब देशी सिपाहियों के बालकों और स्त्रियों पर अत्याचार किया था। नील साहब के अत्याचारों की स्मृति ने भी इन सब देशी सिपाहियों को उत्तेजित कर दिया था। जिस के कारण उन्होंने गोलियों के द्वारा उनमें अधिकांश को मार दिया था। जो लोग बच गये थे उनको भी बन्दी बनवा दिया। विद्रोही-प्रजा और सैन्यों पर विजय-लाभ करके जब विजयी अंग्रेज-सिपाही कानपुर के समीप पहुँच गये तब विद्रोही प्रजाओं ने दो सौ से भी अधिक बन्दी अंग्रेज महिला और शिशुओं का बध करके उनके मृत देहों को निकटस्थ कुओं में फेंक दिया था। जनता के इस प्रकार के हत्या-काँड के साथ मेरा बिल्कुल सम्बन्ध नहीं था। तथापि आनुषंगिक कारणों से मेरा सम्बन्ध था। इस महापाप के प्रायश्चित्त के लिए मैं अपने देह को प्रज्वलित अग्निकुण्ड में आहुति के रूप में डाल दूंगा। मैंने ऐसा ही संकल्प कर लिया।"

मेरी सम्मति पर नाना साहब की स्वीकृति—मैंने कहा—"आपका इस प्रकार का संकल्प भूल है। आत्महत्या तो मानसिक विकार या कमजोरी से होती है। आत्मत्याग दूसरा कुछ है। मानसिक बल और तेजस्विता के विना आत्मत्याग नहीं बनता। आप तेजस्वी पुरुष हैं। लेकिन सन्न्यासियों के वेश को गुप्त रूप से ग्रहण किया है। आप इस गैरिक वस्त्र को सत्य रूप से ग्रहण कीजिये। भारत के पश्चिम सीमा की तरफ किसी मठ मन्दिर में रहकर आप जन-सेवा के लिए जीवन-दान कीजिये। मनुष्यों को पारमार्थिक कल्याण के लिए उपदेश दीजिये। ऐहिक कल्याण के लिये रोगियों को बिना मूल्य वृक्षों के मूल और पत्ती से औषध बनवा के वितरण करते रहिये, मृत्यु तक शान्ति और आनन्द के साथ शेष जीवन बिता सकेंगे। आप आत्म-हत्या कभी न करें। हमारे इस उपदेश को तीनों ने ही समान रूप से ग्रहण किया और तीनों के वहाँ से चलने से पहले मैंने नाना साहब को सन्न्यास देकर उनका नाम दिव्यानन्द स्वामी रख दिया था। शेष दोनों ने सन्न्यास लेने का साहस नहीं किया। दिव्यानन्द ने "ऐसा ही होगा। भगवान् की इच्छापूर्ण हो" ऐसा कहा और तीनों ही वहाँ से चल दिये।

मेरा भावी कार्यक्रम—अपने संक्षिप्त जीवन के अन्दर सामाजिक स्थिति और गण-जागरण को मैंने सूक्ष्म रूप से अनुभव किया था। इसलिये ही विशुद्ध ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता समझ ली थी और साथ-साथ मुझे यह भी मालूम हो गया था कि बिना वैदिक ज्ञान के विशुद्ध ज्ञान आ भी नहीं सकता। समाज संस्कार और जातीय जागरण वैदिक भित्ति पर हो—इस सिद्धान्त को देश-हित और मानव-हित के लिए मैंने ग्रहण किया। देश में शत-सहस्त्रों की संख्या में प्रचार-धर्मी वेद-प्रचारक बन जायें तो देश का कल्याण होगा। वैदिक ज्ञान से वंचित **समाज-संस्कारक या राजनीतिक कर्णधार हमको भोगवाद, उच्छृंखलता और नास्तिकता की तरफ लें जायेंगे।** इसलिये वेद को सर्व-साधारण के अन्दर सहज, सरल और सुबोध रूप से जाति-वर्ण-लिंग निर्विशेष से प्रचार करने की आवश्यकता है। तब हम सोचने लगे कि **वेद के अनुभवी, वेद के ज्ञान को देने में समर्थ और इच्छुक विद्वान् कहां है और उनका दर्शन किस प्रकार से हो।** मैंने योग-विद्या-परायण योगियों के संधान के लिए जैसे विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया था और लाभवान् हुआ था ऐसे ही वैदिक ज्ञान प्रदान करने के इच्छुक और प्रकृत वेदज्ञ पंडितों के संधान में भ्रमण करने पर भी मेरा उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ था। योग-विद्या के ज्ञानार्जन के लिये जैसे मैंने भिन्न-भिन्न स्थानों में परिभ्रमण किया था ठीक वैसे ही वेद पाणिनि, निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्रादि वैदिक ग्रन्थों के ज्ञानार्जन के लिये मैंने देश के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया था। अन्त में वेद विद्या-अर्जन के लिये भारत के अद्वितीय वेदज्ञ पंडित दण्डी स्वामी श्रीमद् विरजानन्द सरस्वती के शरण ग्रहणार्थ मथुरा में मैं आ गया था। उन्होंने मेरे प्रति अशेष कृपा करके वर्षों तक मुझे वेद-विद्या प्रदान की, उन्होंने मुझसे "सर्वसाधारण के अन्दर वेद-प्रचार और अवैदिक मतों के खण्डन" की शपथ को दक्षिणा रूप से ग्रहण किया था।

गुरु-दक्षिणा-दान—गुरु-दक्षिणा-प्रदानार्थ ही मैंने आगरे से लेकर काशी तक साठ से ऊपर स्थानों में करीब नौ वर्षों तक परिभ्रमण किया। शास्त्रार्थ किये और वैदिक ज्ञान का प्रचार किया है। इसी क्रम के अनुसार ही मैंने काशी में आकर रक्षण-शील सनातनी पंडितों को "मूर्ति-पूजा अवैदिक" विषय लेकर शास्त्र-युद्ध में आह्वान किया था। उस शास्त्र-विचार-सभा में सत्ताईस विरोधी पंडितों के सम्मुखीन हुआ था। उन सत्ताईस पंडितों के अन्दर प्रधान प्रतिद्वन्दी छः पंडित बंगाली ही थे। उस

सभा के विवरण-संग्रहार्थ "बंगाल रायल सोसाईटी" के वैदिक पंडित श्री सत्यव्रत सामश्रमी उपस्थित थे। उन्होंने अपने संस्कृत पत्र 'प्रयत्न-क्रम-नन्दिनी' में मेरे लिए मेरे पक्ष में विजय घोषणा की थी। 'हिन्दू पेट्रियट' और सुज्ञ समाज के "तत्त्व बोधिनी" पत्रों में भी मेरे ही अनुरूप विजय-घोषणा की गई थी। इस उपलक्ष में बंगाल के प्रतिष्ठित पुरुषों से मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया। देवेन्द्रनाथ ठाकुरादि के अनुरोध से ही मैं कलकत्ता आया हुआ हूं।

उपसंहार

कलकत्ता आने का मुख्य उद्देश्य—मेरे कलकत्ता आने का प्रधान उद्देश्य है—वेद विद्यालय की स्थापना और गौण उद्देश्य है वैदिक धर्म का मौखिक प्रचार करना। संस्कार-पन्थी बंगाल की तरफ मेरा मानसिक आकर्षण स्वाभाविक ही था। राजा राममोहन राय का मूर्ति-पूजा विरोधी आन्दोलन (सन् १७८७), ईसाई धर्म-विरोध आन्दोलन (सन् १८२०) सतीदाह निषेध आन्दोलन (सन् १८२९), जन साधारण के अन्दर आर्य-धर्म-प्रचार के लिए महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के "तत्त्व बोधिनी पत्र" का संस्थापन और स्त्री शिक्षा के लिये विद्यालय-स्थापनादि का कार्य और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा ऋग्वेद का बंगानुवाद प्रकाशन (सन् १८४१) आदि सर्वतोमुखी संस्कारादि के कारण बंगाल के प्रति मेरा आर्कषण पैदा हो गया था।

१६ दिसम्बर, १८७२ को मैं कलकत्ता पहुँचा था, आज ३१ मार्च १८७३ है। अब हुगली और वर्धमान की तरफ भी मुझे जाना है। इसके पश्चात् बिहार की तरफ रवाना हो जाऊंगा। कल से मैं मौन धारण करूंगा। परमप्रभु आप लोगों की सदिच्छा पूर्ण करें।

मेरे मुख से आप लोगों ने मेरे जीवन के बारे में सब कुछ सुनने के लिए आग्रह किया था। योग-विद्या के बारे में मेरा अनुभव, प्रजा-विद्रोह के बारे में मेरा मन्तव्य और मेरे पारिवारिक परिचय के बारे में प्रकाश आदि विषय जानने के लिये विशिष्ट व्यक्तियों ने इच्छा प्रकट की थी। मैंने जहां तक सम्भव हुआ इन विषयों के बारे में सब कुछ कहा।

विभिन्न शंकायें मेरे सम्मुख आयी थीं। इनका भी समाधान किया गया है। जहाँ तक यह सब मेरी स्मृति में थे, सब कुछ कहा। आप लोगों ने सब का सब लिपि बद्ध किया है। आप लोगों से केवल एक ही अनुरोध है कि मेरे जीवन-काल में यह सब मुद्रित न हो।

हेमचन्द्र से स्वामी जी का कथन

[स्वामीजी के कलकत्ता-वास के पश्चात् श्री हेमचन्द चक्रवर्ती योगाभ्यास के लिए १ वर्ष तक स्वामी जी के साथ ही रहे। उनकी विदाई के समय स्वामी जी ने उन्हें जो बताया था, उस में से कुछ अंश हेमचन्द्र जी के लेख का उनके गृह से श्री बन्धु जी को बाद में प्राप्त हुआ दीन जो यहाँ गया है।—सम्पादक]

बंगालियों से मेरा परिचय काशी के शास्त्रार्थ में (सन् १८६६) में भारत के विभिन्न प्रान्तों के साधु, सन्न्यासी, त्यागी, अध्यापक आदि भारत प्रसिद्ध सत्ताईस पंडितों के सम्मुख खड़ा हो गया था। "मूर्ति-पूजा वेद-विरोधी है," मेरा पक्ष था। मेरे विरोधी सत्ताईस पंडितों के अन्दर प्रमुख तार्किक पं० ताराचरण तर्करत्न, पं० कैलासचन्द्र आचार्य शिरोमणि, पं० नवीन नारायण तर्कालंकार, पं० काशीप्रसाद शिरोमणि, पं० राधामोहन तर्कवागीश और पं० जयनारायण तर्क वाचस्पति—ये छः पंडित बंगाली ही थे। पं० ताराचरण तर्करत्न (काशी-नरेश के प्रधान सभा पंडित) शास्त्रार्थ के अधिष्ठाता थे।

बंगाल की शिष्टता—बंगाल की शिष्टता हमारे लिए विस्मयकर थी, बहुत प्रान्तों से मुझे लाठी, पत्थर, गाली-गलौज, गदहे की शोभा-यात्रा कलंकारोपण और बार-बार जहर मिले थे। मालूम होता है कि यहाँ के मनुष्य यह सब जानते ही नहीं। काशी शास्त्रार्थ के विरोधी पक्ष के नेता कलकत्ते में हम से सुहृद् भाव से मिलते हैं। हुगली-शास्त्रार्थ के बाद विरोधी पं० ताराचरण तर्करत्न ने दोतल्ला-गृह में बात-चीत में और सम्यक् मधुर व्यवहार में जो सौजन्य का परिचय दिया है उसको कभी मैं नहीं भूलूंगा। हमारे विरोधी पंडित महामहोपाध्याय श्री महेशचन्द्र न्यायरत्न को ही मैंने उनके व्यवहार से मुग्ध होकर अपनी संस्कृत भाषा की वक्तृता को बंगला में अनुवाद करने को दिया था। कलकत्ता के समाज-सुधारक, राष्ट्र-सुधारक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, ज्ञानी-गुणी, साधु, ईसाई, मुसलमान, राजा-महाराजा सभी से मुझे सम्मान और श्रद्धा प्राप्त हुई है।

वेद विद्यालय की स्थापना के बारे में राजा राजेन्द्रलाल मल्लिक के गृह के सम्मेलन में आप लोगों ने सिद्धान्त निश्चय किया कि स्थानीय संस्कृत कालेज में ही वेद के अध्यापन के लिए प्रयत्न किया जायेगा। यदि

वह सम्भव नहीं हो तो स्वतन्त्र वेद-विद्यालय स्थापन किया जाएगा। ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन, महामहोपाध्याय पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न, आप (पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती) और पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागरादि ने इसमें सहर्ष अपनी सहमति प्रदान की है।

❀ आत्मचरित्र समाप्त ❀

परिशिष्ट—१

अज्ञात जीवनी के भारतीय स्थानों के पते

भारत के एक-एक स्थान, एक-एक तीर्थ-गुफा-नदी-नाले के जहाँ-जहाँ अवधूत दयानन्द ने भ्रमण किया था उनमें से बहुत-से स्थानों को लापता बताकर प्रतिवाद कर दिया गया था उनमें से पाँच-छह स्थानों और तीर्थों के चित्र भी दिये हैं। अधिक देने से संख्या बढ़ जाती है।

नर्मदा के तट के तीर्थ

अमर कण्टक—विन्ध्य प्रदेश की सरकार का ग्रीष्म का आवास-स्थान माना गया है। अतः वहां तक रीवा से पक्की सड़क है। मोटर बसें चलती हैं। पूर्वी रेलवे की कटनी-बिलासपुर शाखा में बिलासपुर से ६३ मील पर 'पेडरा रोड' स्टेशन है। पास ही 'गौरेला' ग्राम है। कई धर्मशालायें हैं। गौरेला से मोटर कबीर चौतरा जाती है। वहां से अमरकण्टक तीन मील है। अहिल्या बाई की धर्मशाला में ठहरिये।

११ कोण का एक पक्का कुण्ड है। चारों ओर सीढियां है। पश्चिम में गोमुख है उस से थोड़ा २ जल गिरता है। इस कुण्ड को **कोटि तीर्थ** कहते हैं। आधा मील दूरी पर आग्नेय कोण में मार्कण्डेय ऋषिका आश्रम है।

भृगु कमण्डलु—मार्कण्डेय से १ मील शोणभद्र नदो का उद्गम है। घोर जंगल का कठिन मार्ग। दक्षिण में भृगु कमण्डलु है। एक छोटी नदी निकलती है। भृगु ने तपस्या की।

कबीर चौतरा—अमर कण्टक से ३ मील वन के मध्य है। कबीर जी का निवास रहा। वन्य पशुओं का भय है।

कपिल आश्रम—अमर कण्टक से ७ मील पर है। यहां **कपिल धारा** नामक नर्मदा का प्रपात है। बहुत संकरा पैदल मार्ग हैं। पास में ही नील गंगा का संगम और चक्रतीर्थ हैं।

दुग्ध धारा— १ मील आगे दूसरा प्रपात दुग्धधारा है। मार्ग संकरा और डरावना है।

ज्वालेश्वर—अमर कण्टक से उत्तर में ४ मील पर ज्वाला नदी का उद्गम है। ज्वालेश्वर महादेव का मन्दिर है। सघन वन एवं पर्वत का मार्ग है। मार्गदर्शक लेकर ही जाना है।

ऋण मुक्तेश्वर मन्दिर— डिंडोरी से ९ मील सड़क पर है। मचरार नदी के किनारे स्वामी शंकराचार्य ने स्थापित किया था। नर्मदा यहाँ से ६ मील है।

कुकरी मठ— ऋण मुक्तेश्वर कुकरी मठ में ही है।

व्यास आश्रम--गोंदिया-जबलपुर पूर्व रेलवे लाइन पर 'नैनपुर' स्टेशन है। वहाँ से दूसरी लाइन मंडला फोर्ट जाती है। वहाँ से देव गाँव तक पक्की सड़क है। वहाँ **बढनेर** नदी नर्मदा में मिलती है।

मण्डला किले के सामने नर्मदा के दूसरे तटपर व्यास-आश्रम है। व्यासनारायण शंकर की मूर्ति है।

देव कुण्ड— डिंडोरी से मण्डला जाने वाली सड़क पर १४ मील पर सक्का ग्राम है। दो मील पर **खरमेर** नदी नर्मदा में मिलती है। पास देव नाले का कुण्ड है। इस देवकुण्ड में ४० फुट ऊपर से जल गिरता है। यहाँ कई गुफाएं हैं।

महो गांव— मण्डला से आने वाली पक्की सड़क पर ९ मील दूर **महोगांव** है। जमदग्नि की कामधेनु यहीं रहती थी। **बढनेर** नदी के किनारे यह गाँव है।

हृदय नगर— मण्डला के सामने नर्मदा के दूसरे तट पर बंजर नदी नर्मदा में मिलती है। संगम से ५ मील दूर हृदय नगर है। यहाँ **सुरपन** और **मटियारी** नामक नदियां बंजर नदी में मिलती हैं। यह त्रिवेणी कहलाती है। इसे पहले विष्णुपुरी कहते थे। अनेक मन्दिर और पक्के घाट हैं।

मधुपुरा घाट—या **घोड़ा घाट**:—संगम से ८ मील दूर नर्मदा के ऊपर की ओर स्थित है। यहाँ मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम है। ऋषि मार्कण्डेय ने यहाँ तप किया था। मार्कण्डेयेश्वर का मन्दिर यहाँ है भगवान् राम के अश्वमेध का घोड़ा यहाँ आया था। इसलिए घोड़ाघाट नाम पड़ा।

योगिनी गुफा— मधु पुरा से ३ मील पूर्व की ओर है। योगिनी नें उसे गुप्त कर दिया। शत्रुघ्न के आग्रह पर लौटा दिया।

नन्दिकेश्वर घाट— जबलपुर जिले में नर्मदा के उत्तर तट पर है। लुकेश्वर से २० मील है। मण्डला-जबलपुर सड़क से नर्मदा तट के ग्राम पदमीघाट तक जा सकते है। वहाँ से ५ मील लुकेश्वर है। यहाँ थोड़ी दूर पर हिंगना नदी नर्मदा में मिलती है।

सिंघर पुर—देवगाँव से थोड़ी दूर उत्तर तट पर 'लिंगाघाट' ग्राम है। वहाँ से थोड़ी दूर दक्षिण तट पर सिंघरपुर ग्राम है। शृंगी ऋषि का स्थान है।

जबल पुर—मध्य रेलवे का प्रसिद्ध स्टेशन है। यहां जाबालि ऋषि का आश्रम था। इस का पुराना नाम जाबालि पत्तन है। अब यहाँ आश्रम का कोई चिह्न नहीं है।

तिलवाराघाट—जबलपुर से ६ मील दूर नागपुर जाने वाली सड़क पर है। तिलभाण्डेश्वर का मन्दिर है।

राम नगर—तिलवारा घाट से एक मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर मुकुट क्षेत्र है।

त्रिशूल घाट—रामनगर से लगभग दो मील पर नर्मदा के दोनों तटों पर क्रमशः त्रिशूल घाट तथा त्रिशूल तीर्थ हैं।

लमेटी घाट—त्रिशूलघाट से एक मील आगे दोनों तटों पर यह घाट है। उत्तर तट पर सरस्वती नदी का संगम है। इन्द्र ने यहाँ तपस्या की इन्द्रेश्वर शिवमन्दिर है।

गोपालपुर घाट— लमेटी घाट से १ मील आगे नर्मदा के उत्तर तट पर है। तीन मील पर तेवर ग्राम है। त्रिपुरी कहलाता था। दो मील पर करनबेल के खण्डहर हैं।

भेडा घाट— गोपालपुर घाट से ३ मील पर है। जबलपुर से १० सील स्टेशन भी है। पक्की सड़क है। भृगु ऋषि की तपोभूमि है। भृगु आश्रम है। वामन गंगा का संगम है। छोटी पहाड़ी पर गौरी शंकर मन्दिर है। ४० फुट ऊपर संगमरमर की चट्टानों पर प्रपात गिरता है।

जलेरी घाट—भेडा घाट से १० मील दूर यह घाट है। नर्मदा के बीच में पर्वत को तली फोड़ कर शंकर जी की जलहरी बनी है। यह कुण्ड बन गया है।

बेलपठार घाट— जलेरी घाट से ४ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर है।

ब्रह्माण्ड घाट— मध्य रेलवे में जबलपुर से इटारसी की ओर ६२ मील पर करेली स्टेशन है। करेली सेसागर जाने वाली सड़क पर,करेली से ६ मील दूर, नर्मदा तट पर ब्रह्माण्ड घाट है। थोड़ी दूर पर दो धारायें हो गई हैं। द्वीप में कुछ आगे **सप्तधारा तीर्थ** है। गिरते समय कई धारायें हो गई हैं। ब्रह्मा जी का यज्ञकुंड है। यज्ञ भस्म निकलती है। उत्तर तट पर ब्रह्माण्ड ग्राम में पक्के घाट हैं।

पिठेरा गरारु— प्रवाह के ऊपर की ओर ब्रह्माण्ड घाट से लगभग १४ मील पर दक्षिण तट पर गरारु ग्राम है। सामने तट पर पिठेरा ग्राम है। प्राचीन मन्दिर अनेक हैं।

पिपरिया घाट—गरारू से ४ मील दूर नर्मदा के दक्षिण तट पर है। शंकर की मूर्ति ५ फुट से भी ऊँची है।

हरणी संगम—पिपरिया घाट से ६ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर हरणीनदी का संगम है। यहाँ संगमेश्वर और हरणेश्वर मन्दिर हैं। सामने सांकल ग्राम है। आद्य शंकर भी यहाँ आये थे।

बुधघाट—यहाँ से २ मील बुध ग्रह की तपोभूमि है। बुधेश्वर मन्दिर है।

ब्रह्मकुण्ड—यहाँ से २ मील दक्षिण तट पर ब्रह्मकुण्ड है। कुण्ड में देव शिला है।

सहस्रावर्त तीर्थ—यहाँ से ५ मील दूर उत्तर तट पर स्थित है। अब इसका नाम सुनाचार घाट है।

सौगंधिक तीर्थ—यह १ मील पर है। आजकल सरीघाट कहलाता है।

सप्तर्षि वन—सहस्रावर्त्त तीर्थ से एक मील पर है। यह प्राचीन ब्रह्मोदतीर्थ है।

अंडिया घाट—प्रवाह की ओर ब्रह्मकुण्ड से ५ मील दूर उत्तर तट पर है। मन्मथेश्वर शिव मन्दिर है।

शांकरी गंगा संगम—अंडिया घाट से ५ मील दूर उत्तर तट पर बेलथारी ग्राम है। यहां बलि की यज्ञ वेदी है। यज्ञ भस्म निकलती है।

दक्षिण तट पर शांकरी गंगा नदी का संगम है। यहाँ पर आद्य शंकराचार्य आये थे।

कश्यप आश्रम—बेलथारी ग्राम से १६ मील दूर उत्तर तट पर स्थित है। गाडर बाडा स्टेशन से रिछावर घाट तक सड़क है। रिछावर घाट से शुक्लघाट १ मील है। यहाँ ऋषियात्रा काल में कश्यप आश्रम था। अब समाप्त हो गया है।

शक्कर नदी का संगम—शुक्लघाट से आगे एक मील पर दक्षिण तट पर शोकलपुर ग्राम है। यहाँ ही शक्कर नदी का संगम है। संगमेश्वर मन्दिर है।

जनकेश्वर तीर्थ—शोकलपुर से ४ मील दूर उत्तर तट पर अंघोरा ग्राम है। यहाँ ही जनकेश्वर तीर्थ है। कहा जाता है यहाँ राजा जनक ने यज्ञ किया था।

धर्मशिला—अंघोरा ग्राम से १६ मील पर है। ग्राम के पास जमुना घाट में नर्मदा के कुण्ड में ४० फुट से अधिक लम्बी धर्मशिला है।

दुग्धी नदी संगम—डेमावर से २ मील आगे दक्षिण तट पर दूधी नदी का संगम है। इसे बगल दरियाव भी कहते हैं।

साईं खेडा—गाडर वाड़ा स्टेशन से साईं खेड़ा कुछ मील दूर है। दूधी नदी के किनारे बसा है। गाडरवाडा से पक्की सड़क भी आती है।

केउधान घाट—दूधी संगम से लगभग १ मील उत्तर तट पर खाँड नदी का संगम है। उससे आधा मील आगे केउधान घाट है। शुद्ध नाम केतुधान घाट है।

हास्यांग बाद—होशंगाबाद का हास्यांगबाद संस्कृतीकरण है। मध्य रेलवे की बम्बई-दिल्ली लाइन पर इटारसी से १२ मील दूर हास्यांगबाद है। प्रसिद्ध नगर है। स्टेशन से आधामील दक्षिण तट पर है किनारे अनेकों मन्दिर हैं। सुन्दर घाट हैं।

तवानदी का संगम—होशंगाबाद से ६ मील पर बान्द्राभान है। उत्तर तट पर पर्वत श्रेणी में मृगनाथ का स्थान है। दक्षिण तट पर तवा नदी का संगम है।

सूर्य कुण्ड—बान्द्राभान से ६ मील दूर नर्मदा के दक्षिण तट पर सूर्य कुण्ड है।

गौघाट—सूर्य कुण्ड से सीधे मार्ग से लगभग दस मील दूर वृद्ध रेवा पर गौ घाट है। कुछ ऊपर नर्मदा की दो धारायें हो गई हैं। छोटी धारा को वृद्ध रेवा कहते हैं। गौघाट पर १२ योगिनियों तथा दो सिद्धों के स्थान हैं।

नाँदनेर—नर्मदा की मुख्य धारा के उत्तर तट पर प्राचीन मन्दिरों के खण्डहर है। **महाकालेश्वर तथा मनः कामेश्वर के शिव मन्दिर हैं।**

भृगु कछ आश्रम—नाँदनेर से ८ मील दूर उत्तर तट पर है। कहा जाता है महर्षि भृगु ने यहाँ गायत्री पुरश्चरण किया था। इसे भार कछ भी कहते हैं।

मारू नदी का संगम—भृगुकछ से दो मील दूर पर मारू नदी का संगम है। पांडवों की तपोभूमि है। इसलिए पांडुद्वीप कहाता है। यहाँ पामली नामक घाट है।

पलकमती नदी का संगम—पाण्डुद्वीप से १ मील पर नर्मदा के दक्षिण तट पर पलकमती नदी का संगम है। वनवास के समय पांडवों ने यहाँ यज्ञ किया था।

नारदी गंगा का संगम—पामली घाट से दो मील पर ईश्वर पुर है। मध्य रेलवे की इटारसी-इलाहाबाद लाइन पर इटारसी से ३० मील दूर सोहागपुर स्टेशन है। सोहागपुर से ईश्वरपुर तक सड़क है। ईश्वरपुर से मोतल सिर ४ मील दूर दक्षिण तट पर है। यहाँ नर्मदा में नारदी गंगा मिलती है। नारद जी की तपोभूमि तथा यज्ञभूमि है।

वरुणा नदी का संगम—मोतलसिर से ३ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर वरुणा नदी का संगम है। सिंगलवाडा ग्राम तीर्थ हैं। वारुणेश्वर मन्दिर जीर्ण हो गया है।

आकाशदीप तीर्थ—सिंगलवाडा से २ मील पर तेदोनी नदी उत्तर तट पर नर्मदा में मिलती है। इसे ही आकाशदीप तीर्थ कहा जाता है। पाण्डवों ने यहाँ यज्ञ किया था और कार्तिक में आकाशदीप लटकाये थे।

कुब्जा संगम—तेदोनी संगम से ५ मील दूर दक्षिण तट पर माछा ग्राम है। यहाँ कुब्जा नदी का संगम है। इसे रामघाट तथा बिल्वाभ्रक तीर्थ भी कहते हैं। राजा रन्तिदेव ने यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ किया था। कुब्जा की यह तपोभूमि कही जाती है। मन्दिर हैं।

अंजनी संगम—माछा से ५ मील दूर दक्षिण तट पर अंजनी नदी

का संगम है। संगम पर गौरी तीर्थ है। इसे शाण्डिलेश्वर तीर्थ भी कहते हैं। इन्द्र की यहाँ ब्रह्महत्या दूर हुई थी। महर्षि शाण्डिल्य ने यहाँ यज्ञ तथा तप किया था। इटारसी से ४१ मील पर पिपरिया स्टेशन है। पिपरिया से यहाँ तक पक्की सड़क है।

गोमुखा घाट—टिघरिया-होशंगाबाद से प्रवाह की ओर १७ मील है। यहाँ ही गोमुखा घाट है। गोकर्णेश्वर तथा अन्य कई मन्दिर हैं।

हत्याहरण नदी का संगम—टिघरिया से ४मील दूर दक्षिण तट पर कुलेरा या कुन्तीपुर घाट है। यहाँ ही हत्याहरण नदी का संगम है। लक्ष्मी कुण्ड है। माता कुन्ती देवी के साथ पाण्डवों ने यहाँ निवास किया था।

भीम कुण्ड—कुलेरा से एक मील दूर आंवरीघाट है। नर्मदा के मध्य में पहाड़ी टीले पर भीमकुण्ड है। पाण्डव यहाँ भी कुछ काल रहे थे। मध्य रेलवे की बम्बई-दिल्ली लाइन पर इटारसी से १६ मील पूर्व धर्मकुण्डी स्टेशन है। वहां से यहां के लिए मार्ग है। धर्मकुण्डी से यह १४ मील है।

इंदाना नदी संगम—आँवरी घाट से ३½मील दूर इंदाना नदी नर्मदा से दक्षिण तट पर मिलती है। यहाँ चतुर्मुख महादेव का मन्दिर है।

गंजाल नदी का संगम—इंदाना संगम से २० मील दूर गोंदागांव है। धर्मकुण्डी से २३ मील और इटारसी से ३६ मील पूर्व टिमरनी स्टेशन है। वहां से यह स्थान १४ मील है।पक्की सड़क है नर्मदा के दक्षिण तट पर गंजाल नदी का संगम है। गंजाल में शाहजपुरी पत्थर मिलता है जिन पर वृक्षादि के चित्र होते है। संगम पर गंजालेश्वर मन्दिर है।

गोनी नदी संगम—गोंदा गांव से १२ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर गोनी नदी मिलती है। यहां जमदग्नि ऋषि ने तप किया था।

बागदी संगम—गोनी संगम से २ मील पर मेलाघाट है। मेलाघाट से १ मील पर नेमावर नगर है। उसके सामने दक्षिण तट पर हँडिया नगर है। हरदा स्टेशन से हंडिया तक १३ मील लम्बी पक्की सड़क है। कुबेर ने यहां तप किया था। जमदग्नि ऋषि ने भी यहां तप किया था। यहां नर्मदा में सूर्यकुण्ड है। जो गरमी में दीखता है। इसे नर्मदा का नाभिस्थान कहा जाता है। हंडिया नेमावर नगरों से ६ मील दूर उत्तर तटपर बागदी संगम है। यह कालभैरव की तपोभूमि है।

दाँतोनी संगम—बागदी संगम से ८ मील दूर, नर्मदा के उत्तर तट

पर दान्तोनी नदी का संगम है। हरणेश्वर, शिव तथा कालभैरव के मन्दिर हैं। कालभैरव ने यहां मृगकपधारी को वरदान दिया था, ऐसा पौराणिक आख्यान है।

पुनघाट—फतहगढ से ११ मील नर्मदा के दक्षिण तट पर खंडवा से ४४ मील पर खिरकिया स्टेशन है। वहां से पुन घाट १२ मील है। स्टेशन से यहां तक सड़क है। यहां गौतमेश्वर का प्राचीन मन्दिर है गौतम ऋषि की तपोभूमि है।

धर्मपुरी—पुनघाट के सामने उत्तर तट पर धर्मपुरी है। पास ही नर्मदा में एक छोटे टापू पर पत्थरों के दो ढेर हैं। ये भीमसेन की कांवर कहे जाते हैं। धर्मपुरी से १ मील पर **मानधारा** का नर्मदा में प्रपात है।

(यही धर्मपुरी और पुन घाट हैं जिनके विषय में असत्य, काल्पनिक कह कर अज्ञात जीवनी को कल्पित उपन्यास लिखने तक का साहस किया गया। 'हा ! हन्त ! हन्त ! हता मनस्विता'। काल भैरव को भी पढ़िये)

कालभैरव की गुफा—धर्मपुरी से १३ मील पर जंगल मार्ग से वारंगा नाले के पास कालभैरव का स्थान है। नर्मदा तट से यह स्थान ५ मील दूर है। यहाँ पर्वत की तली में कालभैरव की गुफा है।

मान्धाता ओंकारेश्वर—पश्चिमी रेलवे की अजमेर-खण्डवा लाइन पर खंडवा से ३७ मील पहले ओंकारेश्वर रोड स्टेशन है। यह स्थान इन्दौर से ४७ मील है। यहाँ से ओंकारेश्वर ७ मील दूर है। स्टेशन से ओंकारेश्वर-मान्धाता के पास तक सड़क है। मोटर बस चलती है। बैल-गाड़ी भी मिलती है।

यहाँ दो ज्योतिर्लिङ्ग हैं ओंकारेश्वर और अमलेश्वर। ज्योतिर्लिंग १२ की गिनती में यह एक ही गिना जाता है।

नर्मदा के बीच में मान्धाता टापू पर ओंकारेश्वर लिंग है। इस द्वीप पर महाराजा मान्धाता ने ओंकार की उपासना की थी। शंकर ओंकार है ओंकार भी शंकर परमात्मा है महाराजा मान्धाता की साधना के कारण इसका नाम मान्धातातीर्थ पड़ गया। मान्धाता टापू का क्षेत्रफल लगभग १ मील है। यह एक पहाडीहै, जो एक ओर कुछ ढालू है। इसके एक ओर नर्मदा की प्रधान धारा बहती है, जैसे व्यासेश्वर (व्यासाश्रम) के दोनों ओर दो धारायें हो गई हैं। दूसरी ओर की धारा को **कावेरी** कहते हैं। द्वीप के अंत में यह कावेरी धारा नर्मदा में ही मिल जाती है। इस मान्धाता

द्वीप का आकार 'ॐकार' से मिलता है इसका चित्र-विहंगम भी ऐसा ही छपा है।

विष्णुपुरी—मोटर या बैलगाड़ी जहां यात्रियों को छोड़ती है उसे विष्णुपुरी कहते हैं। यहाँ पक्का घाट बना है। नौका से धारा पार करके मान्धाताद्वीप में पहुँचते हैं। उस ओर भी पक्का घाट है। घाट के पास कोटि तीर्थ या चक्र तीर्थ हैं। स्नान करके ऊपर ओंकारेश्वर मन्दिर में जाते हैं। मन्दिर तट पर ही ऊँचाई पर है। इसकी परिक्रमा तीन दिन में की जाती है। पहले दिन की परिक्रमा में ४० दर्शनीय स्थान तथा मन्दिर हैं। दूसरे दिन की परिक्रमा में ५० स्थानों का दर्शन किया जाता है।

ब्रह्मपुरी—तीसरे दिन की यात्रा में ब्रह्मपुरी की यात्रा की जाती है। विष्णुपुरी के पास गोमुख से बराबर जल गिरता रहता है। नर्मदा में यह जल जहाँ गिरता है, उसे **कपिल संगम तीर्थ** कहते हैं। यह धारा गोकर्ण और महाब्लेश्वर लिंगों पर गिरती है। जल त्रिशूल भेद कुण्ड से आता है। इन्द्रेश्वर, व्यासेश्वर, अमलेश्वर के मन्दिर हैं।

अमलेश्वर—अमलेश्वर भी ज्योतिर्लिंग है। अमलेश्वर प्रदक्षिणा में वृद्धकालेश्वर, वाणेश्वर मुक्तेश्वर, और तिल भाण्डेश्वर के मन्दिर हैं। १३ देवों के और मन्दिर हैं।

मुख्य स्थान—मुख्य मन्दिर ओंकारेश्वर जी का है। द्वीप पर ही **कावेरी संगम** के पास गोरी सोमनाथ का मन्दिर है। कहते हैं यहाँ कुबेर नें तपस्या की थी।

पशुपति नाथ—कावेरी पर पशुपतिनाथ का मन्दिर है।

च्यवनाश्रम—कावेरी संगम से ४ मील पश्चिम में च्यवनाश्रम है।

सप्त मातृका तीर्थ—कुबेर भण्डारी से लगभग तीन मील नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थित है। ओंकारेश्वर से नौका से आते हैं। **वाराही, चामुण्डा, ब्रम्हाणी, वैष्णवी, इन्द्राणी, कौमारी, और माहेश्वरी** सात माताओं के मन्दिर हैं। सात मात्रा कहते हैं।

५२ भैरवों के मन्दिर—**६४ योगिनियों** व सप्त मातृका या सात मात्रा से लगभग ७ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट से लगभग ३ मील सीता वाटिका है। कहते हैं यहाँ वाल्मीकि ऋषि का आश्रम था। श्री जानकी जी ने वास किया था। यहाँ ६४ योगिनियों और ५२ भैरवों की विशाल मूर्त्तियाँ हैं। पास में सीताकुण्ड, रामकुण्ड और लक्ष्मणकुण्ड हैं।

सीता वाटिका से सघन जंगल के रास्ते यह स्थान ६ मील दूर है। ओंकारेश्वर रोड स्टेशन से २० मील है। और उसके पास के स्टेशन सनावद से १६ मील दूर है। मध्य रेलवे की बम्बई—दिल्ली लाइन पर खंडवा से २१ मील पर बीर स्टेशन है। वहां से १५ मील पुनासा गांव तक पक्की सड़क है। आगे ५ मील पैदल मार्ग है।

धावडी घाट—यहां नर्मदा का सबसे बड़ा प्रपात है। लगभग ५० फुट ऊंचे से जल गिरता है। यहाँ आस-पास वन हैं। प्रपात के नीचे कुण्ड है। इस कुण्ड से बार्णलिग निकलते हैं। अधिकांश लोग नर्मदेश्वर लिंग यहां से ले जाते हैं। अनेक वार बहुत सुन्दर लिंग मिलते हैं।

कोटेश्वर—ओंकारेश्वर से ४ मील दूर नर्मदा के प्रवाह की दिशा में उत्तर तट पर कोटेश्वर महादेव का मन्दिर है।

नीलगढ़ तीर्थ—ओंकारेश्वर से १ मील पर नीलगढ़ तीर्थ है। यहां करज्जेश्वर महादेव का मन्दिर है। ओंकारेश्वर से उधर का मार्ग वन पर्वत का है।

नागेश्वर कुण्ड—ओंकारेश्वर स्टेशन से नर्मदा पुल पार करने के बाद बडवाहा स्टेशन मिलता है। यह एक छोटा नगर है। यहाँ चोरल नदी के किनारे जयन्ती देवी का मन्दिर है। नगर में नागेश्वर कुण्ड है। उसके बीच में शिव मन्दिर है। नगर से नर्मदा घाट दो मील है।

भस्म टीला—बड़वाहा स्टेशन से २ मील नर्मदा घाट तक जाकर या ओंकारेश्वर रोड़ से १ मील नर्मदा का रेलवे पुल पार करके किनारे-किनारे जाने पर काड़ा ग्राम के पास यह स्थान है। कहा जाता है यहाँ भूमि से यज्ञ-भस्म निकलती थी किन्तु कई वार नर्मदा की वाढ़ का जल ऊपर बह चुका है। इससे अब यहाँ कुछ नहीं।

शुक्र ताल में एक शिव का मन्दिर आधा लगभग १२-१५ फुट रेत में दबा हुआ आज भी खड़ा है। पास में आमों का बगीचा है।

विमलेश्वर—बड़वाड़ा स्टेशन से ५ मील, और भस्म टीला वाले घाट से ३ मील दूर यह विमलेश्वर मन्दिर है। पास में टीले पर चन्द्रेश्वर महादेव का मन्दिर है।

गोमुख घाट—विमलेश्वर से ५ मील दूर नर्मदा के दक्षिण तट पर नीलगंगा कुण्ड है, जिससे गोमुख द्वारा जल गिर कर नर्मदा में आता है। वहाँ नील कण्ठेश्वर मन्दिर है।

गंगेश्वर—गोमुख से लगभग ३ मील दूर नर्मदा के मध्य में एक पक्के चबूतरे पर गंगेश्वर महादेव हैं। यहां किनारों पर तो नर्मदा पश्चिम को बहती है किन्तु चबूतरे के पास धारा पूर्व की ओर है। यहाँ मातंग ऋषि का आश्रम था।

खुलार संगम—गंगेश्वर से एक मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर खुलार नदी का संगम है। उसके पास दारकेश्वर मन्दिर है।कहते हैं कृष्ण-चन्द्र जी के सारथी दारुक ने यहाँ शिव की अराधना की थी। मन्दिर में अर्ध नारी नटेश्वर की मूर्ति है, मन्दिर के पास गुफा है।

मर्दाना—गंगेश्वर से लगभग ११ मील दूर नर्मदा के दक्षिण तट पर यह स्थान है। राजा मयूरध्वज की यहाँ राजधानी बतायी जाती है। मयूरेश्वर शिवमन्दिर है। बड़वाहा से यह स्थान लगभग २० मील है।

पिप्पलेश्वर—मर्दाना से ६मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर पिप्पले-श्वर मन्दिर है।

मण्डलेश्वर—पिप्पलेश्वर (पीतामली गाँव) से ११ मील दूर है। यहाँ गुप्तेश्वर महादेव और श्री रामचन्द्र जी के मन्दिर हैं। बडवाहा या खरगोल से यहाँ तक पक्की सड़क है।

माहिष्मती पुरी—महेश्वर :—पश्चिम रेलवे की अजमेर-खण्डवा लाइन पर ओंकारेश्वर रोड के पास बडवाहा स्टेशन है। बडवाहा-महेश्वर से ३५ मील दूर है। पक्की सड़क है। मोटर बसें चलती हैं।

महेश्वर मध्य भारत का प्रसिद्ध नगर है। नर्मदा के उत्तर तट पर बसा है। यहाँ अहिल्या बाई की समाधि है। प्राचीन नाम माहिष्मती पुरी है। यह कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन की राजधानी थी। जगद्गुरु शंकरा-चार्य से शास्त्रार्थ करने वाले मण्डन मिश्र भी यहाँ ही रहते थे। नगर के पश्चिम मतंग ऋषि का आश्रम तथा मातंगेश्वर मन्दिर है। मन्दिर के समीप भर्तृहरि गुफा है। नर्मदा में द्वीप के मध्य बाणेश्वर मन्दिर है। महेश्वर की गणना पंचपुरियों में है। कहा जाता है—'महिष्मान् नामक चन्द्रवंशी नरेश ने इसे बसाया था। महिष्मान् के वंश में ही सहस्रार्जुन हुए। सहस्रार्जुन का यहां समाधि मन्दिर है। महेश्वर लिंग नर्मदा के मध्य में है, केवल गर्मियों में देखा जा सकता है। स्वाहा देवी की भी मूर्ति है। संगम पर सप्त मातृकाओं का मन्दिर है। महिलेश्वर आदि अनेक

मन्दिर हैं । माहिष्मती गुप्त काशी कही जाती है । काशी के समान इसका महत्व है ।

महेश्वरी संगम—थोड़ी दूर पर महेश्वरी नदी का संगम है। ज्वालेश्वर मन्दिर है ।

सहस्रधारा—महेश्वर से तीन मील आगे सहस्रधारा स्थान है । यहाँ नर्मदा चट्टानों के मध्य से बहती है । गरमी में उसकी धारा अनेक धाराओं में बंट जाती है, इससे इस स्थान का नाम सहस्रधारा है ।

माण्डव गढ़—पश्चिम रेलवे की अजमेर-खंडवा लाईन पर इन्दौर-से १३ मील दूर महू स्टेशन है। महू से माण्डव गढ़ ३४ मील है। धार-नगर से २२ मील है । दोनों स्थानों तक पक्की सड़क है। महू से मोटर बस जाती है । माण्डव गढ़ पर्वत के ऊपर है । यहाँ रेवा कुण्ड है । अनेक मन्दिर हैं । आल्हा के हाथ की सांग गड़ी है ।

पगारा—माण्डव गढ़ से नर्मदा प्रवाह के ऊपर की ओर १० मील पर है। नर्मदा जी की धारा यहां से ७ मील है। वक्रतुण्ड गणेश का मन्दिर है।

धर्मपुरी—पगारा से ८ मील नर्मदा के उत्तर तट पर है। यहाँ इस नाम का द्वीप भी नर्मदा में है।

कुब्जानदी—धर्मपुरी से थोड़ी दूर पर कुब्जा नदी का संगम होता है । कुब्जा कुण्ड है । बिल्वामृत तीर्थ है । कहा जाता है यहां **दधीचि ऋषि** का आश्रम था । महर्षि ने देवताओं को अपनी अस्थियाँ दी थीं ।

साटक संगम—धर्मपुरी से ७ मील नर्मदा के दक्षिण तट पर खल घाट है । यह ब्रह्मा का तप: स्थल कहा जाता है । यहाँ यज्ञ कुण्ड से कपिल गौ प्रकट हुई थी । इस स्थान को कपिल तीर्थ कहते हैं। पास ही साटक नदी का संगम है । संगम के पास नर्मदा में ६० शिवलिंग हैं ।

कारम और बूटी का संगम—खल घाट से तीन मील नर्मदा के उत्तर तट पर जलकोटि ग्राम है। इस ग्राम के पास नर्मदा में कारम और बूटी नाम की नदियाँ मिलती हैं। इसे त्रिवेणी तीर्थ कहते हैं।

कसरोद—धर्मपुरी से २६ मील पर कसरोद है। दक्ष प्रजापति के पुत्रों ने यहां सहस्रयज्ञ किये थे । इसे सहस्रयज्ञ तीर्थ भी कहते हैं ।

बोधवाडा—गांगली से ४ मील उत्तर तट पर है। देव पथ लिंग है। देवताओं ने यहाँ से नर्मदा-परिक्रमा आरम्भ की थी।

चिखलदा—बोधवाडा से २ मील उत्तर तट पर है। सप्त ऋषियों ने यहाँ तप किया था।

राजघाट—चिखलदा के सामने नर्मदा के दक्षिण तट पर है। अनेक मन्दिर हैं। इसे वावण गंगा और रोहिणी तीर्थ भी कहते हैं।

कोटेश्वर--चिखलदा से सात मील है। नर्मदा के उत्तर तट पर बागली नदी का संगभ है, संगम के पास कोटेश्वर तीर्थ है।

मेघनाद तीर्थ—२ मील है। दोनों ओर अनेक शिवलिंग हैं। उनमें से एक मेघनाद द्वारा स्थापित है। पास ही कुम्भकर्ण और रावण के तप के स्थान हैं।

गोयद नदी का संगम--दक्षिण तट पर १ मील है। इसे **मनोरथ** तीर्थ कहते हैं।

धर्मराय तीर्थ—उत्तर तट पर ५ मील है। धर्मराज ने यहाँ यज्ञ किया था। धर्मेश्वर मन्दिर है।

हिरण फाल तीर्थ—३ मील पर है। मार्ग घोर जंगल का है। नर्मदा चट्टानों के बीच बहती है। धारा संकरी है, हिरन फांद सकता है। कहा जाता है कि हिरण्याक्ष ने यहां तप किया था।

शूल पाणि—हिरण फाल से पैदल मार्ग है। अथवा चाणोद से नौका द्वारा है। बहुत प्रख्यात तीर्थ है। घोर वन में स्थित है। मेले के समय यात्री अधिक आते हैं। महा शिवरात्रि पर चैत्र शुक्ला एकादशी से अमावस्या तक यहां मेला लगता है। अन्य समय बाघ आदि का भय रहता है। दूसरा नाम **सुर पाणेश्वर** है। ठहरने के लिए धर्मशालाएं हैं। राजघाट से ही शूलपाणि का वन आरम्भ हो जाता है। देवली से २४ मील दूर दक्षिण तट पर भृगु पर्वत पर स्थित है। अन्य मन्दिरों के साथ पाण्डवों के छोटे मन्दिर हैं। शंकर ने आघात कर सरस्वती नदी प्रकट की थी जो नर्मदा में मिल गयी है। त्रिशूल आघात के स्थल पर कुण्ड है। इसे **चक्रतीर्थ** कहते हैं। दीर्घतमा ऋषि का यहाँ उद्धार हुआ, वह भी कुल सहित। काशीराज चित्रसेन ने यहां महादेव के गण का पद पाया।

भृगुतुंग पर्वत— शूलपाणि मन्दिर के दक्षिण भृगुतुंग पर्वत है। परिक्रमा करके देवगंगा होते हुए रुद्रकुण्ड मिलता है।

मार्कण्डेय गुफा— पास में मार्कण्डेय गुफा है। यहाँ मार्कण्डेय नें तप किया था।

रणछोड़ जी का मन्दिर—१ मील आगे दक्षिण तट पर रणछोड़ जी का प्राचीन मन्दिर है। मूर्ति विशाल है। मन्दिर जीर्ण है।

कपिल तीर्थ— सामने उत्तर तट पर है। यहाँ कपिल मुनि ने तप किया था। कपिलेश्वर मन्दिर है।

मोक्ष गंगा— शूलपाणि से ४ मील दक्षिण तट पर मोखड़ी है। उस के पास मोक्ष गंगा नदी का संगम है। नर्मदा में छोटा प्रपात है। चाणोद से नौका द्वारा शूलपाणि आने वालों को पौना मील चलकर यह प्रपात मिलता है। आगे चलकर नौका में बैठकर सुरपाणेश्वर जा सकते हैं। प्रपात के समीप पौन मील के भीतर नौका नहीं चल पाती।

- **बड़ गाँव**— मोखडी के सामने कपिलतीर्थ से ४ मील उत्तर तट पर है।

पिपरिया—मोखडी से ४ मील उलूक तीर्थ। उलूक से ५ मील पिपरिया है। पिप्पलाद ऋषि की तपोभूमि है।

मार्कण्डेय आश्रम— पिपरिया से १ मील नर्मदा के उत्तर तट पर गमोण तीर्थ है। यहाँ भीम कुल्या नदी का संगम है। मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम यहाँ था। मार्कण्डेय स्थापित मार्कण्डेश्वर महादेव का मन्दिर है। उत्तर तट का शूलपाणि वन यहाँ समाप्त होता है।

चाणोद— पश्चिम रेलवे की जम्बूसर से उदयपुर जाने वाली लाइन के डभोई स्टेशन से चाणोद तक गाड़ी जाती है। स्टेशन से नगर लगभग आधा मील दूर नर्मदा किनारे हैं। अनेक मन्दिर और चण्डादित्य, चण्डिका देवी, चक्रतीर्थ, कपिलेश्वर, ऋणमुक्तेश्वर, पिंगलेश्वर, नन्दाह्रद सप्त तीर्थ हैं, पूर्णिमा को मेला लगता है।

कर्णाली—ओर नदी को नर्मदा-संगम के पास पार करना पड़ता है। लगभग एक मील चाणोद से ऊपर की ओर है। ओर-नर्मदा संगम को लोग पश्चिम प्रयाग भी कहते हैं। बहुत से नवीन मन्दिर हैं। प्राचीन सोमनाथ का है। कुबेर मन्दिर को कुबेर भण्डारी कहते हैं।

सीनोद—डभोई से ४० मील पर है। कर्णाली से थोड़ी दूर है। नर्मदा के उत्तर तट पर है। शिवपुरी भी कहते हैं।

व्यासाश्रम— चाणोद से ५ मील नीचे प्रवाह की ओर है। नर्मदा

के मध्य में टापू है। पास में बरकाल कसबा है। मोटर रोड है। रेलवे स्टेशन तक मोटर चलती है। दूसरी ओर नर्मदा पर सामने शुकेश्वर तीर्थ है। यहाँ बलराम जी ने भी तप किया था। यज्ञ वट है। व्यास जी का आश्रम तथा व्यासेश्वर मन्दिर है। कहा जाता है व्यास जी ने अपने तपोबल से एक धारा आश्रम के दक्षिण बहा दी थी। यही स्थान नर्मदा का द्वीप है।

परिशिष्ट—२

आबू के स्थान

आबू—पश्चिम रेलवे की अहमदाबाद—दिल्ली लाइन पर आबू रोड प्रसिद्ध स्टेशन है। स्टेशन से आबू पर्वत १७ मील है। पक्की सड़क है। मोटर बस चलती है।

आबू शिखर १४ मील लम्बा और दो से चार मील तक चौड़ा है। कहा जाता है यह आबू या अबुर्द गिरि हिमालय का पुत्र है। 'हिमवत्सुत-मर्बुदम्'' महाभारत वनपर्व तीर्थयात्रा अ० ८२ श्लोक ५५। महर्षि वसिष्ठ का यहां आश्रम था। मथुरा से द्वारका जाते हुए भगवान् कृष्ण भी यहां पधारे थे।

आबू पर्वत पर जाने के दो मार्ग हैं। एक नया, दूसरा पुराना। पुराने मार्ग में मानपुर से आगें हृषीकेश का मन्दिर मिलता है। कहते हैं यहां कृष्णचन्द्र ने रात्रि में विश्राम किया था। इस स्थान को द्वारिका द्वार कहते हैं।

चन्द्रावती नगर—द्वारका द्वार के आस-पास चन्द्रावती नगर के खण्ड-हर हैं। मन्दिर के पास दो कुण्ड हैं।

अम्बरीष आश्रम—थोड़ा आगे अम्बरीष आश्रम है। अम्बरीष ने यहां तप किया था। कुछ आगे एक चट्टान पर बहुत से मनुष्य एवं पशुओं के पद-चिन्ह हैं।

यहाँ से लौट कर फिर नवीन मार्ग से आबू पर जाना पड़ता है। चार मील आगे जाने पर पर्वत की चढ़ाई आरम्भ होती है।

मणि कर्णिका तीर्थ—मार्ग में धर्मशालाएँ हैं। वहाँ से कुछ आगे मणिकर्णिका तीर्थ है। यहाँ यात्री स्नान करते हैं। कर्णेश्वर शिवमन्दिर है। सूर्य कुण्ड भी पास ही है।

वसिष्ठ आश्रम—तीन मील और आगे जाकर लगभग ७५० सीढ़ी नीचे उतरनें पर एक कुण्ड है, उसमें गोमुख से जल गिरता रहता है। यहां मन्दिर में वसिष्ठ एवं अरुन्धती जी की मूर्ति है। यहां वसिष्ठ जी ने तप किया था।

गौतम आश्रम—वसिष्ठ आश्रम के सामने ३००सीढ़ी नीचे उतरकर नाग कुण्ड है। यहाँ नाग पंचमी को मेला लगता है। महर्षि वसिष्ठ की ध्यानस्थ मूर्ति हैं। पास ही बछड़े के साथ कामधेनु तथा अर्बुदा देवी की मूर्त्तियाँ हैं। कहते हैं यहाँ महर्षि गौतम का आश्रम था। मन्दिर में न्याय-प्रणेता महर्षि गौतम की मूर्ति है। यहाँ तक आने का मार्ग कठिन है। थोड़े ही यात्री यहाँ आते हैं। ऋषि के लिये कुछ दुर्गम नहीं था।

पंगु तीर्थ—गोमुख से लौट कर फिर नीचे उतरना पड़ता है। आबू के सिविल स्टेशन से एक मील उत्तर पहाड़ पर देलबाड़ा में पाँच जैन मन्दिर हैं। पास ही कुंवारी कन्या का मन्दिर है। थोड़ी दूर आगे यह पंगु तीर्थ है। यहाँ एक ब्राह्मण ने तप किया था। समीप में एक बावली है।

अग्नि तीर्थ—पंगु तीर्थ से थोड़ा आगे अग्नि तीर्थ है।

यज्ञेश्वर—अग्नि तीर्थ के पास यज्ञेश्वर शिव का मन्दिर है।

पिंडारक तीर्थ—यज्ञेश्वर के समीप ही पिण्डारक तीर्थ है।

नाग तीर्थ—देलवाड़ा से चार मील पर ओरिया गाँव है। ओरिया से थोड़ी दूर जावई ग्राम में यह नागतीर्थ है। यहाँ छोटा-सा सरोवर और बाण गंगा है। नाग पंचमी को मेला लगता है।

कपिला तीर्थ—आबू बाजार के पीछे नखी तालाब है। कहते हैं इसे देवताओं नें नख से खोदा था।

राम गुफा—कपिला तीर्थ के पास ही चम्पा गुफा, राम गुफा, राम कुण्ड हैं। राम गुफा में ही योगिवर ऋषि दयानन्द ने तीन वर्ष रह कर योग-सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। दक्षिण की ओर शिखर पर रामकुण्ड अवस्थित है। इसके पास ही राम गुफा है।

गोपी चन्द गुफा—ओरिया गांव से एक मील पर अचलेश्वर शिव मन्दिर है। शान्तिनाथ का जैन मन्दिर सामने है, थोड़ी दूर पर रेवतीकुण्ड है। वहाँ से लगभग एक मील पर गोमती कुण्ड है। इसे भृगु आश्रम कहते

हैं। यहां शंकर जी का मन्दिर है। ब्रह्मा जी की मूर्ति है। इस स्थान से लौटते समय गोपीचन्द गुफा मिलती है।

अचलगढ़—अचलेश्वर से आगे अचलगढ़ है। चारों ओर पर्वतों का कोट है। यहाँ चौमुखी जी के मन्दिर की मुख्य मूर्ति १२० मन की है। पंच धातु की बनी है।

भर्तृहरि गुफा—आगे भर्तृहरि गुफा है।

परिशिष्ट—३

जयपुर के स्थान

गलता तीर्थ—जयपुर नगर के सूर्यपोल के बाहर पूर्व की पहाड़ियों के मध्य में गलता तीर्थ है। पयहारी जी का मन्दिर और उनकी धूनी है। यहाँ पर नीचे कुण्ड से सदा गरम पानी बहता रहता है। राजस्थान में यह तीर्थ प्रख्यात है। मेला लगता है। गालव ऋषि ने यहाँ तपस्या की थी।

आमेर—जयपुर से ५ मील पर यह कस्बा है। जयपुर की प्राचीन राजधानी अम्बर में ही थी। यहाँ एक **गलता टीला** है। यही गालव ऋषि की तपोभूमि है। टीले के ऊपर सात कुण्ड हैं। इस टीले में से जल का झरना सदा गिरता रहता है।"—कल्याण तीर्थ अंक

अज्ञात जीवनी में इस प्रकार लिखा है—"जयपुर आकर वहाँ मैंने गलता तीर्थ गालव ऋषि की तपोभूमि·········में योगी, तपस्वी और साधकों का अनुसन्धान किया था············।"

प्रथम कालम १० मई १९७०

"प्राचीन राजधानी और राजस्थान की प्रसिद्ध अम्बर नगरी में गलता टीला है, उसमें गालव ऋषि की तपोभूमि में एक साधु रहते हैं···।"

—वहीं

पुष्कर—पुष्कर तीर्थों के गुरु तीर्थराज माने जाते हैं। मार्ग—पश्चिमी रेलवे की अहमदाबाद-दिल्ली लाइन पर अजमेर स्टेशन है। अजमेर जहाँ दयानन्द वाटिका, ऋषि की महानिद्रा-स्थली, वैदिक यन्त्रालय, दयानन्द भवन आदि हैं। अजमेर से पुष्कर ७ मील है। ताँगे तथा मोटर बसें मिलती हैं। पक्की सड़क हैं।

पुष्कर सरोवर तीन हैं—**ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठ ज्येष्ठ पुष्कर** पर ब्रह्मा जी का मन्दिर है। यहां ऋषिवर ठहरे थे और वेदभाष्य भी किया था। मन्दिर में ब्रह्माजी के अतिरिक्त अनेक मूर्तियाँ हैं।

सावित्री देवी का मन्दिर—पुष्कर सरोवर से एक ओर सावित्री

देवी का मन्दिर है। उसमें तेजोमयी सावित्रीदेवी की प्रतिमा है। दूसरी चोटी पर गायत्री मन्दिर है। गायत्री मन्दिर ५१ शक्तिपीठों में हैं।

नाग पर्वत—पुष्कर से लगभग १२ मील दूर प्राची सरस्वती और नन्दा नदियों का संगम है। पुष्कर के पास नाग पर्वत पर बहुत-सी गुफाएं हैं। भर्तृहरि गुफा दर्शनीय है। भर्तृहरि शिला भी है। ऋषि ने इधर योगियों का सन्धान किया था।

सरस्वती नदी—पुष्कर सरोवर से सरस्वती नदी निकलती है जो साबरमती से मिलने के बाद लूना नदी कही जाती है। पुष्कर में सरस्वती नदी के स्नान का सर्वाधिक महत्त्व है। यहाँ सरस्वती का नाम प्राची सरस्वती है। यहाँ सरस्वती के पाँच नाम हैं :—१ सु प्रभा २ काञ्चना ३ प्राची ४ नन्दा ५ विशालिका यज्ञ। पर्वत के ऊपर से निकलते जल स्रोत का उद्गम परम पवित्र है। दर्शन को पापनाशक माननें वाले मानते हैं। गोमुख से पानी गिरता है। यज्ञ पर्वत में नीचे एक स्थान पर नागतीर्थ है।

इसी लूणी नदी का नाम ही तो सरस्वती है। नन्दा ही का नाम लूणी भी होगा। इसी को या अन्य किसी धारा को साबरमती कहा गया होगा।

परिशिष्ट—४

काश्मीर के स्थान

ऋषि ने पूना-प्रवचन में काश्मीर से नेपाल तक भ्रमण का उल्लेख किया है। अतः ऋषि काश्मीर अवश्य गये थे। 'अज्ञात जीवनी' में निम्नलिखित स्थान और भूगोल ठीक है।

श्री नगर से पहलगाँव पहुँचे। आजकल तो मोटरें चलती हैं। काश्मीर-अमरनाथ यात्रा भी हम कर चुके हैं। पहलगाँव से अमरनाथ २७ मील है। मुख्य यात्रा श्रावण-पूर्णिमा को होती है। हम लोग भीड़ से बचने के लिए ४ दिन पहले अमरनाथ होकर लौट आये थे। पण्डे लोग पहले ही अपने-अपने यात्रियों को घेर लेते हैं। हमारे पण्डे नें भी हमें आराम से ठहराया। पहलगाँव में अच्छे होटल हैं। ठहरने की व्यवस्था उनमें या अन्य स्थानों पर भी हो जाती है। अमरनाथ के लिए घोड़े कुली यहाँ से मिल जाते हैं।

चन्दन वाडी—८ मील पर चन्दनवाडी है। मार्ग अच्छा है। यहाँ भी अच्छे होटल हैं, दूकानें हैं। लिदर नदी के किनारे-किनारे मार्ग जाता है।

शेष नाग—या शेषम् नाग कहते हैं। डाक बंगला और यात्रियों के ठहरने के लिये टीन की छत के मकान हैं। वर्षा होने पर बड़ा कष्ट होता है। तम्बू लाया जाए तो अच्छा रहता है। चन्दनवाडी-शेष नाग के मध्य में ३ मील की कड़ी चढ़ाई है। इसे पिस्सु घाटी बोलते हैं। चढ़ते-उतरते पसीना आ जाता है। हिम के मध्य से मार्ग जाता है। मूंज के जूते, जूतों पर पहन लेने से जूते फिसलते नहीं हैं। ठण्डे भी कम होते हैं। यात्री-मार्ग को छोड़ सीधे मार्ग पर चल पड़ने से मार्ग अत्यन्त कठिन और संकरा हो सकता है। तब भगवान् की याद तो अच्छी आती है। तीर्थ-यात्राओं का यही मुख्य फल है। शेष नाग पर पहाड़ों के मध्य रास्ते के साथ ही १००-१५० फुट नीचे स्वच्छ झील है। झील पर खड़े आदमी

छोटे-छोटे बालक प्रतीत होते हैं। इसमें सात मुख वाला एक ही सर्प रहता है। बृहस्पतिवार सूक्ष्मेक्षण से हमसे पहले पहुँचने वाले गुजराती छः सातयात्रियों ने बहुत ध्यान देने से देखा था। लौटती वार उनकी सूक्ष्मेक्षण-+दूरवेक्षणा का प्रयोग किया पर हमें, उन्हें भी कुछ दिखाई नहीं दिया। झील सुषमा देखने योग्य है। यात्रा से कुछ पहले ढाबा या सादा होटल खुल जाता है। ऐसे स्थानों पर भोजन महँगा मिलता ही है। पवित्र भी नहीं। मांस तो सर्वत्र पकता ही है। ऐसे होटल प्रायः सरदारों के साहस से ही चलते हैं। रात्रि यहाँ विश्राम किया।

पञ्चतरणी—८॥ मील आगे पंचतरणी है। मार्ग हिमाच्छन्न है। चिन्हों से चिन्हित कर दिया जाता है। मेले के अवसर पर वर्षा होने लगी थी। बर्फ बह गई। मार्ग का पता नहीं चला। अनुमान से कठोर भूमि देख कर निकल गए। भगवान् ले ही गया। बर्फ में तो रुकना ही पड़ता। वर्षा में भी चढ़ाई पर फिसलन हो जाती है। पैर को जमाना पड़ता है। पंचतरणी में डाक बंगले में स्थान मिल गया था। और भी मैले स्थान हैं। यहाँ सामान रख अमरनाथ घोड़े पर पहुँचे थे। मार्ग में हिमाच्छन्न मार्ग कई स्थानों पर आते हैं। पाँच धारायें हैं। स्नान से पुण्य माना जाता है। अमरनाथ से लौटकर आने पर कपड़े उतार देने से भयावह ठण्ड चढ़ गई थी। केसर की गोली चाय से लेने से प्राण बचे, नहीं तो ठण्डे ही हो जाते। स्नान की बात मन से जाती रही।

अमरनाथ—पञ्चतरणी से ३॥ मील है। मध्यान्होत्तर आते ही अमरनाथ चले गए थे। सायं लौट आये थे। बड़ी विशाल गुफा है। हिमस्तर पार करने के बाद समुद्र स्तर से १६,००० फुट ऊंचा स्थान है, गुफा की लम्बाई ६० फुट और चौडाई ३० फुट होगी या २५ फुट ऊंची होगी। 'प्राकृतिक हिम पीठ पर हिम निर्मित प्राकृतिक शिवलिंग हैं', यह बात निराधार है। जब टपकते स्रोत का पानी नहीं जमता तो जमी नदी से नीचे से हिम लाकर लिंग बनाते गुरुवर महाराज योगेश्वरानन्द जी ने देखा था। पूर्णिमा को तिथि अनुसार बढ़ता। कृष्णपक्ष में घटते-२ अमावस्या को नहीं रहता। यह सब किसी भक्त की भारी गप्प है। कबूतर और चिड़िया भी वहाँ अनेक देखे गए। उड़ जाते हैं फिर आकर बैठ जाते हैं। घोंसले भी होंगे। शीत में चले जाते होंगे।

परिशिष्ट—५

आसाम तथा नेपाल के स्थान

कामाख्या—यह आसाम देश में है। यहाँ आने के लिये छोटी लाईन की पूर्वोत्तर रेलवे लाईन से अमीन गांव आना होता है। आगे ब्रह्मपुत्र नदी को स्टीमर से पार करके मोटर द्वारा २॥ मील चलकर कामाख्या या कामाक्षी देवी आना होता है।

चाहे पाण्डु से रेल द्वारा गोहाटी आकर पुनः कामाक्षी देवी आ जायें। कामाक्षी देवी का मन्दिर पहाड़ी पर है। जो अनुमान से एक मील ऊंची होगी। इस पहाड़ी को नीलपर्वत भी कहते हैं। इस देश को काम-रूप असम या आसाम कहते हैं। इस देश में कई पीठ हैं।

इस मन्दिर को कूच बिहार के राजा विश्व सिंह और शिव सिंह ने बनवाया था। प्रथम मन्दिर १५६४ में काला पहाड़ ने तोड़ डाला था। इस को पहले आनन्द आख्या कहते थे। समीप ही छोटा-सा सरोवर है। आश्विन तथा चैत्र के नवरात्र में बड़ा मेला भरता है।

'५१ सिद्ध पीठों में कामरूप को सर्वोत्तम कहा है।

(महाभारत—१२।३०)

"परमेश्वर की पूजा, जप, हवन आदि करके यथेच्छ फल की प्राप्ति साधकों को सुलभ है।" (महाभारत—१२।३७)

उमानन्द शिव मन्दिर—पहाड़ी से उतरने पर ब्रह्मपुत्र नदी के मध्य में उमानन्द टापू में शिवमन्दिर है।

नवद्वीप धाम—पूर्वी रेलवे की हावड़ा-बरहरवा लाईन पर हावड़ा से ६६ मील दूर 'नवद्वीप धाम' स्टेशन है। नगर लगभग १ मील दूर है। श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि है। भजनाश्रम में ठहरने की सुविधा है। निश्चित दक्षिणा देने पर दर्शन कराया जाता है। दर्शनार्थ गौराङ्ग महाप्रभु की मिट्टी की अनेक लीलाओं की मूर्तियाँ हैं। पूजा नहीं होती। अनेक मन्दिर हैं।

शान्ति पुर—नव द्वीप से १२ मील पर शान्ति पुर है। गौडीय वैष्णवों का यहां श्री पीठ है। कार्तिक पूर्णिमा को मेला भरता है।

महाकालेश्वर—लिंगराज के अनेक मन्दिरों में एक है।

पुरी—पूर्वी रेलवे की हावड़ा वाल्टेयर लाईन पर कटक से २६ मील दूर खुरदा रोड स्टेशन है। वहाँ से पुरी तक लाइन जाती है। खुरदा से २८ मील है। कटक, भुवनेश्वर, खुरदा रोड आदि से मोटरें जाती हैं। अनेक ठहरने के स्थान हैं।

यहाँ स्नानार्थ ८ पवित्र तीर्थ हैं।

गंगा सागर—कलकत्ता से यात्री प्रायः जहाज में गंगा सागर जाते हैं। कलकत्ते से ३८ मील दक्षिण 'डायमण्ड हार्बर' स्टेशन है। वहाँ से नावें और जहाज भी गंगा सागर जाते हैं, सागर द्वीप ६० मील दक्षिण है।

थोड़े से साधु यहाँ रहते हैं। यह द्वीप १५० वर्गमील के लगभग है। वन्य प्रदेश है। प्रायः जनहीन है। समुद्र गंगा के संगम से कई मील उत्तर में वामन खल स्थान में एक प्राचीन मन्दिर है। एक जीर्ण मन्दिर भी है। चन्दन पीडि वन में विशालाक्षी का मन्दिर है। मेले के स्थान पर पहले गंगा यहीं सागर में मिलती थी। अब गंगा मुहाना पीछे हट गया है, सागर द्वीप के पास गंगा की एक छोटी धारा समुद्र से मिलती है। मकर संक्रान्ति पर पांच दिन मेला रहता है। तीन दिन स्नान होता है। कभी कपिल मुनि का मन्दिर था, अब कोई नहीं। कलकत्ते में मूर्ति रखी रहती है। मेले पर ले जाई जाती है। यहां पिण्ड दान, श्राद्ध भी होता है। समुद्र स्नान भी। कार्तिक पूर्णिमा पर भी लोग जाते हैं। भोजन अपने आप बनाना होता है, न बाजार, न दुकानें। भोजन का सामान साथ ले जाना होता है।

परशुराम कुण्ड—आसाम में हिमालय की पूर्वोत्तर सीमा पर पर्वत के पाद देश में परशुराम कुण्ड स्थित है। कहते हैं जब परशुराम ने मातृ-हत्या के मोक्षण के लिए अपने पिता जमदग्नि ऋषि से उपाय पूछा, कहा—ब्रह्म कुण्ड में जाकर स्नान करो—वहाँ परशुराम का पाप नष्ट हो गया। विश्व कल्याण के लिए पर्वत को फरसे से काटकर ब्रह्मकुण्ड का जल बाहर ले आये। वही ब्रह्म-पुत्र कहलाया। ब्रह्मपुत्र आता तो हिमालय के तिब्बती क्षेत्र से है जहाँ यह आसाम में प्रवेश करता है, वहीं परशुराम कुण्ड था। पर्वतों में भूकम्प आने से धारा बदल गई। कुण्ड लुप्त हो गया। वहाँ की यात्रा बन्द हो गई। पहाड़ से उतर ब्रह्मपुत्र ने जिस स्थल पर पृथिवी का स्पर्श किया, उसी स्थान का नाम परशुराम-कुण्ड है।

पशुपति नाथ—काठमाण्डू (नेपाल) में है। पक्की सड़क है। लारियाँ-टैक्सियाँ मिलती हैं। दो मील पर पशुपति नाथ का मन्दिर है। काठमाण्डू नगर विष्णुमती और बागमती नदियों के संगम पर बसा है। तट पर मछन्दर नाथ का मन्दिर है। पशुपति नाथ की मूर्ति पारस की है, यह भ्रम है। पंचमुख शिवलिंग है।

मुक्तिनाथ—मुक्तिनाथ काठमाण्डू से १४० मील है। हवाई जहाज से आ सकते हैं। यहाँ आने के लिए गोरखपुर से भी मार्ग आता है। मुक्तिनाथ शालग्राम पर्वत का क्षेत्र है। अनेक रूप के शालग्राम मिलते हैं। मुक्तिनाथ के अन्दर गरम पानी के सात झरने हैं। अग्निकुण्ड के पास अग्नि-ज्वालायें दृष्टि में पड़ती है।

परिशिष्ट—६

दक्षिण के स्थान

पुरी—पूर्वी रेलवे की हावड़ा वाल्टेयर लाइन पर कटक से २६ मील दूर खुरदा-रोड स्टेशन है। वहां से पुरी तक एक लाइन जाती है। खुरदा-रोड वहां से २८ मील है। ग्रासनसोल, हावड़ा, मद्रास तथा तलचर से पुरी के लिए सीधी ट्रेनें जाती हैं। कटक, भुवनेश्वर, खूरदा रोड से मोटरें भी जाती हैं। ठहरने के लिए अनेक धर्मशालायें एवं मठ हैं। पुरी में आठ पवित्र जलतीर्थ हैं।

जगन्नाथ मन्दिर—पुरी स्टेशन से मन्दिर एक मील है। मन्दिर से सीधा मार्ग समुद्र तट गया है। स्नान का स्थान स्वर्गद्वार कहाता है। मन्दिर बहुत विशाल है। मन्दिर दो परकोटों में है। चारों ओर चार महाद्वार हैं। सबसे ऊंचा विमान या श्रीमन्दिर है। इसी में मूर्ति स्थित है। सामने जगमोहन है। पीछे मुखशाला नाम का मन्दिर है। आगे भोग-मण्डप है। पूर्व में सिंह द्वार, दक्षिण में अश्व द्वार, पश्चिम में व्याघ्र द्वार, उत्तर में हस्तिद्वार है। दर्शन सब ही के लिये सुलभ है।

आगे एक छोटे मन्दिर में विश्वनाथ लिंग है। २५ सीढ़ी चढ़कर दूसरे प्राकार में जाया जाता है। दोनों ओर प्रसाद के बाजार हैं। अनेक मन्दिर हैं। द्वार के सामने मुक्तिमण्डप है। इसे 'ब्रह्मा आसन' कहते हैं। पूर्वकाल में यज्ञ में ब्रह्मा जी ब्रह्मा बनकर विराजमान होते थे। मुक्ति मण्डप में आज भी स्थानीय विद्वान् ब्राह्मण यज्ञ करते-कराते हैं।

सरस्वती मन्दिर,
लक्ष्मी मन्दिर,
सूर्य मन्दिर,
पातालेश्वर महादेव मन्दिर
वैकुण्ठ द्वार के पास वैकुण्ठेश्वर महादेव का मन्दिर है।
कलेवर बदलने पर पुराने जगन्नाथ जी को यहाँ समाधि दी जाती है।

धनुष्कोटि— अनेक मन्दिर, अनेक कथाएं हैं। मद्रास से धनुष्कोटि तक सीधी लाइन है। रामेश्वर से 'रामेश्वरम् रोड' स्टेशन लगभग ३ मील है। रेल जाती है। मीठे जल का अभाव है। समुद्र किनारे छाया नहीं। धर्मशाला स्टेशन के पास है। मछलियों को बू आती है। यहाँ ठहरते नहीं, रामेश्वर चले जाते हैं। श्री लंका के लिये जहाज जाता है। रेल के डब्बे जहाज पर चढ़ा दिये जाते हैं। चार घण्टे में लंका पहुँच जाते हैं। समुद्र के मध्य में धनुष्कोटि द्वीप का अन्तिम छोर है। बंगाल की खाड़ी और महोदधि का यहां संगम है। श्राद्ध भी होता है। स्वर्ण के धनुष का दान भी किया जाता है। एक ही दिन में ३६ स्नान करने की यहाँ विधि है। तट से आध मील पर राममन्दिर है। श्री राम, लक्ष्मण, जानकी की मूर्तियाँ हैं। हनुमान आदि की अनेक मूर्तियाँ हैं।

त्रिचना पल्ली— दक्षिण की लाइनों का केन्द्र है। म्युनिसिपल चोल्ट्री में किराया देकर ठहर सकते हैं। खेमराज श्री कृष्ण दास की धर्मशाला भी गणेश मन्दिर के पास है। २३५ फुट ऊंची नन्दी की आकृति की विशाल चट्टान नगर के मध्य है। नीचे से ऊपर तक एक ओर मन्दिर बने हैं। इसे कैलास का खण्ड बताया जाता है। दक्षिण कैलास कहता है।

मदुरा—त्रिचनापल्ली तूतीकोरिन लाइन पर त्रिचना पल्ली से ९६ मील दूर मदुरा (मधूरै) नगर है यहां भी और काँचीमें भी भारतीय शिल्प कला का अद्भुत कौशलदिखाई पड़ता है। पत्थर कोट कर ऐसी शृंखला बनाई है जिसको कड़ियां घूम सकती हैं। चान्दी से मढी नन्दी की विशाल मूर्ति है। २०८सीढ़ियां चढ़ने पर गणेश जी का मन्दिर है। सीढ़ियाँ चट्टान में काटी गई हैं। ऊपर गणेश जी की भव्य मूर्ति है।

रामेश्वरम् — मद्रास से धनुष्कोटि तक दक्षिण रेलवे की सीधी लाइन है। इस लाइन पर पाम्बन् स्टेशन से एक लाइन रामेश्वरम् तक जाती है। कुछ डिब्बे सीधे जाते हैं। मदुरा से आने वाले 'माना मदुरै' में गाड़ी बदलें। मद्रास धनुष्कोटि लाइन लें। पण्ड़ों के सेवक यात्रियों को घेर लेते हैं। उनके ठहरने की पर्याप्त सुविधा है। धर्मशालायें भी पर्याप्त हैं। यहाँ हिन्दी समझी जाती है।

रामेश्वर दक्षिण दिशा का धाम है। समुद्री द्वीप में स्थित है। समुद्र के संकीर्ण भाग पर पाम्बन स्टेशन के पास पुल है। जहाजों के आने-जाने पर उठा दिया जाता है। रामेश्वर द्वीप ११ मील लम्बा और ७ मील चौड़ा है। राम ने इस की स्थापना की, ऐसी बहुतों की मान्यता है। यहाँ

ठहर कर पुल बनवाया था। चौड़ाई देवी पत्तन से दर्भशयन तक थी। सेतुमूल कहलाता है। नाना तीर्थ हैं। राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, सुग्रीव, बिभीषण, जाम्बवान् अंगद आदि की मूर्तियाँ हैं। राजा सेतुपति के परिवार के लोगों की मूर्तियां भी एक स्तम्भ में बनी है। सामने स्वर्ण-मण्डित स्तम्भ है। अनेक तीर्थ हैं। आंगन विस्तृत है। मन्दिर के सामने सभा मण्डप है।

एक बहुत सुन्दर स्फटिक-लिंग है। प्रातः ४॥ से ५ तक दर्शन होते हैं। मन्दिरों, तीर्थों की पूजा-स्नान विधि बड़ी विस्तृत है।

लंका— धनुष्कोटि स्टेशन से रेल के दो डिब्बे जहाज पर चढ़ा दिये जाते हैं। जहाज तैल **मनार** (बन्दरगाह) पर पहुँचता है। डिब्बे वहाँ गाड़ी में जोड़ दिये जाते हैं। पाम्बन स्टेशन पर जाने का अनुमति-पत्र लेना होता है यह लंका रामायण वाली नहीं, यद्यपि अशोक वाटिका आदि सब बना लिये गये है। सिंहल, लंका दो हैं। गाड़ी में **कोलम्बो** जाते हैं। वहाँ श्री राम मन्दिर है। हिन्दू यात्री ठहर सकते हैं।

कैण्डी— कोलम्बो से यहाँ तक गाड़ी जाती है। कैण्डी में भगवान् बुद्ध का प्रसिद्ध मन्दिर है।

कन्या कुमारी— छोटे नारायण से कन्या कुमारी लगभग ५२ मील है। कन्याकुमारी एक अन्तरीप है। भारत की अन्तिम दक्षिण सीमा है। एक ओर बंगाल की खाड़ी, दूसरी ओर अरब सागर है। सामने हिन्द महा सागर है। यहाँ सरकारी धर्मशाला है। तीन दिन रह सकते हैं। भोजन बनाने के बरतन भी मिलते हैं। तीनों समुद्रों का संगम पवित्र तीर्थ है। स्नान के लिये समुद्र में सुरक्षित घेरा बना है। महिलाओं के वस्त्र परिवर्तनार्थ एक ओर कमरे भी बने हैं। चैत्र पूर्णिमा का समुद्र का दृश्य अद्भुत होता है। दूसरे दिन बंगाल की खाड़ी में अपूर्व दृश्य होता है।

समुद्र में सावित्री, गायत्री, सरस्वती, कन्या विनायक आदि तीर्थ है।

परिशिष्ट—७

योगी ने जहाँ जहाँ यात्रा की उन स्थानों की ऊंचाई

	ऊँचाई	दूरी	
हरिद्वार	९२४ फुट	०	हरिद्वार से
ऋषिकेश	११११ "	१५	"
टिहरी	२२७८ "	४१	"
श्रीनगर	१७०७ "	६६	"
अमरनाथ	११००० "		श्रीनगर से
लेह	१२००० लगभग		"
रुद्रप्रयाग	२०००	८८ मील	ऋषिकेश से
अगस्त्यमुनि	३०००	१०० "	"
गुप्त काशी	४८५०	११२ "	"
केदारनाथ	११७५३	११९ "	"
ऊखीमठ	४३००	२६ "	केदार से
तुंगनाथ	१२०७२	४१ "	"
बद्रीनाथ	१०२४४	८७ मील	केदार से
माणा	१०५६०	९० "	"
वसुधारा	१५११२०	९३ "	"

४०० फीट ऊँचाई से गिरती है।

सतोपथ	१४०००	१०९ "	"
अलकापुरी	१५०००	१२३ "	"
नीतीघाटी	११५००	४३ "	जोशी मठ से
कैलाश	२२०२०	×	
मानसरोवर	१४९००	×	
राक्षसताल	"	×	

इतनी ऊँचाई पर योगीराज दयानन्द योग सामर्थ्य से केवल एक कटिवस्त्र में घूमते रहे !!! नंगे पैर !!! अनुमान होता है १५००० और २०००० फुट की ऊँचाई पर पैदल यात्रा की है। ६० मील तक की यात्रा एक दिन में बर्फीले पहाड़ों की है।
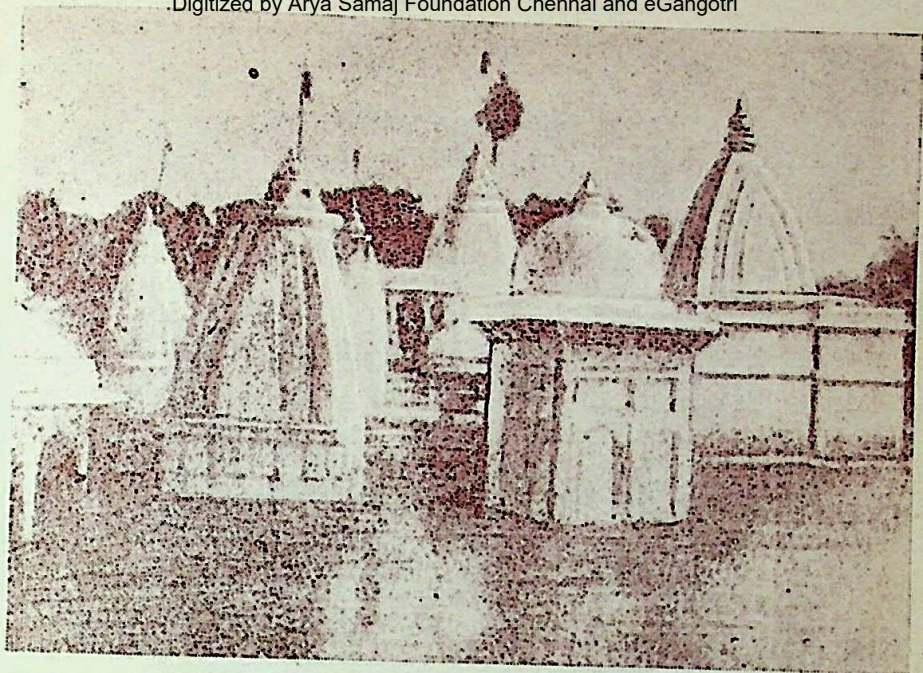
अमरकण्टक : नर्मदा के उद्गम पर कोटि तीर्थ (पृष्ठ ४४)
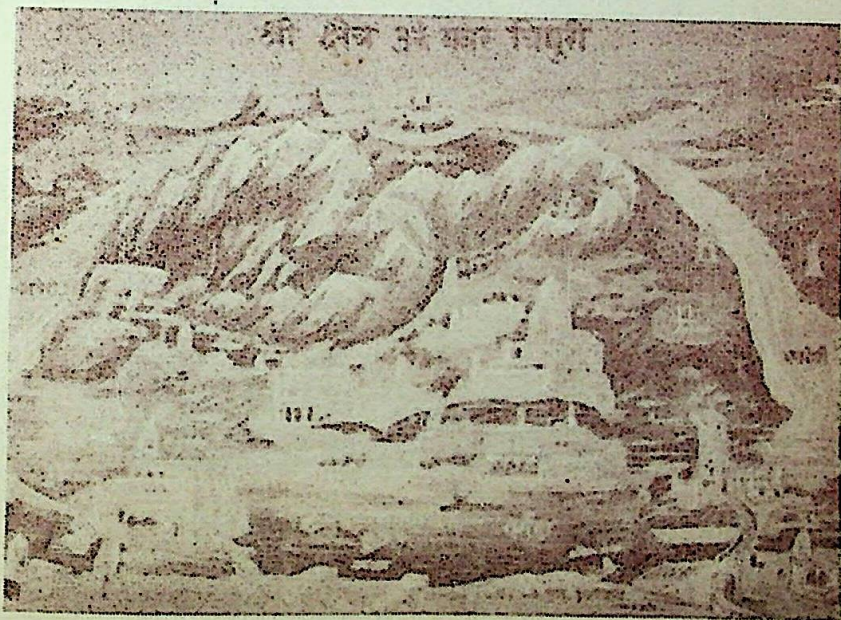
श्री ओंकारेश्वर
बाईं ओर कावेरी तथा दक्षिण की ओर नर्बदा के मध्य स्थित है। (पृष्ठ ४५)
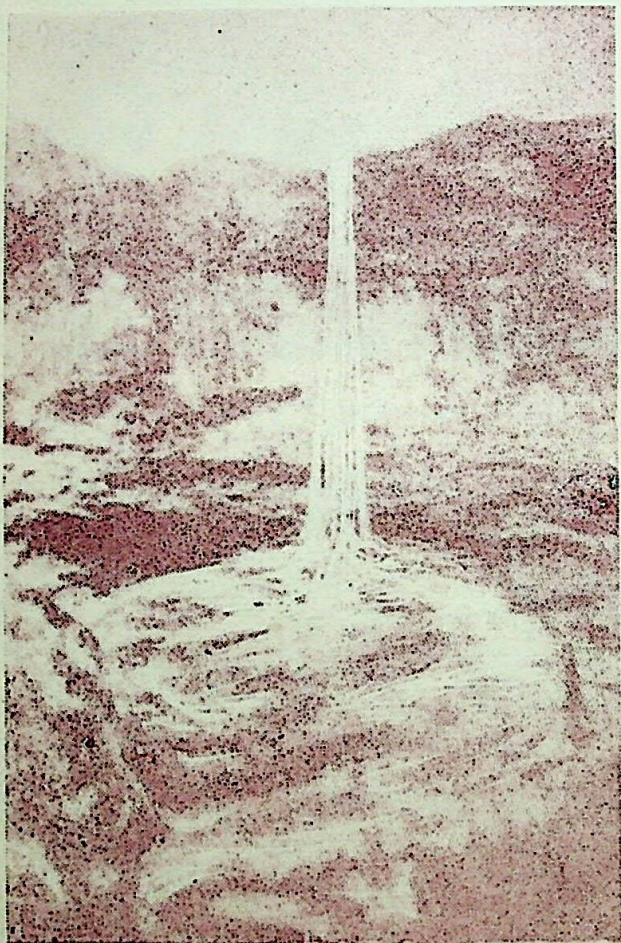
कपिल धारा प्रपात
अमर कन्टक के परिसर में

(पृष्ठ ४३)

भेड़ा घाट
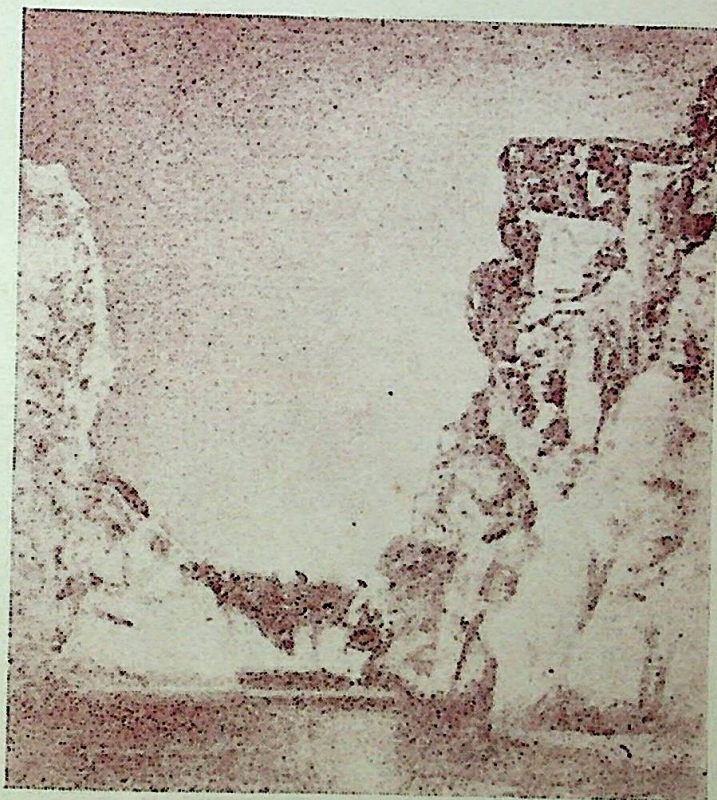
संगमरमर की चट्टानों में नर्मदा का प्रवाह

(पृष्ठ ४४)
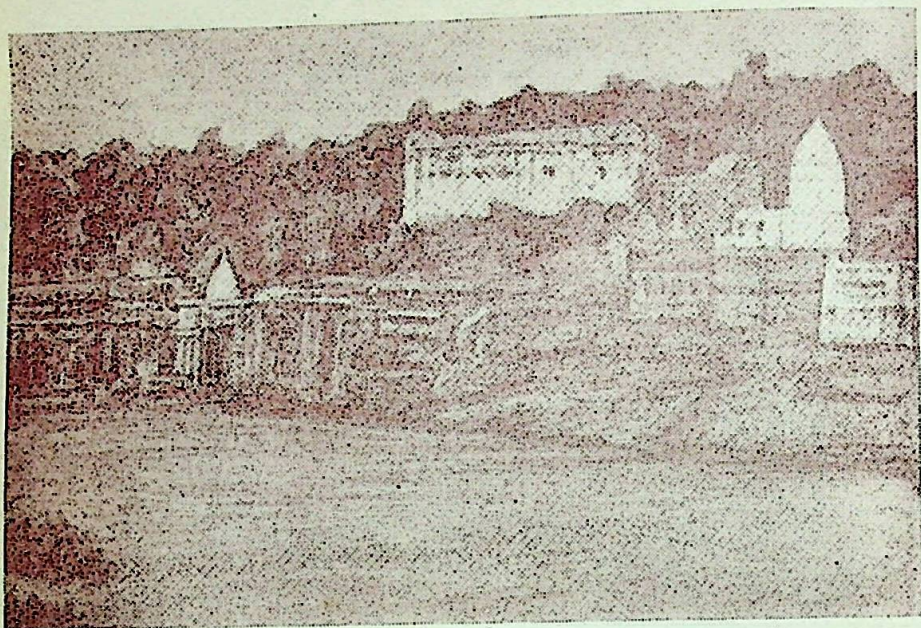
शिवपुरी : ओंकारेश्वर (पृष्ठ ४५)

◆

माहिष्मती : सहस्रधारा की दिव्य सुषमा
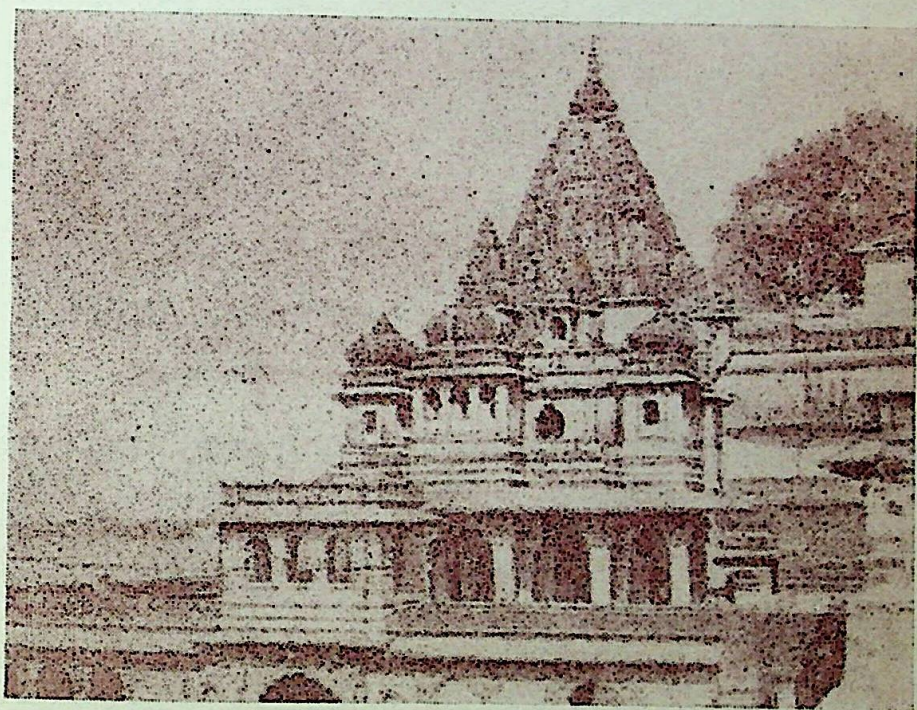
माहिष्मती श्री अहिल्येश्वर मन्दिर
यहां ही शंकराचार्य और मण्डन मिश्र का शास्त्रार्थ हुआ ।

(पृष्ट ४६)
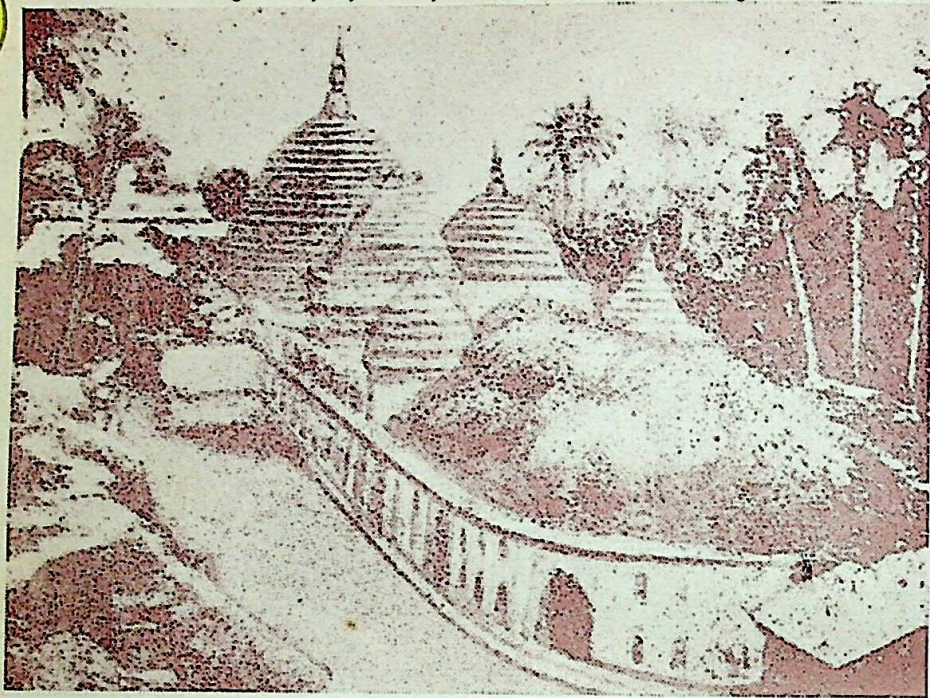
कामाख्या मन्दिर, गोहाटी
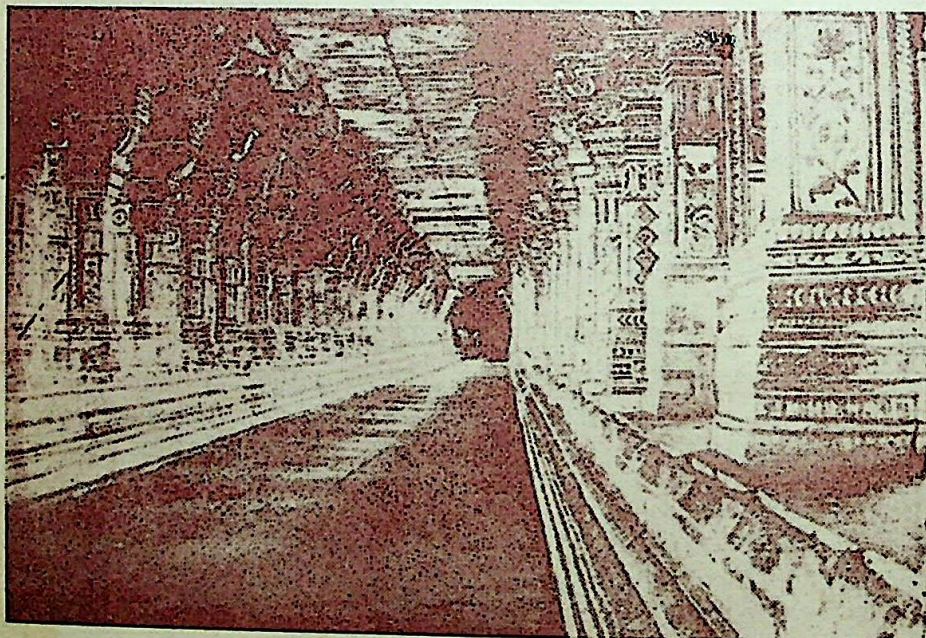
श्री रामेश्वरम् : भारत की दक्षिण सीमा के छोर पर स्थित
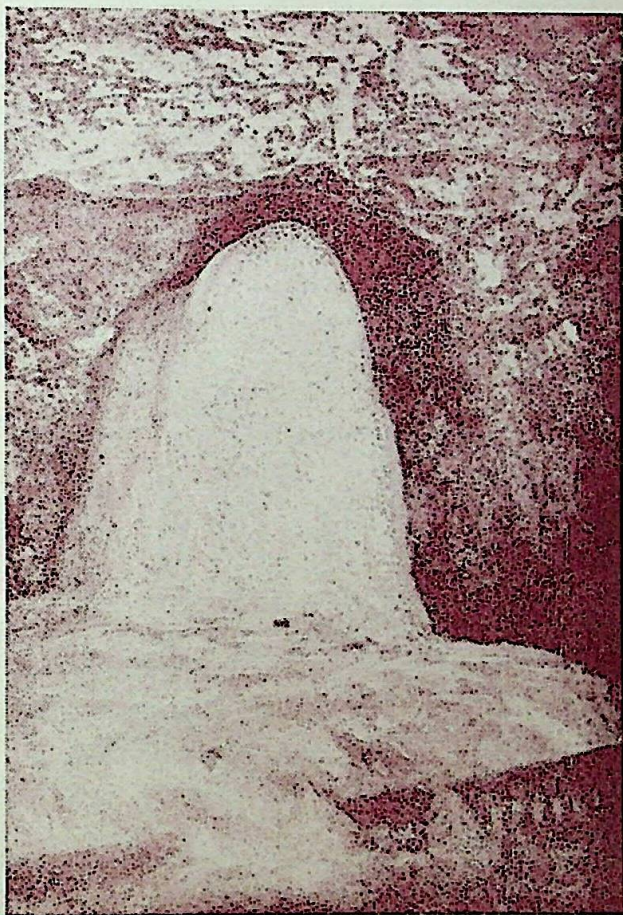
अमरनाथ
काश्मीर की तीर्थ गुफ़ा में बर्फ का शिवलिंग
(पृष्ठ २०८)

गंगोतरी मन्दिर

गंगा के उद्गम गोमुख से १२ मील पहले

(पृष्ठ २२१)
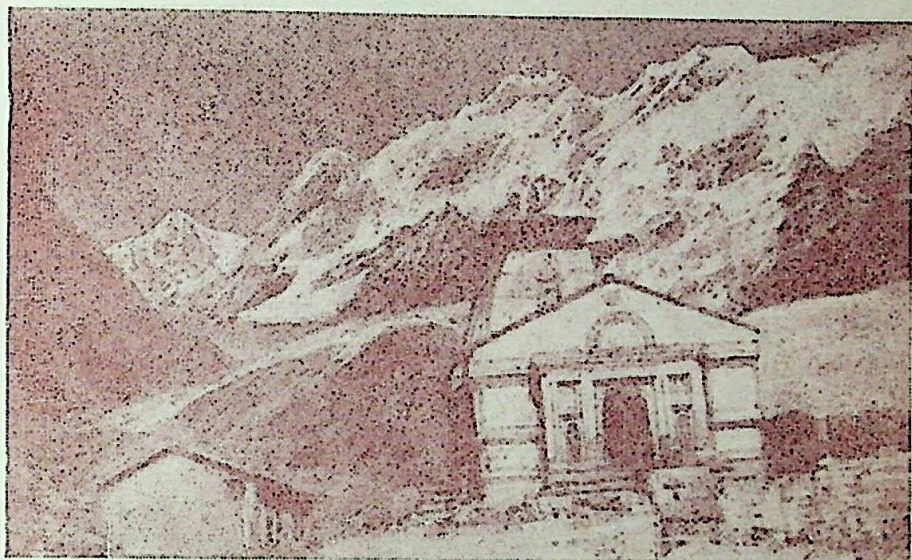
श्री केदारनाथ मन्दिर, जिस के परिसर शिवपुरी में योगिराज दयानन्द ने शीत बिताया। (पृष्ठ २२१)

जोशी मठ, शंकराचार्य के चार धामों में से एक (पृष्ठ २२१)
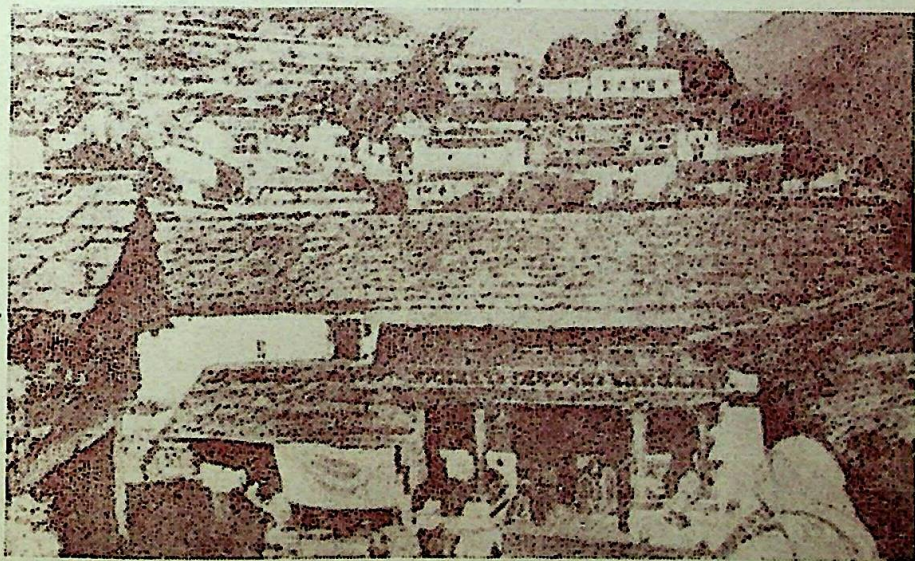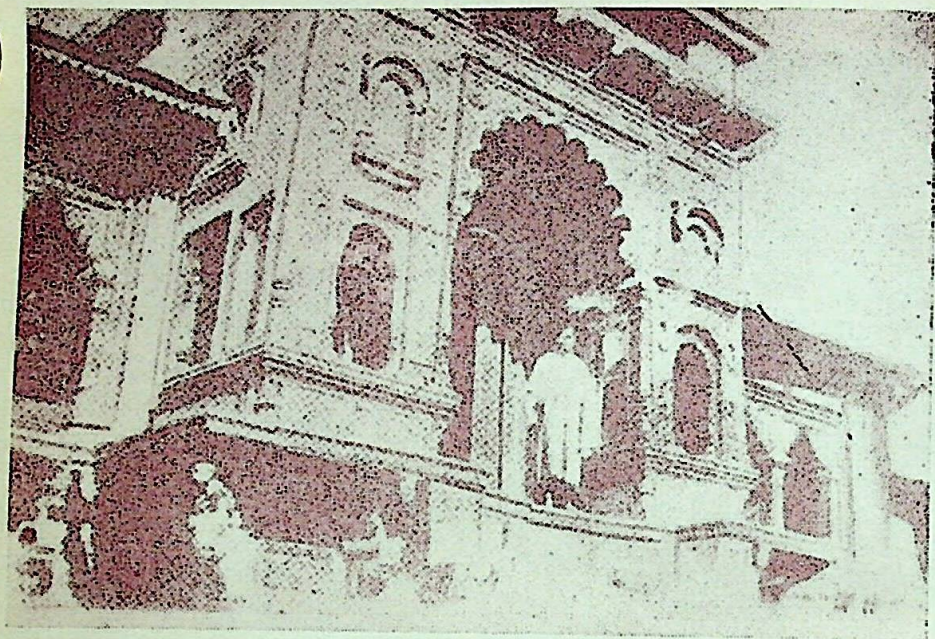
श्री बद्रीनाथ, जहां से योगीराज दयानन्द ने अलकनन्दा स्रोत की यात्रा की । पृष्ट २२१
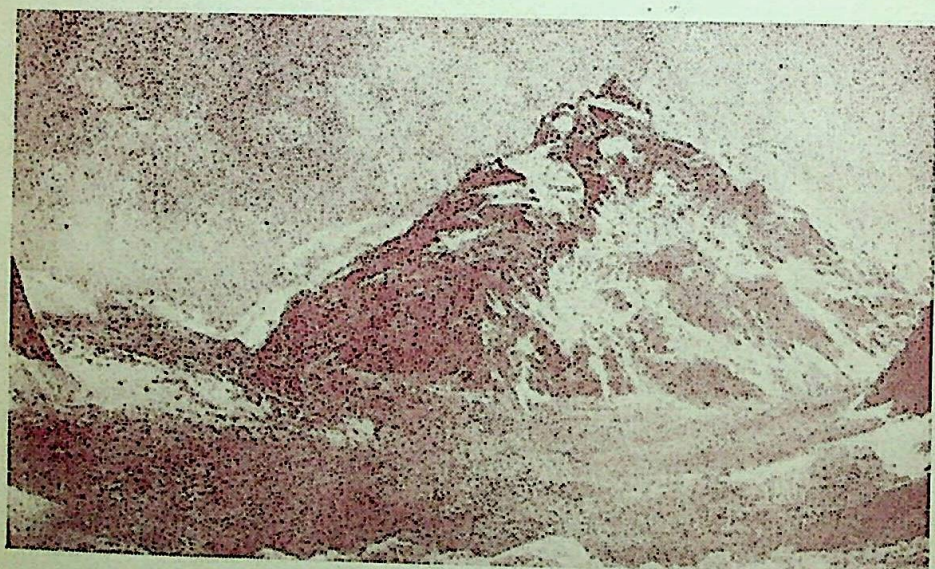
अलकनन्दा का उद्गम, जिसे देख एक वसनधारी योगीराज १२ घंटे में लौटे। यह हिम यात्रा पूरे तम्बू, सेवक, कुली, सामग्री के साथ साधारणतया एक मास में कोई माई का लाल ही कर पाता है। (पृष्ठ २२२)

वसु धारा

श्री बद्री नारायण से केवल ५ मील पूरे सामान के साथ पूरे एक दिन की यात्रा

(पृष्ठ २२२)
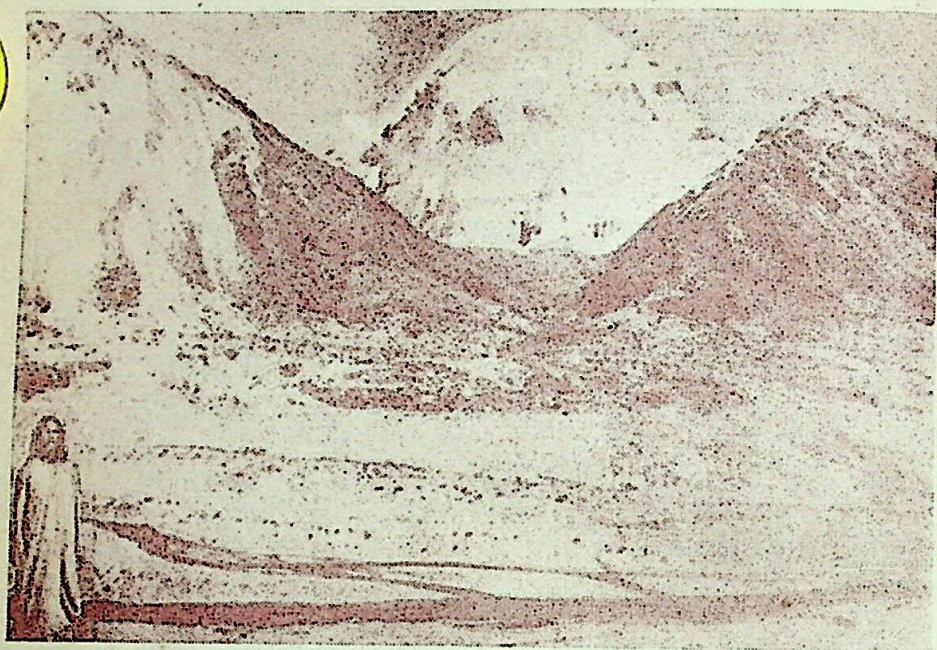
कैलाशाधिपति महादेव योगीश्वर की तपोभूमि कैलाश (पृष्ठ २२२)

◆
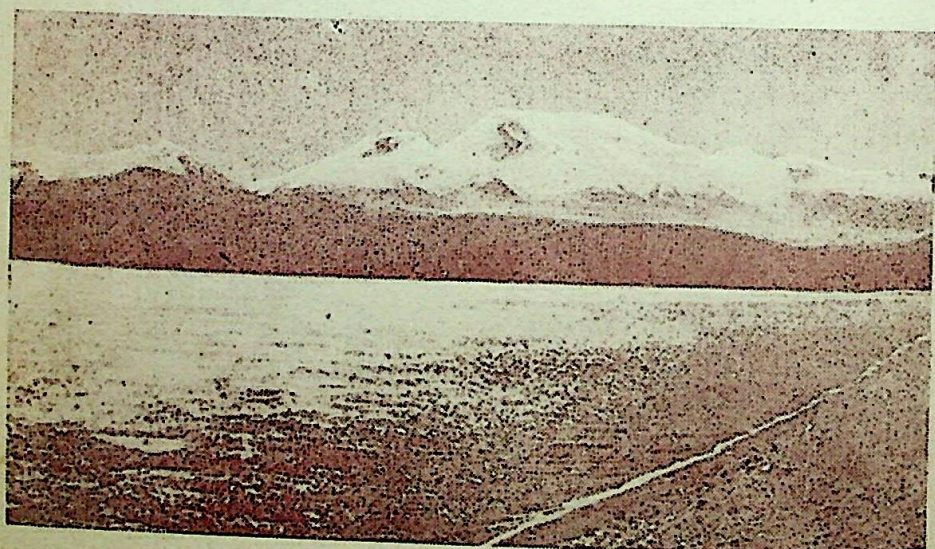
तरङ्गित राक्षस ताल : पृष्ठभूमि में मानधाता पर्वत है। (पृष्ठ २२२)

उपदेश मञ्जरी (पूना प्रवचनों) में स्वयं कथित जीवन चरित्र

पन्द्रहवाँ व्याख्यान (२८ जून १८७५ से २५ जुलाई के मध्य)

हमसे बहुत से लोग पूछते हैं कि हम कैसे जानें कि आप ब्राह्मण हैं और कहते हैं कि आप अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों कि चिट्ठियाँ मंगा दें या आपको जो पहचानता हो, उसको बतलावें।

दूसरे देशों की अपेक्षा गुजरात में कुछ मोह अधिक है, यदि मैं अपने पूर्व मित्रों तथा सम्बन्धियों को अपना पता दूँ या पत्र-व्यवहार करूँ तो मेरे पीछे एक ऐसी व्याधि लग जावेगो, जिससे कि मैं छूट चुका हूं। इस भय से कि कहीं वह बला मेरे पीछे न लग जावे, मैं पत्रादि मंगा देने की चेष्टा नहीं करता।

इसलिए मैं अपना कुछ वृत्तान्त कहता हूं। धरांगधरा नामक राज्य गुजरात देश में है। इसकी सीमा पर एक मौरवी नगर है, वहाँ* मेरा जन्म हुआ था। मैं औदीच्य ब्राह्मण हूं। औदोच्य ब्राह्मण सामवेदी होते हैं, परन्तु मैंने यजुर्वेद पढ़ा था। मेरे घर में अच्छी जमींदारी है। इस समय मेरी अवस्था ५० वर्ष की होगी।

आठवें वर्ष मेरे बाद एक बहन पैदा हुई थी। मेरा एक चचेरा दादा था, वह मुझसे बहुत ही प्यार करता था। मेरे कुटुम्बियों के इस समय १५ घर होंगे। मुझको लड़कपन में ही रुद्राध्याय सिखलाकर शुक्ल यजुर्वेद का पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। मेरे पिता ने मुझको शिव की पूजा में लगा दिया। दशवें वर्ष से पार्थिव (मिट्टी के महादेव) की पूजा करने लग गया था।

मुझे पिता ने शिवरात्रि का व्रत रखने को कहा था, परन्तु मैंने शिवरात्रि का व्रत न किया। तब शिवरात्रि की कथा मुझे सुनाई, वह कथा

---

*वहाँ अर्थात् देश में। सं०

मेरे मन को बहुत मीठी लगी और मैंने उपवास रखने का पक्का निश्चय कर लिया। मेरी मां कहती थी कि उपवास मत कर, मैंने माता का कहना न मानकर उपवास किया। मेरे यहाँ नगर के बाहर एक देवल है। वहाँ शिवरात्रि के दिन रात के समय बहुत लोग एकत्रित होते हैं और पूजा करते हैं। मेरे पिता, मैं और बहुत मनुष्य इकट्ठे थे। पहिले पहर की पूजा कर ली, दूसरे पहर की पूजा भी हो गई। अब बारह बज गए और धीरे-धीरे आलस्य के कारण लोग जहाँ के तहाँ झुकने लगे। मेरे पिता को भी निद्रा आ गई। इतने में पुजारी बाहर गया। मैं इस भय से न सोया कि कहीं मेरा उपवास निष्फल न हो जाय।

इतने में यह चमत्कार हुआ कि मन्दिर में बिल से चूहे बाहर निकले और महादेव की पिण्डी के चारों तरफ फिरने लगे। पिण्डी पर जो चावल चढ़ाये हुए थे, उन्हें ऊपर चढ़कर खाने भी लगे। मैं जागता था, इसलिए यह सब कौतुक देख रहा था। इससे एक दिन पहले शिवरात्रि को कथा मैं सुन ही चुका था। उसमें शिव के भयानक गणों, उसके पाशुपत अस्त्र, बैल की सवारी और उसके आश्चर्यमय सामर्थ्य के विषय में बहुत कुछ सुन चुका था। इसलिए चूहों के इस खेल को देखकर मेरी लड़कपन बुद्धि आश्चर्य में पड़ गई और मैंने सोचा कि जो शिव अपने पाशुपत अस्त्र से बड़े-बड़े दैत्यों को मारता है, क्या वह ऐसे तुच्छ चूहों को भी अपने ऊपर से नहीं हटा सकता। इस प्रकार की बहुत-सी शंकायें मेरे मन में उठने लगीं।

मैंने पिताजी को जगाकर पूछा कि महादेव इस छोटे से चूहे को नहीं हटा देते। पिताजी ने कहा कि तेरी बुद्धि बड़ी भ्रष्ट है, यह तो केवल देवता की मूर्ति है। तब मैंने निश्चय किया कि जब मैं इसी त्रिशूलधारी शिव को प्रत्यक्ष देखूंगा, तब ही पूजा करूंगा, अन्यथा नहीं। ऐसा निश्चय करके मैं घर को गया, भूख लगी थी माता से खाने को माँगा। माता कहने लगी, "मैं तुमसे पहले ही कहती थी कि तुझसे भूखा नहीं रहा जायगा। तूने ही हठ करके उपवास किया।" माँ ने फिर मुझे खाना दिया और कहा कि दो दिन तू उनके अर्थात् पिताजी के पास मत जाना और न उनसे बोलना, नहीं तो मार खायगा, खाना खाकर मैं सो गया। दूसरे दिन आठ बजे उठा, मैंने सारी कथा अपने चाचा से कह दी। मेरे चाचा ने बुद्धिमत्ता से मेरे पिता को समझा दिया कि इसको आगे विद्या पढ़नी है, इसलिए व्रत उपवास आदि उससे कुछ न कराया करो।

इस समय मैं इनसे यजुर्वेद पढ़ता था और दूसरे एक पण्डित मुझे व्याकरण पढ़ाते थे। सोलहवें या सत्रहवें वर्ष में यजुर्वेद समाप्त हुआ। इसके बाद मैं अपनी जमींदारी के गाँव में पढ़ने के लिए गया।

वहाँ हमारे घर में एक दिन नाच होता था, उस समय मेरी छोटी बहन मरणासन्न थी कण्ठ बन्द हो गया था। मैं वहाँ गया और उसके बिस्तरे के पास खड़ा हुआ। सबसे पहले मैंने मौत वहीं देखी। जब मेरी बहन मर गई, तो मुझे बड़ा भय हुआ। मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि सबको इसी प्रकार मरना है। सब लोग रोते थे, पर मेरी छाती भय से धड़क रही थी। इसलिये मेरी आंखों से आंसू भी न गिरा। मेरी यह दशा देखकर पिता ने मुझको पाषाण-हृदय कहा।

मेरी माता मुझे बहुत प्यार करती थी, किन्तु उसने भी ऐसा ही कहा। मुझे सोने के लिए कहते थे पर मुझे कभी अच्छी तरह नींद न आती थी; किन्तु मैं हर घड़ी चौंक-चौंक उठता था और मन में भाँति-भाँति के विचार उठते थे। बहन के मरने के पश्चात् लोक रीति के अनुसार पाँच छः बार रोना होने पर भी जब मुझे रोना नहीं आया तो सब लोग मुझे धिक्कारने लगे।

उन्नीसवें वर्ष में मुझसे अत्यन्त स्नेह रखने वाले मेरे चाचा को भी मृत्यु ने आन दबाया। मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया। लोग उनकी नाड़ी देखने लगे। मैं उनके पास बैठा था, मुझे देखकर उनके टप-टप आँसू गिरने लगे। मुझे भी उस समय बहुत रोना आया, मैंने रो-रो कर आंखें सुजा लीं। ऐसा रोना मुझे कभी नहीं आया। इस समय मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि चचा की तरह मैं भी मर जाऊँगा। ऐसा विश्वास हो जाने पर अपने मित्रों और पण्डितों से अमर होनें का उपाय पूछने लगा। जब उन्होंने योगाभ्यास की ओर संकेत किया तो मेरे मन में यह सूझी कि घर छोड़कर चला जाऊँ। इस समय मेरी आयु २० वर्ष की थी।

मेरी बढ़ी हुई उदासीनता देखकर पिता ने जमींदारी का काम करने को कहा, परन्तु मैंने न किया फिर पिता ने निश्चय किया कि मेरा विवाह कर दें ताकि मैं बिगड़ न जाऊँ। यह विचार घर में होने लगा, यह मालूम करके मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि विवाह कभी न करूँगा। यह भेद मैंने एक मित्र से प्रकट किया तो उसने नापसन्द किया और विवाह करने को जोर देने लगा। मेरा विचार घर छोड़कर चले जाने का था, पर किसी ने सलाह न दी। जो कहते वे विवाह करने को ही कहते। एक महीने के

भीतर विवाह करने की तैयारी हो गई। यह देखकर मैं एक दिन शौच के मिष (बहाने) से एक धोती साथ लेकर घर से निकल पड़ा और एक सिपाही द्वारा कहला भेजा कि एक मित्र के घर गया हूं। मैं एक पास के गाँव में गया। इधर घर में मेरी प्रतीक्षा दस बजे रात तक होती रही। इसी रात को चार घड़ी के तड़के मैं गाँव से निकल कर आगे चल दिया और अपने गाँव से दस कोस के अन्तर पर एक गाँव में हनुमान के मन्दिर पर ठहरा।

वहां से चलकर सायला योगी के पास गया, परन्तु वहाँ पर मुझे शान्ति नहीं मिली और लोगों से सुना कि लालाभक्त नामी एक योगी है। तब उनकी ओर चल पड़ा। मार्ग में एक वैरागी एक मूर्ति रखकर बैठा हुआ था। बात-चीत होने पर वह बोला अँगुली में सोने का छल्ला डालकर वैराग्य की सिद्धि कैसे होगी ? मुझे इस प्रकार खिजाकर मेरे तीनों छल्ले मूर्ति की भेंट चढ़वा लिये। लालाभक्त के पास जाकर मैं योग-साधन करने लगा। रात को एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, तो वृक्ष के ऊपर घूघू बोलने लगा। उसकी आवाज सुनकर मुझे भूत का भय हुआ। मैं मठ के भीतर घुस गया।

फिर वहाँ से अहमदाबाद के समीप कोट काँगडा नामी गाँव में आया, वहां वहुत से वैरागी रहते थे। एक कहीं की रानी वैरागी के फन्दे में आ गई थी। इस रानी ने मेरे साथ ठट्टा किया, परन्तु मैं जाल से छूट गया, इस स्थान पर मैं तीन महीने रहा था। यहाँ पर वैरागी मुझ पर हँसी उड़ाने लगे, इसलिये जो रेशमी किनारेदार धोती मैं पहनता था, वह मैंन फेंक दी। मेरे पास केवल ३) रुपये रह गये थे, इनसे सादी धोती खरीदकर पहन ली और तब से अपना ब्रह्मचारी नाम रख लिया।

उन्हीं दिनों मैंने सुना कि कार्तिक के महीने में सिद्धपुर के स्थान पर एक मेला होता है। यह सोचकर कि वहाँ शायद मुझे कोई योगी मिल जावे और अमर होने का मार्ग बता दे, मैंने सिद्धपुर को प्रस्थान किया। मार्ग में मुझे अपने गाँव का आदमी मिला, उसने जाकर मेरे बाप को बतला दिया कि सिद्धपुर की ओर चला गया हूं। मेरा पिता और घर के लोग बराबर मेरी खोज में ही थे। इस आदमी की जबानी सुनकर मेरे पिता चार सिपाहियों सहित सिद्धपुर को आये। मैं एक मन्दिर में बैठा हुआ था। एकाएक मेरे पिता और चार सिपाही मेरे सामने आकर खड़े

हो गये। देखते ही मेरा कलेजा धड़कने लगा। इस भय से कि पिता मुझको मारेंगे, मैंने उठकर उनके पाँव पकड़ लिये। वे मुझ पर बहुत ही क्रुद्ध हुए, मैंने उनसे कहा कि एक धूर्त्त बहका कर मुझे यहाँ लाया है, मैं घर जाने को तैयार ही था कि आप आ गये। उन्होंने मेरा तूंबा तोड़ डाला और मेरी छाई फाड़ डाली और कुछ कपड़े मुझे दिये। मेरे पीछे दो सिपाही सदा के लिये कर दिये। रात को जहाँ मैं सोता था एक सिपाही मेरे सिराहने बैठ जागता रहता था। मैंने चाहा कि इस सिपाही को धोखा देकर निकल जाऊँ और इसलिये मैं यह जानने के लिये कि सिपाही रात को सोता है या नहीं, खुद भी जागता रहा। सिपाही को तो यह निश्चय हो जाये कि मैं सो रहा हूं और इसीलिए मैं नाक से खर्राटें भरने लगता था। इस प्रकार तीन रातें जागना पड़ा, चौथी रात सिपाही को नींद आगई, तब एक लोटा हाथ में ले बाहर निकला। यदि कोई देख पावे तो झट कह दूंगा कि शौच को जाता हूं। वहाँ से निकल कर गाँव के बाहर एक बाग में चला गया। प्रातःकाल होते ही एक वृक्ष पर चढ़कर बैठ गया। इस भाँति एक दिन भर इस वृक्ष पर भूखा बैठा रहा। रात को जब अँधेरा हो गया, सात बजे नीचे उतर कर चल दिया। अपने गाँव और घर के मनुष्यों से यह अन्तिम भेंट थी। इसके पश्चात् एक बार प्रयाग (इलाहाबाद) में मेरे गाँव के बहुत से लोग मुझको मिले; परन्तु मैंनेउनको अपना पता नहीं दिया,तब से आज तक कोई नहीं मिला।

सिद्धपुर से बड़ोदे को आया, वहाँ* नर्मदा नदी के तट पर विचरने लगा इस समय नर्मदा के तट पर योगानन्द स्वामी रहते थे। यहां एक दक्षिणी ब्राह्मण कृष्णशास्त्री भी रहते थे, इनके पास मैं कुछ-कुछ पढ़ता रहा। तत्पश्चात् राजगुरु के पास वेदों को पढ़ा। २३ या २४ वर्ष की अवस्था में मुझे चाणूद कनाली में एक सन्न्यासी मिला। मुझे पढ़ने में बहुत ही अनुराग था और सन्न्यास आश्रम में पढ़ने का बहुत सुभीता होता है। इसलिए उसके उपदेश से मैंने श्राद्ध आदि करके सन्न्यास ले लिया, तब से ही दयानन्द सरस्वती नाम धारण किया। मैंने दण्ड गुरु के पास धर दिया।

चाणूद में दो गोसाईं आये, जो राजयोग करते थे, मैं भी उनके

*नर्मदा बड़ौदे में नहीं। अतः वहाँ से घूमता घामता यह भाव लेना होगा।

साथ अहमदाबाद तक गया। वहाँ पर एक ब्रह्मचारी मिला। पर कुछ दिनों बाद मैंने उसका साथ छोड़ दिया। वहाँ से में जाते-जाते हरद्वार पहुँचा, वहाँ कुम्भ का मेला था। वहाँ से हिमालय* पहाड़ पर उस जगह पहुँचा जहाँ से अलकनन्दा नदी निकलती है। बर्फ बहुत पड़ी हुई थी और पानी भी बहुत ठण्डा था। वहाँ बर्फ लगने से पैर में कुछ तकलीफ हुई। हिमालय पर्वत परपहुँच कर यह विचार हुआ कि यहीं शरीर गला दूँ।

फिर मन में आया कि यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के बाद शरीर छोड़ना चाहिये। यह निश्चय करके मैं मथुरा में आया। वहाँ मुझे एक धर्मात्मा सन्न्यासी गुरु मिले। उनका नाम स्वामी विरजानन्द था, वे पहले अलवर में रहते थे। इस समय उनकी अवस्था ८१ वर्ष की हो चुकी थी। उन्हें अभी तक वेद-शास्त्र आदि आर्ष ग्रन्थों में बहुत रुचि थी। ये महात्मा दोनों आँखों से अँधे थे, और इनके पेट में शूल का रोग था। ये कौमुदी और शेखर आदि नवीन ग्रन्थों को अच्छा नहीं समझते थे और भागवत आदि पुराणों का भी खण्डन करते थे। सब आर्ष ग्रन्थों के वे बड़े भक्त थे। उनसे भेंट होने पर उन्होंने कहा कि तीन वर्ष में व्याकरण आ जाता है। मैंने उनके पास पढने का पक्का निश्चय कर लिया। मथुरा में एक भद्र पुरुष अमरलाल नामक थे, उन्होंने मेरे पढ़ने के समय में जो-जो उपकार मेरे साथ किये, मैं उनको भूल नहीं सकता। पुस्तकों और खानें-पीनें का प्रबन्ध सब उन्होंनें बड़ी उत्तमता से कर दिया। जिस दिन उन्हें कहीं बाहर जाना होता, तो वे पहिले मेरे लिये भोजन बनाकर और मुझे खिला कर बाहर जाते थे। सौभाग्य से ये उदारचेता महाशय मुझे मिल गये थे।

* 'हिमालय पहाड़ पर' का स्थान जानने के लिए पूना प्रवचन का दसवां व्याख्यान देखना होगा। ऋषि ने बताया है—जिस पहाड़ पर कि पुरानी अलकापुरी थी, 'उस पर मैं इस विचार से गया था कि एक बार ही अपना शरीर (इच्छा मृत्यु से) बर्फ में गलाकर संसार के धन्धों से निवृत्त हो जाऊं। परन्तु वहां जाकर विचार किया कि इस जगह पर मर जाना तो कोई पुरुषार्थ नहीं है। अलवत्ता ज्ञान प्राप्त करके परोपकार करना पूरुषार्थ है।

—हिमालय में जहाँ-जहाँ घूमे उसका उल्लेख पूना प्रवचन के दसवें व्याख्न में इस प्रकार है :—'महादेव कैलाश के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदार खण्ड का वर्णन किया गया है। हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।···काशमीर से लेकर नेपाल तक जो ऊंची चोटियां हैं वहां देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष वास करते हैं। —उपदेश मंजरी पृ० ११७

विद्या समाप्त होने पर मैं आगरे में दो वर्ष तक रहा, परन्तु पत्र व्यवहार के द्वारा या कभी-कभी स्वयं गुरुजी की सेवा में उपस्थित होकर अपने सन्देह निवृत्त कर लेता था। आगरे से मैं ग्वालियर को गया, वहाँ कुछ-कुछ वैष्णव मत का खण्डन आरम्भ किया, वहाँ से भी स्वामी जी को पत्रादि भेजा करता था। वहाँ माधवमत के एक आचार्य हनुमत नामी रहते थे। वे किरानी का स्वांग भर कर शास्त्रार्थ सुनने बैठा करते थे। एक-आध बार जब मेरे मुख से कोई अशुद्ध शब्द निकला, तो उन्होंने अशुद्धि पकड़ ली। मैंने कई बार उनसे पूछा कि आप कौन हैं, परन्तु उन्होंने यही उत्तर दिया कि मैं एक किरानी हूं, सुनने-सुनाने से कुछ बोध प्राप्त हुआ है। एक दिन इस विषय में वार्त्तालाप हुआ कि वैष्णव लोग जो माथे पर खड़ी रेखा लगाते हैं, वह ठीक है या नहीं। मैंने कहा यदि खड़ी रेखा लगाने से स्वर्ग मिलता है, तो सारा मुँह काला करने से स्वर्ग से भी कोई बड़ी पदवी मिलती होगी। यह सुनकर उनको बड़ा क्रोध आया और वे उठ गये। तब लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि यही उस मत के आचार्य हैं।

ग्वालियर से मैं रियासत करौली को गया। वहां पर एक कबीर-पन्थी मिला, उसने एक बार वीर के अर्थ कबीर किये थे और कहने लगा कि एक कबीर उपनिषद भी है। वहाँ से फिर मैं जयपुर को गया, वहां हरिश्चंद्र नामी एक बड़े विद्वान् पण्डित थे। वहाँ पहिले मैंने वैष्णव मत का खण्डन करके शैव मत स्थापन किया। जयपुर के महाराज सवाई रामसिंह भी शैवमत की दीक्षा ले चुके थे। शैवमत के फैलने पर हजारों रुद्राक्ष की मालायें मैंने अपने हाथों से लोगों को पहनाईं। वहाँ शैवमत का इतना प्रचार हुआ कि हाथी घोड़ों के गलों में भी रुद्राक्ष की माला पैहिनाई गईं।

जयपुर से मैं पुष्कर को गया, वहाँ से अजमेर आया। अजमेर पहुँचकर शैवमत का भी खण्डन करना आरम्भ किया। इसी बीच में जयपुर के महाराजा साहब लाट साहब से मिलने के लिए आगरे जाने वाले थे। इस आशंका से कि कहीं वृन्दावन निवासी प्रसिद्ध रंगाचार्य से शास्त्रार्थ न हो जावे। राजा रामसिंह ने मुझे बुलाया और मैं भी जयपुर गया; परन्तु यह मालूम होने पर कि मैंने शैवमत का खण्डन आरम्भ कर दिया है राजा साहब अप्रसन्न हुये। इसलिए मैं भी जयपुर छोड़ कर मथुरा में स्वामी जी के पास गया और शंका समाधान किया। वहां से मैं फिर हरिद्वार को गया।, वहां अपने मठ पर पाखण्ड मर्दन लिखकर झण्डा खड़ा किया। वहाँ वाद-विवाद बहुत सा हुआ।

फिर मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि सारे जगत से विरुद्ध होकर भी गृहस्थों से बढ़कर पुस्तक आदि का जंजाल रखना ठीक नहीं है। इसलिए मैंने सब कुछ छोड़ कर केवल कोपीन (लंगोट) लगा लिया और मौन धारण किया। इस समय जो शरीर में राख लगाना शुरू किया था, वह गत वर्ष बम्बई में आकर छोड़ा। वहाँ तक लगाता रहा था। जब रेल में बैठना पड़ा, तब से कपड़े पहनने लगा। जो मैंने मौन धारण किया था, वह बहुत दिन सध न सका, क्योंकि बहुत से लोग मुझे पहचानते थे। एक दिन मेरी कुटी के द्वार पर एक मनुष्य यह कहने लगा 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्" अर्थात् भागवत से बढकर और कुछ नहीं है, वेद भी भागवत से नीचे हैं।"

तब मुझसे यह सहन न हो सका, तब मौन व्रत को छोड़ कर मैंने भागवत का खण्डन प्रारम्भ किया। फिर यह सोचा कि ईश्वर की कृपा से जो कुछ थोड़ा-बहुत ज्ञान अपने को हुआ है, वह सब लोगों पर प्रकट करना चाहिए। इस विचार को मन में रख कर मैं फरुखावाद को गया, वहां से रामगढ़ को गया। रामगढ़ में शास्त्रार्थ शुरू किया। वहाँ पर जब दो चार पण्डित बोलते थे, तब मैं कोलाहल शब्द कहा करता था, इसलिए आज तक वहां के लोग मुझको कोलाहल स्वामी कहा करते हैं। वहाँ पर चक्रांकितों के चेले दश आदमी मुझे मारने आये थे, बड़ी कठिनता से उनसे बचा। वहां से फरुखाबाद होकर कानपुर आया कानपुर से प्रयाग गया। प्रयाग में भी मारने वाले मुझे मारने को आये थे। पर एक माधवप्रसाद नामी धर्मात्मा पुरुष था, उसकी सहायता से बचा। यह गृहस्थ माधव प्रसाद ईसाई मत ग्रहण करने को तैयार था, उसने इन सब पंडितों को नोटिस दे रक्खा था, कि यदि आप अपने आर्य धर्म में तीन महीने के भीतर मेरा विश्वास न करा देंगे, तो मैं ईसाई धर्म को स्वीकार कर लूँगा मेरे आर्य धर्म पर निश्चय दिला देने से वह ईसाई न हुआ। प्रयाग से मैं रामनगर को गया। वहाँ के राजा की इच्छानुसार काशी के पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में यह विषय प्रविष्ट था कि वेदों में मूर्तिपूजा है या नहीं। मैंने यह सिद्ध करके दिखा दिया कि प्रतिमा शब्द तो वेदों में मिलता है परन्तु उसके अर्थ तौल नाप आदि के हैं। वह शास्त्रार्थ अलग छपकर प्रकाशित हुआ है, जिसको सज्जन पुरुष अवलोकन करेंगे।

इतिहास शब्द से ब्राह्मण ग्रन्थ ही समझने चाहिये इस पर भी शास्त्रार्थ हुआ था। गत वर्ष के भाद्रपद मास में मैं काशी में था आज तक

चार बार काशी में जा चुका हूं। जब-जब काशी में जाता हूं तब-तब विज्ञापन देता हूं कि यदि किसी को वेद में मूर्ति पूजा का प्रमाण मिला हो, तो मेरे पास लेकर आवें परन्तु अब तक कोई भी प्रमाण नहीं निकाल सका।

इस प्रकार उत्तरीय भारत के समस्त प्रान्तों में मैंने भ्रमण किया है। दो वर्ष हुए कि कलकत्ता, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर जयपुर आदि नगरों में मैंने बहुत से लोगों को धर्मोपदेश दिया है। काशी फरुखाबाद आदि नगरों में चार पाठशालायें आर्ष-विद्या पढ़ाने के लिए स्थापित की हैं। उनमें अध्यापकों की उच्छृंखलता से जैसा लाभ पहुँचना चाहिए था नहीं पहुँचा। गत वर्ष बम्बई आया। यहाँ मैंने गुसाईं महाराज के चरित्रों की बहुत कुछ छानबीन की। बम्बई में आर्यसमाज स्थापित हो गया। बम्बई, अहमदाबाद, राजकोट आदि प्रान्तों में कुछ दिन धर्म्मोपदेश किया, अब तुम्हारे इस नगर में दो महीनों से आया हूँ।

यह मेरा पिछला इतिहास है, आर्य्य-धर्म की उन्नति के लिए मुझ जैसे बहुत से उपदेशक आपके देश में होने चाहिए। ऐसा काम अकेला आदमी भली प्रकार नहीं कर सकता, फिर भी यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार जो कुछ दीक्षा ली है उसे चलाऊंगा।

अब अन्त में ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि सर्वत्र आर्य-समाज कायम होकर मूर्ति पूजादि दुराचार दूर हो जावें, वेद शास्त्रों का सच्चा अर्थ सबकी समझ में आवे और उन्हीं के अनुसार लोगों का आचरण हो देश की उन्नति हो जावे। पूरी आशा है कि आप सब सज्जनों की सहायता से मेरी यह इच्छा पूर्ण होगी।

ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः

स्वामी दयानन्द सरवस्ती का आत्मचरित्र तथा स्वकथित यात्राएं

'थ्योसोफिस्ट' नवम्बर दिसम्बर १८८० ई०

अनुवादक आजीवन ब्रह्मचारी श्री नरेश कुमार

(M.A. साधक पा० यो० सा० सं०)

संम्वत् १८८१ वि० (तदनुसार १८२४ ई०) में काठियावाड़ प्रदेश के मौरवी राज्य के अन्तर्गत एक कस्बे में औदीच्य ब्राह्मण-परिवार में मेरा जन्म हुआ। मैं अब दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हूं, आरम्भ से ही मैं अपने पिता जी का नाम तथा उस कस्बे का नाम जिसमें हमारा परिवार रहता है बताने से उपरत रहा हूं क्योंकि ऐसा करने के लिए मेरे कर्तव्य ने मुझे बाध्य कर रखा है। यदि मेरे सम्बन्धी मेरे विषय में जान जाते तो उन्होंने मुझे ढूंढ लिया होता और मेरे सम्मुख आकर मुझे घर का आश्रय लेने के लिए बाध्य किया होता। ऐसा होने पर मुझे अर्थ स्पर्श रूप पाप में फिर से लिप्त होकर उनकी सेवा शुश्रूषा और आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता करनी पड़ती। इस प्रकार यह पवित्र सुधार-कार्य जिसके लिए मैंने अपना सारा जीवन अर्पित किया है, मेरे विवशतापूर्वक इस से वापिस हट जाने के कारण असाध्य क्षति को प्राप्त हो जाता।

शिक्षा

मैं पाँच वर्ष का ही हुआ हूंगा जब मैंने देवनागरी अक्षरों का सीखना प्रारम्भ किया। मेरे माता पिता तथा अन्य वृद्ध सदस्यों ने मुझे जातीय कौटुम्बिक परम्परा और प्रथा के अनुसार शिक्षा देना आरम्भकिया और मुझे लम्बे-लम्बे धार्मिक वैदिक मन्त्रों के सूक्त, अध्याय गद्यांश और भाष्य कण्टस्थ करा दिये। जब मैं आठ वर्ष का हुआ तब मेरा उपनयन संस्कार करा कर, मुझे गायत्री, कर्म काण्ड सहित सन्ध्या और रुद्राध्याय पढ़ाने के उपरान्त यजुर्वेद संहिता सिखाई गई। क्योंकि हमारा परिवार शैव मतावलम्बी था अतः उनका प्रधानतम लक्ष्य मुझे शैव मत के धर्म-

---

टिप्पणी:—यह लेख नवम्बर दिसम्बर १८८० में प्रकाशित हुआ। —पं० भगवत् जी। लिखित (महर्षि दयानन्द का आत्म चरित से।)

तत्त्वों के रहस्यों में दीक्षित करना था। इस प्रकार बचपन में ही मुझे शिव के प्रतिनिधि मृत्तिका से बने अद्भुत चिन्ह को जिसे पार्थिव लिंग कहते हैं पूजने की शिक्षा दी गई थी। इस पूजा के साथ बहुत मात्रा में उपवास तथा विविध कठोर व्रतचर्या जुड़ी हुई थी और मुझे प्रातःकाल जल्दी भोजन करने का अभ्यास था। अतः मेरी पूज्या माता मेरे स्वास्थ्य के भय से इसके दैनिक अनुष्ठान का विरोध करतीं थीं, किन्तु मेरे पिता जी इसकी अनिवार्यता पर कठोरता से वल देते थे और अन्ततः यही प्रश्न उन दोनों के बीच सतत कलह का कारण बन गया था। इसी काल में मैंने संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया। वेदों को कण्ठस्थ किया और विभिन्न पूजा कथा स्थानों, मन्दिरों और शिवालयों में पिता जी के साथ रहा। पिता जी के उपदेश सदा इस एक ही विषय पर केन्द्रित होते थे कि शिव के प्रति सर्वोत्कृष्ट श्रद्धा और भक्ति रखनी चाहिये। क्यों कि शिवोपासना ही सब धर्मों में परमधर्म है। इस प्रकार करते कराते चौदहवाँ वर्ष आरम्भ होने से पूर्व ही सम्पूर्ण संहिता, तथा अन्य वेद ,संहिताओं के भाग, शब्द रूपावली, और व्याकरण कण्ठस्थ करने के उपरान्त मेरा पाठ्य क्रम समाप्त हो गया।

रात्रि जागरण (उपवास का पौर्वाह्निक)

पिता जी का घर लेन देन का बैंक घर था। इस से भी बढ़कर उनके पास कुल—क्रमागत जमादारी (सरकारी माल गुजारी तथा कर-संग्रह करने वाले, अधिकारी एवं न्यायाध्यक्ष का अधिकार रहने के कारण हमसे गरीबी कोसों दूर थी। अतः अब तक का जीवन बहुर आनन्द पूर्वक व्यतीत हुआ था।

जहाँ कहीं भी शिव पुराण का पाठ कथायें, व्याख्यायें होती तो पिता जी मुझे अवश्य साथ रखते। माता जी की अनास्था❀ की परवाह न करते। उन्होंने दृढ़ता-पूर्वक आदेश दे दिया कि मैं पार्थिव पूजा❀ प्रारम्भ कर दूं।

❀ Remontrances = A formal representaion of any grievance. —S. Swami.

❀ Parthiva puja is thc cermony connected with the worship of a Lingam of clay the emblem of SHIVA T.

—पार्थिव पूजा का अर्थ शिव का मिट्टी का लिंग अर्थात् शिव का स्थानापन्न कोई चिन्ह बनाकर पूजना। —थियासोफिस्ट की टिप्पणी

जब अन्धकार महानिशा उपवास की महा-शिवरात्रि आयी जो माघ ब० दि० कृष्णा त्रयोदशी के अगले दिन थी। पिता जी नें मेरे बल की क्षीणता की आशंका से माता जी द्वारा उठाये गए प्रतिरोध पर ध्यान न देते हुए मुझे व्रत रखने की आज्ञा दी, और बताया कि मुझे उसी रात पावन शिव -उपाख्यान में दीक्षा मिलनी है। शिव मन्दिर में पूरे रात्रि जागरण में भाग लेना हैं। दूसरे नवयुवकों के साथ जो अपने माता पिता के साथ आए थे, मैंने भी अपने पिता जी का अनुगमन किया। यह रात्रि जागरण चार भागों में बँटा होता है जो एक एक पहर अथवा तीन तीन घन्टे के होते हैं। अपना पूजा-कार्यक्रम समाप्त करके अर्थात् दोपहर तक पूजन आदि करने के वाद जब आधी रात हो गई तो मैंने देखा कि पुजारी अर्थात मंदिरके दुस्सेवकतथा अन्यान्य साधारण भक्तलोग मन्दिर का अन्त: प्रकोष्ठ छोड़कर बाहर आकर सो गए। मैंने वर्षों शिक्षा पाई थी कि उस विशेष रात्रि को सो जाने से पूजाव्रती धर्मनिष्ठा के सुफल को खो बैठता है अत: मैंने शीतल जल से नेत्रों को बार बार धोया और तन्द्रा से प्रभावित न होनें का यत्न किया। परन्तु मेरे पिता जी कम सौभाग्यशाली थे। थकान के आवेग को रोकने में असमर्थ हो कर तथा केवल मुझे ही जागरूक छोड़ कर वे सर्वप्रथम निद्राभिभूत हो गए।

मूर्ति पूजा पर अश्रद्धा

विचारों के दल के दल मेरे मन में उमड़ने लगे। और एक के बाद एक शंका मेरे क्षुब्ध मस्तिष्क में उठने लगी। मैंने अपने से प्रश्न किया— 'क्या यह सम्भव है कि मानव सदृश देहधारी भगवान् शिव की मूर्त्ति जिन्हें मैं अपने बैल पर सवार हुआ देख रहा हूं वे कैलाश पति भगवान महादेव ही हों तथा शास्त्रों के वर्णन के अनुसार जो विचरण करते हैं—खाते पीते हैं, जो हाथ में त्रिशूल धारण करते हैं, अपना डमरू बजाते हैं तथा मानव को अभिशाप देते हैं। पुराणों की कथाओं में आए वर्णन के अनुसार तो वे क्योंकि दिव्य पराक्रमी एवं सबके अधिपति हैं। इस प्रकार के विचारों को रोकने में असमर्थ होकर मैंने अपने पिताजी को जगाकर हड़बड़ाहट से पूछा कि यह मन्दिर में रखी हुई भयंकर शिवमूर्त्ति ही शास्त्रों में उल्लिखित महादेव हैं अथवा उनसे भिन्न हैं ?

पिताजी ने कहा —"तुम यह क्यों पूछते हो ?"

मैंनेकहा—मैं सर्वशक्तिमान् जीवन्त परमेश्वर की भावना इस मूर्त्ति

में नहीं कर पा रहा हूं, जिसके शरीर पर चूहे दौड़ सकते हैं और जो उनके सम्पर्क से अपनी प्रतिमा के अपवित्र हो जाने का लेशमात्र भी विरोध नहीं कर सकती है।

इस पर पिताजी ने समाधान करने का यत्न किया और कहा कि, यह पत्थर की प्रतिमा पवित्र ब्राह्मणों के द्वारा प्रतिष्ठापित हो जाने के प्रभाव से साक्षात् महादेव ही हैं। अतः इनकी पूजा की जाती है। इस मानसिक अन्धकार से भरे कलियुग में महादेव का वास्तविक दर्शन नहीं हो सकता। अतः इस प्रतिमा ही के माध्यम से भक्त जन कैलाश-पति भगवान् महादेव की पूजा करते हैं और यह पूजा उन देवाधिदेव को इतना प्रसन्न कर देती है—मानो प्रतिमा के स्थान पर वे स्वयं ही विराजमान हों। पिताजी के इस उत्तर से मेरी संतुष्टि नहीं हुई। अल्पवयस्क होने से मैं पिताजी के द्वारा प्रस्तुत उस कुतर्कपूर्ण तथा असंगत समाधान में अश्रद्धा किए बिना न रह सका। भूख और थकान से निष्प्रभ हो जाने के कारण मैंने पिताजी से घर जाने की अनुमति मांगी। पिताजी ने स्वीकार करके मुझे एक सिपाही के साथ भेज दिया और अपनी इस आज्ञा को कि मैं भोजन करके व्रत भंग न करूँ एक बार और दोहराया, किन्तु घर पर जब मैंने माताजी को क्षुधा के विषय में बताया तो उन्होंने मुझे मिठाई खिला दी और मैं गहरी नींद में सो गया।

निर्णय

प्रातः जब पिताजी घर पर आए तो यह जानकर कि मैंने व्रत भंग कर दिया है बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने मुझे यह महसूस कराने का यत्न किया कि मैंने घोर अपराध कर दिया है; किन्तु मैं उस पत्थर की मूर्ति के परमेश्वर होने में विश्वास न कर सका और उपवास रखने तथा उसकी पूजा करने के हेतु को न समझ सका। मुझे अपने श्रद्धा के अभाव को छिपाना पड़ता था और पूजा करने न जाने के कारण के रूप में अपनी पढ़ाई का बहाना प्रस्तुत करना पड़ता था। वस्तुतः किसी अन्य कार्य के लिए अध्ययन कार्य से अतिरिक्त मेरे पास या तो बिल्कुल समय नहीं बचता था और यदि बचता तो बहुत ही थोड़ा। इसका माता जी प्रबल समर्थन करती थीं। यहाँ तक कि मेरे चाचा जी भी मेरे इस हेतु का इतना अच्छा युक्तियुक्त पूर्ण समर्थन करते थे कि अन्त में मेरे पिताजी को मान लेना पड़ा और उन्होंने मुझे पूरा ध्यान अध्ययन कार्य पर केन्द्रित करने की आज्ञा दे दी। परिणामतः मैंने अध्ययन क्षेत्र को निघण्टु, निरुक्त, पूर्व-

मीमाँसा ग्रन्थ शास्त्रों तथा कर्मकाण्ड और उसके विधि विधान तक विस्तृत कर लिया।

सर्वस्व त्याग

मेरे अतिरिक्त दो छोटी बहनें और दो भाई थे मेरी आयु १६ वर्ष की थी जबकि मेरे सबसे छोटे भाई का जन्म हुआ। एक स्मरणीय रात्रि को जब हम एक मित्र के घर नृत्योत्सव देख रहे थे। एक नौकर ने घर से आकर यह भयंकर सूचना दी कि मेरी छोटी बहन जो चौदह वर्ष की थी एक घातक रोग से ग्रस्त हो गई है। हर प्रकार की चिकित्सा करने के बावजूद भी हमारे लौटने के चार घड़ी पश्चात् ही वह चल बसी। यह मेरे जीवन में सबसे पहला प्रियजन का मृत्यु से वियोग का अनुभव था। मुझे इससे भारी आघात लगा। जब सम्बन्धी तथा मित्रगण मेरे चारों ओर बैठे रोदन और विलाप कर रहे थे मैं व्यथा सागर में डूबा हुआ मूर्ति के समान निस्तब्ध खड़ा था। मनुष्य जीवन की अस्थिरता विषयक एक दुःखपूर्ण तथा दीर्घ चिन्तन शृंखला उमड़ पड़ी। फलतः मैंने सोचा—'इस विश्व में कोई भी जन्तु मृत्यु के निर्जीव हाथों से नहीं बच सका। मुझे भी किसी भी समय मृत्यु का ग्रास बनना पड़ेगा। इस शाश्वत मृत्यु जात मानव यंत्रणा को विनाश करने का उपाय कहाँ ढूँढूँ, मुझे कहाँ से मोक्ष प्राप्ति का साधन मिलेगा। मैंने, उसी समय उसी स्थान पर निश्चय किया कि मैं मोक्ष की खोज अवश्यमेव करूँगा। चाहे इसके लिए मुझे कुछ भी मूल्य चुकाना पड़े और इस प्रकार अपने-आपको तथा अज्ञ मानवता को नास्तिकों को प्राप्त होने वाली मृत्यु समय की उस अवर्णनीय पीड़ा से बचाऊँगा। इस चिन्तन के अन्तिम परिणाम ने मुझे सदा के लिए दिखावटी व्रत और उनकी कठोरता से उपरत कर दिया और मैं आत्मा की आन्तरिक आध्यात्मिक उन्नति का समर्थक हो गया। किन्तु मैंने अपने निश्चय को गुप्त रखा और भावनाओं की गहराई में किसी को नहीं झाँकने दिया। मैं तब अठारह वर्ष का था। कुछ ही समय पश्चात् मेरे चाचा जी, जो एक बड़े विद्वान् और दैवी सम्पत् वाले व्यक्ति थे जो सदा मुझ पर महती कृपा दृष्टि रखते थे तथा जन्म से ही मैं जिनका स्नेहपात्र रहा था, वह भी मृत्यु को प्राप्त हो गये। उनकी मृत्यु ने मुझे घोर निराशा की दिशा में ला छोड़ा। मेरे अन्तस्तल में बैठी भावनायें और भी दृढ़-मूल हो गईं कि सांसारिक जीवन में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसके लिए मैं जीवित रहूँ या जीवन की अपेक्षा करूं।

विघ्न

यद्यपि मैंने अपनी वास्तविक मानसिक स्थिति से अपने माता-पिता को अवगत नहीं होने दिया तो भी मैंने अपनी असावधानी से अपने मित्रों पर यह प्रगट कर दिया कि मेरे लिए वैवाहिक जीवन का विचार कितना अरुचिकर था। यह बात मेरे माता-पिता के कानों में पड़ी तो उन्होंने तत्क्षण निर्णय कर लिया कि मेरी सगाई अविलम्ब कर दी जाए और मेरे बीस वर्ष का होते ही विवाह संस्कार भी कर दिया जाए।

उनके निश्चय से अवगत होते ही मैंने उनकी योजना को ध्वस्त करने का पूरा यत्न किया मैंने अपने मित्रों को मध्यस्थता करने को प्रेरित किया और उन्होंने मेरे पिताजी के समक्ष इतनी तत्परता से मेरा समर्थन किया कि उन्होंने मेरी सगाई को उस वर्ष के अन्त तक टालने का वचन दे दिया। उसके बाद मैंने उनसे यह प्रार्थना करनी आरम्भ की कि वे मुझे बनारस भेज दें जहाँ मैं अपने व्याकरण का ज्ञान पूर्ण कर सकूँ। ज्योतिष और अन्य पांच भौतिक शास्त्र पढ़ सकूँ तथा इन कठिन विद्याओं में पूर्ण कुशलता प्राप्त कर सकूँ; किन्तु इस बार मेरी माता जी ने इसका प्रबल विरोध किया। उन्होंने घोषणा की कि मैं बनारस नहीं जा सकूँगा क्योंकि जो भी मैं पढ़ना चाहूं वह घर पर रहकर भी उतना ही भली प्रकार से पढ़ा जा सकता है जितना कि बाहर जाकर और आगामी वर्ष से पूर्व तुम्हारा विवाह भी हो जाना है। नवयुवक बहुत अधिक पढ़-लिखकर मन-मानी करने लगते हैं

इस प्रसंग में मुझे अपने पिताजी से भी अधिक सफलता नहीं मिली क्योंकि ज्यों ही मैंने उनके समक्ष इस प्रसंग में अनुग्रह की प्रार्थना को दोह-राया और कहा कि मेरी सगाई तब तक के लिए स्थगित कर दी जाए जब तक मैं बनारस से विद्या तथा अन्य विज्ञानों में प्रवीण विद्वान् के रूपमें न लौटूँ इसके विरोध में माताजी ने घोषणा की कि ऐसी अवस्था मेंन केवल वे मेरी सगाई को वर्ष के अन्त तक स्थगित करना भी स्वीकार न करेंगी किन्तु मेरा विवाह भी तत्काल ही सम्पन्न करा देंगी मैंने यह अच्छी तरह समझ लिया कि मेरे हठ से काम बिगड़ जायेगा। मैं आग्रह करने से रुक गया और कह दिया कि मैं घर पर अध्ययन जारी रखने से संतुष्ट हूं, यदि मुझे एक पुराने मित्र तथा विद्वान् पण्डित जो हमारी जमीदारी के अन्दर छः मील की दूरी पर एक गांव में रहता है, के पास अध्ययन के लिए जाने

की आज्ञा दी जाए। पिताजी से अनुमति मिलने पर मैं उनके पास कुछ समय रहकर शान्तिपूर्वक पढ़ता रहा।

वहाँ रहते हुए एक दिन प्रसंगवश मैंने विवाह के विषय में अपना अटूट विरोध प्रगट कर दिया। यह सूचना घर पर पहुंच गई। मुझे घर लौट आने की आज्ञा भेज दी गई, और लौटने पर मैंने अपने विवाह के लिए हर प्रकार से पूरी तैयारी देखी। अब मैंने पूर्ण रूप से समझ लिया कि न ही मुझे और अधिक दिन अध्ययन करने की अनुमति मिलेगी और न ही मेरे माता पिता मेरे विवाह न करने के विचार से सहमत हो सकेंगे। इस अन्तिम परिणाम पर पहुँच जाने के पश्चात् मैंने अपने और विवाह के बीच एक स्थायी रोक लगाने का निश्चय किया।

घर का परित्याग

सम्वत् १६०३ के एक दिन सायंकाल के समय किसी को भी अपने मन का भेद बताये विना मैं चुपचाप घर से निकल पड़ा। आठ मील दूर एक गाँव के समीप पहली रात व्यतीत करके मैं उषःकाल से एक पहर पहले ही चल पड़ा और रात्रि होने से पूर्व ही मैंने तीस मील से अधिक मार्ग तय कर लिया।

मैं आम रास्तों, गांवों तथा बस्तियों से जिनमें मुझे पहचाना जा सकता था ध्यानपूर्वक बचता जाता था। ये सावधानियाँ मुझे लाभकर सिद्ध हुई; क्योंकि अपने गृह त्याग के तीसरे ही दिन मुझे एक सरकारी अधिकारी से विदित हुआ कि मनुष्यों का एक विशाल दल-जिसमें कुछ अश्वारोही भी सम्मिलित हैं—परिश्रमपूर्वक घूमते हुए एक ऐसे नवयुवक की जो अपने घर से भाग खड़ा हुआ है—खोज कर रहा है।

भिक्षुक ब्राह्मणों के एक दल ने कृपा करके मुझे सारे धन से छुट्टी दिला दी थी। यहाँ तक कि मेरे सोने चाँदी के बने आभूषण, अंगूठी, कंकन तथा दूसरे रत्नों को भी यह कहकर कि—जितना अधिक दान दोगे उतना ही अधिक लाभ आत्मसंयम के फलस्वरूप भावी जीवन में होगा' -ले लिया था। इस प्रकार सारे धन से छुटकारा पाकर मैं शीघ्र ही एक बहुपठित विद्वान् के निवास स्थान पर आया। इनके विषय में मैंने इधर उधर विचरने वाले संन्यासियों और वैरागियों से बहुत कुछ सुना था। इनका नाम लाला भक्त था वे शैला नगर में रहते थे। जहाँ मैं एक ब्रह्म-

चारी से मिला, जिसने मुझे तत्काल ही दीक्षा लेने का सुझाव दिया और मैंने तदनुसार आचरण किया।

पवित्र ब्रह्मचर्य की दीक्षा

अपने सम्प्रदाय में दीक्षा देकर तथा मेरा नाम 'शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी, रखकर उन्होंने मुझे लालिमामय पीले वस्त्र धारण करा दिए। नया वेश धारण करने के पश्चात् मैं वहाँ से अहमदाबाद के निकटवर्ती एक छोटे राज्य कोठकांगड़ा की ओर चला। दुर्भाग्यवश,मार्ग में मुझे अपने जन्म स्थान के पास के एक गाँव का निवासी एक वैरागी मिल गया जो हमारे परिवार से भली-भाँति परिचित था। वह मुझे देखकर विस्मित हुआ उतना ही उसे देखकर मैं उद्विग्न हुआ। स्वभावतः मेरे वहाँ उस विशेष वेश में आने का कारण पूछने पर मैंने उसे बताया कि विश्व का परिभ्रमण और दर्शन करने के विचार से घर से निकल आया हूं। उसने मेरे वस्त्रों का उपहास किया और मुझे इस उद्देश्य के लिए गृह-त्याग करने का दोषी बताया। मेरी घबराहट के कारण वह वैरागी मेरे भावी संकल्प को जानने में सफल हो गया। मैंने उससे कह दिया कि कार्तिक के मेले में जो सिद्ध पुर में होगा, जाने की इच्छा है और मैं अब वहीं जा रहा हूं।

उस वैरागी से अलग होते ही मैं शीघ्र ही सिद्धपुर पहुँच गया और नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में ठहर गया, जहाँ दण्डी स्वामी तथा अन्य ब्रह्मचारी लोग पहले से ही रहते थे। मैंने पवित्रात्मा पुरुषों से सम्पर्क करते हुए तथा विद्वानों एवं परमार्थ-परायण आचार्यों की सत्संगति में बिना किसी कष्ट के आनन्द पूर्वक दिन व्यतीत किए।

परिवार से सम्बंध विच्छेद

इसी बीच, वह वैरागी, जो मुझे कोठ कांगड़ा में मिला था, (धोखेबाज सिद्ध हुआ) उसने हमारे परिवार को एक पत्र लिखा जिसमें मेरी अभिलाषा की सूचना तथा मेरे ढूँढे जाने के स्थान का भी संकेत दे दिया। फलतः मेरे पिता जी अपने सिपाहियों सहित सिद्धपुर आए, और सारे मेले में मुझे क्रम से ढूँढना आरम्भ किया। उन विद्वान् पण्डितों से मेरे विषय में कुछ जानकर एक दिन प्रातः काल अचानक मेरे सामने आ खड़े हुए। भयंकर क्रोध के कारण उनकी ओर देखा नहीं जाता था। उन्होंने मुझे बुरी तरह से झिडका और उनके परिवार को सदा सदा के लिए बद-

नाम करने का दोषी ठहराया। उन पर दृष्टिपात करते ही मैंने यह समझ लिया कि उनका विरोध करने का कोई लाभ नहीं होगा। अतः मैंने झट-पट यह निर्णय कर लिया कि मुझे क्या आचरण करना है। हाथ जोड़कर उनके चरणों में गिरते हुए मैंने उनके क्रोध को शाँत करने के हेतु विनम्र स्वर से प्रार्थना की कि किसी के बहकाने से मैंने घर छोड़ दिया था और अब पश्चात्ताप से दुःखित होकर घर लौटने ही वाला था कि सौभाग्यवश आप आ गए। अब मैं आपके साथ घर लौटजाने का इच्छुक हूं। इतनी विनम्रता के उपरान्त भी क्रोध के आवेश में उन्होंने मेरे पीले वस्त्रों को फाड़कर चिथड़े बना दिया। झपट कर मेरे हाथ से तुम्बे को छीन लिया और उसे दूर फेंक दिया और साथ ही मुझपर तीखी झिड़कियों की बौछार करते रहे। साथ ही साथ मुझे माता का हत्यारा भी कहा। उनके साथ चलने का वचन देने के बावजूद भी उन्होंने मुझे सिपाहियों की देख-रेख में सौंप दिया और उन्हें मुझ पर कठोर निगरानी रखने तथा अपनी दृष्टि से एक पल भी ओझल न होने देने की आज्ञा दी।

वेदान्ती बना

किन्तु मेरा निश्चय भी पिता जी के निश्चय के समान ही पक्का था। मैं अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दृढ़ संकल्प था और भाग निकलने के सुयोग की जागरूकता से प्रतीक्षा कर रहा था। उसी रात को मैंने देखा कि लगभग ३ वजे वह सिपाही जिसकी मुझ पर पहरा देने की बारी थी मुझे सोया समझकर स्वयं भी सो गया। चारों ओर शान्ति थी। अतः चुपचाप उठकर और हाथ में जल का तूम्बा (लोटा)* लेकर मैं भाग निकला और मेरी अनुपस्थिति का ज्ञान होने तक मैं १ मील दूर अवश्य निकल गया था। मार्ग में मैंने एक वृक्ष देखा जिसकी घनी शाखाएँ एक शिवालय की छत पर छाई हुई थीं। मैं उत्सुकता से उस पर चढ़ गया और अपने को उस के पत्तों के सघन गुच्छो में छिपाकर यह प्रतीक्षा करने लगा कि देखें मेरे भाग्य में क्या लिखा है। प्रातः लगभग ४ बजे मैंने मन्दिर के कंगूरों के छिद्रों से देखा कि सिपाही लोग मन्दिर के बाहर भीतर उत्साह पूर्वक मेरी खोज कर रहे हैं। मैंने श्वास की गति को रोक लिया और निस्स्पन्दन

* अंग्रेजी में यहां टम्बलर है। टम्बलर का अर्थ तूम्बा या जल पात्र है। दयानन्द लोटा लेकर ही निकल सकते थे। तूम्बा तो पिताजी ने पहले ही फोड़ दिया था। दूसरा कहां से आया होगा। —स० स्वामी

भाव से लेटा रहा। अन्त में, अपने आपको गलत मार्ग पर समझकर वे-अनमने होकर लौट गए। नयी मुठभेड़ से डर कर मैं सारे दिन भर उसी स्थान पर छिपा रहा। अन्धकार के खूब फैल जाने पर मैं वृक्ष से उतर कर विपरीत दिशा में भाग खड़ा हुआ। इस बार मैं आम रास्तों से पहले से भी अधिक बचता हुआ तथा जितना हो सकता था कम से कम लोगों से मार्ग पूछता हुआ अहमदाबाद पहुँच गया और वहाँ से फौरन बड़ौदा चला गया। वहाँ मैं चैतन्य मठ पर कुछ काल ठहरा। वेदान्त दर्शन के विषय में मेरा ब्रह्मानन्द जी तथा अन्यान्य ब्रह्मचारियों और सन्न्यासियों से अनेक बार वाद-प्रतिवाद हुआ। यह श्री ब्रह्मानन्द जी तथा दूसरे पवित्रात्मा पुरुष ही थे जिन्होंने इस प्रसंग में कि मैं ब्रह्म हूं मेरा पूर्ण रूप से समाधान कर दिया। मैं ब्रह्म हूं, ब्रह्म का अंश हूं क्योंकि जीव और ब्रह्म एक ही हैं—मेरी यह धारणा अचल हो गई। पहले भी वेदान्त पढ़ते हुए मुझे यह विश्वास किसी सीमा तक अवश्य हो गया था किन्तु अब तो शंकाओं का पूर्ण समाधान हो जाने से मुझे निश्चय हो गया कि मैं ब्रह्म हूं।

वेदान्त का अध्ययन

बड़ौदा में बनारस की रहने वाली एक स्त्री से यह सुन कर कि काशी में किसी स्थान विशेष पर परम विद्वान् पण्डितों की एक सभा होगी मैंने काशी की यात्रा आरम्भ कर दी। वहाँ पहुँच कर सच्चिदानन्द परमहंस जी से मिला, जिनसे मैंने विविध विज्ञान, अध्यात्म विज्ञान के प्रसंगों तथा आत्मतत्त्व के विषय में वार्तालाप किया। उनसे मुझे ज्ञात हुआ कि बहुत से चरित्रवान् सन्न्यासी और ब्रह्मचारी चाणोद कनियाली में रहते हैं। परिणामतः मैं नर्मदा के किनारे-किनारे चलता हुआ उस पवित्र स्थान पर पहुँच गया।

यहाँ पर मैं प्रथम बार बहुत से दीक्षित व योग में दीक्षित साधुओं, अनेक ब्रह्मचारियों और चिदाश्रम नामक सन्न्यासी से मिला। कुछ वाद-विवाद के बाद मैंने श्री परमानन्द परमहंस से कई मास तक वेदान्तसार, आर्य हरिमिहिर तोटक, वेदान्त परिभाषा तथा अन्य दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। इस समय एक ब्रह्मचारी होने के नाते मुझे अपना भोजन स्वयं बनाना पड़ता था जो मेरी शिक्षा में एक बड़ा विघ्न बन गया था।

इस से छुटकारा पाने के लिए मैंने निर्णय किया कि यदि संभव हो सके तो* सन्न्यास आश्रम की चतुर्थ श्रेणी में प्रवेश किया जाए। इस नाम परि-वर्तन से अपने पारिवारिक परिचय को छिपाने और इस प्रकार अपनी सुरक्षा के लिए भी मैंने सन्न्यास का अवलम्बन ग्रहण करना चाहा। और अपने मित्र एक दक्षिणी पंडित के माध्यम से मैंने वहाँ के एक दीक्षित अर्थात् उनमें सबसे अत्यधिक महा विद्वान् थे उनसे प्रार्थना की कि वे मुझे तुरन्त ही सन्न्यास दे दें। उन्होंने मेरे भरपूर यौवन के कारण मुझे सन्यास देने से साफ इन्कार कर दिया। किन्तु, मैं निराश नहीं हुआ।

कुछ मास पश्चात् दो दाक्षिणात्य साधु आये। उनमें एक स्वामी था। और दूसरा ब्रह्मचारी। वे चाणोद के निकट ही जंगल में स्थित एकांत खण्डर में ठहर गए। जो हमारे स्थान से दो मील की दूरी पर था। मेरे दक्षिणी मित्र जो वेदान्त दर्शन के गंभीर विद्वान् थे-मुझे साथ लेकर उनसे मिलने गए। आध्यात्मिक विचार विनिमय के उपरान्त वे दोनों दीक्षित एक दूसरे के विस्तृत अध्ययन से परिचित हो गए। उन्होंने हमें बताया कि

*सन्न्यास :—शास्त्रों में विविध आश्रमों तथा अवस्थाओं का वर्णन है। (१) ब्रह्मचारी—जो भिक्षा वृत्ति से निर्वाह करता हुआ तथा वीर्य रक्षा करता हुआ अध्ययन रत रह कर जीवन बिताता है।

(२) गृहस्थ—जो पुण्यमय विवाहित जीवन बिताता है।
(३) वानप्रस्थ—जो एक साधु जीवन बिताता है। (४)—सन्न्यासी या चतुर्थ आश्रमी—यह सर्वोच्च आश्रम है जिस में पहले तीनों आश्रमों का भी सदस्य प्रवेश पा सकता है। इस आश्रम में भी चार क्रमिक सोपान हैं (क) कुटिचर—जो यज्ञोपवीत धारण किए हुए, चोटी रखे तीन ग्रन्थी वाला दण्ड धारण किये, रक्तिम काषाय वस्त्र धारण करता है। एक कुटिया-निर्जन स्थान में रहतेहुए पर-ब्रह्म के ध्यान में निरत रहता है। (ख) बहूदक—जो उसी प्रकार के रक्तिम वस्त्र धारण किए हुए, सात घरों से एकत्रित भिक्षा पर निर्वाह करता है और अपने परिवार से सर्वथा पृथक् रहता है (ग) हंस—पूर्व दो की भान्ति ही है। किन्तु यह एक गाठ वाला दण्ड धारण करता है दाढी तथा केश बढ़ा कर रखता है, यह सर्वोच्च श्रेणी का चतुर्थ श्रेणी का सन्न्यासी है। जो परमहंस सिद्ध होता है दीक्षित कहा जाता है। (थि०)

वे शंकराचार्य के प्रमुख मठ शृंगेरि मठ से आये थे और द्वारका की यात्रा पर जा रहे थे । मैंने स्वामी परमानन्द सरस्वती को अपनी तात्कालिक अवस्था, स्थिति, ध्येय तथा कठिनाइयों से अवगत कराने के लिये और सन्न्यास की दीक्षार्थ अपने इन्हीं दक्षिणी मित्र से कहलाया । तदनुसार उन्होंनें स्वामी परमानन्द जी को बताया कि 'यह एक अल्पवयस्क ब्रह्मचारी है जो अध्यात्म शास्त्र निर्विन्घता पूर्वक पढ़ना चाहता है और जो सब प्रकार के दोषों और ऐबों से मुक्त है । अपने विद्योपार्जन को निर्विघ्न चलानें के लिए यह कृतसंकल्प है । अतः मैं इसको सन्न्यासियों की चतुर्थ श्रेणी की दीक्षा के योग्य समझता हूं । इस प्रकार इसको सांसारिक उत्तरदायित्व और बन्धनों से भी छुटकारा पानेके लिए ठोस सहयोगमिल जाएगा । और यह अपने आध्यात्मिक अध्ययन में निर्बाध रूप से आगे बढ़ सकेगा ।" प्रथम तो इन स्वामी जी ने भी इनकार कर दिया कि दीक्षार्थी की आयु छोटी है । साथ ही वे स्वयं महाराष्ट्रीय थे अतः उन्होंने मुझे किसी गुजराती सन्यासी से दीक्षार्थ प्रार्थना करने की सलाह दी । मेरे मित्र के उत्सुकता पूर्वक प्रेरणा देने पर तथा यह याद दिलाने पर कि महाराष्ट्रीय सन्न्यासी गणतो गौड़ों को भी दीक्षा दे देते हैं और पाँचद्राविड़ों में से होने के नाते इसके मामले में कोई आपत्तिकी संभावना नहीं है । उन्होंने स्वीकृति दे दी । इस से तीसरे दिन उन्होंने मेरा दीक्षा संस्कार करके मेरा नाम दयानन्द सरस्वती रखा और मुझे एक दण्ड* प्रदान कर दिया । दीक्षा प्रदाता की आज्ञा से तथा अपनी भी इच्छा से मुझे एक लाक्षणिक बांस जिसे दण्ड कहते हैं साथ रखना पड़ता था, मैंनें कुछ समय के लिए त्याग दिया क्योंकि इसके साथ सन्न्यासी के विशेष कर्मकाण्ड और रीति रिवाज जुड़े हुए थे । इससे मेरी शिक्षा की निर्विघ्न उन्नति में बाधा ही उपस्थित होती थी ।

यात्राएं-योग की खोज

दीक्षा समारोह समाप्त होने पर वे द्वारका चले गये । कुछ समय तक मैं एक साधारण सन्यासी के रूप में चाणोद कल्याणी में ही रहा ।

किन्तु, व्यास आश्रम में रह रहे एक योग विद्या विशारद स्वामी योगानन्द के विषय में सुनकर उनके पास एक विनीत शिष्य के रूप में

---

* तीन और सात ग्रन्थियों से युक्त सरल सीधा बाँस जो दण्डी स्वामियों को दीक्षा सामर्थ्य के चिन्ह के रूप में दिया जाता है ।

प्रस्तुत हुआ तथा योग विद्या के पठनात्मक एवं क्रियात्मक अभ्यासों की शिक्षा प्राप्त करने लगा। प्रारम्भिक शिक्षा की समाप्ति पर मैं छिनूर चला गया क्योंकि वहाँ इस कस्बे के सीमा प्रान्त भाग में कृष्ण शास्त्री रहते थे जिनके पथ प्रदर्शन में मैंने अपने संस्कृत व्याकरण के ज्ञान को पूर्ण कर लिया उसके पश्चात् मैं चाणोद लौट गया जहाँ पर मैं एक दीर्घकाल तक रहा। वहाँ पर ज्वाला नन्द पुरी और शिवानन्द गिरि दोनों योगियों के मिलने पर वहां उनके साथ योग का अभ्यास किया हम तीनों लुप्त प्राय: योग के विषय में गहन चर्चा करते थे। अन्त में, उनके आदेश के अनुसार उनकी विदाई के एक मास पश्चात् मैं उनके पास अहमदाबाद के निकट दूधेश्वर पर पहुँच गया जहां उन्होंने मुझे योग विद्या के गूढ़तम रहस्य तथा अभ्यास बताने की प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने अपने वचन को निभाया और इस महान् विज्ञान के अभ्यासात्मक रहस्यों की प्राप्ति के लिए मैं उन महानुभावों का ऋणी हूं।

इसके भी अनन्तर मुझे ज्ञात हुआ कि राजपूताना के आबू पर्वत के शिखरों पर उनसे भी अधिक पहुँचे हुए तथा विद्वान् योगी रहते हैं। वहाँ से मैंने पुन: यात्रा की तथा अलवदा भवानी आदि प्रसिद्ध तीर्थों पर वह महान् योगी मुझे मिले, जिनकी मैं उत्सुकता पूर्वक तलाश कर रहा था। उनसे भवानी गिरि की चोटी पर योग की पद्धति के विविध विधि विधान सीखे।

सं० १९११ की समाप्ति पर हरिद्वार के कुम्भ के मेले में मैं पहली वार सम्मिलित हुआ, जहाँ बहुत से ऐसे महात्मा और दार्शनिकमहा पुरुष इकट्ठे होते हैं जिनके साधारणतया दर्शन दुर्लभ हैं। जब तक मेले में यात्रियों की भीड़-भाड़ बनी रही मैं चण्डी के जंगल में एकान्त स्थान में रहा और योगाभ्यास करता रहा। यात्री लोगों के हट जाने पर मैं ऋषिकेश चला गया जहां कभी-कभी पवित्रात्मा योगियों की संगति में किन्तु प्राय: एकाकी ही योग का अध्ययन और अभ्यास करता रहा।

टिहरी को प्रस्थान

ऋषिकेश में एकान्त में कुछ समय बिताकर,एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं के साथ मैं टिहरी पहुँच गया यह स्थान साधुओं और राज पण्डितों से परिपूर्ण था। ये लोग विस्तृत पाण्डित्य के कारण राज- पण्डित कहलाते थे उनमें से एक ने मुझे सायंकालीन भोजन का सादर निमन्त्रण

दिया। निश्चित समय पर उसने मुझे सुविधापूर्वक अपने स्थान पर बुलाने के लिए एक व्यक्ति भेज दिया। ब्रह्मचारी तथा मैं दोनों उस व्यक्ति के साथ गए। किन्तु घर पहुँचने पर हमें एक ब्राह्मण को माँस काटते हुए और अन्दर के कमरे में जाने पर कई ब्राह्मणों को माँस के ढेरों, पशुओं के पिछले भागों की बोटियों तथा पकाए हुए सिरों को सामने रखे बैठे देखकर उद्वेग व त्रास हुआ घर के स्वामी ने मेरा हार्दिक स्वागत किया, किन्तु बहुत ही संक्षिप्त शब्दों में उनसे अपना शुभ कार्य करते रहने और मेरे कारण से बाधित न होने की प्रार्थना कर मैं उसघर से लौट पड़ा और अपने स्थान पर आ गया। कुछ ही मिनट बाद वह गोमाँस भक्षी पंडित मेरे स्थान पर आकर वापिस लौटने की प्रार्थना करने लगा। स्वयं को दोषमुक्त करने के यत्न में उस ने कहा कि वे स्वादिष्ट व्यञ्जन मेरी ही खातिर बनाए गए थे। तब मैंने दृढ़ता से कहा कि आपकी याचना व्यर्थ आप मांसाहारी लोग हैं जबकि मैं एक विशुद्ध शाकाहारी हूँ जो मांस को देखते ही बीमार हो जाता है। अगर आप फिर भी भोजन कराने का आग्रह करें तो मेरे लिए कुछ अन्न तथा सब्जी भेज दें, जिन्हें मेरा ब्रह्मचारी पका लेगा। ऐसा करने की प्रतिज्ञा करके वह बहुत परेशान सा हुआ आ वापिस चला गया।

वाम मार्ग या भारतीय मद्य प्रियता

टिहरी ठहरे हुए मैंने उसी पण्डित से कुछ पुस्तकों तथा निबन्धों के विषय में पूछताछ की। उनकी मुझे पढ़ने के लिए आवश्यकता थी। मैंने पूछा कि कौनसी पुस्तकें अथवा पांडुलिपियां उस स्थान पर या कहाँ से प्राप्त की जा सकती हैं। उसने संस्कृत व्याकरण, साहित्य, शब्दकोश, ज्योतिष, तंत्र-साहित्य तथा विधि प्रतिपादक कुछ ग्रन्थों का वर्णन किया। यह जानकर कि ये ग्रन्थ मेरे लिए नवीन थे। मैंने उनकी प्राप्ति के लिए उनसे ही प्रार्थना की। तब वह विद्वान् उद्धिष्ट विषय से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें लाया। पर ज्यों ही मैंने इन्हें खोला, मेरी दृष्टि इनमें अविश्वसनीय अश्लीलता, और मूल ग्रन्थों के मिथ्या तथा असंगत अनुवाद एवं विवेक शून्यता से परिपूर्ण स्थलों पर पड़ी कि मैं अतीव भयभीत हो गया। इन ग्रन्थों में माता, बहन और पुत्री तथा शूद्री तथा जाति से बाहर निकाली हुई नीच चाण्डालो के साथ भी संभोग करने की खुली आज्ञा है। नंग धड़ंग होकर पूजा की जाती है। मद्य, मछली, सब प्रकार के जानवरों के मांस के सेवन तथा मुद्रा विषय भोग के अश्लील चित्रों की प्रदर्शिनी

का प्रयोग ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक करते हैं। और यह स्पष्ट लिखा था कि ये मकार से प्रारम्भ होने वाली पाँचों चीजें (पंचमकार) उदाहरणार्थ मद्य, मीन, माँस, मुद्रा और मैथुनादि सब मोक्ष प्राप्ति के विभिन्न साधन हैं। तन्त्र ग्रन्थों के सूची-पत्रों का अध्ययन करने से मुझे धार्मिक कथित इस घृणित साहित्य के लेखकों के कुचक्र तथा दुराचरण का पूर्ण विश्वास हो गया। अतः मैंने इस स्थान को त्याग दिया और श्रीनगर❀ चला गया।

धार्मिक स्थानों की यात्रा

केदारघाट पर स्थित एक मन्दिर में रहते हुए मैं इन तन्त्र ग्रन्थों को स्थानीय पण्डितों से विवाद के अवसर पर हथियार के रूप में प्रयुक्त करता था। वहाँ पर मैं गंगा गिरि नामक एक साधु से परिचित हो गया था। वह जंगल में जिस पर्वत पर रहते थे उसे दिन भर कभी नहीं छोड़ते थे। हमारे परिचय ने मित्रता का रूप धारण कर लिया क्योंकि मैंने शीघ्र ही जान लिया था कि वे पूर्ण रूप से आदर के योग्य थे। साथ रहते हुए हमने योग तथा अन्य धार्मिक विषयों पर विचार-विमर्श किया और घनिष्ट प्रश्नोत्तर से मुझे तसल्ली हो गई कि हम दोनों एक दूसरे के लिए नितांत उपयुक्त थे। मेरे लिए उनकी संगति इतनी आकर्षक थी कि मैं उनके पास दो मास से अधिक ठहरा। इस समय के बीतने के बाद तथा पतझड़ ऋतु आ जाने पर मैं अपने साथी दोनों साधुओं तथा ब्रह्मचारी के साथ केदार घाट से अन्य स्थानों की ओर चल पड़ा।

हम रुद्र प्रयाग तथा अन्य नगरों की यात्रा करते हुए अगस्त्यमुनि के आश्रम में आ गये इसके उत्तर में शिवपुरी नामक एक पहाड़ की चोटी है वहाँ पर मैंने शीतकाल के चार मास व्यतीत किये। तत्पश्चात् मैं ब्रह्मचारी और दोनों साधुओं से पृथक् होकर एकाकी तथा अविचल निश्चय से केदार की ओर लौट पड़ा तथा गुप्त काशी पहुँच गया।

सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्टदर्शी❀ योगियों की खोज

मैं वहाँ बहुत थोड़े दिन ठहरा और वहाँ से त्रियुगी नारायण तीर्थ स्थान को चला गया। अपने मार्ग में गौरी कुण्ड नामक जलाशय तथा भीम

❀ श्री नगर — काश्मीर वाला है। वहां से लौटते हुए ही योगी राज दयानन्द केदार घाट आये उत्तर काशी से जोचार मील की दूरी पर है। देखो 'आत्मचरित्र की प्रामाणिकता' पृ ९६ —स० स्वामी

❀ ऐसे योगी जो सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु,आकाश, आत्मा, परमात्मा को और बहुत ही दूर की—सब ही लोक-लोकान्तरों की, व्यवधान वाली छिपी वस्तुओं को देख सकें। —स० स्वामी

गुफा पर होता गया। कुछ दिनों बाद अपने प्रिय निवास स्थान केदार पर लौट कर मैंने विश्राम किया। वहाँ पर भी कुछ पूजा करने वाले ब्राह्मण साधुजन जिन्हें पण्डे कहते थे तथा जंगम सम्प्रदाय के केदार मन्दिर के भक्त लोग तब तक मेरे साथ ठहरे रहे जब तक कि मेरे पहले साथी ब्रह्मचारी तथा दोनों साधु नहीं लौटे। मैंने एक निश्चित उद्देश्य से उनके रीति रिवाजों तथा क्रिया कलापों का निकट से अध्ययन किया और इन सम्प्रदायों के विषय में जो कुछ भी ज्ञातव्य था—इस सम्प्रदाय के विषय में जानने के बाद मेरे मन में चारों तरफ के सदा बर्फ से ढके रहने वाले पहाड़ों पर जाकर पहुँचे हुए सिद्ध योगियों के दर्शन करने की-जिनके बारे में सुनता रहा पर कभी दर्शन न कर सका। उत्कट इच्छा जागी। मेरा दृढ़ संकल्प था चाहे कुछ भी हो मैं इस बात का पता लगाकर रहूंगा कि वहाँ जैसा मैंने सुना ऐसे सिद्ध योगी हैं अथवा नहीं। किन्तु, पर्वतीय यात्रा की घोर कठिनाइयों तथा अत्यधिक ठण्ड ने मुझे विवश कर दिया कि मैं पहले पर्वतीय जातियों के लोगों से यह पूछ ताछ कर लूँ कि वे इन सिद्धों के विषय में क्या जानते हैं। किन्तु हर जगह मुझे इस विषय में सर्वथा अनभिज्ञ अथवा उपहासास्पद अन्ध विश्वासियों से ही भेंट हुई। फलतः इस प्रकार बीस दिन वृथा भ्रमण करके निराश होकर मैं वापिस लौट पड़ा मैं पूर्व की भांति एकाकी ही था क्यों कि मेरे साथियों ने जो मेरे साथ हो लिए थे शीत की भयंकरता के कारण चलने के दो दिन बाद ही मेरा साथ छोड़ दिया। तब मैं तुंगनाथ के शिखर पर चढ़ गया। वहाँ मैंने मूर्तियों तथा स्थानापन्न पुरोहितों से भरे एक मन्दिर को देखा। मैं उसी दिन शीघ्रता पूर्वक शिखिर से नीचे उतर आया। मेरे सम्मुख दो मार्ग थे एक पश्चिम की ओर जाता था तथा दूसरा दक्षिण पश्चिमकी ओर मैंने अटकलपच्चू जंगल को जाने वाले मार्ग को चुन लिया और उस पर चढ़ने लगा। शीघ्र ही थोड़ी देर में यह मार्ग मुझे एक घने जंगल में ले गया। जिसमें विषम चट्टानें तथा सूखे हुए जलहीन नाले थे। यह मार्ग एकाएक यहीं समाप्त हो गया। इस प्रकार सत्र ओर से घिर जाने पर मुझे यह निर्णय करना पड़ा कि मैं ऊपर चढ़ूँ या नीचे उतरूं शिखिर की अधिक ऊँचाई तथा उस ऊबड़-खाबड़ तथा एकदम खड़े पहाड़ पर चढ़ने की भयंकर कठिनाइयों का विचार करके मैंने स्थिर किया कि मेरे चोटी पर पहुँचने से पूर्व रात पड़ जाएगी। अतः उस रात शिखर पर पहुँचना मुझे असम्भव जान पड़ा काफी कठिनाई से घास तथा

झाड़ियों को पकड़ पकड कर मैं सूखेनाले के ऊँचे किनारे पर पहुँच गया। चट्टान पर खड़े होकर मैंने चारों ओर सब ओर व्याप्त निगाह डाली मुझे वहाँ दुर्गम चट्टानें ऊँचे पहाड़ी,प्रदेश, निबिड जंगल के अतिरिक्त और कुछ भी न दीख पड़ा। जहाँ से कोई मानव नहीं गुजर सकता था। उसी समय सूर्य भी शीघ्रता पूर्वक अस्ताचल की ओर जा रहा था अन्धकार शीघ्र ही सब ओर छा जाएगा और तब जल तथा आग जलाने के साधन के बिना मेरी इस जंगल की भयंकर निर्जनता में क्या दशा होगी।

महन्त बनाने का प्रलोभन

अत्यन्त शान्त एवं क्लान्त हुआ तथा,काँटों की तीखी वेदना से,जिन्होंने मेरे शरीर के परिधान को तार-तार कर दिया,मेरे सारे शरीर को घायल तथा पैरों को लंगड़ा कर दिया था, फिर भी मैंने जंगल को पार कर ही लिया और अन्ततः मैं पर्वत की तलहटी में एक मार्ग पर जा पहुंचा। मेरे चारों ओर तथा ऊपर भी अन्धेरा था और तात्कालिक सूझ-बूझ द्वारा राह काटता हुआ यत्न करता रहा कि मैं राह से नभटकूं अन्ततः मैं बहुत सी झोपड़ियों के पास जा पहुंचा वहां के लोगों से यह जानकर कि वहमार्ग ओखी मठ को जाता है मैंने उस ओर कदम बढ़ाये और वहीं रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल पर्याप्त विश्रान्त तथा ताजा होकर मैं गुप्तकाशी को लौटा जहां से अगले ही दिन मैं उत्तर की ओर चल पड़ा था। किन्तु उस यात्रा ने मुझे आकृष्ट कर लिया तथा मैं शीघ्र ही पुनः ओखी मठ पहुँच गया और इस मठ के निवासियों के रहनसहन का अध्ययन करने लगा मुझे उस प्रसिद्ध तथा सम्पन्न मठ का परीक्षण करने के लिए पर्याप्त समय मिल गया जो बाहर से साधुता और पवित्रता के आडम्बर से भरा था। मठ के महन्त ने मुझे शिष्य बना कर वहीं रख लेने के लिए मुझे ललचाने का भरपूर यत्न किया। उन्होंने मेरे सामने यह भी प्रलोभन-जिसे उन्होंने चका चौंध करने वाला समझा-रखा एक दिन मुझे उनके लाखों रुपये, वैभव, शक्ति सामर्थ्य एवं अन्ततः उनके महन्त पद का उत्तराधिकार मिल जाएगा। मैंने स्पष्ट उत्तर दिया कि यदि मुझे धन अथवा शान की लालसा होती तो मैं अपने पिताजी के घर से, जो सब प्रकार के धनधान्य से पूर्ण आपके मठ में किसी भी प्रकार कम आनन्ददायक और आकर्षक नहीं था, छिप कर नहीं भाग निकलता। जिस उद्देश्य ने मुझसे इन सब सांसारिक सम्पदाओं का त्याग करा दिया है उस उद्देश्य का आपको न तो ज्ञान है और

ही उसके लिए आप प्रयत्न शील हैं उसने उस उद्देश्य के विषय में जिज्ञासा कीजिसके लिए मैं इतना प्रयत्नशील था। मैंने वताया कि वह उद्देश्य है—रहस्य का ज्ञान, एक सच्चे योगी की वास्तविक कमाई मुक्ति है। जो किसी को अपनी आत्मा की शुद्धि से प्राप्त होती है और दूसरे जैसे कि मानव जाति के प्रति अपने कर्तव्य को निभाना तथा उसको उन्नत करना आदि भी इसके साथ ही चल सकते हैं—जो कि योग साधना के बिना नहीं प्राप्त हो सकते। महन्त ने इस उद्देश्य की सराहना की और कहा कि यह बहुत उत्तम है और अपने साथ कुछ काल तक ठहरने को कहा, किन्तु मैं चुप रहा और कोई उत्तर नहीं दिया। मुझे अपनी खोज में सफलता नहीं मिली थी। दूसरे दिन प्रात: बहुत शीघ्र उठकर मैंने इस धन सम्पन्न मठ को छोड़ दिया तथा जोशी मठ को चला गया। वहाँ दक्षिणात्य तथा महाराष्ट्रिय विद्वान् सन्यासियों, शास्त्रज्ञ तथा सच्चे साधुओं की सत्संगति में मैं कुछ समय ठहरा।

जोशी मठ के योगी

जोशी मठ में मैं बहुत से योगियों तथा विद्वान् साधुओं से मिला तथा अनेक वाद विवाद द्वारा मैंने योगविद्या और के बारे में भी अधिकसीखा उनसे बिछुड़कर मैं बद्री-नारायण पहुँच गया। उस समय इसके मुख्य महन्त रावल जी नामक एक विद्वान् थे। मैं उनके साथ कुछ दिन रहा। हमारे वेदों तथा दर्शनों पर वाद विवाद हुआ। उनके समीपवर्ती प्रदेश में रहने वाले किसी सिद्ध योगी के विषय में पूछने पर मुझे यह जानकर दु:ख हुआ कि उस समय ऐसा कोई योगो वहाँ नहीं था पर उसने सुन रखा था कि वह सिद्ध लोग उस मन्दिर में कभी-कभी स्वभावत: दर्शन के लिये आते हैं मैंने यहां दृढ़ निश्चय किया कि मैं योगियों को समस्त देश में विशेषकर पहाड़ों में खोज निकालूँगा।

योगियों की आगे खोज

एक दिन मैं दिन निकलते ही यात्रा के लिए निकल पड़ा और पर्वत की तलहटी के साथ-साथ चलता हुआ अन्तत: अलकनन्दा नदी किनारे पर पहुँच गया। मुझे इसको पार करने की विशेष इच्छा नहीं हुई क्योंकि मैंने इसके दूसरे तट पर माना नामक विशाल गांव को देखा। अत: मैंने नदी की धारा के साथ पर्वत की तलहटी में जंगल की ओर पग बढ़ाए। पहाड़ियाँ तथा मार्ग भी घनी बरफ से ढके हुए थे और बड़ी भारी कठिनाई के

बाद मै उस स्थान पर पहुँचा जहां पर अलकनन्दा का उद्गम स्रोत है। किन्तु वहां पर अपने आपको चारों ओर ऊँची पर्वतमाला से घिरा हुआ पाकर तथा उस स्थान से अपरिचित होने के कारण एक बार तो उसी क्षण मेरी प्रगति अवरुद्ध हो गई क्योंकि शीघ्र ही मार्ग एकाएक बन्द हो गया था तथा मुझे किसी भी दिशा में कोई पगडंडी भी दिखाई नहीं पड़ती थी। मुझे सूझ नहीं रहा था कि आगे क्या किया जाए। किन्तु मैंने नदी को पार करके मार्ग के लिए पूछताछ करने का निश्चय किया। मैं बहुत ही हल्का और पतला कपड़ा पहने हुआ था तथा शीत अत्यधिक और शीघ्र ही असह्य हो गया था। भूख और प्यास का अनुभव होने पर, भूख की प्रतारणा के लिए मैंने एक बरफ का टुकड़ा खा लिया किन्तु भूख शान्त न हुई।

तब मैं नदी पार करने लगा, यह कहीं-कहीं पर बहुत गहरी थी और कहीं कम गहरी—तथापि गहराई एक हाथ से तथा चौड़ाई आठ दस हाथ से ज्यादा न थी। नदी का पाट छोटे-छोटे चुभने वाले हिमखण्डों से भरा था जिनसे मेरे नंगे पैर जख्मी हो गये तथा उनसे रक्तस्राव होने लगा अतीव भाग्य से,असह्य: शीत ने मेरे पैर संज्ञा शून्य कर दिये तथा रक्तस्राव की अधिकता ने मेरे शरीर को चेतना रहित कर दिया। अनेक बार बरफ पर फिसलते हुए मेरे पग डगमगा गए और मैं गिरने लगा और इस प्रकार उसीस्थान पर जमकर मरने वाला हो गया। मैंने इस तत्त्व को जान लिया कि यदि बरफ में औंधे मुँह गिर गया तो मेरे शरीर के ज्ञान शून्य होने के कारण मेरा फिर से उठ पाना कठिन होगा किसी प्रकार कठोर उद्यम और भयंकर संघर्ष के बाद मैं दूसरे किनारे पर सुरक्षित पहुँच सका, इस समय मै जीवित कम था और मृतक अधिक। मैंने शीघ्रता पूर्वक शरीर के ऊपरी भाग को विवस्त्र किया, जो भी वस्त्र मेरे पास थे उन्हें पैरों पर तलवों से घुटनों तक लपेट लिया। तब थका हुआ भूखा-प्यासा तथा चलने में असमर्थ हुआ खड़ा खड़ा किसी अज्ञात सहायता के लिए इधर उधर निहारने लगा यह न जानते हुए कि वह कब और कहाँ अन्ततः चारों ओर अन्तिम दृष्टिपात करने पर मैंने दो पहाड़ी आदमियों को खड़े हुए देखा जिन्होंने आकर 'काशीसम्बा' कह कर मुझे प्रणाम किया तथा भोजनार्थ अपने घर चलने का आमन्त्रण दिया मुसीबत को सुनकर उन्होंने मुझे सत्पत नामक पवित्र स्थान पर पहुँचाने का भी वचन दिया। किन्तु मैंने चल न

*यह नाम सतपत या सतोपन्त के नाम से जाना जाता है।
—सं० स्वामी

सकने के कारण इनकार कर दिया। उनके बारम्बार अनुरोध करने पर भी मैं दढ़ रहा और उनके साथ जाने के लिए साहस न कर सका जैसाकि वह चाहते थे। उनसे यह कह कर कि मैं मर जाना ठीक समझता हूं मैंने उनकी बातों को सुनने से इनकार कर दिया।

किन्तु उसी समय यह विचार आया कि अच्छा होता यदि मै वापिस जाकर अपने अध्ययनकार्य में लग जाता,तब तकदोनों व्यक्ति मुझे छोड़कर पहाड़ियों में अदृश्य हो गये। विश्राम करके में लौट पड़ा तथा वसुधारा नामक पवित्र तीर्थ पर कुछ मिनट रुक कर मानाग्राम* के पास से होता हुआ सायं ८ बजे बद्रीनारायण पहुँच गया।

मुझे देखकर रावल जी तथा दूसरे साथियों ने चकित होकर पूछ-ताछ की कि मैं प्रातःकाल से कहाँ रहा। मैंने उन्हें सारा वृत्तान्त यथार्थ सुना दिया। थोड़ा सा भोजन करके क्षीण हुए बल को प्राप्त किया तथा सो गया। किन्तु प्रातःकाल शीघ्र ही रावल जी से विदा लेकर वापिस रामपुर की यात्रा पर निकल पड़ा। सायंकाल मैं एक उच्च साधु के यहाँ पहुँच गया और वहीं रात्रि बिताई। वह व्यक्ति जीते-जागते महानतम साधुओं में से एक समझा जाता था और मैंने उनसे धार्मिक विषयों पर पर लम्बा वार्तालाप किया अपने निश्चय में और भी अधिक दृढ़ होकर मैं वहाँ से चलकर पहाड़ियों तथा जंगलों को पार करता हुआ, चिलकिया घाटी से उतरकर रामपुर पहुँच गया तथा अपनी पवित्रता और विशुद्धता में प्रसिद्ध श्री रामगिरि के निवास स्थान पर ठहर गया। मैंने उन्हें एक असाधारण ढंग का व्यक्ति पाया। वे कभी नहीं सोते थे किन्तु सारी रात-भर स्पष्टतया अपने आप से ही संभाषण करते रहते थे जो कभी-कभी तेज आवाज में भी होता था। कभी-कभी हम तेज चीख—तदुपरान्त रोने की आवाज सुनते थे। यद्यपि उनके कमरे में उनके अतिरिक्त कोई नहीं

*माना -यत्र तत्र उपलब्ध थियासोफिस्ट की हिन्दी पाण्डुलिपियों में 'मग्नम्' या 'मग्नङ्' लिखा है। पाण्डुलिपि खोजी श्री पं० लेखरामजी आर्य मुसाफिर, श्री पं० भगवद्दत्तजी रिसर्चस्कालर, तथा स्वामी सत्यानन्द जी ने अपने-अपने ऋषि के छापे जीवन चरित्रों में यहाँ 'मग्नम्' ही छापा और माना है।

यह स्थान बद्रीनारायण से १३४ मील की दूरी पर कैलाश के मार्ग में है। देखो—आ. प्र. पृ० ६५; तथा पृ० १३१

होता था। अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर मैंने उनके चेलों तथा शिष्यों से पूछताछ की किन्तु सबने उनकी आदत ही ऐसी बताई। इसके कारण का वर्णन कोई नहीं कर सका। कुछ समय पश्चात् उनसे बातचीत करके मैं समझ गया कि यह सब वस्तुतः क्या था। और मुझे यह स्थिर विश्वास हो गया कि वे सच्चे योग का अभ्यासा नहीं कर रहे थे परन्तु उसमें उन्हें आंशिक सफलता प्राप्त थी। यहाँ भी मुझे वह वस्तु, जिसकी मुझे खोज थी, हाथ न लगी।

योग की पुस्तकें तथा विज्ञान

उन्हें छोड़कर मैं काशीपुर गया और वहाँ से द्रोण सागर जहाँ मैंने सारा शीतकाल व्यतीत किया। वहाँ से मुरादाबाद होता हुआ सम्बल पहुंचा। गढ़ मुक्तेश्वर को पार करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि मैं गंगा के तट पर पुनः आ गया हूं। उस समय अन्य धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त मेरे पास शिव सन्ध्या,हठ प्रदीपिका योगबीज और घेरण्ड संहिता थीं जिन्हें मैं अपनी यात्रा में पढ़ा करता था। इनमें से कुछ पुस्तकों में नाड़ी चालन एवं नाड़ी चक्रों का विशुद्ध विवरण था जिसे मैं ग्रहण न कर पाया जिससे अन्त में मुझे उस विवरण की तथ्यता में संदेह हो गया। कुछ समय तक अपने संशयों को निवृत्त करने का यत्न करता रहा, परन्तु मुझे अवसर हाथ न लगा। एक दिन मैंने एक शव को जल पर बहते देखा। यह सुअवसर था और यह मुझ पर निर्भर करता था कि मैं इन पुस्तकों में वर्णित शरीर रचना तथा आँतरिक संस्थानों की सत्यता की परख के द्वारा अपना समाधान प्राप्त करूँ। पुस्तकों को एक तरफ रख कर और वस्त्र उतार कर निश्चय पूर्वक मैं नदी में कूद पड़ा तथा शीघ्र ही शव को निकाल कर उसे किनारे पर रख दिया तथा एक तेज चाकू के द्वारा अपनी पूरी सावधानी के साथ इसे चीर कर खोला। मैंने नाभि से पसलियों तक चीरते हुए हृदय कमल, एवं मस्तिष्क और गले के एक भाग (विशुद्धि चक्र) का परीक्षण किया। मैंने बड़े ध्यानपूर्वक उन्हें पुस्तकीय विवरण से मिलाया किन्तु मिलान खाता न देखकर पुस्तकों को फाड़कर शव के साथ ही बहा दिया। उस समय से मैं धीरे धीरे इस परिणाम पर पहुँचा कि वेदों,उपनिषदोंपातंजल योग सूत्रों और सांख्य सूत्रों को छोड़ कर योग विज्ञान पर लिखा हुआ

सारा कार्य मिथ्या है॥ गंगा तट पर कुछ समय का कालयापन करके मैं फरुखाबाद पहुँचा और फिर स्नोनजीरम होता हुआ छावनी के पूर्वी मार्ग से सं० १९१२ (ई० १८५५) की समाप्ति पर कानपुर पहुँचा॥

योगाभ्यास

पाँच मासों में मैं कानपुर और इलाहाबाद के मध्य में अनेक स्थानों पर घूमा भाद्रपद के आरम्भ में मैं मिर्जापुर पहुंच कर असूल जी के आश्रम के निकट लगभग १ मास तक ठहरा, तथा आश्विन के कृष्णपक्ष में बनारस पहुँच कर वरुणा तथा गंगा के संगम स्थान पर एक गुफा में जाटिका जो उन दिनों भूर्मानन्द सरस्वती के अधिकार में थी। वहाँ मैं काकाराम, राजाराम तथा अन्य शास्त्रियों सेमिला किन्तु वहाँ केवल१२ दिन ठहरने के पश्चात् जिसकी मुझे खोज थी उसके लिए अपनी यात्राएँ पुन: आरम्भ की*

॥ ध्वनि यह प्रतीत होती है कि इससे पूर्व काशी में जो तान्त्रिक गुरुओं से तान्त्रिक शास्त्र व हठयोग प्रक्रिया सीखी थी उनसे ऋषि को नितान्त घृणा हो गई विस्तृत योग-प्रकरण को देखने के लिए प्रस्तुत पुस्तक के योगावतण के पृष्ठ संख्या ४८ से ६९ तक देखिये।—स० स्वामी

॥॥ यहाँ सं०१९१२ या तो मिस प्रिन्ट है या फिर सन् सत्तावन की घटना को तिरोहित करने के लिए लिखा गया है। देखिये आत्मचरित्र की ऐतिहासिकता पृष्ठ सं० ···पर दी हुई। पृ० १३१—स०स्वामी

*—ये यात्राएं सं० १९१४ अर्थात् सन् १८५७ के प्रमुख क्रान्तिकारी, ऋषि के शिष्य नानासाहब को क्रान्ति में सहयोग देने के लिए की की गई प्रतीत होती हैं। देखिये—आत्मचरित्र की प्रामाणिकता पृ० ११३।

तथा रामपाल सिंह C.I. D. की रिपोर्ट—"शोणित तर्पण' में—'कानपुर के परिसर में गंगा के किनारे मुझे एक सन्न्यासी मिले। तेजस्वी, विशाल और भव्य मूर्ति थी। उनसे बात करने पर उन्होंने मुझे ऐसी दृष्टि से देखा, जैसे वह मेरा पूरा हाल जानते हों। मैंने अपने आपको उनसे कुछ और ही कार्य व्यापार बता दिया। महाराज बोले—'अपनी मातृ-भूमि के विरुद्ध उसके साथ विश्वासघात करना महापाप है। अतः उन्हें अपने देश द्रोह के काम से हट जाना चाहिये।' वह स्वामी दयानन्द थे।

—स० स्वामी

शेष टिप्पणी ३०४ पृ. पर देखें।

चण्डालगढ़ में दुर्गाखोइ के मन्दिर में दस दिन बिताने के उपरान्त चावल खाना सर्वथा त्यागकर केवल दूध पर रह कर दिन रात योगाभ्यास में निरत रहने लगा।

मूर्तिपूजा का ढोंग

दुर्भाग्यवश इन्ही दिनों मुझे भाँग पीने की आदत पड़ गई और इसके नशे में चूर रहने लगा एक बार मैं चण्डालगढ़ मन्दिर से चलकर निकट के एक छोटे से गाँव में आया तो मेरा अपने एक पुराने सेवक से साक्षात्कार हुआ। मैं गाँव से थोड़ी दूर पर ही दूसरी ओर बने एक शिवालय के वृक्षों के तले रात्रि व्यतीत करने चला गया। भांग के नशे में मैं गहरी नींद में सो गया और उस रात एक विलक्षण स्वप्न देखा मैंने सोचा कि मैंने स्वप्न में महादेव और पार्वती को देखा जो परस्पर मेरे विषय में बातचीत कर रहे थे। पार्वती महादेव जी से कह रही थीं कि इसका विवाह हो जाना चाहिए किन्तु महादेव जी उसकी बात नहीं मान रहे थे। पार्वती ने भांग की ओर संकेत किया। जागने पर इस स्वप्न से मुझे बड़ा उद्वेग हुआ। इस समय वर्षा हो रही थी अतः मैंने मन्दिर के प्रमुख द्वार के सामने वाले बरामदे में आश्रय लिया जहाँ पर नन्दी बैल की विशाल मूर्ति थी। मैंने वस्त्रों तथा पुस्तकों को उसकी पीठ पर रखा और बैठकर ध्यान किया तभी सहसा उस मूर्ति में जो अन्दर से पोली थी मैंने दृष्टिपात किया और एक व्यक्ति को उसमें छिपा हुआ देखा। मैंने उसकी ओर हाथ बढ़ाया, निश्चय ही वह भयभीत हो गया और छिपने के स्थान से उछल कर बाहर निकला और गाँव की ओर दौड़ गया। मैं मूर्ति के अन्दर घुस गया तथा शेष रात्रि भर वहीं सोता रहा। प्रातः काल एक बुढ़िया आयी और उस नान्दी की पूजा की जिसके अन्दर मैं बैठा था। पश्चात् वह लौटी और

—राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहास लेखक पृथवी सिंह मेहता ने १८५७ में तात्याटोपे और स्वामी दयानन्द के पारस्परिक क्रान्तिकारी सम्बन्धों का उल्लेख किया है। ऋषि नर्बदा तट पर विचरण कर रहे थे। तात्या टोपे कई बार नर्मदा तट पर गए और लौटे। बातचीत अज्ञात है। पीछे स्वामीजी कानपुर, बिठूर, झांसी आदि स्थानों पर गए।

—आर्यमित्र ११ अंक० १९७१

* प्रतीत होता है सन् ५७ की क्रान्ति में ब्रिटिश अत्याचारों से विषण्ण होकर स्वामी जी भांग पीने लगे होंगे। —स० स्वामी

गुड़ तथा एक बर्तन में दही लाई जिसेउसने मुझे देवता समझकर भेंट किया और चाहा कि उसे स्वीकार करूँ और भोग लगाऊँ । मैंने उसे निराश नहीं किया और भूखे होने के कारण सब खा गया । दही बहुत खट्टा था अतः उसने भाँग की मादकता को हर कर नशे के सब चिन्ह दूर कर दिये इससे मुझे बड़ा सुख मिला ।

नर्मदा के जंगल

इस घटना के पश्चात् मैंने पर्वतों व नर्मदा के उद्गम स्थान की ओर अपनी यात्रा जारी रखी ।* मैंने एक बार भी मार्ग नहीं पूछा तथा निरन्तर दक्षिण की ओर बढ़ता रहा । शीघ्र ही, मैं घने जंगलों से आवृत एक निर्जन स्थान में आ गया जहाँ विषम अन्तर पर अलग २ वनी हुई कुटिया जब कभी झाड़ियों में दीख पड़तीं थीं । एक ऐसे ही स्थान पर मैंने थोड़ा दूध पिया और आगे बढ़ा किन्तु लगभग आधा मील आगे जाकर ही मेरा मार्ग अवरुद्ध हो गया । चौड़ा मार्ग एकाएक अदृश्य हो गया और अनेक छोटे २ मार्ग दिखाई देने लगे जो न जाने कहाँ जा रहे थे । शीघ्र ही, मैं एक जंगली बेरियों तथा गहरी और ऊँची घास वाले एक भयावह जंगल में आ निकला । जिसमें किसी मार्ग का कोई चिन्ह न था । अचानक एक बड़ा काला रीछ मेरे सामने आया । उसने भयंकर गर्जन की और पिछले पैरों पर खड़ा होकर मुझे भकोसने के लिये अपना विस्तृत मुँह खोला । मैं कुछ क्षण तो निश्चल खड़ा रहा कि धीरे २ अपनी पतली छड़ी ऊपर उठाई । वह रीछ भयभीत होकर भाग गया । इसकी गर्जन इतनी जोर से हुई थी कि वे गांव वाले जिन्हें मैं छोड़कर आया था । इसे सुनकर बड़ी २ लाठियाँ तथा कुत्तों के साथ मेरी सहायता के लिये दौड़े । उन्होंने मुझे उन ही के साथ लौट चलने का प्रबल आग्रह किया और बतलाया कि यदि मैं आगे बढ़ा तो कठिनतम खतरों में पड़ सकता हूं कारण कि इन पहाड़ियों में रीछों, भैंसों हाथियों शेरों तथा दूसरे भयंकर जन्तुओं के निवास स्थान हैं मैंने उनसे कहा'आप मेरी सुरक्षा की चिन्ता न करें क्योंकि मैं सुरक्षित हूं ।

---

* यह यात्रा बनारस की यात्रा के पीछे नर्मदा और आबू पर्वत के योगाभ्यास के उपरांत नर्मदा की दूसरी यात्रा है । देखिये पं० लेखराम लिखित महर्षि दयानन्द का जीवन चरित पृ० १३१ । विवरण के लिये देखें आत्मचरित्र पृ०१२८ मार्ग न पूछना भी यही प्रमाणित कर रहा है ।
—सं० स्वामी

मैं नर्मदा का स्रोत देखने के लिए उत्सुक था तथा किसी भी खतरे के भय से अपना निश्चय नहीं बदल सकता था, तब अपनी चेतावनियों को निरर्थक जानकर तथा मुझे 'आत्म सुरक्षा के लिये मेरी छड़ी से मोटी एक लाठी दे कर वे चले गए। जिसे मैंने उनके जाते ही तत्काल फेंक दिया।

अरण्य जीवन

उस दिन मैं खूब अन्धेरा हो जाने तक अविराम रूप से यात्रा करता रहा। कई कई घण्टे तक तो मुझे अपने चारों ओर दूर दूर तक कोई गांव कोई अकेली झोंपड़ी, बस्ती या मनुष्य का भी निशान दिखाई न दिया प्रत्युत केवल मात्र जंगली हाथियों के द्वारा भूमि पर गिराये हुए उखाड़े हुए अथवा तोड़ मरोड दिए गए वृक्षों के झुंड ही दिखाई देते रहे। आगे चलकर मैंने स्वयं को निविड़ तथा अलंघनीय जंगल में पाया जो बेरियों तथा अन्य कांटेदार झाड़ियों से भरा था। पहले तो मुझे इनसे अपने बचाव का कोई उपाय नहीं सूझा। कभी पेट के बल सरकते हुए और कहीं घुटनों के बल खिसकते हुए मैंने किसी प्रकार वस्त्र और चमड़ी के छेदन तथा रक्तस्राव एवं थकावट के मूल्य पर इस नई बाधा को पार किया इस समय तक घना अन्धेरा हो गया था, यद्यपि यह रुकावट थी—मेरा आगे बढ़ना नहीं रुका। मैं तब तक आगे बढ़ता रहा जब तक कि मैं सघन पेड़-पौधों वाली और मनुष्यों की बस्तियों से युक्त ऊँचो-ऊँची पहाड़ियों तथा चट्टानों के प्रांगण में नहीं पहुँच गया। शीघ्र ही, मैंने कुछ झोंपड़ियों को देखा जिनके चारों ओर गोबर के ढेर पड़े थे। साथ ही स्वच्छ जल वाली एक छोटी सी जलधारा के किनारे एक बकरियों का झुंड चर रहा था। दीवारों की दरारों में से निकल कर प्रकाश की रेखाएँ मानो आने वालों का स्वागत कर रही थीं। आगे न जाकर वहीं पर रात बिताने के संकल्प से मैंने एक भारी वृक्ष के नीचे आश्रय लिया जो एक झोंपड़ी को भी ढाँप रहा था। अपने बहते खून, पावों तथा हाथ मुँह को धोकर मैं कठिनाई से प्रार्थना करने बैठा ही था, कि मेरा ध्यान एक ढोल की ऊँची आवाज ने भंग कर दिया। तुरन्त ही मैंने देखा कि स्त्री पुरुषों और बच्चों का एक जलूस अपनी गौओं तथा बकरियों सहित झोंपड़ियों से निकलकर किसी धार्मिक पर्व की तैयारी कर रहा है। मुझे परदेशी जानकर वे सब मेरेचारों ओर इकट्ठे हो गये। तब एक बूढ़े आदमी ने आगे आकर मुझसे पूछा कि मैं कहाँ से आया हूं। मैंने उन्हें बताया कि मैं बनारस से आया हूं और

नर्मदा स्रोत की यात्रा पर जा रहा हूं। इस उत्तर को सुनकर वे सब मुझे प्रार्थना करने के लिये छोड़कर आगे चले गये। किन्तु आधे घंटे बाद ही उनका मुखिया दो पहाड़ी आदमियों को साथ लेकर आया और मेरे पास बैठ गया। वह मुझे उनकी झोंपड़ियों पर आमन्त्रित करने के लिए प्रतिनिधि के रूप में आया था। किन्तु पूर्व की भाँति मैंने आमंत्रण को अस्वीकार कर दिया (क्योंकि वे लोग मूर्तिपूजक थे)। इस पर उसने मेरे निकट खूब आग जलाने का आदेश दिया तथा सुरक्षा के लिये दो आदमी नियुक्त कर दिये। यह जानकर कि मैं भोजन में केवल दूध लेता हूं उस दयालु मुखिया ने मेरा कमण्डल मांगा और इसे दूध से भर लाया जिसमें से थोड़ा दूध मैंने उसी रात को पी लिया। तब वह मुझे दो पहरेदारों की सुरक्षा में छोड़कर चला गया। उस रात को मैं उषाकाल तक गहरी नींद में सोया उठकर ध्यानादि से निवृत्त होने पर मैंने भावी घटनाओं के लिये स्वयं को तैयार किया।

(यहाँ आत्मचरित्र समाप्त होता है—'थियोसाफिस्ट')

'सत्यार्थ प्रकाश' के पं० दुर्गाप्रसाद कृत, अंग्रेजी अनुवाद (१९०८ में प्रकाशित) में यह आत्मचरित्र 'थियोसाफिस्ट' पत्रिका से उद्धृत किया है। यह मूलतः अंग्रेजी में है। बड़ी खोज के बाद इस सत्यार्थ प्रकाश की एक प्रति श्री नारायण स्वामी आश्रम के पुस्तकालय से मिली।

—स० स्वामी

The Autobiography & travels of Swami Dayanand Saraswati

It was in a Brahmin family of the Oudichya caste in a town belonging to the Rajah of Morwee, in the province of Kathiawar, that in the year of Samvat, 1881, (1924 A. C.) I, now known as Dayanand Saraswati, was born. If I have from the first refrained from giving the names of my father and of the town in which my family resides, it is because I have been prevented from doing so by my duty. Had any of my relatives heard again of me, they would have sought me out. And then, once more face to face with them, it would have become incumbent upon me to follow them home. I would have to touch money again,[1] serve them, and attend to their wants. And thus the holy work of the Reform, to which I have wedded my whole life, would have irretrievably suffered through my forced withdrawal from it.

Education

I was hardly five years of age when I began to study the Devanagari characters, and my parents and all the elders commenced training me in the ways and practices of my caste and family; making me learn by rote the long series of religious hymns, mantras, stanzas and commentaries. And I was but eight when I was invested with the sacred Brahminical cord (triple thread), and taught Gayatri Sandhya with its practices, and Yajur Veda Sanhita preceded by the study of the Rudradhya.[2] As my family belonged to the Shiva sect,

1. No Swami or Sanyasi touches money, or personally transacts any monetary business.
2. Rudradhyaya is a chapter about Rudra (a name of Shiva).

their greatest aim was to get me initiated into its religious mysteries; and thus I was early taught to worship the uncouth piece of clay representing Shiva's emblem, known as the Parthiwa Lingam. But as there is a good deal of fasting and various hardships connected with this worship, and I had the habit of taking early meals, my mother, fearing for my health, opposed my daily practicing of it. But my father sternly insisted upon its necessity, and this question finally became a source of everlasting quarrels between them. Meanwhile, I studied the Sanskrit grammar, learned the Vedas by heart and accompanied my father to the shrines, temples, and places of Shiva worship. His eonversation ran invariably upon one topic; the highest devotion and reverence must be paid to Shiva, his worship being the most divine of all religions. I went on thus till I had reached my fourteenth year, when having learned by heart the whole of the Yajur Veda Sanhita, parts of other Vedas, of the Shabda Rupavali and the grammar, my studies were completed.

Vigil

As my father's was a banking house and he held moreover the office-hereditary in my family—of a Jamadar,[1] we were far from being poor, and things, so far, had gone very pleasantly. Wherever there was a Shiva puran to be read and explained, there my father was sure to take me along with him; and finally, unmindful of my mother's remonstrances, he imperatively demanded that I should begin practicing Parthiwa Puja.[2] When the great day of gloom and fasting—called Shivaratree—had arrived, this day following on the 13th of Vadi of Magh.[3] My father regardless of the

1. The office of "Jamadar" answers to that of a town Revenue Collector, combining that of a Magistrate at the same-time.
2. Parthiwa Puja is the ceremony connected with the worship of a lingam of clay—the emblem of Shiva.
3. The eleventh month of the Hindi year.

protest that my strength might fail, commanded me to fast, adding that I had to be initiated on that night, into the sacred legend, and participate in that night's long vigil in the temple of Shiva. Accordingly, I followed him along with other young men, who accompanied their parents. This vigil is divided into four parts, called praharas, consisting of three hours each. Having completed my task, namely, having sat up for the first two praharas till the hour of midnight, I remarked that the Pujaris, or temple disservants, and some of the lay devotees, after having left the inner temple, had fallen asleep outside. Having been taught for years that by sleeping on that particular night, the worshipper lost all the good effect of his devotion, I tried to refrain from drowsiness by bathing my eyes now and then with cold water. But my father was less fortunate. Unable to resist fatigue, he was the first to fall asleep, leaving me to watch alone.

Reflections on Idolatry

Thoughts upon thoughts crowded upon me, and one question arose after the other in my disturbed mind. Is it possible,—I asked myself,—that this semblance of man, the idol of a personal God that I see bestriding his bull before me, and who, according to all religious accounts, walks about, eats, sleeps and drinks; who can hold a trident in his hand, beat upon his dumroo (drum), and pronounce curses upon men,—is it possible that he can be the Mahadeva, the Great Deity, the same that is invoked as the Lord of Kailash,[1] the Supreme Being and the Divine hero of all the stories we read of him in his Puranas (Scriptures)? Unable to resist such thoughts any longer, I awoke my father, abruptly asking him to enlighten me to tell me whether this hideous emblem of Shiva in the temple was identical with the Mahadeva (Great God) of the Scriptures, or something else. "Why do you ask it?" said my father. "Because," I answered, "II feel it

1. A mountain peak of the Himalaya, where Shiva's heaven is believed to be situated.

impossible to reconcile the idea of an Omnipotent, living God, with this idol, which allows the mice to run over its body, and thus suffers its image to be polluted without the slightest protest." Then my father tried to explain to me that this stone representation of the Mahadeva of Kailash, having been consecrated by the holy Brahmins, became, in consequence, the God himself, and is worshipped as such; adding that as Shiva cannot be perceived personally in this Kali-Yug-the age of mental darkness,—we hence have the idol in which the Mahadeva of Kailash is worshipped by his votaries; this kind of worship is pleasing to the great Deity as much as if, instead of the emblem, he were there himself. But the explanation fell short of satisfying me. I could not, young as I was, help suspecting misinterpretation and sophistry in all this. Feeling fain with hunger and fatigue, I begged to be allowed to go home. My father consented to it, and sent me away with a Sepoy, only reiterating once more his command that I should not eat. But when, once at home, I had told my mother of my hunger, she fed me with sweetmeats, and I fell into a profound sleep.

Decision

In the morning, when my father returned and learned that I had broken my fast, he felt very angry. He tried to impress me with the enormity of my sin; but do what he could, I could not bring myself to believe that idol and Mahadeva were one and the same God, and therefore, could not compernhend why I should be made to fast for and worship the former. I had, however, to conceal my lack of faith, and bring forward as an excuse for abstaining from regular worship my ordinary study, which really left me little or rather no time for any thing else. In this I was strongly supportee by my mother, and even by my uncle, who pleaded my cause so well that my fatner had to yield at last and allow me to devote my whole attention to my studies. In consequence of this, I

extended them to "Nighantu,"[1] "Nirukta"[2] "Purvamimausa,[3] and other Shastras, as well as to "Karmakand" or the Ritual.

Renunciation

There were besides myself in the family two younger sisters and two brothers, the youngest of whom was born when I was already sixteen. On one memorable night, as we were attendiug a nautch[4] festival at the house of a friend, a servant was despatched after us from home, with the terrible news that my sister, a girl of fourteen, had been just taken ill with a mortal disease. Notwithstanding every medical assistance, my poor sister expired within four ghatikas[5] after we had returned. It was my first bereavement, and the shock my heart received was great. While friends and relatives were sobbing and lamenting around me, I stood like one petrified, and plunged in a profound reverie. It resulted in a series of long and sad meditations upon the instability of human life. 'Not one of the beings that ever lived in this world could escape the cold hand of death'—I thought; I, too, may be snatched away at any time and die. Whither, then, shall I turn for an expedient to alleviate this human misery, connected with our death bed; where shall I find the assurance of, and means of attaining Muktee, the final bliss ? It was there and then, that I came to the determination that I must find it, cost whatever it may, and thus save myself from the untold miseries of the dying moments of an unbeliever. The ultimate result of such meditations was to make me violently break, and for ever, with the mummeries of external mortification and penances, and the more to appreciate the inward efforrs of the soul. But I kept my determi-

1. A Vedic vocabulary.
2. Another treatise on the Vedic terminology.
3. One of the six systems of philosophy by Jaimini, explanatory of Vedic doctrines.
4. Singing and dancing by professional women.
5. About half an hour.

nation secret, and allowed no one to fathom my innermost thoughts. I was just eighteen then. Soon after, an uncle, a very learned man and full of divine qualities,---one who had shown for me the greatest tenderness, and whose favourite I had been from my birth, expired also; his death leaving me in a state of utter dejection. and with a still profounder conviction settled in my mind that there was nothing worth living for or caring for in a worldly life.

Obstacles

Although I had never allowed my parents to perceive what was the real state of my mind, yet I had been imprudent enough to confess to friends how repulsive seemed to me even the idea of a married life. This was reported to my parents, and they immediately determined that I should be betrothed at once, and the marriage solemnity performed as soon as I should be twenty.

Having discovered their intention, I did my utmost to thwart their plans. I caused my friends to intercede on my behalf, and they pleaded my cause so earnestly with my father that he promised to postpone my betrothal till the end of that year. I then began entreating him to send me to Benares, where I might complete my knowledge of Sanskrit grammar, and study astronomy and physics, until I had attained a full proficiency in these difficult sciences. But this time it was my mother who violently opposed my wishes. She declared that I should not go to Benares, as whatever I might feel inclined to study, could be learned at home as well as abroad; that I knew enough as it was, and had to be married anyhow before the coming year; as young people through an excess of learning were apt to become too liberal and free sometimes in their ideas. I had no better success in that matter with my father. For, on the contrary, no sooner had I reiterated the favour I begged of him, and asked that my betrothal should be postponed until I had returned from Benares a scholar, proficient in ars and sciences, that my mother decla-

red that in such a case she would not consent even to wait till the end of the year, but would see that my marriage was celebrated immediately. Perceiving, at last, that my persistence only made things worse, I desisted, and declared myself satisfied with being allowed to pursue my studies at home, provided I was allowed to go to an old friend, a learned pandit, who resided about six miles from our town in a village belonging to our Jamadaree. Thither then, with my parent's sanction, I proceeded, and placing myself under his tution, continued for some time queitly with my study. But while there, I was again forced into a confession of the insurmountable aversion I had for marriage. This went home again. I was summoned back at once, and found upon returning that everything had been prepared for my marriage ceremony. I had entered upon my twenty-first year, and so had no more excuses to offer. I now fully realized that I would neither be allowed to pursue my studies any longer, nor would my parents ever make themselves consenting parties to my celibacy. It was when driven to the last extremity that I resolved to place an eternal barrier between myself and marriage.

Flight

On an evening of the year Samvat 1903, without letting any one this time into my confidence, I secretly left my home, as I hoped, for ever. Passing the first night in the vicinity of a village about eight miles from my home, I arose three hours before dawn, and before night had again set in. I had walked over thirty miles, carefully avoiding the public thoroughfare, villages, and localities, in which I might have been recognized. These precautions proved useful to me, as on the third day after I had absconded, I learned from a government officer that a large party of men, including many horsemen, were deligently roving about in search of a young man from the town of—who had fled from his home. I hastened further on to meet with other adventures. A party of begging Brah-

mins had kindly relieved me of all the money I had with me, and made me part even with my gold and silver ornaments, rings, bracelets, and other jewels, on the plea that the more I gave away in charities, the more my self-denial would bene-fit me in the after-life. Thus, having parted with all I had, I hastened on to the place of residence of a learned scholar, a man named Lala Bhagat, of whom I had much heard on my way from wandering Sanyasis and Bairagees (religious mendicants). He lived in the town of Sayale, where I met with a Brahmachari who advised me to join at once their holy order, which I did.

Joining the Holy Order

After initiating me into his order and conferring upon me the name of Shuddha Chaitanya, he made me exchange my clothes for the dress worn by them—a reddish-yellow gar-ment. From thence, and in this new attire, I proceeded to the small principality of Kouthakangda situated near Ahme-dabad, where, to my misfortune, I met with a Bairagi, a resi-dent of a village in the vicinity of my native town, and who was well acquainted with my family. His astonishment was as great as my perplexity. Having naturally enquired how I came to be there, and in such an attire, and learned of my desire to travel and see the world, he ridiculed my dress and blamed me for leaving my home for such an object. In my embarrassments he succeeded in getting himself informed of my future intentions. I told him of my desire to join in the Mella[1] of Kartik, which was to be held that year at Siddh-pore, and that I was on my way to it. Having parted with him, I proceeded immediately to that place, and took my abode in the temple of Mahadeva at Neelkantha, where Dandi Swami and other Brahmacharis already resided. For a time, I enjoyed their society unmolested, visiting a number of learned scholars and professors of divinity who had come to the Mella, and associating with a number of holy men.

1. Mella is generally a religious gathering.

Severance of family Tie

Meanwhile, the Bairagi, whom I had met at Kouthakangda, had proved treacherous. He had despatched a letter to my family, informing them of my intentions and pointing to my whereabouts. In consequence of this, my father had come down to Siddhpore with his Sepoys, traced me step by step in the Mella, learning something of me wherever I had sat among the learned pandits, and finally, one fine morning appeared suddenly before me. His wrath was terrible to behold. He reproached me violently, accusing me of bringing an eternal disgrace upon his family. No sooner had I met his glance, though knowing well that there would be no use in trying to resist him, I suddenly made up my mind how to act. Falling at his feet with joined hands, I entreated him in supplicating tones to appease his anger. I had left the home through bad advice, I said; I felt miserable, and was just on the point of returning home, when he had providentially arrived; and now I was willing to follow him home again. Notwithstanding such humility, in a fit of rage he tore my yellow robe into shreds, snatched at my tumba,[1] and, wresting it violently from my hand, flung it far away; pouring upon my head at the same time a volley of bitter reproaches and going so far as to call me a matricide. Regardless of my promises to follow him, he gave me in the charge of his Sepoys, commanding them to watch me night and day, and never leave me out of their sight, for a moment.

Convertion to Vedant

But my determination was as firm as his own. I was bent on my purpose and closely watched for my opportunity of escaping. I found it on the same night. It was three in the morning, and the Sepoy, whose turn it was to watch me, believing me asleep fell asleep in his turn. All was still; and so, softly rising and taking along with me a tumba full of water, I crept out, and must have run over a mile before my

1. A dried gourd to hold water.

absence was noticed. On my way, it espied a large tree, whose branches were overhanging the roof of a pagoda; on it I eagerly climbed, and, hiding myself among its thick foliage upon the dome, awaited what fate had in store for me. About 4 in the morning, I heard and saw through the apertures of the dome, the Sepoys enquiring after me, and making a diligent search for me inside as well as outside the temple. I held my breath and remained motionless, until, finally believing they were on the wrong track, my pursuers reluctantly retired. Fearing a new encounter, I remained concealed on the dome the whole day, and it was not till darkness had again set in that, alighting, I fled in an opposite direction. More than ever I avoided the public thoroughfares, asking my way of people as rarely as I could, until I had again reached Ahmedabad, whence I at once proceeded to Baroda. There I settled for some time; and at Chetan Math (temple) I held several discourses with Brahmanand and a number of Brahmacharis and Sanyasis upon the Vedanta philosophy. It was Brahmanand and other holy men who established to my entire satisfaction that Brahm, the Deity, was no other than my own Self-my Ego, I am Brahm, a portion of Brahm; Jiv (Soul) and Brahm, the Deity being one and the same. Formerly, while studying Vedanta, I had come to this opinion to a certain extent, but now the important problem was solved, and I gained the certainty that I was Brahm.[1]

Study of Vedant

At Baroda learning from a Benares woman that a meeting of the most learned scholars was to be held at a certain locality, I repaired thither at once; visiting a personage known as Satchidanand Paramhansa, with whom I was pemitted to discuss upon various scientific and metaphysical subjects. From him I learned also, that there were a number of great

1. On the second thought the Swami perceived the absurdity of this doctrine and wrote a book, called Vedant Dhwant Nivaran in refutation of Vedant.—T. e.i. In Kashi.

Sanyasis and Brahmacharis who resided at Chanoda Kanyali. In consequence of this, I repaired to that place of sanctity on the Banks of the Nerbuddah, and there at last met for the first time with real Dikshits, or initiated Yogis, and such Sanyasis as Chidashrama and several other Brahmacharis. After some discussion, I was placed under the tuition of one Parmanand, and for several months studied "Vedantsar," "Arya Harimihir Totak "Vedant Paribhasa," and other philosophical treatises. During this time, as a Brahmachari I had to prepare my own meals, which proved a great impediment to my studies To get rid of it, I therefore concluded to enter if possible into the 4th Order of the Sanyasis.[1] Fearing,

1. Sanyas. There are different conditions and orders prescribed in the Shastras, (1) Brahmachari—one who leads simply a life of celibacy, maintaining himself by begging while prosecuting his studies; (2) Grahastha—one who leads a married but a virtuous life; (3) Vanaprastha—one who lives the life of a hermit; (4) Sanyas or Chaturthashrama—this is the highest of the four; into which members of either of the other three may enter, the necessary conditions for it being the renunciations of all worldly consideration. Following are the four different successive stages of this life : (A) Kuteechara;—living in a hut, or in a desolate place, and wearing a red-ochre coloured garment, carrying a three-knotted bambo roal, and wearing the hair iu the centre of the crown of the head, having the sacred thread, and devoting oneself to the contemplation of Parabrahma; (B) Bahudaka—one who lives quite apart form his family and the world, maintains himself on alms collected at seven houses, and wears the same kind of reddish garment; (C) Hansa—the same as in the preceding case, except the carrying of only a one-knotted bamboo; (D) Paramhansa—the same as the others; but the ascetic wears the sacred thread, and his hair and beard are quite long. This is the highest of all these orders. A Paramhansa who shows himself worthy, is on the very threshold of becoming a Diksheet.

more over, to be known under my own name, on acount of my family's pride and well aware that once received in this order I was safe, I begged of a Dekkani pandit, a friend of mine, to intercede on my behalf with a Diksheet—the most learned among them, that I might be initiated into that order at once. He refused, however, point blank to initiate me, urging my extreme youth. But I did not despair. Several months later, two holy men, a Swami and a Brahmachari, came from the Dekan, and took up their abode in a solitary, ruined building in the midst of a jungle, near Chanoda and about two miles distant from us. Profoundly versed in the Vedant philosophy, my friend the Dekkaniy pandit, went to visit them, taking me along with him. A metaphsical discussion following brought them to recognize in each other Diksheet of a vast learning. They informed us that they had arrived from "Shringeri Math," the principal convent of Shankaracharya, in the south, and were on their way to Dwarka. To on of them Parnanand Saraswati, I got my Dekkani friend to recommend me particularly, and state, at the same time. the object I was so desirous to attain and may difficulties. He told him that I was a young Brahmachari, who wss very desirous to pursue his study in metaphysics unimpeded; that I was quite free from any vice or bad habits for which fact he vouchsafed; and that, therefore, he believed me worthy of being accepted in this highest probationary degree, and initiated me into the 4th order of the Sanyasis; adding that thus I might be materially helped to free myself from all worldly obligations, and proceed untrammelled in the course of my metaphysical studies. But this Swami also declined at first. I was too young, he said. Besides, he was himself a Maharashtra, and so he advised me to appeal to a Gujrati Swami. It was only when fervently urged on by my friend, who reminded him that Dekkani Sanyasis can initiate even Gowdas, and that there could extst no such objectton in my case as I had been alreacy accepted, and was one of

the five Dravids that he consented. And on the third day following he consecrated me into the order, delivering unto me a Dand[१] and naming me Dayanand Saraswati. By the order of my initiater and my proper desire. I had to lay aside the emblematical bamboo—the Dand, renouncing it for a while, as he ceremonial performances connected with it, would only interfere with unimpeded progress of my studies.

TRAVELS

Pursuit of Yoga

After the ceremony of initiation was over they left us, and proceeded to Dwarka, For some time I lived at Chanoda Kanyali as a simple Sanyasi. But upon hearing that at Vyasashram there lived a Swami whom they called Yoganand, a man thoroughly versed in Yoga, to him I addressed myself as an humble student, and began learning from him the theory as well as some of the practical modes of the science of Yoga (or Yoga Vidya). When my preliminary tuition was completed, I proceeded to Chhinour, as on the outskirts of this town lived Krishna Shastree, under whose guidance I perfected myself in the Sanskrit grammar, and returned to Chanoda where I remained for some time longer. Meeting there to Yogis—Jwalanaud Pooree anfl Shivanand Giree, I practiced Yoga with them also, and we all three held together many a dissertation upon the exalted science of Yoga; until finally, by their advice, a month after their departure, I went to meet them in the temple of Doodheshwar, near Ahmedabad, at which place they had promised to me the final secrets and modes of attaining Yoga Vidya. They kept their promise, and it is to them that I am indebted for the acquirement of the practical portion of that great science. Still later, it was divulged to me that there were many far higher and more learned Yogis than those I had higherto met yet not the highest still—who resided on the peaks of the mountain of Aboo, in Rajputana. Thither then I travelled again, to visit such noted places of sanctity as the Alvada Bhawauce and others; encountering, at

१. The three and seven knotted bamboo of the Sanyasis given to them as a sign of power after their initiation.

last, those whom I so eagerly sought for, on the peak of Bhawanee Giree, and learning from them various othkr systems and modes of Yoga. It was in the year of Samvat 1911, that I first joined in the Kumbh Mella at Hardwar, where so many sages and divine philosophers meet, often unperceived, together. So long as the Mella congregation of pilgrims lasted. I kept practicing that science in the solitude of the jungle of Chandee ; and after the pilgrims had separated, I transferred myself to Rishikesh, where sometimes in the company of good and pure Yogis and Sanyasis, oftener alone, I continued in the study and practice of Yoga.

Visit to Tehri

After passing a certain time in solitude, on the Rishikesh, a Brahmachari and two mountain ascetics joined me, and we all three went to Tehri. The place was full of ascetics and Raj (Royal) pandits—so called on account of their great learning. One of them invited me to come and have dinner with him at his house. At the appointed hour he sent a man to conduct me safely to his place, and both the Brahmachari and myself followed the messenger. But what was our dismay upon entering the house, to first see a Brahmin preparing and cutting meat, and then, proceeding further into the interior apartments, to find a large company of pandits seated with a pyramid of flesh, rump-steaks, and dressed-up heads of animals before them ! The master of the house cordially invited me in ; but, with a few brief words—begging them to proceed with their good work and not to disturb themselves on my account, I left the house and returned to my own quarters. A few minutes later the beef eating pandit was at my side praying me to return, and trying to excuse himself by saying that it was on my account that the sumptuous viands had been prepared ! I then firmly declared to him that it was all useless. They were carnivorous, flesh-eating men, and myself a strict vegetarian, who felt sickened at the very sight of meat. If he would insist upon providing me with food. he might do so by sending me a few provisions of grain and vegetables which my Brahmachari would prepare for me. This he promised to do, and then, very much confused, retired,

Wam Marg or Indian Bacchanalianism

Staying at Tehri for some time, I inquired of the same

pandit about some books and learned treatises I wanted to get for my instruction ; what books and manuscripts could be procured at that place. and where. He mentioned some works on Sanskrit grammar, classics, lexicographies, books on astrology, aud the Tantras—or ritualistics. Finding that the latter were the only ones unknown to me. I asked him to procure the same for me. There upon the learned man brought to me several works upon this subject. But no sooner had I opened them, tham my eye fell upon such an amount of incredible obscenities, mistranslations, misinter-pretations of text, and absurdity, that I felt perfectly horrified. In this Ritual, I found that incest was permitted with mothers, daughters, and sisters (of the shoemaker's caste) ; as well as among the Pariahs of the outcastes.—and worship was performed in nude state. Spirituous liquors, fish, and all kinds of animal food, and Moodra (exhibition of indecent images) were allowed, from Brahmin down to Mang, And it was explicitly stated that all those five things of which the name commences with the nasalm as for instance, Madya(intoxicating liquor), Meen (fish), Mands (flesh), Moodra, and Maithoon (coition) were so many means for reaching muktee (Salvation) ! By actually reading the whole contents of the Tantras I fully assured myself of the craft and viciousness of the authors of this disgusting literature which is regarded as Religious ! I left the place and went to Shreenagar.

Visit to Religious Places

Taking up my quarters at a temple on Kedar Ghat, I used these Tantras as weapons against the local pandits, whenever there was an opportunity for discussion. While there, I became acquainted with a Sadhoo, named Ganga Giri, who by day never left his mountain where he resided in a jungle. Our acquaintance resulted in friendship as I soon learned how entirely worthy he was of respect. While together, we discussed Yoga and other sacred subjects, and through close questioning and answering became fully and mutually satisfied that we were fit for each other. So attractive was his society for me, that I stayed over two months with him, It was only at the expiration of this time, and when autumn was setting in that I, with my companions, the Brahmachari and the two ascetics, left Kedar Ghat for other places. We visited Rudra

Prayag and other cities, until we reached the shrine of Agasta Munee. Further to the north, there is a mountain peak known as the Shivapooree (town of Shiva) where I spent the four months of the cold season; when, finally parting from the Brahmachari and the two ascetics, I proceeded back to Kedar, this time alone and unimpeded in my intentions, and reached Gupta Kashee.

Search of Yogis (Clairvoyants)

I stayed but a few days there, and went thence to the Triyugee Narayan [shrine, visiting on my way Gowree Koond tank and the cave of Bheemgoopha. Returning in a few days to Kedar, my favourite place of residence, I there finally rested, a number of ascetic Brahmin worshippers—called pandas, and the devotees of the Temple of Kedar of the Jangam sect,—keeping me company until my previous companions, the Brahmachari with his two ascetics, returned. I closely watched their ceremonies and doings, and observed all that was going on with a determined object of learning all that was to be known about these sects. But once that my object was fulfilled, I felt a strong desire to visit the surrounding mountains, with their eternal ice and glaciers, in quest of those true ascetics I had heard of, but as yet had never met them. I was determined, come what might, to ascertain whether some of them did or did not live there as rumoured. But the tremendous difficulties of this mountanious journey and the excessive cold forced me, unhappily, to first make inquiries among the hill tribes and learn what they knew of such men. Everywhere I encountered either a profound ignorance upon the subject or a ridiculous superstition. Having wandered in vain for about twenty days, disheartened I retraced my steps, as lonely as before, my companions who had at first accompanied me, having left me two days after we had started through dread of the great cold. I then ascended the Tunganath Peak. There, I found a temple full of idols and officiating priests, and hastened to descend the peak on the same day. Before me were two paths, one leading west and the other south-west. I chose at random that which led towards the jungle, and ascended it. Soon after, the path led me into a dense jungle with rugged rocks and dried-up waterless brooks. The path stopped abruptly there. Seeing

myself thus arrested, I had to make my choice to either climb up still higher or descend. Reflecting what a height there was to the sumit, the tremendous difficulties of climbing that rough and steep hill, and that the hight would come before I could ascend it, I concluded that to reach the summit that night was an impossibility. With much difficulty, however, catching at the grass and the bushes, I succeeded in attaining the higher bank of the Nala the dry brook), and standin on a rock, surveyed the environs I saw vothing but tormented hillocks, highland, and a dense pathless jungle covering the whole, where no man could pass, Meanwhile the sun was rapidly descending towards the horizon. Darkness would soon set in, and then without water or any means for kindling a fire, what would be my position in the dreary solitude of that jungle !

Temptation of Priestcraft

By dint of tremendous exertions though, and after an acute suffering from thorns, which tore my clothes to shreds, wounded my whole body, and lamed my feet, I managed to cross the jungle, and at last reached the foot of the hill and found myself on the highway. All was darkness around and over me, and I had to pick my way at random, trying only to keep to the road. Finally I reached a cluster of huts, and learning from the people that that road led to Okhee Math, I directed my steps towards that place, and passed the night there. In the morning, feeling sufficiently rested and refreshed I returned to the Gupta Kashee, whence I started the next day on my northward journey. But that journey attracted me, and soon again I repaired to Okhee Math, under the pretext of examining that hermitage and observing the way of living of its inmates. There I had time to examine at leasure the doings of that famous and rich monastery, so full of pious pretence and a show of asceticism, The high priest (or Chief Hermit), called Mahant, tried hard to induce me to remain and live there with him becoming his disciple. He even held before me the prospect, which he thought quite dazzling, of inheriting some day his lacs of rupees, his splendour and power, and finally succeeding him in his Mahantship or supreme rank. I frankly answered him that had I ever craved any such riches or glory, I would not have secretly left the house of my father,

which was not less sumptuous or attractive than his monastery with all its riches. The object, which induced me to do away with all these worldly blessings, I added, "I find you neither strive for, nor possess the knowledge of." He then enquired what was that object for which I so strived. "That object," I answered, "is the secret knowledge, the Vidya, or true erudition of a genuine Yogi the Mooktee, which is reached only by the purity of one's soul, and certain attainments unattainable without it ; in the meanwhile, the performance of all the duties of man towards his fellow-men, and the elevation of humanity thereby." The Mahant remarked that it was very good, and asked me to remain with him for some time at least: But I kept silent and returned no reply : I had not yet found what I sought for. Rising on the following morning very early, I left this rich dwelling and went to Joshee Math. There, in the company of Dakshanee or Maharashtra Shastrees and Sannyasis, the true ascetics of the 4th Order, I rested for a while.

Yogis at Joshi Math (Convent)

At Joshee Math I met many Yogis and learned ascetics and, in a series of discussions, learnt more about Yoga-Vidya, and parting with them, went to Badrinarayan. The learned Rawaljee was at that time the chief priest of that temple ; and I lived with him a few days, We held discussions upon the Vedas, and the "Darshanas," Having enquired from him whether he knew of some genuine Yogi in the neighbourhood I learnt, to my great regret, that there were none there at the time, but that he had heard that they were in the habit of visiting his temple at times. Then I resolved to make a thorough search for them throughout the country and especially in the hills,

Further search of clairvoyants

One morning at day break, I set out on my journey ; when, following along the foot of the mountains, I at last reached the banks of the Alaknanda river. I had no desire of crossing it, as I saw on its opposite bank the large village called "Mana." Keeping, therefore, still to the foot of the hills, I directed my steps towards the jungle, following the river course. The hills and the road itself were thickly covered with snow and, with the greatest difficulty, I succeeded

in reaching that spot where the Alaknanda is said to take its rise. But once there, finding myself surrounded by lofty hills on all sidos, and being a stranger in the country, my progress, from that moment, was greatly retarded. Very soon, the road ceased abruptly and I found no vestige of even a path. I was thus at a loss what to do next, but I determined finally to cross the river and enquire for my way. I was poorly and thinly clad, and the cold was intense and soon became intolerable. Feeling hungry and thirsty, I tried to deceive my hunger by swallowing a piece of ice, but found no relief. I then began to ford the river. In some places it was very deep, in others shallow —not deeper than a cubit—but from eight to ten cubits wide. The river-bed was covered with small and fragmentary bits of ice which wounded and cut my naked feet to blood. Very luckily the cold had quite benumbed them, and even large bleeding cracks lef me insensible for a while. Slipping on the ice more than once, I lost my footing and came nearly falling down and thus freezing to death on the spot. For, should I have found myself prostrated on the ice, I realized that, benumbed as I was all over, I would find it very difficult to rise again. However, with great exertion, and after a terrible struggle, I managed to get safe enough on the other bank Once there more dead than alive. I hastened to denude the whole upper part of my body ; and, with all I had of clothes on me, to wrap my feet up to the knees and then-exhausted, famished, unable to move. I stood waiting for help, and knowing not whence it would come. At last, throwing a last look around me, I espied two hillmen, who came up and having greeted me with their "Kashisamba" invited me to follow them to their home, where I would find food. Learning my trouble, they, moreover, promised to guide me to "Sadpat" a very sacred place ; but I refused their offers, for I could not walk, Not with standing their pressing invitation I remained firm and would not "take courage" and follow them as they wanted me ; but, after telling them that I would rather die, refused even to listen to them. The idea had struck me that I had better return and prosecute my studies. The two men then left me and soon disappeared among the hills. Having rested, I proceeded on my way back. Stopping for a few minutes at Basudhara, a sacred bathing place, and passing by the neighbourhood of Managram, I reached Badrinarayan at

8 o'clock that evening. Upon seeing me, the Rawaljee and his companions were much astonished and enquired where I had been ever since the early morning. I then sincerely related to them all that had happened to me. That night, after having restored my strength with a little food, I went to bed, but getting up early on the following morn, I took leave of the Rawaljee and set out on my journey back to Rampur. That evening. I reached the home of a hermit. a great ascetic, and passed the night at his place. That man had the reputation of one of the greatest sages living, and I had a long conversation with him upon religious subjects. More fortified than ever in my determination, I left him next morning, and after crossing hills, forests and having descended the Chilkia ghattee, I arrived at last at Rampur where I took up my quarters at the house of the celebrated Ramgiri, so famous for the holiness and purity of his life. I found him a man of extraordinary habits. though. He never slept, but used to pass whole nights in holding conversations—very loud sometimes-apparently with himself. Often, we heard a loud scream, then-weeping, though there was no one in his room with him. Extremely surprised, I questioned his disciples and pupils and learnt from them that such was his habit, though no one could tell me what it meant. Seeking an interview with him, I learnt some time after, what it really was; and thus I was enable to get convinced that it was not true Yoga he practised, but that he was only yartially versed in It. It was not what I sought for.

Books on Yoga and Science

Leaving him I went to Kasipur, and thence to Drona Sagar, where I passed the whole winter. Thence again to Sambal through Moradabad, when, after crossing Gurh Mukteshwar I found myself again on the banks of the Ganges. Besides other religions works. I had with me the "Shiva Sanhita" "Hat-pradipika", "Yoga-Bij" and "Gherand Sanhita", which I used to study during my travels. Some of these, books treated on tke Nari chalan and Nari chakaras, (nervous system) giving very exhaustive descriptions of the same, which I could never grasp, and which finally made me doubt as to the correctness of these works. I had been for some time trying to remove my doubts, but had found as yet no opportunity. One day, I chanced to meet a corpse floating down the river.

There was the opportunity and it remained with me to satisfy myself as to the correctness of the statements contained in the books about anatomy and man's inner organs. Ridding myself of the books which I laid near by, and taking off my clothes, I resolutely entered the river and soon broughi the dead body out and laid it on the shore. I then proceeded to cut it open with a large knife in the best manner I could. I took out and examined the kamal (the heart) and cutting it from the navel to the ribs, and a portion of the head and neck, I carefully examined and compared them with the descriptions in the books. Finding they did not tally at all. I tore the books to pieces and threw them into the river after the corpse. From that time gradually I came to the conclusion that with the exception of the Vedas, Upanishadas, Patanjali and Sankhya, all other works upon science and Yoga were false. Having lingered for some time on the banks of the Canges, I arrived next at Furrukhabad ; when having passed Sreenjeeram I was just entering Cawnpur by the road east of the cantonment, the samvat year of 1912 (1855 A.C.) was completed.

Practice of Yoga

During the following five months, I visited many a place between Cawnpur and Allahabad. In the beginning of Bhadrapad, I arrived at Mirzapur where I stopped for a month or so near the shrine of Vindiachal Asooljee ; and arriving at Benares in the early part of Ashwin, I took my quarters in the cave (at the confluence of the Buruna and the Ganges) which then beloaged to Bhumanand Saraswati. There, I met with Kakaram, Rajaram and other Shastrees, but stopped there only twelve days and renewed my travels after what I sought for. It was at the shrine of Durga-Koho in Chandalgurh, where I passed ten days. I left off eatiag rice altogether. and living but on milk I gave myself up entirely to the study of Yoga which I practised night and day.

Frauds of Idolatry

Unfortunately, I got this time into the habit of using bhang, a strong narcotic leaf, and at times felt quite intoxicated with its effect. Once after leaving the temple, I came to a small village near Chandalgurh where by chance I met an attendant of mine of former days. On the other side of the village, and at some distance from it stood a Shivalaya (a

temple of Shiva) whither I proceeded to pass the night under its walks. While there under the influence of bhang, I fell fast asleep and dreamt that night a strange dream. I thought I saw Mahadeo and his wife Parvati. They were conversing together and the subject of their talk was myself. Parvati was telling Mahadeo that I ought to get married, but the god did not agree with her. She pointed to the bharg. This dream annoyed me a good deal when I awoke. It was raining and I took shelter in the verandah opposite the chief entrance to the temple, where stood the huge statue of the Bull-god Nandi Placing my clothes and books on its back, I sat and meditated; when suddenly happening to throw a look inside the statue which was empty, I saw a man concealed inside. I extended my hand towards him, and must have terrified him, as jumping out of his hiding place, he took to his heels in the direction of the village. Then I crept into the statue in my turn and slept there for the rest of the night. In the morning an old woman came and worshipped the Bull-god with myself inside. Later on, she returned with offerings of "Gur" (molasses) and a pot of "Dahi" (curd milk) which, making puja to me (whom she evidently mistook for the god himself), she offered and desired me to accept and eat. I did not disabuse her, but, being hungry, ate it all. The curd being very sour proved a good antidote for the bhang and dispelled the signs of intoxication, which relieved me very much.

Forests of Nerbuddah

After this adventure, I continued my journey towards the hills and that place where the Nerbuddah takes its rise. I never once asked my way, but went on travelling southward. Soon I found myself in a desolate spot covered thickly with jungles, with isolated huts appearing now and then among the bushes at irregular distances. At one of such places I drank a little milk and proceeded onward. But about half a mile farther, I came to a dead stop. The road had abruptly disappeared and there remained but the choice of narrow paths leading, I knew not, where. I soon entered a dreary jungle of wild plum trees and very thick and huge grass with no signs of any path in it, when suddenly I was faced by a huge black bear. The beast growled ferociously, and. rising on its hind legs, opened wide its mouth to devour me. I stood motionless

for some time and then slowly raised my thin cane over him, and the bear ran away terrified. So loud was its roaring, that the villagers whom I had just left, hearing it, ran to my assistance and soon appeared armed with large sticks and followed by their dogs. They tried hard to persuade me to return with them. If I proceeded any further, they said. I would have to encounter the greatest perils in the jungles which in those hills were the habitat of bears, buffaloes, elephants, tigers and other ferocious beasts. I asked them not to feel anxious for my safety, for I was protected. I was anxious to see the sources of the Nerbuddah and would not change my mind for fear of any peril. Then seeing that their warnings were useless, they left me after having made me accept a stick I immediately threw away.

Forest Life

On that day I travelled without stopping until it grew quite dusk. For many hours I had not perceived the slightest trace of human habitation around me. no villages in the far off, not even a solitary hut, or a human being. But what my eyes met the most was a number of trees, twisted and broken, which had been uprooted by the wild elephants, and, felled by them to the ground, further on I found myself in a dense and impenetrable jungle of plum trees and other prickly shrubs whence, at first I saw no means of extricating myself. However, partly crawling on the belly, partly creeping on my knees, I conquered this new obstacle and after paying a heavy tribute with pieces of my clothes and even my own skin, bleeding and exhausted I got out of it. It had grown quite dark by that time. but even this—if it impeded did not arrest my progress onward, and I still proceeded. until I found myself entirely hemmed in by lofty rocks and hills thickly grown over with a dense vegetation, but with evident signs of being inhabited. Soon I perceived a few huts, surrounded by heaps of cowdung, a flock of goats grazing on the banks of a small stream of clear water and a few welcome lights glimmering between the crevices of the walls. Resolving to pass the night there, and go no further till the next morning, I took shelter at the foot of a large tree which overshadowed one of the huts. Having washed my bleeding feet, my face and hands in the stream, I had barely sat to tell my prayers, when I was suddenly dis-

turbed in my meditations by the loud sounds of a tom-tom. Shortly after, I saw a procession of men, women and children, followed by their cows and goats emerging from the huts and preparing for a night religious festival. Upon perceiving a stranger, they all gathering around me, and an old man came enquiring from whence I had appeared. I told them I had come from Benares, and was on my pilgrimage to the Nerbudda sources, after which answer they all left me to my prayers and went further on. But in about half hour, came one of their headmen accompanied by two hillmen and sat by my side, He came as a delegate to invite me to their huts. But, as before, I refused the offer (for they were idolators). He then ordered a large fire to be lit near me and appointed two men to watch over my safety the whole night. Learning that I used milk for all food, the kind headmen asked for my "kamandalu" (a bowl) and brought it back to me full of milk, of which I drank a little that night. He then retired, leaving me under the protection of my two guards That night I soundly slept until dawn, when rising and having completed my devotions, I prepared myself for further events." (Here the autobiography ends.—T)

अनुसंधान निष्कर्ष

१. इस आत्मचरित्र का उल्लेख बहुत है ।

२. अत्मचारित्र अब तक क्यों नहीं मिला ?

अंग्रेजी सरकार की कड़ी निगरानी, सन् ५७ के क्राँतकारियों से सम्बन्ध, अंग्रेजी इतिहास की साक्षी मिलने में बाधक रहो ।

३. थियोसोफिस्ट-आत्मचरित्र से प्रामाणिकता की पुष्टि—

ऐतिहासिक तथा भौगोलिक स्थति के आधार पर, आज तक की ऋषि-जीवनियों में तथा अज्ञात जीवनी के मग्नम्, त्रियुगीनारायण, तुंगनाथ, केदारघाट, मानसोद्भेदतीर्थ, अलकापुरी, रामपुर आदि के यात्रा-स्थलों का समान उल्लेख है ।

४. ब्रह्म समाज और आर्यसमाज का संघर्ष भी ऋषि की अज्ञात जीवनी के प्रकाशन में बाधक रहा—

५. श्री पं० दीन बन्धु जी शास्त्री का अध्यवसाय अपूर्व है ।

६. आत्मचरित्र की खोज पर वधाई ।

७. ऋषि ने स्वातन्त्र्य-संग्राम में पूरा भाग लिया ।

सात्यार्थ प्रकाश की साक्षी, से बाघेर जाति की वीरता का वर्णन, अंग्रेजों की दुर्दशा, बिठूर के मन्दिरों का नाश, थियोसोफिस्ट आत्मचरित्र के अनुसार क्रान्ति की तिथियों और स्थानों और भाग लेने का पूर्णतः समर्थन है ।

८. नाना साहब महर्षि के सच्चे शिष्य थे—नाना साहब की समाधि का मौरवी में होना ही प्रमाणित करता है ।

९. कुम्भ के मेले पर ऋषि के दर्शन करने वाले वोर-पुंगव थे—

नाना साहब, महारानी लक्ष्मीबाई, अजीमुल्ला खाँ, बाला साहब तांत्याटोपे, वीरवर कुँवर सिंह मंगल पांडे गंगाबाई ।

१०. आत्मचरित्र की ऐतिहासिकता—

ऋषि बड़ौदा से बनारस गए, थियोसोफिस्ट आत्मचरित्र से तथा अन्य उपलब्ध जीवनियों में भी ऐसा ही सिद्ध होता है।

११. हिमालय के समस्त पर्वतीय स्थलों का भ्रमण—अर्थात् ऋषिकेश से श्रीनगर,—ले—ऋषिकेश—मानसरोवर, काशमीर यात्रा कैलाश यात्रा—तिब्बत की जोखिम भरी यात्रा ऋषि ने की।

१२. सन् ५७ के रक्त कमल और चपाती का ऐतिहासिक रोचक वर्णन है।

१३. ह० ईसा का भारत में योगाभ्यास ऐतिहासिक है।

१४. कामाख्या में ५०० ब्राह्मणों बालकों का बलिदान हुआ था।

॥ ओ३म् ॥

प्रशस्तियाँ

आशंसा

महामना श्री १०८ ब्रह्मानन्दजी आर्य, त्रैतवेदान्ताचार्य (वाराणसी)

ओंकार आश्रम,
मु० चान्दोद (चाणोद कर्णाली),
बड़ोदा।
ता० २।१०।७१ ई०

सनातन-वेद-धर्मनिष्ठ, योगीराज, विद्वद्वर्य, आर्यशिरोमणि, तपोनिष्ठ परमप्रेमास्पद श्रीमान् स्वामी श्री सच्चिदानन्द जी महाराज सरस्वती !

मुकाम चान्दोद, ओंकार आश्रम से स्वामी ब्रह्मानन्द आर्य त्रैत वेदान्ताचार्य का सादर सप्रेम्णा ओं नमो नमस्ते स्वीकृत होवे।

ईश्वर कृपा से आप वहाँ सकुशल होंगे। आपकी प्रेरणा से भेजा हुए छपे—योगीराज दयानन्द जी का आत्मचरित्र—३६ वर्ष की अज्ञात जीवनी, के सूचना पत्र नगर पोस्ट मार्फत भेजे, सो मुझे मिल गए हैं। इस सूचना पत्र को पढ़कर मुझे बहुत आश्चर्यमय आनन्द हुआ है।

आपके इस परम उग्र तपोमय पवित्रतम पुरुषार्थ के लिए बहुत बहुत साधुवाद सहित धन्यवाद है। आप वी. पी. द्वारा पूज्य गुरुदेव दयानन्द जी महाराज का आत्मचरित्र जो ३६ वर्ष का अज्ञात जीवन है और सूची में छपे योग विषयक सभी पुस्तकें भिजवाने की कृपा कीजियेगा।......।

आपके सूचना पत्र जो नग ८ यहाँ भेजे हैं मैं उन्हें इधर के आर्य पुरुषों और समाज के मन्त्रियों को दूंगा। आपकी उक्त पुस्तकों की सिफारिश नगरों में यत्र-तत्र करता रहूंगा सो जानना जी।

ऊँ आश्रम स्वामी ब्रह्मानन्द आर्य

शुभ प्रशस्ति

स्व० डा० आचार्य पं० देवदत्त शर्मोपाध्याय एम० ए०

विद्या-भास्कर, वेदान्ताचार्य सं०हि० डि० फिल, प्राचीन, नवीन व्याकरणाचार्य, वाराणसी, भू०पू० अध्यक्ष—प्राचीन व्याकरण दर्शनागम-विभाग, वाराणसेय संस्कृत विश्व विद्यालय

महामहिम योगिराज श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती जी महाराज और मैंने प्रातः स्मरणीय महाविद्यालय के कुल पति महर्षि श्री स्वामी शुद्धबोध तीर्थ जी महाराज से वेद व्याकरण साहित्य और दर्शन आदि की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी अतएव योगी राज स्वामी जी का वैदिक एवं शास्त्रीय ज्ञान मुक्त कण्ठ से प्रशंसनीय है।

हिन्दी योग दर्शन

"श्री योगेश्वर महाराज ने यह 'शुद्ध बोध वृत्ति' सहित हिन्दी योग दर्शन का निर्माण किया है। वह जनता के लिए अत्यन्त कल्याणकारी है। इसमें स्वामी जी नें अपनी अनुभूतियों के आधार पर योग के सच्चे अर्थ का दिग्दर्शन कराया है। चित्तवृत्ति निरोध से लेकर समाधि पर्यन्त सर्व विषयों का अनुभव सिद्ध उल्लेख है। योग सिद्धियों का सुन्दर सारभूत तथ्य चित्रण है। पता चलता है योगिराज ने अपने जीवन में योग का बहुत अनुभव प्राप्त किया है। सत्य सार खींचकर रख दिया है। ऐसी पुस्तकें ही योग की कठिन से कठिन गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ हो सकती है।

—ह० देवदत्त शर्मोपाध्याय

मन्त्र योग साधना

योग साधना का अमोध मन्त्र इसमें दिया गया है। वेदशास्त्र उपनिषद ब्राह्मण ग्रन्थों के १००० मन्त्रों में इस मन्त्र का विधान बताया है। जप विधि बताई है। संसार के समस्त आस्तिकों ने इस मन्त्र को स्वीकार किया है। यह मन्त्र ही ध्यान योग-का ध्रुव माध्यम है। विधि विधान मनोकामना पूर्ण करने की पूर्ण विधि दी है।

—'-योगिराज महाराज जी ने योग के इन छोटे-छोटे ग्रंथों में सिद्धांतों की अमूल्य निधियाँ और योग की अद्वितीय निधियाँ निहित कर दी है योग के साधकों को इनका अनवरत स्वाध्याय करना चाहिए। तभी साधक वृन्द का अभ्युदय हो सकता है।

—ह० देवदत्त शर्म्मोपाध्याय

—१९७०

मूल्य—केवल ९०-००, मन्त्रयोग साधना

८०-०० हिन्दी योग दर्शन

१·२५ पातञ्जल योग साधना

—व्यवस्थापक

ब्रह्मचारी श्री कृष्णदत्त जी की

सद्भावना

सिद्ध योगी, द्वापर कालीन महर्षि शृंगी की अवतीर्णआत्मा अशिक्षित संस्कारी जीव श्री ब्रह्मचारी जी

ओ३म
योगी श्री स्वामी सच्चिदा
न्द जी महाराज ने जो
परिश्रम करके स्वामी
दयानन्द जी सरस्वती
की अज्ञात जीवनी
छापी है वह प्रशंसनि
य है
ब्रहमचारी
कृष्णदत्त
13-11-71

॥ ओ३म् ॥

योगी श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज नें जो परिश्रम करके स्वामी दयानन्द जी सरस्वती की अज्ञात जीवनी छापी है वह प्रशंसनीय है

ब्रह्मचारी

कृष्णदत्त

१३ ११ ७१

॥ ओ३म् ॥

पूज्यपाद महात्मा आनन्द भिक्षु जी महराज का योग अभिनन्दन

श्री महामान्यवर, आदर्श योग निष्ठ, तपोमूर्ति,
योगिराज श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज !

सादर नमस्ते !

अत्र कुशलं तत्रास्तु । आप का कृपा पत्र मिला । हार्दिक धन्यवाद । अब आपके आजाने से मण्डल का कल्याण होगा । आप जिस महान् कार्य में लगे हुए हैं, उससे हमारा भविष्य बनेगा ।····साधु विना साधना के नहीं बन सकता । आप जैसे निर्भीक साधुओं से आर्य समाज का कल्याण होगा ।

समाचार पत्रों द्वारा विदित हुआ, आप कर्तारपुर में अध्यात्म शिविर लगा रहे हैं । मैं भी श्री चरणों में उपस्थित होने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा । अभाग्यवश देहली में आपके दर्शन न कर सका ।······जब सौभाग्य उदय होगा तो मैं भी आपके चरणों में उपस्थित हो जाऊँगा ।
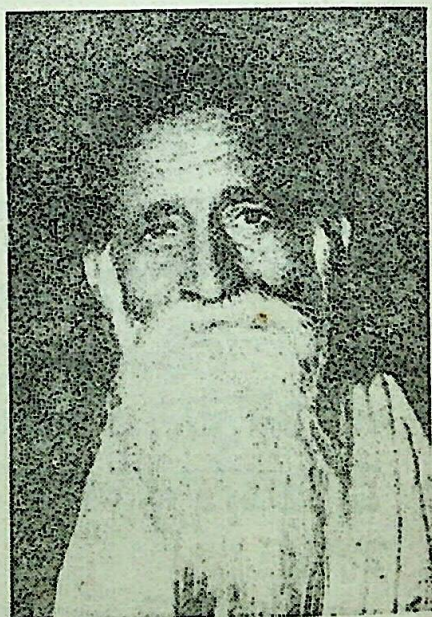
कृपाभिलाषी

योग्य सेवा से कृतार्थ करें ।

आर्य समाज व्यावर
राजस्थान
२५-६-६६

आनन्द भिक्षु वान प्रस्थ

॥ ओ३म् ॥

लेखक और खोजी का परिश्रम'

श्री १०८ स्वामी विज्ञानानन्दजी सरस्वती

प्रभु की सृष्टि में जीवन सफल उसी का है जो अपने ऊपर कष्ट उठाकर भी दूसरों का कल्याण करते हैं तभी तो कहा है—

"परोपकाराय सतां विभूतयः ।"

—सज्जन पुरुषों की पहचान ही यही है, कि वह हर हाल काल में उपकार ही करते हैं।

श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती 'योगी' उनमें से एक हैं। आपको योग की चिरकाल से लग्न थी और उसकी प्राप्ति के लिए अनेकों तद्विषयक ग्रन्थ पढ़े, अनेकों द्वारों का खटखटाया, परन्तु सन्तुष्टि न हुई महर्षि दयानन्द का अनुयायी भला अपनी आत्मिक सत्य-पिपासा को बुझाये बिना कैसे शान्त रह सकता है। फारसी में कहा है—
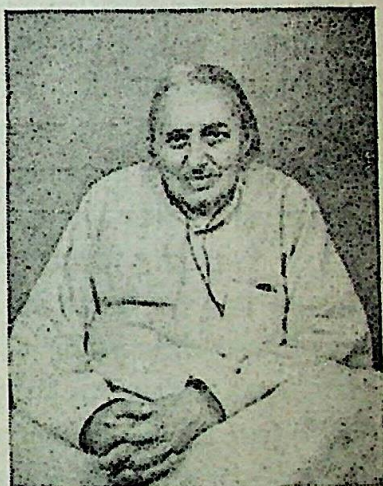
'जो इन्दा, पाइन्दा'

—जिन खोजा तिन पाइयां।

पं० दीन बन्धु शास्त्री बी. ए. आचार्य, आर्य समाज, कलकत्ता का बड़ा धन्यवाद है, कि उन्होंने वर्षों की खोज के बाद महर्षि दयानन्द की ३९ वर्ष की अज्ञात, रहस्यपूर्ण जीवनी को खोजकर 'सार्वदेशिक' साप्ताहिक पत्रिका में क्रमश:(दो वर्ष में) जनता को भेंट किया। आर्य जगत् को और बिशेषकर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को उनकी इस अमूल्य सेवा के लिए अत्यन्त आभार प्रकट करते हुए, उन समस्त लेखों को पुस्तकाकार

कर जनता जनार्दन को महर्षि की अज्ञात जीवनी से कृतकृत्य करना था, परन्तु हमें ज्ञान नहीं कि उपरोक्त आचर्य जी का आभार भी प्रगट किया गया है या नहीं। इतना ज्ञान तो है कि सार्वदेशिक के कर्णधारों ने उन लेखों को पुस्तक रूप देने से निषेध कर दिया, और एक आर्य समाज प्रतिनिधि सभा के एक विद्वान् ने यहाँ तक कह दिया कि यह सब कथा मन घडन्त है। उसे नारकीय रूप दिया गया है।

ज़माने की नौरंगी (दो रुखी चाल) देखिये, आप करें कुछ न, दूसरा करे तो उसके मार्ग में बाधायें खड़ी कर दें, परन्तु धीर वीर विपत्तियों की परवाह नहीं करते हैं, स्वागत करते हैं, उनका स्वागत करते हैं और साथ ही प्रतिकार करते हैं। उनसे जूझकर विजयी होते हैं।

श्री पूज्य स्वामी सच्चिदानन्द योगी ने हमारे साथ निश्चिय कर लिया था, कि महर्षि की 'अज्ञात जीवनी' अवश्य छपवानी है। मैंने उन्हें अश्वासन दे रखा था। पुस्तक प्रेस में देने के लिए मेरे पास पहुँच चुकी थी कि उर्दू के साप्ताहिक 'वैदिक धर्म, में उसी आर्य विद्वान ने 'अज्ञात जीवनी, को असत्य, मन घडन्त और अविश्वसनीय बताया। स्वामी जी ने कलकत्ता में जाकर पुस्तक का मैटर मुझ से मंगवाकर प्रत्येक घटना तथा सत्यता की दर बदर फिर कर सम्पुष्टि की। बंगला में लिखे पुराने लेख जो श्री ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ज़ी श्री केशव चंद्र सेन आदि महानुभावों से प्राप्त किये गए थे, उन के अंशों का फोटो करा लिया। जिन सबका पूरा विवरण तो पुस्तक की पृष्ठभूमि में आपको पढ़ने को मिलेगा।

पुस्तक को बढ़िया कागज पर छपवाने और फिर ५० के लगभग रंगीन चित्र देने, नये डिजाइन बनवाने, ब्लाक बना छपवाने, सुन्दर, सुदृढ़ जुजबन्दी की बढ़िया जिल्द बनवाने में लगभग १५हजार रुपए की आवश्यकता थी। यह कैसे पूरी हो।

यति के पास अपनी भिक्षा भेंट का ३०००) रु० था। २०००) रु० वान प्रस्थ आश्रम ज्वाला पुर से प्राप्त हुआ। ५०००) रु० लेकर पुस्तक छपवानी आरम्भ कर दी और मात्रजल पायी बन कर फल, दुग्ध, अन्न का परित्याग कर, अपने योगाभ्यास को भी कमकर पुस्तक के लिए धन की समस्या का समाधान ढूंढने लगे। रोहतक पधारे और मुझ से बातचीत हुई।

जिस कार्य में प्रभु प्रेरणा कार्य कर रही होती है उसके साधन वह स्वयं जुटाता है। वन्दनीय महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की कथा

आश्रम में हो रही थी। श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी भी पधारे ही थे। महात्मा जी ने इस पवित्र कार्य के लिए १०००)रु० की राशि अपने कोषसे देनी की। मेरे जामात चिरंजीव जगदीश चन्द्रजी डावर तथा पुत्री श्रीमती देव प्रभा जोने २०००) रु० की राशि, श्री डाक्टर देवराज जी सूरी तथा उनकी सहचारिणी माता लीलावती सूरी ने १०००) रु० देना किया फुटकर राशि और १०। १० रु० अग्रिममूल्य देकर ग्राहक अनेकों बनने लगे।

अब प्रभु कृपा से यह पुस्तक श्री योगी जी महाराज की ३०० पृष्ठ के गवेषणामय निबंध केसाथ शीघ्र छपकर आर्य जनता के हाथों में पहुँच रही है। हमारा विश्वास है कि जो भी आर्य भाई अपने आपको ऋषि दयानन्द का भक्त कहता है और स्वल्प सी भी निष्ठा उनके -चरणों में रखता है, वह अपना और संसार का कल्याण तभी कर सकेगा जब स्वयं इस पुस्तक को पढ़ेगा। दूसरों में प्रचार करेगा। वह स्वयं ही लेखक और खोजी के परिश्रम की सराहना करेगा और ऋषिचरणों में सीस झुकाने पर बाधित हो जायेगा।

भगवान करे हमारा यह अनुमान सत्य सिद्ध हो।

पुस्तक छपवाने की सारी जिम्मेदारी का भार वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक ने अपने ऊपर ले लिया है। प्रभुदेव सहाई हों।

रोहतक — निवेदक
२१-१०-७१ — विज्ञानानन्द सरस्वती

पातञ्जल योग साधना

मूल्य १·२५

महर्षि पतंजलि प्रणीत योगसूत्र और उस पर 'व्यास भाष्य' को परम प्रमाण मानकर प्रस्तुत पुस्तिका में सरल भाषा में योग साधना की क्रियात्मक शैली का उपदेश है। लेखक के अनुसार वृत्तिरहित होना या सबकुछ भगवान् पर छोड़ देना ये ही दो योग की पगडंडियाँ हैं। बिना तप और वैराग्य के योग सिद्ध नहीं होता। योगी रोगी नहीं होता, भोगी योगी नहीं हो सकता योग का गुरु परमात्मा है। अन्ध श्रद्धा वाले योग भक्तों को गुरुडम सेबचने की चेतावनी है आध्यात्मिक जप तप से रोग नाश होता है। प्रचलित प्राणायाम और आसन योग के लिए अनिवार्य नहीं। व्यावहारिक

और अनुभव सिद्ध विचार हैं। योग तथा प्रेमियों जज्ञासुओं के लिए लाभदायक हैं।

—हिन्दुस्तान दैनिक ७ जून १९७०

—"प्रस्तुत पुस्तिका श्री पतंजलि मुनि प्रोक्त 'पातंजल योगसूत्र' के सिद्धान्तों पर आधारित है। जिनको स्वामी जी महाराज ने स्वानुभव से संकलित करके यहां प्रकाशित किया है।···पुस्तक संग्रहणीय तथा उपयोगी है। प्रत्येक श्रेयोऽभिलाषी को अवश्य पढ़नी चाहिए।"

'लोकालोक' मासिक

—कमला नगर, देहली, आषाढ़ २०२७,

विश्व विख्यात, विश्वयात्री, विश्व वेदोपदेशक

श्री श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज के

हृदयोद्गार

'दिसम्बर १९७० में जब मैं कलकत्ता गया तो पं० दीन बन्धु जी ने मुझे वह सारी सामग्री दिखाई जिससे महर्षि दयानन्दजी की 'अज्ञात जीवनी' का पर्याप्त पता लगता है। दिल्ली लौटकर आने पर मैंने स्वामी सच्चिदानन्द 'योगी' सरस्वती से प्रार्थना की कि आप कलकत्ता पधारिये और सामग्री के विषय में अनुसन्धान करके किसी तथ्य पर पहुँचिये।

स्वामी सच्चिदानन्द जी ने धर्म शास्त्रों का भली भाँति अध्ययन अध्यापन किया है। वे योग मार्ग के अनुभवी पथिक हैं। ऐसे महानुभाव ही परमयोगी दयानन्द की जीवनी के सम्बन्ध में निश्चित बात कह सकते हैं।
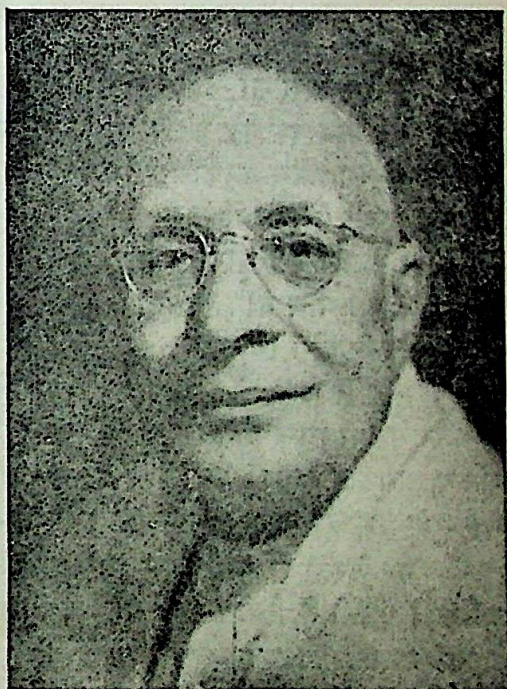
उन्होंने कलकत्ता में सवा मास निवास करके उपर्युक्त सामग्री का अनुशीलन किया और एक पुस्तक तैयार की, जिसके तैयार करने में स्वामी
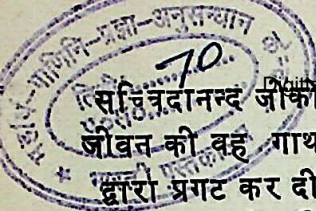
सच्चिदानन्द जी को घोर परिश्रम करना पड़ा। महर्षि स्वामी दयानन्दजी के जीवन की वह गाथायें जो अब तक रहस्य में थीं इस आत्मचरित्र के द्वारा प्रगट कर दी गयी हैं।

स्वामी सच्चिदानन्द जी का यह परिश्रम सराहनीय है। निश्चित रूपेण दुनिया के लोग देख सकेंगे कि महर्षि दयानन्द क्या थे? उन्होंने अपना जीवन कितनी तपश्चर्या और योगसाधना से बनाया था। अन्त में

'वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्'

के अनुसार वेद ही को सारी दुनिया की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति का स्रोत बताया।

स्वामी सच्चिदानन्दजी ने जो भूमिका लिखी है उसके अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि महर्षि दयानन्द ने स्वातन्त्र्य संग्राम में क्रियात्मक रूप से भाग लिया। यह भूमिका दुनियाँ की आँख खोल देगी। यह भूमिका क्या है? ऋषि दयानन्द के जीवन पर अकाट्य गवेषणा पूर्ण निबन्ध है।'

आनन्द स्वामी सरस्वती
११-१०-७१

"श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती योगी चिरकाल से योग साधना में लगे हैं। योग पथ पर चलते हुए उन्हें कितने ही व्यक्तिगत अनुभव हुए हैं और सर्वसाधारण के कल्याण के लिए ही योग सम्बन्धी कितने ही ग्रन्थों की रचना की है। उनमें से—

१. पातञ्जल योग साधना

२. ओं मन्त्र योग साधना

३. हिन्दी योग दर्शन

४. योग दर्शन पर (चार योगेश्वरों के भाष्य का संकलन) प्रेस में—इनमें पातंजल योग दर्शन पर चारों योगेश्वरों—(व्यास, दयानन्द, शंकर, भगवान् कृष्ण) का भाष्य-संकलन सबसे महत्वपूर्ण है। गम्भीर है। नई सूझ-बूझ है। नया अन्वेषण है। (एक सूत्र भाष्य नमूना)

गम्भीरता से स्वामी जी महाराज ने अनुसन्धान करके योग की घुण्डियां खोली हैं। योग पथ पर चलने वालों के लिए इन पुस्तकों का अध्ययन बहुत आवश्यक है।

२७-६-७० ह० आनन्द स्वामी सरस्वती

विरजानन्द स्मारक
कर्तार पुर

कुल पृष्ठ संख्या = १५२ + ३३४ = ४६६